भारत का विधि आयोग

195वीं रिपोर्ट

न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 2005

जनवरी, 2006

न्यायमूर्ति
एम. जगन्नाथ राव
अध्यक्ष

भारत का विधि आयोग
शास्त्री भवन
नई दिल्ली - 110001
31 जनवरी, 2006

एफ सं. 6(3)112/2005-एल सी (एल एस)

प्रिय *श्री भारद्वाज जी,*

शायद यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि विगत पचास वर्षों में विधि आयोग को किए गए पूर्ववर्ती निर्देशों में कोई भी निर्देश इतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना कि माननीय विधि और न्याय मंत्री द्वारा तारीख 2 नवंबर, 2005 को प्रेषित निर्देश जिसमें विधि मंत्रालय द्वारा तैयार किए गए "न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 2005" (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'विधेयक, 2005' कहा गया है) के प्रस्तावित प्रारूप का जिसमें उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को हटाए जाने की प्रक्रियाओं की चर्चा है अध्ययन करके सुझाव देने की ईप्सा की गई । 'न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 2005' पर इस 159वीं विशद रिपोर्ट को अग्रेषित करते हुए मैं हर्ष महसूस कर रहा हूं । मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता हो रही है कि यह रिपोर्ट 90 दिन की अल्प अवधि में तैयार की गई थी।

मैं, वर्तमान रिपोर्ट की पृष्ठभूमि के रूप में, न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 के अधीन वरिष्ठ न्यायालयों के न्यायाधीश को हटाए जाने की प्रक्रिया, प्रस्ताव और उच्चतम न्यायालय के निर्णयों तथा प्रस्तावित प्रारूप विधेयक, 2005 में की प्रक्रिया को संक्षेप में स्पष्ट करना चाहूंगा ।

न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 के अधीन प्रक्रिया

संसद् के सदनों द्वारा राष्ट्रपति को आग्रह (समावेदन) करके उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालयों के न्यायाधीशों को 'साबित कदाचार या असमर्थता' के लिए हटाए जाने की प्रक्रिया संविधान के अनुच्छेद 124(2) के परंतुक (ख) और अनुच्छेद 217(1) के परंतुक (ख) के साथ पठित अनुच्छेद 124(4) में दी गई है ।

पहले, न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 1964 अनुच्छेद 124(5) द्वारा यथानुध्यात प्रक्रिया अधिकथित करते हुए बनाया गया था जो सदनों की संयुक्त समिति को निर्दिष्ट कर दिया गया था । इस समिति जिसमें विख्यात संसद् सदस्यों और तत्कालीन अटर्नी जनरल श्री सी. के. दफ्तरी और पूर्व अटर्नी जनरल श्री एम. सी. सीतलवाड ने अपना साक्ष्य दिया के समक्ष अति व्यापक चर्चा के पश्चात्, संयुक्त समिति ने तारीख 13 मई, 1966 को अपनी रिपोर्ट दी । समिति की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 पारित किया गया जिसमें लोकसभा अध्यक्ष या राज्यसभा के सभापति द्वारा सदस्यों की विनिर्दिष्ट संख्या द्वारा लाए गए प्रस्ताव को स्वीकार करने के पश्चात् उनके द्वारा एक तीन सदस्यीय समिति को निर्दिष्ट किए जाने पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों (भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को सम्मिलित करते हुए), उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों और न्यायाधीशों के कदाचार और असमर्थता के सबूत और अन्वेषण की प्रक्रिया के लिए उपबंध था । यह 'निर्देश प्रक्रिया' है ।

प्रथम मामला जो इस अधिनियम के अधीन जांच के संबंध में उच्चतम न्यायालय में गया

न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी, जो उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश थे, का मामला है । इस मामले में तारीख 28 फरवरी, 1991 को लोकसभा में एक प्रस्ताव किया गया जिसे स्वीकार करने के पश्चात् लोकसभा अध्यक्ष ने तारीख 12 मार्च, 1991 को न्यायमूर्ति पी. बी. सावंत की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की । इस समिति ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि कुछ आरोप साबित हो गए हैं तारीख 20 जुलाई, 1992 को अपनी रिपोर्ट दी । समिति के कार्य आरंभ करने से पूर्व नौवीं लोकसभा भंग हो गई और यह दलील दी गई कि सदन में पेश प्रस्ताव भी समाप्त हो गया । इस अभिवाक् को उच्चतम न्यायालय द्वारा **न्यायिक जवाबदेही पर उप समिति** बनाम **भारत संघ** [(1991) 4 एस. सी. सी. 699] वाले मामले में नामंजूर कर दिया गया । समिति द्वारा रिपोर्ट तैयार किए जाने के उपरांत यह अभिवाक् किया गया कि न्यायाधीश सदन में रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने से पूर्व इसकी प्रति का हकदार है । इसे उच्चतम न्यायालय द्वारा **श्रीमती सरोजिनी रामस्वामी** बनाम **भारत संघ** [(1992) 4 एस. सी. सी. 506] वाले मामले में नामंजूर कर दिया गया । यह अभिनिर्धारित किया गया कि न्यायाधीश राष्ट्रपति द्वारा हटाए जाने का आदेश पारित किए जाने के पश्चात् ही रिपोर्ट को प्रशनगत कर सकता है । तत्पश्चात्, उन्हीं विद्वान् न्यायाधीश के संबंध में उच्चतम न्यायालय के दो और निर्णय हुए जो **कृष्णा स्वामी** बनाम **भारत संघ** [(1992) 4 एस. सी. सी. 605] और **सुश्री लिली थोमस** बनाम **लोकसभा अध्यक्ष** [(1993) 4 एस. सी. सी. 434] में संप्रकाशित हैं । तथापि, जब न्यायमूर्ति सावंत समिति की रिपोर्ट पर लोकसभा में अंतिम रूप से चर्चा के पश्चात् मतदान हुआ, तो हटाए जाने के प्रस्ताव को अपेक्षित बहुमत प्राप्त नहीं हुआ अत: यह गिर गया ।

तदनंतर, न्यायमूर्ति ए. एम. भट्टाचार्जी, जो तत्समय मुम्बई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति थे, के विरुद्ध कतिपय अभिकथनों के संबंध में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि लोकहित मुकदमे में न्यायपालिका द्वारा कदाचार या विसामान्य व्यवहार को सुधारने के लिए आंतरिक (इनहाउस) "पिअर (अभिजात) पुनर्विलोकन" की प्रक्रिया अधिकथित की जा सकती है और जहां अभिकथनों के आधार पर हटाया जाना आवश्यक न हो, "गौण उपाय" अधिरोपित करने के लिए आंतरिक यंत्र-रचना करना अनुज्ञेय है [**सी. रविचन्द्रन्** बनाम **न्यायमूर्ति ए. एम. भट्टाचार्जी** : (1995) 5 एस. सी. सी. 457 वाला मामला दृष्टव्य है] । इस विनिश्चय में, उच्चतम न्यायालय ने साबित कदाचार या असमर्थता के कारण हटाया जाना आवश्यक न होने की दशा में कतिपय गौण उपाय अधिरोपित किए जाने की आवश्यकता रेखांकित की ।

विधि आयोग ने उच्चतम न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 121, 124 और 217 के संबंध में माननीय न्यायालय के निर्णयों में घोषित विधि, न्यायमूर्ति सावंत समिति की रिपोर्ट और अन्य देशों की तुलनात्मक कानूनी तथा नज़ीर विधि के आलोक में न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 2005 के प्रस्तावित प्रारूप की परीक्षा की है ।

प्रारूप विधेयक, 2005 के अधीन प्रक्रिया

वर्तमान प्रारूप विधेयक, 2005 में 1968 के अधिनियम में दी गई पूर्ववर्ती 'निर्देश प्रक्रिया' के अलावा 'शिकायत प्रक्रिया' लागू किया जाना प्रस्तावित है । 'शिकायत प्रक्रिया' में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों (भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को छोड़कर), उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों और न्यायाधीशों के विरुद्ध किसी भी व्यक्ति द्वारा न्यायिक परिषद् में शिकायत की जा सकती है । यदि 'निर्देश प्रक्रिया' में संसद् के किसी भी सदन के सदस्यों द्वारा प्रस्ताव लाया जाता

है, तो लोकसभा अध्यक्ष/राज्यसभा के सभापति न केवल उपर्युक्त न्यायाधीशों के विरुद्ध अपितु भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के विरुद्ध भी जांच के लिए न्यायिक परिषद् के समक्ष निर्देश कर सकते हैं । 'शिकायत प्रक्रिया' में न्यायिक परिषद् द्वारा प्रारंभिक संवीक्षा और सत्यापन के लिए उपबंध है किंतु यह 'निर्देश प्रक्रिया' में नहीं है । 1968 के अधिनियम के अधीन तीन सदस्यीय समिति के स्थान पर, विधेयक, 2005 में पांच न्यायाधीशों की एक न्यायिक परिषद् का गठन प्रस्तावित है जिसमें भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, उच्चतम न्यायालय के दो वरिष्ठतम न्यायाधीश और उच्च न्यायालयों के दो वरिष्ठतम मुख्य न्यायमूर्ति शामिल होंगे जो किसी शिकायत या निर्देश से उद्भूत अभिकथनों की बाबत जांच और अन्वेषण करेंगे । जब अभिकथन साबित हो जाएं, तो 'शिकायत प्रक्रिया' के मामले में परिषद् अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत करेगी और 'निर्देश प्रक्रिया' के मामले में परिषद् द्वारा अपनी रिपोर्ट लोकसभा अध्यक्ष/राज्यसभा के सभापति को जिन्होंने निर्देश किया प्रस्तुत की जाएगी ।

कुछ महत्वपूर्ण विवाद्यक जिन पर विधेयक, 2005 के साथ विचार किया जाना अपेक्षित है

(क) 'शिकायत प्रक्रिया' के अधीन 'गौण उपाय' अधिरोपित करने की बाबत परिषद् को शक्ति न होना :

विधि आयोग के विचार में विधेयक, 2005 में जो गंभीर लोप हैं उनमें एक लोप 'शिकायत प्रक्रिया' के अधीन परिषद् को उस स्थिति में जब आरोपों के लिए जो साबित हो गए हैं हटाया जाना तो आवश्यक नहीं है किन्तु वे "विसामान्य या बुरे व्यवहार" की कोटि में आते हैं जिनके लिए 'गौण उपाय' आवश्यक हैं 'गौण उपाय' अधिरोपित करने की शक्ति के न होने की बाबत है । (वास्तव में, हटाए जाने के प्रस्ताव पर लोकसभा अध्यक्ष/राज्यसभा के सभापति द्वारा निर्देश किए जाने के मामले में न्यायिक परिषद् न तो किसी प्रकार का 'गौण उपाय' अधिरोपित कर सकती है और न ही इसके लिए सिफारिश कर सकती है) । ऐसे मामलों में युनाइटेड किंगडम (ब्रिटेन), युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका, कनाडा और जर्मनी में न्यायिक परिषद् या समरूप निकायों को विभिन्न प्रकार के 'गौण उपाय' यथा (i) सलाह देना, (ii) सेवानिवृत्ति के लिए अनुरोध, (iii) परिसीमित अवधि के लिए न्यायिक कार्य न सौंपा जाना, (iv) चेतावनी, (v) परिनिंदा या भर्त्सना (सार्वजनिक या प्राइवेट रूप में) अधिरोपित करने के लिए सशक्त बनाया गया है ।

'गौण उपायों' की वकालत भारत के पूर्व मुख्य न्यायमूर्ति एम. एन. वेंकटचलय्या की अध्यक्षता में संविधान के पुनर्विलोकन के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग द्वारा प्रस्तुत 2001 की रिपोर्ट में भी की गई है ।

'गौण उपायों' के अधिरोपण को अन्य देशों में सांविधानिक ठहराया गया है यद्यपि वे संविधान में उपबंधित नहीं हैं

अमेरिका और कनाडा में यह प्रश्न उठा कि क्या 'गौण उपायों' के अधिरोपण को अनुज्ञात करने वाले किसी सांविधानिक उपबंध के अभाव में, न्यायिक परिषद् द्वारा ऐसे उपबंधों का अधिरोपण सांविधानिक दृष्टि से विधिमान्य होगा ? अमेरिका और कनाडा की परिसंघीय (फेडरल) न्यायपालिकाओं ने अपने निर्णयों में न्यायिक परिषद् द्वारा 'स्व-विनियमन' के लिए न्यायपालिका की साधारण शक्ति के भाग के रूप में (अमेरिका या कनाडा के फेडरल संविधानों में इसके लिए कोई अभिव्यक्त उपबंध न होते हुए भी) ऐसे 'गौण उपायों' के अधिरोपण को मान्य ठहराया है । उन्होंने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि न्यायिक परिषदों को ऐसी किसी शक्ति का सौंपा जाना फेडरल

विधायिका की महाभियोग की शक्ति के किसी भाग का परित्याग करने की कोटि में नहीं आता है क्योंकि न्यायिक परिषद् केवल 'गौण उपाय' तो अधिरोपित कर सकती हैं किन्तु हटाए जाने का निर्देश नहीं दे सकती है । वे हटाए जाने की केवल सिफारिश कर सकती हैं ।

चेन्डलर बनाम **जुडिशियल कौंसिल** [(1970) 398 यू. एस. 74] वाले मामले में न्यायमूर्ति हारलेन ने गौण उपायों (इस मामले में यह 1939 के अमेरिकी अधिनियम के उपबंधों के अधीन न्यायिक कार्य वापस लिया जाना था) की विधिमान्यता की अभिपुष्टि करने की बाबत विधिक आधारभूमि तैयार की । उसने यह अभिकथित किया कि न्यायिक स्व-विनियमन या आंतरिक उपाय "न्याय प्रशासन" के भाग हैं जिन्हें न्यायिक शाखा द्वारा अपनी दक्षता में सुधार करने की साधारण शक्ति से बल प्राप्त होता है । अतः, ऐसी कार्रवाई को अनुज्ञात करने वाला कोई भी कानून विधिमान्य है, यद्यपि अमेरिकी संविधान में ऐसे गौण उपायों के अधिरोपण के लिए कोई अभिव्यक्त उपबंध नहीं है । 1939 के अमेरिकी अधिनियम को 1980 के अमेरिकी अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया और इसे 2002 के अमेरिकी अधिनियम द्वारा पुनः प्रतिस्थापित किया गया । 1980 और 2002 के अमेरिकी कानूनों में 'गौण उपाय' अधिरोपण के लिए अभिव्यक्त उपबंध हैं । जहां तक हटाए जाने का संबंध है, सर्किट की जुडिशियल कौंसिल और अमेरिका की जुडिशियल कान्फ्रेंस केवल सिफारिश कर सकती हैं । (2005 का यू. के. अधिनियम और कनाडियन ऐक्ट, 1985 के अधीन जारी की गईं कनाडा की उपविधियों और जर्मनी के संविधान में भी गौण उपाय अधिरोपित किए जाने के लिए उपबंध है) ।

जॉन एच. मेकब्राइडे बनाम **कमेटी टू रिव्यु सर्किट कौंसिल कंडक्ट एण्ड डिसएबिलिटी ऑर्डर्स ऑफ द जुडिशियल कान्फ्रेंस आफ यू. एस.** [(2001) 264 एफ. 3डी. 52] वाले मामले के एक बहुत ही विस्तृत निर्णय में अमेरिकी कॉर्ट आफ अपील्स द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि संविधान में किसी अभिव्यक्त उपबंध न होने के बावजूद 'गौण उपायों' के अधिरोपिण के लिए ऐसी आंतरिक (इनहाउस) या आंतर (भीतरी) न्यायिक सुधार संबंधी तंत्र-रचनाएं (इन्ट्रा-जुडिशियल कॉरेक्शनल मैकेनिज्मस) विधिमान्य हैं और जुडिशियल कौंसिल द्वारा अधिरोपित की जा सकती है यद्यपि अमेरिकी संविधान में 'गौण उपाय' अधिरोपित किए जाने के लिए ऐसा कोई उपबंध नहीं है । इस संबंध में **हेस्टिंग्स** बनाम **जुडिशियल कॉन्फ्रेंस आफ यू. एस.** [(1987) 829 एफ. 2डी. 91]; **इन द मैटर ऑफ कम्पलेंटस अण्डर इनवैस्टीगेशन** [(1980) 783 एफ. 2डी. 1988], **मैकेगन** बनाम **हिकमैन** [1989 (2) एस. सी. आर. 796]; **न्यायमूर्ति पॉल कॉसग्रोव बनाम ए. जी. आफ ऑन्टेरियो** [2005 एफ. सी. 1954] और **ग्रेटन** बनाम **कनेडियन इण्डियन कौंसिल** [1994 (2) एफ. सी. 769] वाले मामलों में के निर्णय सुसंगत हैं ।

इसमें कोई संदेह नहीं कि अमेरिका के अनेक राज्यों यथा केलिफोर्निया, इदाहो, कॉनेक्टीकट और टेक्सास आदि राज्यों के संविधानों में, जिनमें महाभियोग या आग्रह (समावेदन) की बाबत उपबंध है, संसदीय प्रक्रिया के प्रति निर्देश किए बिना स्वयं न्यायिक परिषद् द्वारा या राज्य की सुप्रीम कॉर्ट द्वारा हटाए जाने की अतिरिक्त प्रक्रिया के लिए उपबंध करते हुए संशोधन किया गया है । निश्चित ही, हटाए जाने की ऐसी शक्ति, यदि इसे सीधे राज्यों की जुडिशियल कौंसिलों में या राज्यों की सुप्रीम कोर्टों में निहित कर दिया गया होता, के संबंध में राज्यों के संविधानों में संशोधन आवश्यक होता । निःसंदेह, राज्य संविधानों के इन्हीं संशोधनों में न्यायिक परिषदों को भी 'गौण उपाय' अधिरोपित करने के लिए सशक्त बनाया गया है । किंतु चेन्डलर से लेकर मैकब्राइडे वाले मामलों में अमेरिकी फेडरल न्यायपालिका द्वारा अधिकथित विधि को दृष्टिगत करते हुए यह स्पष्ट है कि राज्य

न्यायिक परिषदों या राज्य सुप्रीम कॉर्टों में हटाए जाने की अतिरिक्त शक्ति निहित किए जाने के कारण, न कि इसलिए कि 'गौण उपाय' अधिरोपित करने की ऐसी शक्ति विहित किए जाने के लिए उक्त संविधानों में संशोधन आवश्यक है राज्य संविधानों में संशोधन किया जाना आवश्यक हो गया है ।

इन समस्त कारणों से जिनकी विवेचना इस रिपोर्ट में की गई है विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि जहां साबित कदाचार या असमर्थता के लिए हटाया जाना आवश्यक न हो, वहां शिकायत प्रक्रिया के अंतर्गत, न्यायिक परिषद् को स्वयं गौण उपाय अधिरोपित करने की शक्ति उसमें निहित करते हुए प्रस्तावित विधेयक, 2005 में एक उपबंध किया जाना चाहिए । ऐसे गौण उपायों में (i) सलाह दिया जाना, (ii) सेवानिवृत्ति के लिए अनुरोध, (iii) परिसीमित अवधि के लिए न्यायिक कार्य न सौंपा जाना, (iv) चेतावनी, (v) परिनिंदा या भर्त्सना (सार्वजनिक या प्राइवेट रूप में) शामिल होंगे । वस्तुत:, हटाए जाने के प्रस्ताव पर लोकसभा अध्यक्ष/राज्यसभा के सभापति द्वारा निर्देश के मामले में न्यायिक परिषद् न तो कोई 'गौण उपाय' अधिरोपित कर सकती है और न ही इनके लिए सिफारिश कर सकती है ।

(ख) 2005 के विधेयक की भांति केवल न्यायाधीशों को मिलाकर बनाई न्यायिक परिषद् अधिकांश देशों में प्रतिमान है

विधि आयोग का यह मत है कि प्रारूप विधेयक, 2005 की धारा 3 में यह प्रस्तावित किया जाना कि राष्ट्रीय परिषद् में न्यायापालिका के पांच वरिष्ठ सदस्यों को शामिल किया जाना चाहिए सही और उपयुक्त आधार है । इस बाबत कि उक्त निकाय में केवल न्यायाधीश ही होनें चाहिए विश्व में पर्याप्त प्रमाण और नज़ीरें हैं । 'पिअर पुनर्विलोकन' अंतरराष्ट्रीय प्रतिमान है जिसके बारे में अंतरराष्ट्रीय निकायों के अनेकों संकल्पों में कहा गया है और जिसका प्रतिष्ठित विधिवेत्ताओं द्वारा समर्थन किया गया है । इस संबंध में, विधि आयोग ने इस रिपोर्ट में इस तथ्य के प्रति निर्देश किया है कि केवल न्यायाधीशों को मिलाकर बनाई गईं ऐसी न्यायिक परिषदें या इसी भांति निकाय अनेक देशों यथा संयुक्त राज्य अमेरिका, संयुक्त राज (ब्रिटेन), कनाडा (फेडरल) और राज्य, हांगकांग, जर्मनी, स्वीडन, पाकिस्तान, बंगलादेश, मलेशिया, सिंगापुर, इज़रायल, जाम्बिया, त्रिनिदाद और टोबेगो, न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया आदि में गठित किए गए हैं । संविधान के पुनर्विलोकन के लिए बनाए गए राष्ट्रीय आयोग ने भी अपनी रिपोर्ट (सं. 2001) में 'गौण उपाय' अधिरोपित किए जाने के प्रयोजनार्थ केवल वरिष्ठ न्यायाधीशों को मिलाकर न्यायिक आयोग बनाए जाने के लिए सुझाव दिया है ।

(ग) कतिपय मामलों में न्यायिक परिषद् की रचना में उपांतरण किया जाना

जब न्यायिक परिषद् उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के विरुद्ध (शिकायत प्रक्रिया के अंतर्गत) अथवा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों या भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के विरुद्ध (निर्देश प्रक्रिया के अंतर्गत) जांच या अन्वेषण करे तो न्यायिक परिषद् में उच्च न्यायालयों के वरिष्ठ मुख्य न्यायमूर्ति सम्मिलित नहीं किए जाने चाहिए । परिषद् के सभी सदस्य उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश होने चाहिए ।

(घ) कार्यवाहियां लंबित रहने के दौरान न्यायिक कार्य वापस लिया जाना (विधेयक की धारा 21 की विधिमान्यता) और 'गौण उपाय' के रूप में न्यायिक कार्य वापस लिया जाना (विभेद)

न्यायिक कार्य दो प्रकार से वापस लिया जा सकता है (i) कार्यवाहियां लंबित रहने के दौरान कार्य वापस लिया जाना, और (ii) जांच की समाप्ति पर 'गौण उपाय' के रूप में कार्य वापस लिया जाना ।

(i) विधि आयोग ने इस बाबत कारण दिए हैं कि विधेयक, 2005 की धारा 21 जो अन्वेषण या जांच लंबित रहने के दौरान न्यायिक कार्य वापस लिया जाना अनुज्ञात करती है सांविधानिकत: क्यों विधिमान्य है । उसने न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी के मामले में उच्चतम न्यायालय की कतिपय मताभिव्यक्तियों पर प्रकाश डालते हुए यह कहा कि धारा 21 सदृश किसी उपबंध पर न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी के मामले में विचार नहीं किया गया । धारा 21 विधिमान्य होगी क्योंकि यह अन्वेषण के उद्देश्यों और कदाचार के सबूत को प्राप्त करने के प्रयोजनों को बेहतर रूप में पूरा करती है ।

(ii) 'गौण उपाय' के रूप में किसी न्यायाधीश का निलंबन या उससे न्यायिक कार्य वापस लिए जाने, यदि यह अनिश्चित अवधि के लिए है, के प्रश्न से संबंधित **रीस बनाम क्रेन** [1994 (1) ऑल इंगलैण्ड रिपोर्ट्स 833] वाले प्रिवी कौंसिल के मामले में लॉर्ड स्लीन के निर्णय सहित अनेक निर्णयों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यह हटाए जाने की कोटि में आएगा और न्यायिक परिषद् स्वयं 'हटाया जाना' अधिरोपित नहीं कर सकती है । तथापि, अमेरिका में फेडरल और राज्य दोनों में न्यायिक परिषद् द्वारा कार्य परिसीमित अवधि के लिए वापस लिया जाता है । अत:, विधि आयोग ने यह सिफारिश की है कि न्यायिक परिषद् द्वारा अधिरोपित किए जाने वाले गौण उपायों में से 'परिसीमित अवधि के लिए न्यायिक कार्य का वापस लिया जाना' का उपाय विधिमान्य होगा ।

(ङ) उच्चतम न्यायालय में अपील किए जाने का उपबंध किया जाए

जैसाकि न्यायमूर्ति **वी. रामस्वामी** वाले मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित किया गया कि न्यायाधीश को हटाए जाने के आदेश को, यदि यह 1968 के अधिनियम के अधीन राष्ट्रपति द्वारा न्यायाधीशों की समिति को निर्देश और उसकी सिफारिशों के पश्चात् पारित किया गया है, न्यायिक मामले के रूप में चुनौती दी जा सकती है । संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय में ऐसी चुनौती को प्रवारित करने के लिए और **एल. चन्द्रकुमार** वाले मामले में के इस निर्णय को दृष्टिगत करते हुए कि अनुच्छेद 226 संविधान की आधारभूत संरचना का भाग है, उच्चतम न्यायालय में (i) राष्ट्रपति द्वारा शिकायत प्रक्रिया या निर्देश प्रक्रिया के मामले में पारित हटाए जाने के आदेशों, और (ii) शिकायत प्रक्रिया के अधीन न्यायिक परिषद् 'गौण उपाय' अधिरोपित किए जाने से संबंधित आदेशों के विरुद्ध अपील का उपबंध समाविष्ट करना आवश्यक है।

प्रस्तावित विधेयक, 2005 के खण्डवार विश्लेषण के आधार पर विधि आयोग द्वारा की गई अन्य सिफारिशें

विधि आयोग ने रिपोर्ट में यह सिफारिश की है कि प्रस्तावित विधेयक, 2005 में अनेक ऐसे खण्ड हैं जिन्हें संशोधित या समाविष्ट किया जाना अपेक्षित है । इनमें महत्वपूर्ण ये हैं :

(i) 1968 के अधिनियम में यथापरिकल्पित 'निर्देश प्रक्रिया' और विधेयक, 2005 में यथापरिभाषित 'शिकायत प्रक्रिया' के मध्य स्पष्ट विभेद किया जाना चाहिए । इन निबंधनों की एक नवीन परिभाषा प्रस्तावित है ।

(ii) 2005 के विधेयक में 'अन्वेषण, संवीक्षा' शब्दों का प्रयोग किया गया है जबकि 1968 के अधिनियम के शीर्षक में 'जांच' शब्द का प्रयोग किया गया है । अनुच्छेद 124 (4) में 'अन्वेषण और सबूत' शब्दों का प्रयोग किया गया है । विधि आयोग का यह मत है कि 'शिकायत प्रक्रिया' के अंतर्गत किसी न्यायाधीश को हटाए जाने की संपूर्ण प्रक्रिया के विभिन्न प्रक्रमों का स्पष्ट रेखांकन होना चाहिए। जैसाकि न्यायमूर्ति सावंत द्वारा अभिनिर्धारित किया गया कि प्रक्रिया आपराधिककल्प है, अतः इसके विभिन्न प्रक्रमों, अर्थात् शिकायत/अभिकथनों, न्यायिक परिषद् द्वारा प्रारंभिक अन्वेषण, अभिकथनों के आधार पर आरोप विरचित किया जाना और जांच को प्रस्तावित विधेयक, 2005 में स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए । जिस रीति में यह किया जाना चाहिए वह हमारी रिपोर्ट में व्यापक रूप में उपदर्शित की गई है ।

(iii) (क), 'कदाचार' और 'असमर्थता' शब्दों की परिभाषा समाविष्ट करना आवश्यक है ताकि इसमें विभिन्न प्रकार के कदाचार के साथ-साथ विसामान्य या बुरा (खराब) व्यवहार भी आ सके । सभी देशों में न्यायाधीश को कदाचार का दोषी नहीं ठहराया जा सकता यदि अभिकथन किसी निर्णय या आदेश के गुणागुण के संबंध में किए गए हैं । सन् 1805 में अमेरिका में न्यायमूर्ति चेज़ के मामले में इस आधार पर महाभियोग भी असफल रहा ।

(ख) आचार संहिता के अतिक्रमण को भी कदाचार माना जाना चाहिए । जहां तक आचार संहिता के प्रकाशन का संबंध है, न्यायिक परिषद् को इसे भारत के राजपत्र में प्रकाशित करना चाहिए और जब तक इसे प्रकाशित न कर दिया जाए उच्चतम न्यायालय के तारीख 7 मई, 1997 के संकल्प के अनुसार 'न्यायिक जीवन के मूल्यों का पुनर्कथन' लागू होता रहेगा। परिषद् को आचार संहिता में समय-समय पर संशोधन करने की शक्ति भी प्रत्यायोजित की जानी चाहिए ।

(iv) 'साबित' शब्द की परिभाषा 'युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत' होनी चाहिए (जैसीकि न्यायमूर्ति सावंत समिति ने मताभिव्यक्ति की) । इस प्रसंग में विधेयक में प्रयुक्त 'सिद्ध हो गया' शब्द का लोप किया जाना चाहिए ।

(v) जहां तक शिकायत प्रक्रिया का संबंध है, प्रस्तावित विधेयक, 2005 में 'ह्विसिलब्लोअर्स उपबंध' समाविष्ट किया जाना चाहिए । यदि 'शिकायत प्रक्रिया' के अधीन शिकायतकर्ता को यह आशंका है कि उसे बदले की भावना से नुकसान पहुंचाया जा सकता है तो वह परिषद् से यह अनुरोध कर सकता है कि उसका नाम गोपनीय रखा जाए । विधि आयोग द्वारा अपनी 179वीं रिपोर्ट में 'ह्विसिलब्लोअर्स' की संरक्षा के लिए की गई सिफारिशें इस प्रसंग में सुसंगत है और उन्हें अंगीकार किया जाना चाहिए ।

(vi) शिकायत के प्रारंभ से लेकर कौंसिल द्वारा 'गौण उपाय' अधिरोपित किए जाने तक या कौंसिल द्वारा हटाए जाने की सिफारिश करने के मामले में हटाए जाने की बाबत इसकी सिफारिश संसद् में रखे जाने तक संपूर्ण शिकायत कार्यवाहियां गोपनीय रखी जाएं । शिकायतकर्ता और साक्षियों को भी शिकायत में किए गए अभिकथनों, शिकायतकर्ता या साक्षी या न्यायाधीश के नाम के बारे में प्रचार किए जाने का प्रतिषेध किया जाना चाहिए । गोपनीयता का किसी भी रूप में भंग अपराध माना जाना चाहिए । यह भी सिफारिश की जाती है कि गोपनीयता से संबंधित उपर्युक्त उपबंध सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 में दी

गई किसी बात के होते हुए भी लागू हों ।

(vii) प्रस्तावित विधेयक, 2005 में ऐसे 'कदाचार' जो नवीन विधि के आरंभ से पूर्व किया गया के अभिकथनों पर विचार तो किया जाना चाहिए किंतु ये नवीन विधि के प्रारंभ की तारीख से दो वर्ष से अधिक अवधि के नहीं होने चाहिएं ।

(viii) विधि आयोग द्वारा अपनी रिपोर्ट में और भी अनेक सिफारिशें की गई हैं जो कुल मिलाकर 33 हैं ।

इस रिपोर्ट में विभिन्न प्रकार के विधिक और सांविधानिक विवाद्यकों पर व्यापक रूप में विचार किया गया है और वास्तव में यह इस आधार-वाक्य से शुरू होती है कि न्यायिक स्वतंत्रता हमारे संविधान का एक आधारभूत मूलतत्व है किंतु यह संपूर्ण (निरंकुश) नहीं है तथा न्यायिक स्वतंत्रता और न्यायिक जवाबदेही दोनों को पृथक नहीं किया जा सकता है ।

अध्याय-1 भूमिका है, अध्याय-2 में चर्चा किए जाने वाले बिंदुओं के निर्धारण, अध्याय-3 में न्यायिक जवाबदेही और न्यायिक स्वतंत्रता, अध्याय-4 में न्यायिक स्वतंत्रता और जवाबदेही से संबंधित अंतरराष्ट्रीय परंपराओं, अध्याय-5 में संसद् की संयुक्त समिति और न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 की और अध्याय-6 में न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित सांविधानिक सिद्धांतों की चर्चा है । अध्याय-7 में संयुक्त राज (ब्रिटेन) में हटाए जाने की प्रक्रिया, अध्याय-8 में महाभियोग और आग्रह (समावेदन) के मध्य अंतर, अध्याय-9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17 में कनाडा, आस्ट्रेलिया, हांगकांग, जर्मनी, स्वीडन, त्रिनिदाद और टोबेगो, सिंगापुर, न्यूज़ीलैंड, इज़रायल, जाम्बिया, बंगलादेश, पाकिस्तान, मलेशिया, संयुक्त राज्य अमेरिका और राज्य न्यायालयों का वर्णन है । अध्याय-18 में आंतरिक (इन हाउस) प्रक्रिया और न्यायिक मूल्यों के पुनर्कथन पर उच्चतम न्यायालय के 1997 के संकल्प, अध्याय-19 में ए. एम. भटटचार्जी वाले मामले की चर्चा है । अध्याय-20 में अध्याय-2 में सूचीबद्ध बिन्दुओं और इनसे संबंधित सिफारिशें की व्यापक रूप में चर्चा है । अध्याय-21 में सिफारिशों (जिनकी संख्या 33 है) का संक्षेप में सार है ।

विधि आयोग को इस बाबत पूर्ण विश्वास है कि उसके द्वारा की गई 33 सिफारिशें न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 2005 के प्रारूप में आवश्यक परिवर्तन करने के लिए उपयोगी सिद्ध होंगी ।

हम अंशकालिक सदस्य डॉ. एस. मुरलीधर द्वारा इस रिपोर्ट और विशेषकर, अध्याय 2, 20 और 21 को तैयार करने के संबंध में किए गए गहन शोध और प्रदान की गई सहायता के लिए उनका आभार प्रकट करना चाहते हैं ।

सादर,

भवदीय

ह/.

(न्यायमूर्ति एम. जगन्नाथ राव)

श्री एच. आर. भारद्वाज
माननीय विधि और न्याय मंत्री
भारत सरकार
शास्त्री भवन
नई दिल्ली

विषय सूची

अध्याय	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	भूमिका	4 – 9
2.	इस अध्याय में चर्चा किए जाने वाले विशिष्ट बिन्दु	10 – 20
3.	न्यायिक जवाबदेही और न्यायिक स्वतंत्रता की परिसीमाएं	21 – 29
4.	न्यायिक स्वतंत्रता और न्यायिक जवाबदेही से संबंधित अंतरराष्ट्रीय परंपराएं	30 – 49
5.	गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की धारा 220(2)(बी) और न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 1964 पर संसद् की संयुक्त समिति	50 – 60
6.	न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी वाले मामले में भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित सांविधानिक सिद्धांत	61 – 92
7.	ब्रिटेन में पद से हटाए जाने की प्रक्रिया	93 – 107
8.	महाभियोग और समावेदन प्रक्रिया भिन्न है	108 – 114
9.	कनाडा (फेडरल) और उसके राज्यों में न्यायाधीशों को पद से हटाने की प्रक्रिया	115 – 125
10.	आस्ट्रेलिया (फेडरल) और स्टेट कोर्ट्स (राज्य न्यायालयों) में की प्रक्रिया और न्यायमूर्ति मर्फी वाला मामला	126 – 149
11.	हांगकांग, जर्मनी और स्वीडन में प्रक्रियाएं	150 – 154
12.	त्रिनीदाद और टोबागो में कार्यवाहियां और प्रिवी कौंसिल का निर्णय (1994)	155 – 166
13.	सिंगापुर, न्यूजीलैंड, इज़राइल और जांबिया में प्रक्रिया	167 – 177
14.	बांग्लादेश, पाकिस्तान और मलेशिया में प्रक्रिया	178 – 184

15.	संयुक्त राज्य अमेरिका में फेडरल न्यायाधीशों संबंधी प्रक्रिया (1939, 1980 और 2002 के अधिनियम)	185 – 198
16.	संयुक्त राज्य फेडरल न्यायपालिका द्वारा विनिश्चित तीन महत्वपूर्ण विधायक	199 – 205
17.	संयुक्त राज्य अमेरिका के राज्य न्यायालयों, कैलीफ़ोर्निया, इदाहो, कॉनक्टीकट, टैक्सास और विस्कोंसिन में प्रक्रिया	206 – 233
18.	भारत का उच्चतम न्यायालय : न्यायिक जीवन के मूल्यों का पुनर्कथन और आंतरिक प्रक्रिया (1997)	234 – 242
19.	भारत का उच्चतम न्यायालय : न्यायमूर्ति ए. एम. भट्टाचार्जी वाले मामले में आंतरिक प्रक्रिया	243 – 248
20.	आध्याय 2 में निर्दिष्ट बिन्दुओं पर चर्चा, विचार और सिफारिशें	249 – 351
21.	न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 2005 के प्रारूप पर विधि आयोग की सिफारिशों और प्रकट किए गए विचारों का संक्षिप्त सार	353 – 365
	उपाबंध – 1 न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 2005	(1 – 14)
	उपबंध – 2 न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968	(1 – 6)

अध्याय-1

भूमिका

तारीख 2 नवंबर, 2005 के पत्र द्वारा माननीय विधि और न्याय मंत्री श्री एच. आर. भारद्वाज ने प्रस्तावित न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 2005 (**इस रिपोर्ट का परिशिष्ट-1**) का प्रारूप विधि आयोग की 'समीक्षा और सुझावों' के लिए भेजा । यह सुझाव दिया गया कि अध्ययन करने के पश्चात् सुझावों को शीघ्रातिशीघ्र अग्रेषित किया जाए ।

प्रारंभ में यह उल्लेख किया जा सकता है कि संविधान के अनुच्छेद 124(2) का परंतुक (ख) और अनुच्छेद 124(4) में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाए जाने और अनुच्छेद 217(1) के परंतुक (ख) में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को 'साबित कदाचार या असमर्थता' के लिए भारत के राष्ट्रपति के आदेश से संसद् के प्रत्येक सदन द्वारा अपनी कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत द्वारा समर्थित समावेदन (आग्रह) के पश्चात् हटाए जाने की चर्चा है। अनुच्छेद 124(5) में संसद् से इस निमित्त विधि बनाए जाने की अपेक्षा की गई है । ऐसी विधि न्यायाधीश जांच अधिनियम, 1968 (1968 का अधिनियम सं. 51) (**इस रिपोर्ट का परिशिष्ट-2**) अधिनियमित करके 1968 में बनाई गई थी । उक्त अधिनियम के अधीन नियम भी बनाए गए थे जिन्हें न्यायाधीश जांच नियम, 1969 कहा जाता है ।

1968 के अधिनियम का लंबा शीर्षक इस प्रकार है :

> "उच्चतम न्यायालय के या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता के अन्वेषण और सबूत की और संसद् द्वारा राष्ट्रपति को समावेदन उपस्थित किए जाने की प्रक्रिया का विनियमन करने के लिए तथा उनसे सम्बद्ध विषयों के लिए अधिनियम"

न्यायाधीश जांच अधिनियम, 1968 के अधीन प्रक्रिया

1968 के अधिनियम में सात धाराएं हैं । धारा 3 में "समिति द्वारा न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता की बाबत अन्वेषण" की प्रक्रिया अधिकथित है । इसमें 'न्यायाधीश' से उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश अभिप्रेत है जिसमें भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और किसी

उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति भी आते हैं । इस प्रक्रिया के अनुसार किसी न्यायाधीश को हटाए जाने की प्रार्थना करते हुए राष्ट्रपति को समावेदन प्रस्तुत किए जाने का प्रस्ताव संसद् के किसी भी सदन में नोटिस देकर किया जाएगा जिस पर संसद् के उस सदन, जिसमें उक्त प्रस्ताव का नोटिस दिया गया, के सदस्यों की कतिपय संख्या द्वारा हस्ताक्षर होंगे । तत्पश्चात्, लोकसभा अध्यक्ष या राज्यसभा के सभापति, यथास्थिति, ऐसे व्यक्तियों से परामर्श करने के पश्चात् जिन्हें वे 'उपयुक्त समझें', प्रस्ताव को स्वीकार कर सकते हैं और यदि यह इस प्रकार स्वीकार कर लिया जाता है तो वे मामले को एक समिति को भेजेंगें जो तीन सदस्यों को मिलाकर बनाई जाएगी जिसमें एक-एक व्यक्ति निम्न प्रवर्गों में से होगा :

(क) उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और अन्य न्यायाधीश,

(ख) उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्ति, और

(ग) प्रख्यात विधिवेत्ता ।

यह समिति निश्चित आरोप विरचित करेगी जिनकी बाबत अन्वेषण किया जा सकता है जिसके दौरान संबंधित न्यायाधीश को सुना जाएगा । असमर्थता, शारीरिक या मानसिक, से संबंधित अभिकथनों जिनमें यह कहा गया है कि वह अपने शासकीय कर्तव्यों का प्रभावी रूप से निर्वहन करने में असमर्थ है, की स्थिति में और जब न्यायाधीश उक्त अभिकथनों से इनकार करे, तो इस-अधिनियम में न्यायाधीश की चिकित्सीय परीक्षा की प्रक्रिया का उपबंध है ।

यह समिति, अन्वेषण के पश्चात् लोकसभा अध्यक्ष या राज्यसभा के सभापति, यथास्थिति, को अपने निष्कर्षों की रिपोर्ट भेजेगी । तत्पश्चात् यह रिपोर्ट दोनों सदनों में रखी जाएगी । धारा 6 में रिपोर्ट पर विचार किए जाने के लिए उपबंध है और इसमें न्यायाधीश को हटाए जाने का आग्रह (समावेदन) प्रस्तुत किए जाने की प्रक्रिया के प्रति निर्देश है । धारा 7 में दोनों सदनों की संयुक्त समिति द्वारा नियम बनाए जाने की बात कही गई है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 1968 के अधिनियम में दी गई प्रक्रिया के अनुसार किसी न्यायाधीश को तीन सदस्यों वाली एक समिति, जिसके दो सदस्य न्यायाधीश और एक सदस्य विधिवेत्ता होता है, से रिपोर्ट प्राप्त करने के पश्चात् सदनों द्वारा राष्ट्रपति को आग्रह किए जाने पर

हटाया जाता है ।

1968 के अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों में उक्त प्रक्रिया के अन्य ब्यौरें दिए गए हैं ।

प्रस्तावित न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 2005 के अधीन प्रक्रिया

1968 के अधिनियम की भांति वर्तमान प्रारूप विधेयक, 2005 में अन्वेषण और सदनों के राष्ट्रपति को आग्रह पर न्यायाधीश को 'हटाए जाने' की प्रक्रिया अनुध्यात है । तथापि, प्रस्ताव के प्रति निर्देश के अलावा इसमें किसी न्यायाधीश के विरुद्ध किसी व्यक्ति द्वारा "शिकायत" किए जाने की प्रक्रिया भी परिकल्पित है और इसमें उक्त शिकायत के अनुसरण में राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् (एनजेसी) द्वारा अन्वेषण किए जाने की प्रक्रिया के प्रति भी निर्देश है । इसमें यह प्रस्तावित है कि यह परिषद् पांच न्यायाधीशों से मिलकर बनेगी ।

(सुविधा के लिए विधेयक के 'खंड' शब्द का प्रयोग किए जाने के बजाय हम 'धारा' शब्द का प्रयोग करेंगे)।

प्रारूप विधेयक की धारा 3(1) में यह कहा गया है कि राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् में

(क) भारत के मुख्य न्यायमूर्ति (अध्यक्ष)

(ख) भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा नामनिर्दिष्ट उच्चतम न्यायालय के दो सर्वाधिक वरिष्ठ न्यायाधीश (सदस्य)

(ग) भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा नामनिर्दिष्ट उच्च न्यायालयों के दो सर्वाधिक वरिष्ठ मुख्य न्यायाधीश (सदस्य)

होंगे ।

धारा 2(घ) में 'न्यायाधीश' की परिभाषा है और इसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के विरुद्ध अन्वेषण किया जा सकता है और इसमें उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति भी शामिल हैं । इस 'शिकायत प्रक्रिया' के अन्तर्गत विधेयक में 'न्यायाधीश' की इस परिभाषा में 'भारत के मुख्य न्यायमूर्ति' अभिव्यकतत: सम्मिलित नहीं हैं किन्तु यह धारा 3(2) के परंतुक के अध्यधीन है जिसमें यह उपबंधित है कि लोकसभा के अध्यक्ष

या राज्यसभा के सभापति द्वारा न्यायिक परिषद् को किए गए 'निर्देश' में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के विरुद्ध भी अभिकथन किए जा सकते हैं ।

धारा 5 में न्यायाधीश (अर्थात् भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न किसी न्यायाधीश) के विरुद्ध किसी व्यक्ति द्वारा की जाने वाली 'शिकायत' के प्रति निर्देश है । धारा 6 में परिषद् द्वारा कतिपय मामलों में न्यायाधीश से भिन्न किसी व्यक्ति के विरुद्ध शिकायत की बाबत अन्वेषण करने की शक्ति के प्रति निर्देश है। धारा 7 में प्राथमिक संवीक्षा के प्रति निर्देश है और धारा 8 में शिकायत या निर्देश के आधार पर परिषद् के समक्ष जांच की प्रक्रिया का उल्लेख है ।

धारा 9 और 10 1968 के अधिनियम की धारा 3 के अनुरूप हैं और इनमें केवल इस अंतर के साथ कि 1968 के अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन अनुध्यात तीन सदस्यीय समिति के समक्ष अन्वेषण किए जाने की बजाय अब अन्वेषण परिषद् के पांच न्यायाधीशों के समक्ष किया जाएगा संसद् के किसी भी सदन में प्रस्ताव की प्रक्रिया ही अपनाई गई है ।

धारा 11 में न्यायाधीश की शारीरिक या मानसिक असमर्थता की चर्चा है और यह धारा 1968 के अधिनियम की धारा 3(5) से लेकर 3(8) के तत्समान है मात्र यह अंतर है कि अब अन्वेषण 1968 के अधिनियम की धारा 3(5) के अधीन अनुध्यात समिति द्वारा किए जाने के बजाय न्यायिक परिषद् द्वारा किया जाएगा ।

धारा 12(1) में यह उपबंधित है कि प्रत्येक प्रकार का अन्वेषण अध्यक्ष और सदस्यों द्वारा संयुक्त बैठक में बंद कमरे में किया जाएगा ।

धारा 13 में यह कहा गया है कि न्यायिक परिषद् को अन्वेषण किए जाने से संबंधित अपनी स्वयं की प्रक्रिया विनियमित करने की शक्ति होगी । तथापि, संबंधित न्यायाधीश को साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने का युक्तियुक्त अवसर प्रदान किया जाएगा और वे अपनी प्रतिरक्षा में साक्ष्य पेश कर सकेंगे । यह धारा 1968 के अधिनियम की धारा 4(1) की समनुषंगी है ।

धारा 15 में न्यायिक परिषद् को तलाशी और अभिग्रहण करने के लिए किसी अधिकारी को प्राधिकृत करने की शक्ति प्रदान की गई है ।

धारा 16 में यह कहा गया है कि यदि न्यायिक परिषद् के समक्ष यह साबित हो जाता है कि

शिकायत में कोई सार नहीं है, तो न्यायिक परिषद् राष्ट्रपति को तदनुसार सूचित करेगी और राष्ट्रपति मामले को बंद कर सकते हैं । यदि सभी या कोई एक अभिकथन सिद्ध हो जाता है, तो न्यायिक परिषद् अपने निष्कर्षों और सिफारिशों को राष्ट्रपति को, शिकायतकर्ता को और संबंधित न्यायाधीश को संसूचित करेगी तथा राष्ट्रपति इन निष्कर्षों और सिफारिशों को संसद् के दोनों सदन के समक्ष रखेंगे ।

धारा 17 में लोकसभा अध्यक्ष/राज्यसभा के सभापति से प्राप्त निर्देश के निपटारे और न्यायिक परिषद् द्वारा लोकसभा अध्यक्ष/राज्यसभा के सभापति के समक्ष निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाने का उल्लेख है । धारा 18 में आग्रह (समावेदन) द्वारा महाभियोग की चर्चा है और यह धारा 1968 के अधिनियम की धारा 6(3) के तत्समान है ।

धारा 21 में यह प्रस्तावित है कि अन्वेषण या महाभियोग के लंबित रहने के दौरान न्यायिक परिषद् संबंधित न्यायाधीश को न्यायिक कार्य न सौंपे जाने की सिफारिश कर सकती है यदि उसे यह प्रतीत हो कि ऋजु और निष्पक्ष अन्वेषण के हित में ऐसा आवश्यक है । धारा 24 में यह कथित है कि न्यायिक परिषद् के समक्ष किसी प्रकार के अन्वेषण से उक्त अन्वेषण के अधीन अभिकथनों के संबंध में न्यायाधीश का आपराधिक दायित्व प्रभावित नहीं होगा ।

धारा 22 न्यायिक परिषद् को उक्त मामले में अन्वेषण किए जाने के प्रयोजनार्थ एक अन्वेषण समिति गठित करने के लिए अपने एक या एक से अधिक सदस्यों को पदाभिहित करने की शक्ति प्रदान करती है ।

धारा 28(1) में न्यायिक परिषद् को न्यायाधीशों के लिए आचार संहिता जारी करने की शक्ति प्रदान की गई है और धारा 28(2) में न्यायाधीश के लिए अपनी आस्तियों और दायित्वों की घोषणा करना आवश्यक बनाया गया है ।

धारा 29 में दोनों सदनों की संयुक्त समिति द्वारा नियम बनाए जाने का उल्लेख है और यह धारा 1968 के अधिनियम की धारा 7 के तत्समान है ।

विधि आयोग प्रारूप विधेयक, 2005 की समीक्षा करना और अपने सुझाव देना चाहता है जिनमें विधेयक की खामियां भी शामिल होंगी, साथ ही कतिपय उपबंधों को हटाए जाने और कुछ

उपबंध जोड़े जाने की आवश्यकता की भी परीक्षा की जाएगी । वे विभिन्न बिन्दु (प्रश्न) जो विचारार्थ सामने आते हैं अध्याय-2 में उपवर्णित हैं ।

हम इस रिपोर्ट को तैयार किए जाने विशेष रूप से अध्याय-2, 20 और 21 के संबंध में अंशकालिक सदस्य डॉ. एस. मुरलीधर द्वारा किए गए गहन शोध और उनके द्वारा की गई सहायता के प्रति अभिलेख पर अपना आभार प्रकट करना चाहते हैं ।

अध्याय-2

इस अध्याय में चर्चा किए जाने वाले विशिष्ट बिन्दु

विधि आयोग का यह निष्कर्ष है कि प्रारूप विधेयक, 2005 के अधीन किसी प्रकार के 'कदाचार' के लिए एकमात्र उपलब्ध उपचार 'हटाए जाने' का है । एकमात्र अंतर यह है कि 1968 के अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन अनुध्यात तीन सदस्यीय समिति के बजाय वर्तमान प्रारूप विधेयक, 2005 में पांच न्यायाधीशों वाली शष्ट्रीय न्यायिक परिषद् द्वारा अन्वेषण किया जाना अनुध्यात है । यदि अन्वेषण किसी शिकायत के अनुसरण में किया जाता है तो भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को शामिल नहीं किया जाएगा किन्तु यदि यह लोकसभा के अध्यक्ष/राज्यसभा के सभापति के निर्देश पर किया जाता है, तो न्यायिक परिषद् को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के भी कदाचार या असमर्थता, यदि कोई किया जाए, के संबंध में जांच करनी होती है ।

और भी विभिन्न पहलू हैं जिन पर विधि आयोग सुझाव देगा । इस अध्याय में हम इन विभिन्न पहलुओं के प्रति संक्षेप में निर्देश करेंगे । इन पर अन्य देशों की तुलनात्मक विधि के प्रति निर्देश किए जाने के पश्चात् विस्तार से चर्चा की जाएगी । निम्नलिखित विशिष्ट बातों पर चर्चा किए जाने की आवश्यकता है :

(1) क्या न्यायिक स्वतंत्रता सम्पूर्ण (निरंकुश) है और क्या न्यायाधीश जवाबदेह नहीं है ?

यह प्रश्न इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि प्रारूप विधेयक, 2005 के उपबंध संविधान में वर्णित नियंत्रण और संतुलन के सिद्धांत का सीधे उल्लंघन करते हैं और यदि संतुलन यथापरिकल्पित रूप में अनुरक्षित नहीं किया जाता है तो इससे न्यायिक स्वतंत्रता की संकल्पना पर सीधे प्रभाव पड़ सकता है । साथ ही न्यायिक जवाबदेही की संकल्पना जिसे हमारे उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने निर्णयों में विवक्षित रूप से मान्यता प्रदान की गई है को भी ध्यान में रखा गया है । 1968 के अधिनियम में संसद् के सदस्यों की अपेक्षित संख्या द्वारा किसी न्यायाधीश के अभिकथित कदाचार या असमर्थता के लिए उसे हटाए जाने की ईप्सा करते हुए किए गए प्रस्ताव पर लोकसभा अध्यक्ष/राज्यसभा के सभापति के निर्देश पर एक तीन सदस्यीय समिति द्वारा जांच किए

जाने का उपबंध है । वर्तमान विधेयक, 2005 में एक अतिरिक्त प्रक्रिया उपबंधित है जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति एक न्यायिक परिषद्, जिसमें भारत के मुख्य न्यायमूर्ति सहित पांच वरिष्ठ न्यायाधीश सम्मिलित होंगे, के समक्ष शिकायत फाइल कर सकता है । इस विधेयक द्वारा परिषद् को सदन के समक्ष यह सिफारिश करने के लिए भी सशक्त बनाया गया है कि साबित कदाचार या असमर्थता के लिए हटाया जाना आवश्यक है ।

यह प्रश्न उठता है कि हमारे संविधान में वर्तमान में यथा उपबंधित आग्रह द्वारा हटाए जाने के अलावा क्या संसद् के लिए किसी व्यक्ति द्वारा न्यायिक परिषद् के समक्ष की गई शिकायत पर हटाए जाने की सिफारिश करने की बाबत उसे (न्यायिक परिषद् को) सशक्त बनाने के लिए विधि बनाना सांविधानिक और विधिक रूप से अनुज्ञेय है । तथापि, प्रस्तावों को ध्यान में रखते हुए विधि आयोग न्यायिक परिषद् को स्वयं गौण उपाय अधिरोपित करने के लिए उस स्थिति में सशक्त बनाता है जब आरोपों के अनुसार हटाया जाना आवश्यक न हो, तब वस्तुत: यह प्रश्न उठता है कि क्या न्यायिक परिषद् द्वारा गौण उपायों के अधिरोपण के लिए विधि आयोग द्वारा सिफारिश किए गए अन्य प्रस्तावों के साथ-साथ विधेयक, 2005 के प्रस्ताव किसी रूप में न्यायिक स्वतंत्रता के विसंगत हैं या न्यायपालिका को जवाबदेह बनाने वाले किन्हीं अध्युपायों के आधिक्य में हैं ?

इस पहलू पर अलग अध्याय अर्थात् अध्याय-3 के साथ ही अध्याय-20 में प्रथम मुद्दे के रूप में चर्चा की गई है ।

(2) न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी से संबंधित मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित सांविधानिक विधि के सिद्धांत क्या हैं ?

दूसरे पहलू के लिए संविधान के अनुच्छेद 121, 124, 125 और 217 के निर्वचन और न्यायाधीश जांच अधिनियम, 1968 के उपबंधों पर उनके प्रभाव के संबंध में न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी से संबंधित विभिन्न मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा यथा अधिकथित सांविधानिक विधि के सिद्धांतों का संक्षेप में वर्णन किया जाना आवश्यक है ।

(3) न्यायमूर्ति सावंत समिति की रिपोर्ट से उद्भूत बिन्दु क्या हैं ?

यह अवेक्षा की जा सकती है कि न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी के मामले में संसद् के सदस्यों की

अपेक्षित संख्या द्वारा एक प्रस्ताव पेश किया गया था और उक्त प्रस्ताव के अनुसरण में लोकसभा अध्यक्ष ने उक्त प्रस्ताव में अन्तर्विष्ट अभिकथनों की बाबत जांच किए जाने के लिए 1968 के अधिनियम की धारा 3 के अधीन न्यायमूर्ति पी. बी. सावंत की अध्यक्षता में एक जांच समिति नियुक्त की थी । इस जांच समिति ने अपनी रिपोर्ट में अनेक महत्वपूर्ण सांविधानिक सिद्धांतों पर प्रकाश डाला है । इस प्रसंग में उन सिद्धांतों के प्रति निर्देश किया जाना आवश्यक है जिनका संबंध प्रस्तावित विधेयक, 2005 के विभिन्न उपबंधों की विधिमान्यता से है । इसके अलावा, न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 1964 जिसके परिणामस्वरूप 1968 का अधिनियम बनाया गया था पर संसद् की संयुक्त समिति (1966) के विचारों के प्रति निर्देश किया जाना आवश्यक है ।

(4) क्या केवल न्यायाधीशों को मिलाकर बनाई जाने वाली राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् स्थापित करने के लिए विधेयक, 2005 के प्रस्तावित उपबंध न्यायिक जवाबदेही की संकल्पना के संगत हैं ?

यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि प्रारूप विधेयक, 2005 में यथा उपबंधित न्यायाधीशों द्वारा 'पिअर (अभिजात) पुनर्विलोकन' के तरीके के लिए पर्याप्त समर्थन है । वस्तुतः, इस प्रश्न के संबंध में कोई संविवाद नहीं है क्योंकि 1968 के अधिनियम में दो न्यायाधीशों और एक विधिवेत्ता को मिलाकर बनाई जाने वाली समिति द्वारा अन्वेषण किया जाना अनुध्यात है जबकि प्रारूप विधेयक, 2005 में पांच न्यायाधीशों की राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् द्वारा अन्वेषण किए जाने की बात कही गई है। संयुक्त राज (ब्रिटेन), संयुक्त राज्य (अमेरिका) की फेडरल न्यायपालिका, पाकिस्तान, बंग्लादेश, जर्मनी, स्वीडन आदि राष्ट्रों सहित विभिन्न देशों में वरिष्ठ न्यायालयों के न्यायाधीशों के विरुद्ध अनुशासनिक जांच न्यायाधीशों की एक समिति द्वारा ही की जाती है । इस पहलू पर विस्तार से चर्चा की जाएगी ।

(5) क्या भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को प्रस्तावित 'शिकायत प्रक्रिया' के अधीन 'शिकायत' पर जांच से अपवर्जित किया जाना चाहिए ?

(6) उस समय क्या होगा जब उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश जिनके विरुद्ध शिकायत फाइल की गई है और वह लंबित है अन्वेषण के लंबित रहने के दौरान भारत के मुख्य न्यायमूर्ति बन जाएं । ऐसा ही प्रश्न उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के संबंध में भी उठता है ।

(7) क्या आग्रह पर किसी न्यायाधीश को 'हटाए जाने' का उपचार पर्याप्त है और क्या अन्य 'गौण उपाय' यथा सलाह, चेतावनी, सुधार संबंधी उपाय, सेवानिवृत्ति का अनुरोध, न्यायाधीश की सूची से मामलों का वापस लिया जाना, परिनिन्दा या भर्त्सना (सार्वजनिक या व्यक्तिगत रूप से), विधेयक, 2005 में 'शिकायत' प्रक्रिया के अधीन न्यायिक परिषद् के समक्ष आने वाले मामलों में सम्मिलित किए जाने चाहिएं ?

यदि कदाचार जो न्यायिक परिषद् के समक्ष साबित हो गया है न्यायाधीश को हटाए जाने के लिए विशेष रूप से गंभीर प्रकृति का है तो परिषद् इस निमित्त सदन को सिफारिश करेगी । किन्तु यह सामान्यत: देखने में आता है कि अन्य प्रकार का 'विसामान्य व्यवहार' भी होता है जिसे अन्यथा 'अच्छे व्यवहार' से भिन्न 'बुरा व्यवहार' कहा जाता है । इसकी संविधान के पुनर्विलोकन के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट में अवेक्षा की गई है । अनेक देशों में जिनमें संयुक्त राज (ब्रिटेन), संयुक्त राज्य (अमेरिका), जर्मनी और संयुक्त राज्य (अमेरिका) के विभिन्न राज्यों में ऐसे गौण उपाय अधिरोपित करने के लिए न्यायिक परिषद् या अन्य निकायों को सशक्त बनाया गया है । इस पृष्ठभूमि में विधि आयोग उक्त अध्युपायों को सम्मिलित करना चाहता है यद्यपि विधेयक, 2005 में ऐसा कोई उपबंध नहीं है ।

(8) न्यायिक परिषद् द्वारा 'गौण उपायों' के अधिरोपण के लिए उपबंध करने वाली संसद् द्वारा बनाई गई विधि की सांविधानिक विधिमान्यता ।

(9) क्या संविधान के अनुच्छेद 124 के अधीन आग्रह (समावेदन) द्वारा हटाए जाने के प्रस्ताव के अनुसरण में लोकसभा अध्यक्ष/राज्यसभा के सभापति द्वारा 'निर्देश' की स्थिति में न्यायिक परिषद् यह रिपोर्ट करने के लिए आबद्ध है कि वे आरोप जिनके कारण हटाया जाना आवश्यक है साबित हो गए हैं या नहीं और यदि ऐसे आरोपों के कारण हटाया जाना आवश्यक नहीं है तो क्या वह स्वयं गौण उपाय अधिरोपित कर सकती है अथवा क्या वह संसद् से यह सिफारिश कर सकती है कि यह ऐसा उपयुक्त मामला है जिसमें गौण उपाय किए जाने आवश्यक हैं ?

(10) यह दलील दिए जाने के लिए कि 'गौण उपाय' के अधिरोपण के लिए संविधान का संशोधन आवश्यक है केलिफोर्निया और अन्य राज्यों के सांविधानिक संशोधनों पर आधारित

तर्क की मान्यता ।

(11) इस तर्क की मान्यता कि न्यायिक परिषद् के समक्ष 'शिकायत' प्रक्रिया संविधान के अधिकारातीत है क्योंकि अभिकथन सदन के प्रस्ताव के रूप में नहीं हैं ।

(12) क्या उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश के विरुद्ध जांच के मामले में उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति न्यायिक परिषद् में भाग हो सकते हैं ?

(13) क्या विधेयक, 2005 में कोई इनकारी (रेक्यूजल) उपबंध समाविष्ट किया जाना आवश्यक है?

(14) क्या आरोप विरचित किए जाने से पूर्व अन्वेषण की प्रक्रिया और जांच आरोप विरचित किए जाने के पश्चात् ही आरंभ होनी चाहिए ? क्या अन्वेषण करने वाले न्यायाधीश न्यायिक परिषद् के उन न्यायाधीशों से जो जांच करते हैं भिन्न व्यक्ति होने चाहिएं ? क्या अन्वेषण करने वाले न्यायाधीश को अपने स्तर पर शिकायत का अंतिम रूप से निपटारा किए बिना न्यायिक परिषद् को अपने निष्कर्षों से अवश्यमेव ही अवगत कराना चाहिए ?

(15) क्या राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् स्वयमेव प्रारंभिक अन्वेषण और आरोप विरचित करके जांच कर सकती है ?

संविधान के अनुच्छेद 124(4) की भाषा जिसमें 'अन्वेषण और सबूत' की बात कही गई है, 1968 के अधिनियम और 1969 के नियमों में समुचित रूप से अधिनियमित नहीं की गई है जिसके कारण उस समय संदिग्धता और भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जब प्रारंभिक अन्वेषण समाप्त होता है और अंतिम जांच आरंभ होती है । वास्तव में न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी के काउंसेल श्री कपिल सिबल द्वारा संसद् के संयुक्त सत्र में तारीख 10 मई, 1993 को की गई बहस में यह तर्क दिया गया था कि आरोप विरचित किए जाने से पूर्व 'अन्वेषण' होना चाहिए । आरोप विरचित किए जाने के उपरांत इन आरोपों की बाबत नियमित जांच की जा सकती है । विधि आयोग ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अनेक देशों में अन्वेषण न्यायाधीशों के एक छोटे से ग्रुप द्वारा किया जाता है जो उस आयोग से भिन्न होता है और जो बाद में नियमित जांच करता है ।

(16) क्या न्यायाधीश को किसी शिकायत पर न्यायिक परिषद् के समक्ष किए जाने वाले

'प्रारंभिक अन्वेषण' के प्रक्रम पर तथ्यों को स्पष्ट करने का अवसर दिया जाना चाहिए, भले ही आरोप विरचित किए जाने की स्थिति में उसे न्यायिक परिषद् के समक्ष पूर्ण अवसर प्राप्त होगा (या हटाए जाने की सिफारिश के मामले में उसे संसद् के सदनों के समक्ष एक ओर अवसर प्राप्त हो सकता है) ?

विधेयक, 2005 की धारा 7 में 'संवीक्षा' और 'सत्यापन' शब्दों का प्रयोग किया गया है किन्तु इस धारा में इस प्रश्न की बाबत कुछ नहीं कहा गया है कि क्या किसी शिकायत के मामले में आरोप विरचित किए जाने से पूर्व प्रारंभिक अन्वेषण के प्रक्रम पर संबंधित न्यायाधीश को अवसर दिया जाना चाहिए । यद्यपि यह सामान्यत: स्वीकार किया जाता है कि ऐसी प्रारंभिक जांच के प्रक्रम पर प्रभावित व्यक्ति को साधारणत: अवसर दिया जाना आवश्यक नहीं है । किन्तु प्रिवी कौंसिल ने अभी हाल ही में **रीस बनाम क्रेन** [1994 (1) आल इंग्लैंड रिपोर्ट्स 833] वाले मामले में लार्ड स्लीन के माध्यम से निर्णय सुनाते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायाधीशों के मामले में यदि यह आवश्यक नहीं तो वांछनीय तो है ही कि न्यायाधीश की ख्याति के हित में प्रारंभिक अन्वेषण के प्रक्रम पर उसे इस प्रकार का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए ताकि न्यायपालिका की सम्पूर्ण ख्याति पर कलंक न लगने पाए क्योंकि यदि प्रत्येक शिकायत को यांत्रिक रूप से स्वीकार कर लिया जाता है तो इसके परिणामस्वरूप आरोप और जांच प्रारंभ करनी पड़ेगी । संयुक्त राज्य अमेरिका के राज्यों के कानूनों में न्यायाधीश को आरोप विरचित किए जाने से पूर्व भी अपना उत्तर प्रस्तुत किए जाने के लिए अवसर दिया जाना आदिष्ट है । इस पहलू की विस्तार से परीक्षा किया जाना आवश्यक है ।

(17) क्या किसी शिकायत या निर्देश में अन्वेषण या प्रस्ताव के लंबित रहते न्यायिक कार्य न सौंपे जाने को अनुज्ञात करने वाली धारा 21 के उपबंध सांविधानिकत: विधिमान्य हैं ? संविधान के अनुच्छेद 225 के साथ पठित अनुच्छेद 124(5) का किस प्रकार उचित निर्वचन किया जाना चाहिए ?

धारा 21 में उस न्यायाधीश को जिसके विरुद्ध अन्वेषण प्रारंभ हो चुका है न्यायिक कार्य न सौंपे जाने के लिए उपबंध है, यदि न्यायिक परिषद् ऋजु और निष्पक्ष अन्वेषण के हित में ऐसा करना आवश्यक समझे। भारत के उच्चतम न्यायालय ने **न्यायिक जवाबदेही पर उप-समिति बनाम भारत**

संघ [(1991) 4 एस. सी. सी. 699] वाले मामले में यह कहा है कि संविधान या 1968 के अधिनियम में ऐसा कोई उपबंध न होने के कारण ऐसा नहीं किया जा सकता है । इसी से संबंधित एक ओर प्रश्न उठता है कि क्या मुख्य न्यायमूर्ति न्यायाधीश की सूची से मामलों को वापस ले सकते हैं या ऐसा निदेश दे सकते हैं कि अन्वेषण या जांच के लंबित रहते संबंधित न्यायाधीश के समक्ष कोई मामला सूचीबद्ध न किया जाए । इस कारण न्यायिक कार्य न सौंपे जाने और न्यायाधीश के अस्थायी निलंबन के मध्य के अंतर की परीक्षा किया जाना आवश्यक हो जाता है ।

(18)(क) क्या तुच्छ और तंग करने वाली 'शिकायतें' फाइल किए जाने को रोकने की बाबत कोई उपबंध होना चाहिए और ऐसा किन्हीं अनुशास्तियों के लिए उपबंध किया जाना चाहिए जैसीकि विभिन्न लोकपाल विधेयकों या लोक आयुक्त पर राज्य विधियों में हैं ।

(ख) क्या शिकायत ऐसी याचिका के रूप में होनी चाहिए जिसमें सूचना के स्रोत देने वाली अंतर्वस्तु सत्यापित हो और क्या यह शपथपत्र द्वारा समर्थित होनी चाहिए ?

(19) क्या 'कदाचार' या 'असमर्थता' शब्दों को इस अधिनियम में परिभाषित किया जाना चाहिए ? यदि हां, तो किस प्रकार ?

यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि 'विसामान्य' व्यवहार विभिन्न प्रकार का हो सकता है जिसमें कुछ गंभीर प्रकृति का हो सकता है और कुछ ऐसा भी हो सकता है जो इतना गंभीर न हो। इन विभिन्न प्रकार के व्यवहारों के मध्य अंतर किया जाना आवश्यक है और यह विचार किया जाना भी जरूरी है कि क्या 'कदाचार' या 'असमर्थता' शब्दों की परिभाषा प्रस्तावित अधिनियम में अंत:स्थापित की जाए ।

(20) क्या ऐसी शिकायत जिसका संबंध एकमात्र रूप से निर्णय या आदेश के गुणागुण से है ग्रहण की जानी चाहिए ?

अनेक देशों में, निर्णयों के गुणागुण से संबंधित विनिश्चय पर आधारित न्यायाधीशों के विरुद्ध की जाने वाले शिकायतों को अनुशासनिक जांच की परिधि से बाहर रखा गया है । वास्तव में यह देखने में आता है कि न्यायाधीशों के विरुद्ध अधिकांश शिकायतें उस विनिश्चय के गुणगुण के संबंध में होती हैं जिसमें शिकायतकर्ता पक्षकार होता है । ऐसी शिकायतों को समाप्त किया जाना

आवश्यक है क्योंकि प्रस्तावित न्यायिक परिषद् में सर्वाधिक वरिष्ठ न्यायाधीश होंगे जो अन्यथा भी लंबित न्यायिक कार्य से बंधे होंगे । तथापि, यह उपबंधित किया जाना अपेक्षित है कि किसी लंबित या विनिश्चित मामले के संबंध में कदाचार के अन्य संबंधित अभिकथन जैसेकि रिश्वत लेना आदि किए जा सकते हैं तब ऐसी स्थिति को उक्त शिकायत को ग्रहण किया जाएगा ।

(21) क्या <u>ह्विसिलब्लोअर्स लॉज</u> की भांति शिकायतकर्ता की पहचान को संरक्षित करने वाला उपबंध आवश्यक है ?

विभिन्न ह्विसिलब्लोअर्स लॉज में और "लोकहित (प्रकटन) संरक्षण अधिनियम" पर विधि आयोग की 179वीं रिपोर्ट में उपदर्शित प्रक्रिया के अनुसार शिकायतकर्ता की पहचान और उसके नाम को गोपनीय रखे जाने की सिफारिश की गई है । यह इसलिए कि शिकायतकर्ता व्यक्तिगत रूप से यथा वकील या मुकदमेबाजों के रूप में न्यायाधीशों के गलत कार्यों को सामने लाने के लिए निर्भीकतापूर्वक सामने न आएं जिससे कि उच्च न्यायालय/उच्चतम न्यायालय, यथास्थिति, के समक्ष उनका वृत्तिक कार्य उन अन्य मामलों में प्रभावित न हो सके जिनमें वे उसी न्यायाधीश या उसी न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों के समक्ष उपस्थित होंगे । साथ ही यह विचार किया जाना भी आवश्यक है कि न्यायिक परिषद् स्वप्रेरणा से कार्रवाई कर सकती है यदि उसे यह पता चले कि ऐसा 'कदाचार' किया गया जो शिकायत के रूप में या किसी अन्य स्रोत से उसके समक्ष नहीं आया है ।

(22) क्या शिकायत, अन्वेषण और जांच प्रक्रिया की गोपनीयता को परिरक्षित किए जाने की आवश्यकता है ? क्या विधेयक, 2005 में ऐसा उपबंध होना चाहिए जिससे कि सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के उपबंधों के होते हुए भी ऐसी गोपनीयता बनी रहे ?

एक महत्वपूर्ण पहलू जिस पर विचार किए जाने की आवश्यकता है वह यह है कि शिकायतकर्ता और अन्य लोग जिनमें अन्वेषण और जांच में भाग लेने वाले साक्षी भी आते हैं शिकायत, अन्वेषण और पारिणामिक जांच, यदि कोई की जाती है, से संबंधित दस्तावेजों और कार्यवाहियों की बाबत पूर्ण गोपनीयता बरतें । यह इस कारण कि ऐसे मामले जिनमें उच्च सांविधानिक कृत्यकारी अन्तर्वलित होते हैं संवेदनशील प्रकृति के होते हैं जिनमें किसी प्रक्रम पर ऐसी जानकारी प्रकट हो जाने के परिणामस्वरूप न केवल ऋजु अन्वेषण और जांच किए जाने को खतरा

उत्पन्न हो जाएगा अपितु इससे कानूनी और सांविधानिक प्रक्रियाओं के समापन से पूर्व ही न्यायाधीश की छवि भी अत्यधिक धूमिल हो जाएगी ।

(23) क्या न्यायाधीश को हटाए जाने या गौण उपाय किए जाने वाले आदेशों के विरुद्ध न्यायिक पुनर्विलोकन किए जाने के लिए उच्चतम न्यायालय में अपील होनी चाहिए ?

यह विचार किए जाने की आवश्यकता है कि क्या न्यायिक परिषद् द्वारा 'गौण उपाय' किए जाने के विरुद्ध या ऐसे किसी मामले में जिसमें आग्रह प्रक्रिया पूरे होने के पश्चात् 'हटाए जाने' का आदेश राष्ट्रपति द्वारा पारित किया गया उच्चतम न्यायालय में न्यायिक पुनर्विलोकन अनुज्ञात किए जाने की बाबत विनिर्दिष्ट उपबंध होना चाहिए । आनुषंगिकतः, यह प्रश्न उठेगा कि क्या 'गौण उपाय' के मामले में न्यायिक परिषद् द्वारा अंतिम आदेश पारित किए जाने से पूर्व या राष्ट्रपति द्वारा हटाए जाने का अंतिम आदेश किए जाने के पूर्व संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन न्यायिक पुनर्विलोकन सभी प्रक्रमों पर अभिव्यक्ततः वर्जित किया जाए । क्या न्यायिक परिषद् के अंतिम आदेश के उपरांत (गौण उपायों के मामले में या राष्ट्रपति द्वारा पारित हटाए जाने के आदेश की स्थिति में) उच्चतम न्यायालय में अपील किए जाने का उपबंध होना चाहिए? एक यह भी प्रश्न उठता है कि क्या न्यायिक परिषद् के अंतिम आदेशों के उपरांत भी न्यायालयों का आश्रय लिया जा सकता है या राष्ट्रपति को कानून द्वारा वर्जित किया जाना चाहिए ?

(24) न्यायिक परिषद् के साथ-साथ संसद् के सदनों के समक्ष 'सबूत का मानक' क्या है ? क्या यह 'अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता' है या 'युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत' ? 'आपराधिककल्प' जांच के मानक क्या हैं ?

एक अन्य पहलू 'सबूत के मानक' जिसका अनुसरण न्यायिक परिषद् द्वारा किया जाता है, से संबंधित प्रश्न यह है कि क्या उसे 'अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता' के आधार पर आरोपों का विनिश्चय करना चाहिए अथवा क्या उसे यह अभिनिर्धारित करना चाहिए कि आरोप 'युक्तियुक्त संदेह से परे' साबित हो गए हैं ? क्या कार्यवाहियों की प्रकृति आपराधिककल्प है, यदि हां, तो न्यायाधीश को क्या संरक्षण उपलब्ध होंगे ?

(25) ऐसे किसी मामले में जब न्यायिक परिषद् का कोई सदस्य भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के

रूप में पदोन्नत कर दिया जाए या उच्चतम न्यायालय में पदोन्नत कर दिया जाए या प्राकृतिक कारणोंवश कोई रिक्ति हो जाए या किसी अन्य कारणवश न्यायाधीश की सेवाएं उपलब्ध न हों तो ऐसी प्रक्रिया क्या होनी चाहिए जिससे कि यह स्पष्ट हो कि नए सिरे से कार्यवाहियां अनुध्यात नहीं हैं ?

(26) उस समय क्या होना चाहिए यदि उस न्यायाधीश जिसके विरुद्ध अन्वेषण या जांच प्रारंभ की गई न्यायिक परिषद् के समक्ष कार्यवाहियों के लंबित रहते अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर ले ?

(27) जब न्यायिक परिषद् द्वारा हटाए जाने की सिफारिश कर दी गई, तो क्या उसे यह सिफारिश भी करनी चाहिए कि सदन द्वारा सिफारिश स्वीकार किए जाने और राष्ट्रपति द्वारा हटाए जाने का आदेश पारित किए जाने की स्थिति में न्यायाधीश को कोई लोक या न्यायिक, न्यायिककल्प पद धारण किए जाने से वर्जित किया जाए और न ही उसे न्यायालय में वकालत करनी चाहिए और न ही माध्यस्थम् कार्यवाहियों में मध्यस्थ बनना चाहिए ?

(28) क्या न्यायिक परिषद् को कानूनी आचार संहिता (परिषद् द्वारा अधिसूचना के आधार पर उपांतरण के अध्यधीन) विरचित करनी चाहिए ? क्या ऐसी संहिता के भंग को कदाचार माना जाना चाहिए ? क्या उच्चतम न्यायालय द्वारा 1997 में अनुमोदित वर्तमान अस्तित्वशील आचार संहिता को उस समय तक कानूनी संहिता के रूप में अंगीकृत किया जाना चाहिए जब तक कि न्यायिक परिषद् आचार संहिता विरचित न कर दे ?

(29) क्या प्रस्तावित विधेयक ऐसे कदाचार जो प्रस्तावित अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व किया गया और कुछ मामलों में ऐसे आचरण जो उस समय किया गया जब कोई व्यक्ति, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में पदोन्नत किए जाने के पूर्व उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कृत्य कर रहा था से संबंधित शिकायतों को लागू होना चाहिए?

(30) विधेयक, 2005 में अन्य क्या संशोधन किए जाने अपेक्षित हैं ?

ऐसे कतिपय अन्य संशोधन हैं जो विधेयक, 2005 में किए जाने अपेक्षित हैं । इन पर चर्चा अध्याय-20 के अंतिम भाग में की गई है ।

अध्याय-20 में इन और ऐसे अन्य प्रश्नों का व्यापक रूप में परिशीलन किया जाना प्रस्तावित है क्योंकि भारत का विधि आयोग प्रथम बार ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार कर रहा है जो न्यायिक शाखा के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण और सुसंगत हैं । इस प्रसंग में, हमें न्यायिक स्वतंत्रता और न्यायिक जवाबदेही के सिद्धांतों को भी ध्यान में रखना होगा । अत: हम अन्य देशों में न्यायिक अनुशासन और न्यायाधीशों को हटाए जाने से संबंधित सभी पहलुओं का व्यापक रूप में सर्वेक्षण करेंगे ।

अध्याय-3

न्यायिक जवाबदेही और न्यायिक स्वतंत्रता की परिसीमाएं

न्यायपालिका विधि-शासन द्वारा शासित किसी लोकतंत्र के तीन महत्वपूर्ण स्तंभों में से एक है । विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका सभी हमारे संविधान द्वारा सृजित हैं । यह मत कि विधायिका सर्वोच्च है इंग्लैंड में भी जहां प्रोफेसर डाइसी द्वारा यथा प्रतिपादित संसदीय सर्वोच्चता का सिद्धांत दीर्घकाल से प्रचलन में था अब मान्य नहीं रह गया है । इंग्लैंड के न्यायालयों द्वारा अभी हाल ही के निर्णयों में यह घोषित किया गया है कि संविधान ही सर्वोपरि है और तीनों अंगों में से प्रत्येक को संविधान में यथा आबंटित रूप में अपनी-अपनी अधिकारिता और शक्तियां प्राप्त हैं । यदि लिखित संविधान नहीं है, तो सांविधानिक कन्वेंशन शासित करेंगी । हमारे देश में उच्चतम न्यायालय ने चालीस वर्ष से अधिक समय पूर्व **विशेष निर्देश (सं. 1), 1964 (केशव सिंह** वाला मामला) [1965 (1) एस. सी. आर. 413] में यह अधिकथित किया :

> "..... यद्यपि हमारे विधानमंडलों को सम्पूर्ण शक्तियां प्राप्त हैं फिर भी वे संविधान के सुसंगत उपबंधों और सामग्री द्वारा विहित परिसीमाओं के भीतर कृत्य करते हैं....."

और

> "लिखित संविधान द्वारा शासित किसी लोकतांत्रिक देश में संविधान ही सर्वोपरि और सम्पूर्ण प्रभुत्वसंपन्न होता है ।"

इसी बात को **पीपल्स यूनियन फार सिविल लिबर्ट्रीज** बनाम **भारत संघ** [ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 2363, पैरा 53] वाले मामले में दोहराया गया है ।

संयुक्त राज (ब्रिटेन) में **इंटरनेशनल ट्रांसपोर्ट रोथ गम्ब** बनाम **होम सेक्रेटरी** [2002 (3) डब्ल्यु. एल. आर. 344] वाले मामले में न्यायमूर्ति लॉज़ ने यह कहा कि (संयुक्त राज) मानव अधिकार अधिनियम, 1998 के प्रवर्तन में आने के पश्चात् ब्रिटिश प्रणाली जो कभी संसदीय सर्वोच्चता पर आधारित थी के सिद्धांत से हटकर अब सांविधानिक सर्वोच्चता की प्रणाली पर

आकर केन्द्रित हो गई है ।

कनाडा में **विरेन्ड** बनाम **अल्बर्टा** [1998 (1) एस. सी. आर. 493] वाले मामले में न्यायमूर्ति इयकोबक्कोसी ने यह कहा कि कनाडियन चार्टर आफ राइट्स एंड फ्रीडम्स के उपरांत कनाडा संसदीय सर्वोच्चता से सांविधानिक सर्वोच्चता की ओर मुड़ गया है । उन्होंने यह कहा:

"मुख्य न्यायमूर्ति ब्रायन डिक्शन के शब्दों में जिस समय चार्टर लागू किया गया था तब से कनाडा संसदीय सर्वोच्चता की प्रणाली से सांवधानिक सर्वोच्चता की दिशा में मुड़ गया है ।"

हमारे संविधान में नियंत्रण और संतुलन की बात कही गई है जिसके अनुसार यह आवश्यक है कि सभी तीनों अंग सामंजस्यपूर्ण रूप में कार्य करेंगे । इसमें पृथक्करण के माध्यम से सभी तीनों शाखाओं या अंगों के मध्य शक्तियों का पृथक्करण किया गया है जिसे पूर्णत: स्वीकार कर लिया गया है और जो अमेरिकी संविधान की भांति कठोर नहीं है । विधायिका और कार्यपालिका को संविधान में यथा घोषित रूप में अपनी शक्तियों के भीतर ही कार्य करना चाहिए और जब भी वे अपनी शक्तियों या अधिकारिता से बाहर जाएं उन्हें न्यायपालिका द्वारा सही मार्ग पर लाया जाना चाहिए । संसदीय और कार्यपालिक कार्रवाई को संविधान के अधिकारातीत घोषित किए जाने से संबंधित भारतीय न्यायपालिका की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को सन् 1950 से जब हमारा संविधान लागू हुआ मान्यता प्रदान की गई है । संविधान के नीति निदेशक तत्वों के अनुच्छेद 50 में यह कहा गया है कि राज्य की लोक सेवाओं में न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक किए जाने के लिए कदम उठाए जाएंगे ।

यह तथ्य कि न्यायपालिका मूल अधिकारों और संविधान की रक्षा करती हैं और ऐसी किसी भी विधि या कार्यपालिक कार्रवाई, को जो संविधान में दिए गए मूल अधिकारों या अन्य उपबंधों के प्रतिकूल है, अभिखंडित कर सकती है न्यायपालिका को सर्वोच्च नहीं बना सकता है । उसे भी संविधान में यथा परिकल्पित शक्तियों और अधिकारिता के भीतर कार्य करना होता है ।

न्यायिक स्वतंत्रता से न्यायाधीश की स्वतंत्रता के साथ ही संस्था के रूप में न्यायपालिका की स्वतंत्रता के प्रति निर्देश है । वैयक्तिक स्वतंत्रता से यह अभिप्रेत है कि न्यायाधीश किसी मामले का विधि के अनुसार विनिश्चय करने के लिए स्वतंत्र है और उसके क्षेत्र में प्रक्रिया के बिना किसी भी

व्यक्ति द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है । भारतीय न्यायपालिका स्वतंत्र है और संविधान ने इसे विधायिका और कार्यपालिका दोनों के हस्तक्षेप से मुक्त रखा है ।

संविधान में ऐसे अनेकों उपबंध हैं जो न्यायपालिका और न्यायाधीशों की स्वतंत्रता की रक्षा करते हैं । उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की पदावधि को संविधान द्वारा उस समय तक गारंटी प्रदान की गई है जब तक कि वे अधिवर्षिता की आयु प्राप्त न कर लें । उनके वेतन और भत्ते संघ या राज्य, यथास्थिति, की संचित निधि पर प्रभारित हैं और उन पर संसद् या राज्य विधानमंडलों द्वारा मतदान नहीं किया जा सकता है । उनकी पेंशन भी संचित निधि पर प्रभारित है । संविधान में यह भी कहा गया है कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के वेतन और भत्तों में उसकी नियुक्ति के उपरांत उसके अहित में परिवर्तन नहीं किया जा सकता है । अनुच्छेद 121 और 211 के अनुसार उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश द्वारा उसके कर्तव्यों के निर्वहन से संबंधित आचरण की बाबत संसद् या राज्य विधानमंडलों में किसी भी प्रकार की चर्चा किए जाने का निषेध है । उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय अभिलेख न्यायालय हैं और उन्हें अवमान के लिए दंड देने की शक्ति प्राप्त है । अनुच्छेद 144 के अधीन भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर सिविल और न्यायिक सभी प्राधिकारी उच्चतम न्यायालय की सहायता के लिए कार्य करेंगे । न्यायाधीशों को उनके शासकीय या न्यायिक कर्तव्यों या कृत्यों के निर्वहन में कार्य करने या कार्य करते हुए या तात्पर्यित रूप से कार्य करने के दौरान उनके कार्यों, बोलने आदि के लिए सिविल या दांडिक कार्रवाई से न्यायाधीश (संरक्षण) अधिनियम, 1985 सदृश विभिन्न विधियों के अधीन उन्मुक्ति भी प्रदान की गई है । तथापि, न्यायाधीशों को उस शपथ जो वे लेते हैं अर्थात् 'यह कि "विधि द्वारा यथास्थापित रूप में संविधान के प्रति पूर्ण निष्ठा और ईमानदारी बरतेंगे," का पालन करना होता है, उन्हें भारत की प्रभुसत्ता और अखंडता को भी कायम रखना है तथा वे किसी प्रकार के भय या पक्षपात, लगाव या द्वेष के बिना अपने पदीय कर्तव्यों का निष्पादन अपनी "सर्वोत्तम क्षमता, ज्ञान और विवेक" का प्रयोग करते हुए "सम्यक् रूप में और ईमानदारी के साथ" करेंगे और वे संविधान और विधि की रक्षा करेंगे'।

यह स्वीकार्य है कि, तथापि, न्यायाधीशों की उनकी वैयक्तिक हैसियत में या संस्था के रूप में न्यायपालिका की स्वतंत्रता सम्पूर्ण नहीं है । इस तथ्य से कि न्यायाधीशों की शक्तियां अति व्यापक

हैं इस बात का पता चलता है कि उनकी शक्तियों को निरंकुशत: अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है। न्यायाधीशों की सांविधानिक परिसीमाओं में सबसे महत्वपूर्ण उपबंध उच्च न्यायालय/उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के 'साबित कदाचार या असमर्थता' के आधार पर उन्हें हटाए जाने के लिए संसद् के सदनों का राष्ट्रपति को किए जाने वाले आग्रह से संबंधित है । यह उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के संबंध में अनुच्छेद 124(2) और (4) में किया गया है और अनुच्छेद 217 को दृष्टिगत करते हुए यह प्रक्रिया उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को 'हटाए जाने' के मामले में भी आकृष्ट होती है ।

डेटो परम कुमारासामी ने इंटरनेशनल कमीशन आफ जूरिस्ट्स के उपाध्यक्ष और न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर संयुक्त राष्ट्र के भूतपूर्व विशेष समन्वयकर्ता के रूप में नवंबर, 2004 में चेन्नई में 'न्यायिक जवाबदेही' पर दिए गए व्याख्यान में यह कहा कि :

> "जवाबदेही और पारदर्शिता लोकतंत्र की मूल भावनाएं हैं । किसी भी लोक संस्था या इस संबंध में जनता से संबंध रखने वाली किसी प्राइवेट संस्था को भी जवाबदेही से छूट प्राप्त नहीं है । अतएव, सरकार का न्यायिक अंग भी जवाबदेह है ।"

स्टीफन बी. बरबैंक ने अभी हाल ही में लिखी 'जुडिशियल इंडिपेंडेंस' पुस्तक में यह कहा है 'इस रूप में पूर्ण स्वतंत्र न्यायालय की बात भी गले नहीं उतरती है क्योंकि इससे किसी समाज के सामाजिक और आर्थिक कार्यों का व्यवस्थित रूप में किया जाना असंभव बन जाएगा' क्योंकि "न्यायालय मानव मात्र द्वारा संचालित संस्थाएं होते हैं । मानव स्वार्थी होता है और उसका अपना धनलोलुप हेतु होता है तथा उसके नैतिक मानदंड उसके विवेक और बुद्धिमत्ता तथा उसकी मानसिक प्रखरता के स्तर की दृष्टि से भिन्न होते हैं। पूर्णत: निरंकुश न्यायाधीशों के उस मार्ग से विचलित होने की संभावना है जो विधि की उनसे अपेक्षा करती है ।" तथापि, परिसीमाएं यर्थाथपरक होनी चाहिएं । उनका यह भी मत है कि व्यवहार्यत: महाभियोग एक कठिन प्रक्रिया है जो अब मृतप्राय हो चुकी है । राज्यतंत्र में न्यायिक स्वतंत्रता और न्यायिक जवाबदेही को दो अलग बातें न मानकर एक ही सिक्के के दो भिन्न पहलू मानना चाहिए । यह इस कारण नहीं कि स्वतंत्रता से वंचित रहने के कारण अवश्यमेव ही जवाबदेही से भी वंचित होना पड़ेगा अपितु इसलिए भी कि आधुनिक राज्यतंत्र में उसकी न्यायपालिका के उद्देश्यों में निश्चित रूप से लगभग वे सभी कृत्य हैं

जिनमें जवाबदेही का अध्युपाय उतना ही अपेक्षित है जितना कि उसकी स्वतंत्रता का अध्युपाय आवश्यक है ।

एच. फ्रेंकलिन ने इसी पुस्तक में यह कहा है "यह कहना कि न्यायालय को साधारणत: जनता और अन्य अंगों के प्रति जवाबदेह नहीं ठहराया जाना चाहिए ऐसी संरक्षा की मांग करना है जो किसी भी लोकतांत्रिक देश में प्रदान नहीं की जा सकती है ।" ली इपस्टीन ने इसी पुस्तक में यह कहा है कि "बहुत कम स्वतंत्रता से शक्तियों के पृथक्करण को आघात पहुंच सकता है और बहुत अधिक स्वतंत्रता से किसी राजनीतिक व्यवस्था के लोकतांत्रिक आधार को हानि हो सकती है ।"

साइरस दास द्वारा संपादित 'जजेज़ एंड जुडिशियल एकान्टेबिलिटी' पुस्तक, (2004) में मलेशिया के मुख्य न्यायमूर्ति माननीय तुन मोहम्मद ज़ायदीन अब्दुल्लाह ने यह कहा है :

"अपनी शपथ के प्रति ईमानदार रहना किसी व्यक्ति के लिए न्यायाधीश के रूप में उसकी ईमानदारी की कसौटी है । इससे यह विवक्षित है कि उसे किसी प्रकार के प्रभाव और लालच से अवश्यमेव ही बचना चाहिए । वास्तव में स्वतंत्रता न्यायाधीश की जवाबदेही की मुख्य विशिष्टता है क्योंकि न्यायपालिका जो यर्थाथ में स्वतंत्र, सक्षम और ईमानदार नहीं हैं अपना कोई भी दायित्व सफलतापूर्वक निभा नहीं पाएगी ।"

"इस प्रकार न्यायिक जवाबदेही न्यायिक स्वतंत्रता के लिए एक अभिन्न प्रति संतुलन है क्योंकि निरंकुश न्यायाधीश उन उद्देश्यों की अवज्ञा करने के लिए स्वतंत्र हो जाएगा जिन्हें न्यायपालिका की स्वतंत्रता के माध्यम से पूरा किए जाने की आशा की जाती है ।"

"इस संबंध में संविधान और विभिन्न न्यायिक प्रणालियों के कानूनों में दी गई चयन, अनुशासन और हटाए जाने की प्रक्रिया के माध्यम से जवाबदेही की बात कही गई है । चूंकि न्याय तंत्र में सरकार के तीनों अंगों के मध्य पूर्ण परस्पर संबंध होता है, इसलिए खुलेपन और पारदर्शिता की मांग को दृष्टिगत करते हुए न्यायपालिका को संवीक्षा से बचाया नहीं जा सकता है । इस प्रकार न्यायाधीशों से न्यासियों के रूप में उस भावना को अपनाए जाने की अपेक्षा की जाती है ताकि वे उस परिवेश में कार्य कर सकें और उस न्यास के अनुरूप अपने कर्तव्य का पालन करने में सफल हो सकें।"

आर्कबाल्ड कोक्स जिन्होंने बहुत पहले 1970 में वाटरगेट काण्ड में तत्कालीन राष्ट्रपति निक्सन के विरुद्ध विशेष अभियोजक के रूप में विधिक कार्यवाहयां शुरू की थीं एक अनुभव जो उन्हें उस दौरान हुआ का वर्णन किया है जो न्यायाधीशों की जवाबदेही के प्रश्न के लिए सुसंगत है । उन्होंने विद्वान् न्यायाधीश हैण्ड के साथ एक दिन हुई बातचीत को इस प्रकार वर्णित किया है :

"विद्वान् हैण्ड, जो महान फेडरल न्यायाधीशों में से एक थे और जो कभी भी सुप्रीम कोर्ट तक नहीं पहुंचे, ने न्यायाधीश के परिप्रेक्ष्य में एक युवा विधि लिपिक की बात की चर्चा एक बार मेरे सामने की । उन्होंने कहा 'सोनी', मैं किसी के प्रति भी उत्तरदायी नहीं हूं ? कोई भी मुझे हटा नहीं सकता है । कोई भी मेरे वेतन को रोक नहीं सकता है । यहां तक कि वाशिंगटन के वे नौ अधिपति भी जो कभी-कभी मेरे विपरीत कार्य करते हैं अपनी इच्छा के अनुसार मुझे विनिश्चय देने के लिए बाध्य नहीं कर सकते हैं । तत्पश्चात् न्यायाधीश ने अपने विधि पुस्तकालय की अलमारियों की ओर मुड़कर इशारा किया । ये पुस्तकें हम लोगों के बारे में हैं । जिनमें यह कहा गया है कि मैं किसके प्रति उत्तरदायी हूं।" (आर्कबाल्ड कोक्स, दी कोर्ट एंड दी कांस्टीट्यूशन, 1987, पृष्ठ 20)

उनका अभिप्राय यह था कि न्यायाधीशों की जवाबदेही की बात संविधान, विधियों, नज़ीरों और नैतिक संहिता जो सभी न्यायिक शक्तियों और आचरणों को शासित करते हैं में कही गई है ।

मार्च, 2001 में 'स्ट्रेंथनिंग जुडिशियल इंटेग्रिटी अंगेस्ट करप्शन' शीर्षक वाला लेख अंतरराष्ट्रीय अपराध निवारण केन्द्र, सीआईजेएल के लिए वेनफर, वार्षिक पुस्तिका में भ्रष्टाचार के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र संघ के वैश्विक कार्यक्रम के तत्त्वाधान में जारी किया गया था । इसमें विभिन्न देशों में किए गए सर्वेक्षणों के ब्यौरें दिए गए हैं ।

टुरिन के न्यायाधीश और न्यायाधीशों के अंतरराष्ट्रीय संगम के उप सचिव न्यायाधीश ग्याकोमो ऑबर्टो द्वारा इटली में न्यायाधीशों के विभिन्न प्रकार के कदाचार और विसामान्य व्यवहार की एक सूची व्यापक रूप से तैयार की गई जो सूची इतनी व्यापक है कि वे वास्तविक घटनाएं जिनके प्रति निर्देश किया गया है और जो इटली में घटीं अधिकांश देशों में सामान्यत: देखने में आती हैं ।

न्यायिक स्वतंत्रता और जवाबदेही के विषय से संबंधित साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । इस विषय पर न्यायाधीशों, वकीलों, विधिवेत्ताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं और गणमान्य व्यक्तियों द्वारा बहुत बड़ी संख्या में पुस्तकें और लेख लिखे गए हैं । प्रोफेसर सिमन शेट्रीट की 'जजेज़ आन ट्रायल' और 'जुडिशियल इंडिपेंडेंस' विषयों से संबंधित कालजयी कृति को सर्वोत्तम माना जाता है । तथापि, इस बाबत किसी प्रकार का विवाद नहीं है कि आज तक न्यायाधीशों और न्यायपालिका की पूर्ण स्वतंत्रता के सिद्धांत का या इस बात का कि वे जवाबदेह नहीं हैं किसी के द्वारा भी समर्थन नहीं किया गया है । न्यायाधीश और न्यायपालिका जनता के प्रति जवाबदेह हैं । जवाबदेही न होने की स्थिति में जनता का न्यायपालिका में एक संस्था के रूप में विश्वास जाता रहेगा और इसके परिणामस्वरूप विधि-शासन और लोकतंत्र में विनाशकारी परिणाम घटित होंगे ।

न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 महान उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अधिनियमित किया गया था जिनमें एक उद्देश्य न्यायाधीशों को संविधान में यथा परिकल्पित रूप में उनके आचरण की बाबत जवाबदेह बनाना है । यह अधिनियम तीन दशक से अधिक समय से कानून पुस्तिका में है ।

वर्तमान प्रारूप विधेयक, 2005 में न्यायाधीशों के व्यवहार और आचरण से संबंधित जांच की बाबत अतिरिक्त उपायों का उपबंध करना प्रस्तावित है । 1968 के अधिनियम में दो न्यायाधीशों और एक विधिवेत्ता जिनकी नियुक्ति समय-समय पर लोकसभा अध्यक्ष या राज्यसभा के सभापति, यथास्थिति, द्वारा आग्रह का प्रस्ताव स्वीकार किए जाने के उपरांत की जाएगी को मिलाकर बनाई गई एक तदर्थ समिति द्वारा जांच किए जाने का उपबंध है, जबकि वर्तमान विधेयक द्वारा पांच न्यायाधीशों की एक कानूनी न्यायिक परिषद् के रूप में एक स्थायी तंत्र प्रस्तावित है । वर्तमान प्रारूप विधेयक, 2005 में यह भी उपबंधित है कि उक्त न्यायिक परिषद् किसी व्यक्ति द्वारा भेजी गई शिकायत में किसी न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता की बाबत किए गए अभिकथनों की जांच और अन्वेषण भी करेगी । न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी वाले मामलों में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के संगत, प्रस्तावित विधेयक, 2005 में उस प्रक्रम तक जब तक न्यायाधीश को हटाए जाने के आग्रह के प्रस्ताव को सदन द्वारा चर्चा के लिए अंतिम रूप से नहीं ले लिया जाता है अनुसरण की जाने वाली गैर-संसदीय प्रक्रिया के लिए उपबंध है । उपर्युक्त मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि 1968 के अधिनियम के अधीन न्यायाधीशों की समिति के प्रति निर्देश

और समिति द्वारा जांच संसदीय प्रक्रिया का भाग तो नहीं है किन्तु यह तथ्यों को अभिनिश्चित करने की बाबत न्यायिक प्रक्रिया का भाग हैं । वास्तविक संसदीय प्रक्रिया अन्वेषण और जांच के लिए गठित किसी बाह्य निकाय द्वारा 'कदाचार साबित हो जाने' के उपरांत ही आरंभ होती है । यदि न्यायिक परिषद् नियमित जांच जिसमें न्यायाधीश को सुना गया के उपरांत अभिकथनों में सार पाती है और उसका यह मत है कि कदाचार के लिए 'हटाया जाना' आवश्यक है, तो वह दोषिता के निष्कर्षों के साथ अपनी रिपोर्ट लोकसभा अध्यक्ष या राज्यसभा के सभापति, यथास्थिति, को भेजेगी । उस समय तक वह प्रस्ताव जो आरंभ में पेश किया गया लंबित रहेगा और उसे न्यायाधीश की दोषिता से संबंधित निष्कर्षों की रिपोर्ट की प्राप्ति के उपरांत चर्चा और विचार किए जाने के लिए लिया जाएगा । यदि रिपोर्ट में यह कहा गया है कि कदाचार नहीं किया गया तो बात वहीं समाप्त हो जाएगी । संसद् प्रस्ताव को पुन: नहीं ले सकती है क्योंकि प्रस्ताव पर विचार किए जाने की उसकी अधिकारिता केवल तभी उद्भूत होती है जब कदाचार या असमर्थता संसद् के बाहर 'साबित' हो जाएं ।

विधि आयोग इस बात से भी अवगत है कि वर्तमान प्रारूप विधेयक केवल न्यायाधीश को 'हटाए जाने' का प्रस्ताव करना चाहता है और कोई अन्य गौण उपाय नहीं । 1968 के पश्चात् के वर्षों में यह अनुभव किया गया है कि न्यायाधीशों के विभिन्न प्रकार के 'कदाचार' होते हैं और इन सभी में उसे 'हटाया जाना' आवश्यक नहीं होगा । इसी प्रकार की स्थिति का सामना अन्य देशों ने भी किया है । संयुक्त राज्य अमेरिका की परिसंघीय प्रणाली में, विधानमंडल ने 1980 में एक अधिनियम अधिनियमित किया जिसे अब जुडिशियल इम्प्रूवमेंट ऐक्ट, 2002 द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है, इसके अनुसार न्यायिक परिषद् को 'आंतरिक' (इनहाउस) तंत्र के भाग के रूप में ऐसे अंतिम आदेश पारित करने के लिए सशक्त बनाया गया है जिनमें हटाए जाने को छोड़कर सेवानिवृत्ति का अनुरोध, मामलों का वापस लिया जाना, सार्वजनिक या प्राइवेट रूप में परिनिंदा या भर्त्सना की जा सकती है । जब न्यायाधीश को हटाया जाता है तो उसे किसी अन्य लोक पद को धारण करने आदि से भी निरर्हित कर दिया जाता है । संयुक्त राज (ब्रिटेन) के अधिनियम, 2005, कनाडा की उपविधियों, परिसंघीय जर्मनी के अनुशासनिक नियमों और संयुक्त राज्य अमेरिका के सभी राज्यों ने 'गौण उपायों' का उपबंध किया है । हम इस संबंध में इदाहो, कॉनेक्टिकट, टेक्सास आदि राज्यों की विधियों के प्रति निर्देश चाहेंगे ।

विधि आयोग इस बाबत भी परीक्षा करेगा कि क्या 'हटाए जाने' से अन्यथा 'गौण उपाय' अधिरोपित किए जाने के लिए न्यायिक परिषद् को अनुज्ञात करने वाली विधि संसद् की विधायी शक्ति के अन्तर्गत होगी और क्या यह आवश्यक है ।

विधि आयोग आगे के अध्यायों में अन्य देशों की तुलनात्मक विधि और इस समस्या से संबंधित सभी पहलुओं की विवेचना करेगा और इनका अतिव्यापक रूप में परिशीलन भी किया जाएगा ।

अध्याय-4

न्यायिक स्वतंत्रता और न्यायिक जवाबदेही से संबंधित अंतरराष्ट्रीय परंपराएं

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा अनुमोदित अनेक लिखित हैं जिनमें न्यायपालिका की स्वतंत्रता और उसकी जवाबदेही की चर्चा है । इस विषय से संबंधित कुछ गैर-संयुक्त राष्ट्र संघ के संकल्प भी हैं ।

न्यायिक स्वतंत्रता से संबंधित संयुक्त राष्ट्र संघ के आधारभूत सिद्धांत (1985)

हम आरंभ में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा अनुमोदित सुसंगत लिखतों के प्रति निर्देश करना चाहेंगे । ऐसा प्रथम लिखत जिसमें "न्यायपालिका की स्वतंत्रता से संबंधित संयुक्त राष्ट्र संघ के आधारभूत सिद्धांत" दिए गए हैं संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा का तारीख 29 नवंबर, 1985 का वह संकल्प है जिसमें मिलान, इटली में तारीख 26 अगस्त से 6 सितंबर, 1985 के दौरान पारित अपराध निवारण और अपराधियों के व्यवहार (ट्रीटमेंट) पर संयुक्त राष्ट्र संघ की सातवीं कांग्रेस की कार्यवाहियों का पृष्ठांकन किया गया है । संयुक्त राष्ट्र संघ ने सर्वानुमति से न्यायपालिका की स्वतंत्रता के आधारभूत सिद्धांतों को अंगीकार किया । संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने बाद में इन सिद्धांतों का स्वागत करते हुए और सरकारों से तारीख 13 दिसंबर, 1985 की अपनी कार्यवाहियों द्वारा "उक्त सिद्धांतों के प्रति सम्मान व्यक्त करने और उन पर अपने राष्ट्रीय विधान और पद्धति के ढांचे के भीतर ध्यान देने" का अनुरोध किया । जहां तक न्यायपालिका की स्वतंत्रता का संबंध है निम्न सात सिद्धांत अधिकथित किए जाते हैं :

"1. न्यायपालिका की स्वतंत्रता राज्य द्वारा प्रत्याभूत की जाएगी और इसे संविधान और देश की विधियों में वर्णित किया जाएगा । सभी सरकारी और अन्य संस्थाओं का यह कर्तव्य होगा कि वे इनका सम्मान करें और न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बनाए रखें ।

2. न्यायपालिका अपने समक्ष के मामलों का विनिश्चय तथ्यों के आधार पर और विधि के अनुसार किसी प्रकार के निर्बंधन, अनुचित प्रभाव, उत्प्रेरणा, दबाव, धमकी या हस्तक्षेप, जो

प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी के द्वारा या किसी कारण से किया जा सकता है, से स्वतंत्र रूप में निष्पक्षता के साथ करेगी ।

3. न्यायपालिका को न्यायिक प्रकृति के सभी विवाद्यकों की बाबत अधिकारिता होगी और उसे इस बाबत विनिश्चय करने का अनन्य प्राधिकार होगा कि क्या उसके विनिश्चयार्थ प्रस्तुत विवाद्यक विधि द्वारा यथा परिभाषित उसकी सक्षमता के भीतर आता है ।

4. न्यायिक प्रक्रिया में किसी प्रकार का अनुचित या अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा और न ही न्यायालयों द्वारा न्यायिक विनिश्चयों का पुनरीक्षण किया जाएगा । यह सिद्धांत न्यायपालिका द्वारा विधि के अनुसार अधिरोपित दंडादेशों का सक्षम प्राधिकारियों द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन किए जाने या कम करने या लघुकरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला नहीं है ।

5. प्रत्येक व्यक्ति को स्थापित विधिक प्रक्रियाओं का प्रयोग करते हुए साधारण न्यायालयों या अधिकरणों द्वारा विचारण किए जाने का अधिकार होगा । ऐसे अधिकरण जो विधिक आदेशिका की सम्यक् रूप से स्थापित प्रक्रियाओं का प्रयोग नहीं करते हैं साधारण न्यायालयों या न्यायिक अधिकरणों को उनकी अधिकारिता से वंचित किए जाने के लिए सृजित नहीं किए जाएंगे ।

6. न्यायपालिका की स्वतंत्रता का सिद्धांत न्यायपालिका को इस बाबत हक प्रदान करता है और उससे यह अपेक्षा करता है कि वह यह सुनिश्चित करे कि न्यायिक कार्यवाहियां ऋजुतापूर्वक संचालित की गई और पक्षकारों के अधिकारों का सम्मान किया गया ।

7. प्रत्येक सदस्य राज्य का यह कर्तव्य है कि वह पर्याप्त संसाधनों का उपबंध करे ताकि न्यायपालिका अपने कृत्यों का उचित रूप में निष्पादन कर सके ।"

उक्त संकल्प के पैरा 8 और 9 में न्यायाधीशों की अभिव्यक्ति और संगम की स्वतंत्रता की चर्चा है, पैरा 10 से 14 में अर्हताओं, चयन और प्रशिक्षण का उल्लेख है, पैरा 11 में यह कहा गया है कि न्यायाधीशों की पदावधि, उनकी स्वतंत्रता, सुरक्षा, पर्याप्त पारिश्रमिक, सेवा की शर्तें, पेंशन और सेवानिवृत्ति की आयु विधि द्वारा समुचित रूप में सुनिश्चित की जाएगी । पैरा 12 में यह कथित

है कि न्यायाधीशों को, चाहे वे नियुक्त किए गए हों अथवा निर्वाचित, उस समय तक पदावधि की गारंटी होगी जब तक कि वे आज्ञापक सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त न कर लें या उनकी पदावधि समाप्त न हो जाए, जहां भी ऐसा दिया गया हो । पैरा 15 और 16 में वृत्तिक गोपनीयता और उन्मुक्ति की चर्चा है, पैरा 16 में यह वर्णित है कि न्यायाधीशों को अपने न्यायिक कृत्यों के प्रयोग में किए जाने वाले अनुचित कार्यों या लोपों के लिए धनीय नुकसानी के सिविल वादों से वैयक्तिक रूप में उन्मुक्ति प्राप्त होगी ।

'अनुशासन, निलंबन और हटाए जाने' शीर्षक के अधीन निम्न सिद्धांतों का पैरा 17 से 20 में वर्णन है:

"17. किसी न्यायाधीश के विरुद्ध उसकी न्यायिक और वृत्तिक समर्थता की बाबत की गई शिकायत या आरोप के संबंध में समुचित प्रक्रिया के अधीन शीघ्रातिशीघ्र कार्यवाही की जाएगी। न्यायाधीश को उचित सुनवाई का अधिकार होगा । मामले की परीक्षा उसके प्रारंभिक प्रक्रम पर उस समय तक गोपनीय रखी जाएगी जब तक न्यायाधीश द्वारा अन्यथा निवेदन न किया जाए ।

18. न्यायाधीशों को असमर्थता या कदाचार के ऐसे कारणोंवश ही जो उन्हें उनके कर्तव्यों के निर्वहन के लिए अनुपयुक्त ठहराएं निलंबित या हटाया जाएगा ।

19. सभी अनुशासनिक, निलंबन या हटाए जाने संबंधी कार्यवाहियों का अवधारण न्यायिक आचरण के स्थापित मानकों के अनुसार किया जाएगा ।

20. अनुशासनिक, निलंबन या हटाए जाने संबंधी कार्यवाहियों में के विनिश्चय स्वतंत्र पुनर्विलोकन के अध्यधीन होंगे । यह सिद्धांत उच्चतर न्यायालयों को और महाभियोग या इसी प्रकार की कार्यवाहियां करने वाले विधानमंडल के विनिश्चयों को लागू नहीं होगा ।"

संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रक्रियाओं से संबंधित संकल्प (1989)

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा अनुमोदित दूसरा लिखत "न्यायपालिका की स्वतंत्रता से संबंधित आधारभूत सिद्धांतों को प्रभावी रूप में लागू किए जाने की प्रक्रिया" से संबंधित है जिसे आर्थिक और सामाजिक परिषद् द्वारा 1989 के संकल्प (1989 का 60) में अंगीकार किया गया और

जिसका पृष्ठांकन महासभा द्वारा तारीख 15 दिसंबर, 1989 को संकल्प सं. 44/162 में किया गया । प्रक्रिया 7 सभी सदस्य राज्यों से यह अपेक्षा करती है कि वे 1988 से प्रत्येक पांच वर्ष में इन आधारभूत सिद्धांतों के क्रियान्वयन, इन्हें राष्ट्रीय विधान में समाविष्ट किए जाने की बाबत हुई प्रगति और राष्ट्रीय स्तर पर इनके क्रियान्वयन के मार्ग में आने वाली समस्याओं, कठिनाइयों तथा अड़चनों की बाबत महासचिव को अवगत कराएंगे ।

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा अनुमोदित तीसरे लिखत में वकीलों की भूमिका से संबंधित संयुक्त राष्ट्र संघ के आधारभूत सिद्धांतों के प्रति निर्देश है । हमारा वर्तमान में इस प्रश्न से कोई लेना-देना नहीं है ।

न्यायिक स्वतंत्रता पर डॉ. सिंघवी की घोषणा (1985)

संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्य लिखतों में हम सर्वप्रथम न्यायपालिका की स्वतंत्रता से संबंधित संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रारूप घोषणा में अन्तर्विष्ट डॉ. सिंघवी की घोषणा के प्रति निर्देश करेंगे । संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक और सामाजिक परिषद् के विनिश्चय द्वारा अल्पसंख्यकों के संरक्षण और विभेद निवारण पर गठित संयुक्त राष्ट्र संघ के उप आयोग ने भारत के डॉ. एल. एम. सिंघवी को न्यायपालिका, न्यायाधिकारी और निर्धारकों की स्वतंत्रता और निष्पक्षता तथा वकीलों की स्वतंत्रता की बाबत रिपोर्ट तैयार करने का कार्य सौंपा । तदनुसार, विशेष समन्वयकर्ता ने 1980, 1981 और 1982 में प्रारंभिक और प्रगति रिपोर्टें तथा एक अतिरिक्त रिपोर्ट प्रस्तुत की । उप आयोग के 38वें सत्र में डॉ. सिंघवी ने इस विषय से संबंधित अपनी अंतिम रिपोर्ट पेश की और न्यायपालिका, न्यायाधिकारियों और निर्धारकों की स्वतंत्रता और निष्पक्षता तथा वकीलों की स्वतंत्रता से संबंधित अपनी प्रारूप घोषणा के प्रति विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया । उनके इस अध्ययन को 39वें सत्र में टिप्पणियों के लिए जारी किया गया, तत्पश्चात् डॉ. सिंघवी ने अपनी टिप्पणियां और सुझाव पेश किए और उप आयोग के 40वें सत्र में प्रारूप घोषणा का पुनरीक्षित पाठ प्रस्तुत किया ।

डॉ. एल. एम. सिंघवी की अंतिम रिपोर्ट (1985)

अब हम डॉ. एल. एम. सिंघवी की अंतिम रिपोर्ट जो अल्पसंख्यकों के भाग लेने और विभेद निवारण पर उप आयोग (1985) से संबंधित है के प्रति निर्देश करेंगे । इस रिपोर्ट के पैरा 17 से 20

में अनुशासन, निलंबन और हटाए जाने की चर्चा इस प्रकार है :

"17. किसी न्यायाधीश के विरुद्ध उसकी न्यायिक और वृत्तिक समर्थता की बाबत की गई शिकायत या आरोप की बाबत समुचित प्रक्रिया के अधीन शीघ्रातिशीघ्र और ऋजुतापूर्वक कार्यवाही की जाएगी। न्यायाधीश को उचित सुनवाई का अधिकार भी होगा । मामले की परीक्षा उसके प्रारंभिक प्रक्रम पर उस समय तक गोपनीय रखी जाएगी जब तक कि न्यायाधीश द्वारा अन्यथा अनुरोध न किया जाए ।

18. न्यायाधीशों को ऐसी असमर्थता या आचरण जिसके कारण वे अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए अनुपयुक्त हैं के आधार पर ही निलंबित किया जाएगा या हटाया जाएगा ।

19. सभी अनुशासनिक, निलंबन या हटाए जाने से संबंधित कार्यवाहियों का अवधारण न्यायिक आचरण के स्थापित मानकों के अनुसार किया जाएगा ।

20. अनुशासनिक, निलंबन या हटाए जाने से संबंधित कार्यवाहियों में के विनिश्चयों का स्वतंत्र रूप में पुनर्विलोकन किया जा सकेगा । यह सिद्धांत उच्चतर न्यायालय के विनिश्चयों को और महाभियोग या इसी प्रकार की कार्यवाहियों में विधानमंडल के विनिश्चयों को लागू नहीं होगा ।"

संयुक्त राष्ट्र संघ का डॉ. सिंघवी के प्रारूप (1988) पर ध्यान देने की बाबत सरकारों से अनुरोध

40वें सत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ के उप आयोग ने अपने 1988 के संकल्प (सं. 25) में उक्त प्रारूप की सराहना की और तत्पश्चात् उप आयोग ने 45वें सत्र में सरकारों से 1985 में अनुमोदित न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर संयुक्त राष्ट्र संघ के आधारभूत सिद्धांतों को क्रियान्वित करने के संबंध में डॉ. सिंघवी के प्रारूप में वर्णित सिद्धांतों पर ध्यान दिए जाने के लिए सरकारों से अनुरोध किया ।

प्रारूप घोषणा के पैरा 2 से 8 में न्यायपालिका की स्वतंत्रता की चर्चा इस प्रकार है :

"2. न्यायाधीश व्यक्तिगत रूप में स्वतंत्र होंगे और उनका यह कर्तव्य होगा कि वे अपने समक्ष प्रस्तुत मामलों का विनिश्चय तथ्यों का निर्धारण करने के उपरांत और विधि को सही

रूप में लागू करके किसी प्रकार के निर्बंधन, प्रभाव, उत्प्रेरणा, दबाव, धमकी या हस्तक्षेप, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में किसी भी प्रकार से या किसी भी कारण से हो सकता है, के बिना निष्पक्षता के साथ करेंगे ।

3. विनिश्चय करने की प्रक्रिया में न्यायाधीश अपने न्यायिक सहयोगियों और वरिष्ठों की बनिस्बत स्वतंत्र होंगे । न्यायपालिका का कोई भी पदानुक्रमी संगठन और ग्रेड या रैंक में किसी प्रकार का अंतर न्यायाधीश द्वारा निर्भीक होकर अपना निर्णय सुनाए जाने के उसके अधिकार में किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप नहीं करेगा । न्यायाधीश व्यक्तिगत और सामूहिक रूप में अपने कृत्यों का अपनी विधिक प्रणाली के विधि अनुशासन का पालन करते हुए पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ निष्पादन करेंगे ।

4. न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका से स्वतंत्र होगी ।

5. (क) न्यायपालिका को अपनी अधिकारिता और सक्षमता से संबंधित विवाद्यकों सहित न्यायिक प्रकृति के सभी विवाद्यकों से संबंध में प्रत्यक्ष रूप से या पुनर्विलोकन की दृष्टि से अधिकारिता होगी ।

(ख) न्यायालयों को उनमें उचित रूप से निहित अधिकारिता से वंचित करने के लिए कोई तदर्थ अधिकरण स्थापित नहीं किया जाएगा ।

(ग) प्रत्येक व्यक्ति को साधारण न्यायालयों या न्यायिक अधिकरणों द्वारा असम्यक् विलंब किए बिना यथाशीघ्र विचारण किए जाने का अधिकार होगा जो केवल न्यायालयों के पुनर्विलोकन के अध्यधीन होगा।

(घ) गंभीर लोक आपातकाल जिसमें राष्ट्र के अस्तित्व को खतरा है विधि द्वारा विहित शर्तों के अधीन, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यताप्राप्त न्यूनतम मानकों के यथेष्ट रूप में संगत कुछ अल्पीकरण किया जा सकेगा और यह न्यायालयों द्वारा पुनर्विलोकन किए जाने के अध्यधीन होगा ।

(ङ) ऐसे आपातकाल में राज्य ऐसी व्यवस्था करने का भरसक प्रयास करेगा कि किसी भी प्रकार के दांडिक अपराध से आरोपित नागरिकों का विचारण साधारण सिविल न्यायालयों

द्वारा किया जा सके और व्यक्तियों का आरोप के बिना प्रशासनिक रूप से निरोध बंदी-प्रत्यक्षीकरण याचिका या समरूप प्रक्रिया द्वारा न्यायालयों या अन्य स्वतंत्र प्राधिकारी द्वारा पुनर्विलोकन किए जाने के अध्यधीन होगा ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि यह निरोध वैध है और निरुद्ध व्यक्ति के साथ दुर्व्यवहार किए जाने के किसी प्रकार के अभिकथनों में जांच हो सके ।

(च) सैन्य अधिकरणों की अधिकारिता केवल सेना के अपराधों तक ही सीमित होगी । ऐसे अधिकरणों के विरुद्ध विधिक रूप से अर्हित अपील न्यायालय या अधिकरण में अपील किए जाने या बातिलकरण के आवेदन द्वारा उपचार का सदैव अधिकार होगा ।

(छ) ऐसी किसी भी प्रकार की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाएगा जिससे न्यायिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप हो ।

(ज) कार्यपालिका का न्याय के प्रशासन में न्यायालयों के न्यायिक कृत्यों पर नियंत्रण नहीं होगा ।

(झ) कार्यपालिका को न्यायालयों के प्रचालन को बंद करने या निलंबित करने की शक्ति नहीं होगी ।

(ञ) कार्यपालिका ऐसा कोई कार्य या लोप करने से बचेगी जिससे कि किसी विवाद के न्यायिक निराकरण में बाधा पहुंचे या किसी न्यायालय के विनिश्चय का उचित निष्पादन विफल हो जाए ।

6. किसी भी विधान या कार्यपालिक डिक्री द्वारा विनिर्दिष्ट न्यायालय के विनिश्चयों को उलटने का या किसी न्यायालय की विनिश्चय किए जाने की शक्ति को प्रभावित करने के लिए उक्त न्यायालय के गठन में परिवर्तन करने के लिए पूर्वव्यापी रूप में प्रयास नहीं किया जाएगा ।

7. न्यायाधीश अपनी न्यायिक स्वतंत्रता की संरक्षा के लिए सामूहिक कार्रवाई करने के हकदार होंगे ।

8. न्यायाधीश सदैव इस प्रकार का आचरण करेंगे जिससे कि उनके पद की गरिमा बनी

रहे और उनके उत्तरदायित्व परिरक्षित रहें तथा साथ ही न्यायपालिका की स्वतंत्रता और निष्पक्षता भी अनुरक्षित रहे । इस सिद्धांत के अध्यधीन, न्यायाधीश विचार, विश्वास, वाक्-अभिव्यक्ति, वृत्तिक संगम, एकत्र होने और भ्रमण करने की स्वतंत्रता के हकदार होंगे ।"

पैरा 9 से 12 में अर्हताओं, चयन और प्रशिक्षण की चर्चा है, पैरा 13 से 15 में तैनाती, प्रोन्नति और स्थानांतरण का उल्लेख है तथा पैरा 16 से 19 में न्यायाधीशों की पदावधि का इस प्रकार वर्णन है:

"16. (क) न्यायाधीशों की पदावधि, उनकी स्वतंत्रता, सुरक्षा, समुचित पारिश्रमिक और सेवा की शर्तें विधि द्वारा सुनिश्चित होंगी और इनमें उनके अहित में परिवर्तन नहीं किया जाएगा ।

(ख) इसमें उपवर्णित अनुशासन और हटाए जाने से संबंधित उपबंधों के अध्यधीन, न्यायाधीश को, चाहे वे नियुक्त किए गए हों या निर्वाचित, उस समय तक पदावधि की गारंटी होगी जब तक कि वे सेवानिवृत्ति की आज्ञापक आयु प्राप्त न कर लें या उनका विधिक कार्यकाल समाप्त न हो जाए ।

17. न्यायाधीशों को अपनी आरंभिक नियुक्ति के पश्चात् परिवीक्षा अवधि पूरी करनी होगी किन्तु ऐसे मामलों में परिवीक्षा अवधि और स्थायी अवधि प्रदान किया जाना सारभूत रूप में न्यायपालिका या न्यायपालिका की वरिष्ठ परिषद् के नियंत्रण के अधीन होगा ।

18. (क) न्यायाधीशों को अपनी पदावधि के दौरान वेतन प्राप्त होगा और सेवानिवृत्ति के उपरांत उन्हें पेंशन दी जाएगी ।

(ख) न्यायाधीशों के वेतन और पेंशन उनके पद के उत्तरदायित्व, गरिमा और उसकी हैसियत के अनुरूप समुचित होंगे और मुद्रास्फीति को कम करने के लिए या उस पर काबू पाने के लिए इनकी समय-समय पर समीक्षा की जाएगी ।

(ग) कार्यरत न्यायाधीशों की सेवानिवृत्ति की आयु में उनकी सहमति के बिना परिवर्तन नहीं किया जाएगा ।

19. कार्यपालिक प्राधिकारी न्यायाधीशों और उनके कुटुंबों की सुरक्षा और शारीरिक

संरक्षण सदैव सुनिश्चित करेंगे ।"

पैरा 20 और 21 में न्यायाधीशों की उन्मुक्ति और विशेषाधिकारों की चर्चा है, पैरा 22 से 25 में अर्हताओं का उल्लेख है जबकि पैरा 26 से 31 में उनके अनुशासन और उन्हें हटाए जाने का इस प्रकार वर्णन है :

"26. (क) किसी न्यायाधीश के विरुद्ध की गई शिकायत पर शीघ्रातिशीघ्र और ऋजुतापूर्वक समुचित पद्धति अपनाते हुए कार्यवाही की जाएगी और न्यायाधीश को शिकायत के संबंध में उसके प्रारंभिक प्रक्रम पर टिप्पणी करने का अवसर दिया जाएगा । शिकायत की परीक्षा उसके प्रारंभिक प्रक्रम पर गोपनीय रखी जाएगी जब तक कि न्यायाधीश अन्यथा अनुरोध न करे ।"

(ख) जब किसी न्यायाधीश को न्यायिक रूप से हटाए जाने या अनुशासन से संबंधित कार्यवाहियां आरंभ की जाएं तो वे एक ऐसे न्यायालय या बोर्ड के समक्ष की जाएंगी जो प्रमुख रूप से न्यायपालिका के सदस्यों को मिलाकर बनाया जाएगा । तथापि, हटाए जाने की शक्ति अधिमानत: ऐसे न्यायालयों या बोर्ड की सिफारिश पर महाभियोग या संयुक्त आग्रह (समावेदन) द्वारा विधानमंडल में निहित होगी ।

27. सभी प्रकार की अनुशासनिक कार्रवाई न्यायिक आचरण के स्थापित मानकों पर आधारित होगी ।

28. न्यायाधीशों के अनुशासन की कार्यवाहियों में उनके प्रति ऋजुता सुनिश्चित की जाएगी और उन्हें पूर्ण सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाएगा ।

29. न्यायाधीशों के विरुद्ध संस्थित अनुशासनिक कार्यवाहियों में, चाहे वे बंद कमरे में की जाएं या सार्वजनिक रूप से, के निर्णय प्रकाशित किए जाएंगे ।

30. न्यायाधीश को ऐसी असमर्थता या कदाचार जो उसे कार्य करने के लिए अनुपयुक्त ठहराए के साबित आधारों के सिवाय पद से नहीं हटाया जाएगा ।

31. किसी न्यायालय के उत्सादन की स्थिति में उन न्यायाधीशों को छोड़कर जो विनिर्दिष्ट अवधि के लिए निर्वाचित किए गए हैं, कार्य करने वाले न्यायाधीश प्रभावित नहीं

होंगे, तथापि उन्हें उसी हैसियत में किसी अन्य न्यायालय में स्थानांतरित किया जा सकेगा ।"

विधिवेत्ताओं का अंतरराष्ट्रीय आयोग (1981) : सिराकुसा सिद्धांत

हम विधिवेत्ताओं के अंतरराष्ट्रीय आयोग द्वारा संप्रवर्तित उन लिखतों के प्रति निर्देश करना चाहेंगे जो न्यायपालिका की स्वतंत्रता से संबंधित (सिराकुसा सिद्धांत) के प्रारूप में दिए गए हैं और जिन्हें 25-29 मई, 1981 को बनाया गया था । इन सिद्धांतों में भी न्यायिक स्वतंत्रता, अर्हता, चयन, तैनाती, स्थानांतरण, प्रोन्नति आदि के प्रति निर्देश है । किन्तु हम यहां अनुच्छेद 13 से 16 में वर्णित अनुशासन और हटाए जाने से संबंधित सिद्धांतों के प्रति ही निर्देश करेंगे । ये इस प्रकार हैं :

"अनुशासन :

अनुच्छेद 13. न्यायाधीशों से संबंधित किसी प्रकार की अनुशासनिक कार्यवाही न्यायालय या न्यायपालिका के सदस्यों में से चयन किए गए और उनसे मिलाकर बनाए गए बोर्ड के समक्ष होनी चाहिए ।

अनुच्छेद 14. सभी प्रकार की अनुशासनिक कार्रवाई विधि द्वारा प्रख्यापित न्यायिक आचरण के मानकों या न्यायालय के स्थापित नियमों के आधार पर की जानी चाहिए ।

अनुच्छेद 15. अनुशासनिक बोर्ड का विनिश्चय न्यायालय में अपील किए जाने के अध्यधीन होना चाहिए ।

[विशेष : इस बाबत मत विभाजित था कि क्या अनुशासनिक बोर्ड में गैर-न्यायाधीश भी अल्प संख्या में सम्मिलित किए जाएं ।

अनुशासनिक अनुशास्तियों में परिनिंदा या भर्त्सना से लेकर हटाए जाने की सर्वाधिक कठोर कार्रवाई किए जाने से संबंधित विभिन्न प्रकार के विकल्प सम्मिलित किए जा सकते हैं ।

कॉमन विधि वाले एक न्यायाधीश ने, जो बैठक में उपस्थित न हो सके, यह सुझाव दिया कि अनुच्छेद 13 और 15 को इस प्रकार संशोधित किया जाए :

"13. किसी न्यायाधीश के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाहियां औपचारिक रूप से तब शुरू की जाएंगी जब यह वांछित हो कि उसे गंभीर कारणोंवण उसके पद से हटाया जाए । ऐसी

अनुशासनिक कार्यवाहियां सबसे पहले न्यायपालिका के पियरों (अभिजातों) द्वारा चयन किए गए सदस्यों को मिलाकर बनाए गए बोर्ड के समक्ष की जाएंगी और इस बोर्ड के विनिश्चय के विरुद्ध न्यायालय में अपील किए जाने का अधिकार होगा ।

15. जहां किसी न्यायाधीश के आचरण के कारण उसे उसके पद से हटाया जाना आवश्यक न हो, वहां उसके आचरण के संबंध में उसके न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश में निहित शक्तियों के अनुसार अनुशासनिक या अन्य प्रक्रिया प्राइवेट रूप में अपनाई जानी चाहिए ।"]

हटाया जाना :

"अनुच्छेद 16. किसी न्यायाधीश को तभी हटाया जाएगा जब उसने कोई आपराधिक कार्य किया हो या घोर या बार-बार उपेक्षा की हो या शारीरिक या मानसिक रूप से असमर्थ हो या उसने प्रकटत: यह दर्शित कर दिया है कि वह न्यायाधीश के पद पर कार्य करने के लिए अन्य अनुपयुक्त है ।"

न्यायिक स्वतंत्रता से संबंधित अंतरराष्ट्रीय विधिज्ञ (बार) संगम के न्यूनतम मानक, नई दिल्ली (1982)

अब हम अंतरराष्ट्रीय विधिज्ञ (बार) संगम द्वारा अधिकथित न्यायिक स्वतंत्रता के न्यूनतम मानकों के प्रति निर्देश करेंगे । इन मानकों को अक्तूबर, 1982 में नई दिल्ली में हुए 19वें द्विवर्षी सम्मेलन में अंगीकार किया गया था । इनमें न्यायिक स्वतंत्रता और न्यायिक नियुक्तियों के निबंधनों और प्रकृति की चर्चा है । जहां तक न्यायाधीशों के अनुशासन और उन्हें हटाए जाने का संबंध है ये बातें पैरा 27 से 32 में इस प्रकार वर्णित हैं :

"27. न्यायाधीशों के अनुशासन और हटाए जाने की कार्यवाहियों में उनके प्रति ऋजुता सुनिश्चित होनी चाहिए और उन्हें सुनवाई का समुचित अवसर प्रदान किया जाना चाहिए ।

28. अनुशासनिक प्रक्रिया बंद कमरे में की जानी चाहिए । तथापि, न्यायाधीश यह अनुरोध कर सकता है कि सुनवाई सार्वजनिक रूप से की जाए और उसके इस अनुरोध का निपटारा

अनुशासनिक अधिकरण द्वारा अंतिम रूप में युक्तियुक्त दृष्टि से किया जाएगा । अनुशासनिक कार्यवाहियों, में चाहे वे बंद कमरे में की जाएं या जनता के सामने, के निर्णय प्रकाशित किए जा सकेंगे ।"

29. न्यायाधीशों को हटाए जाने के आधार विधि द्वारा नियत और स्पष्ट रूप से परिभाषित भी होंगे।

30. सभी प्रकार की अनुशासनिक कार्रवाईयां विधि द्वारा प्रख्यापित न्यायिक आचरण के मानकों के आधार पर या न्यायालय के स्थापित नियमों के अनुसार की जाएंगी ।

31. किसी भी न्यायाधीश को उस समय तक नहीं हटाया जाएगा जब तक कि उसने कोई आपराधिक कार्य या घोर या बार-बार उपेक्षा न की हो या वह शारीरिक अथवा मानसिक रूप से कार्य करने में असमर्थ है या उसने प्रकटत: यह दर्शित कर दिया है कि वह न्यायाधीश का पद धारण करने के लिए अनुपयुक्त है ।

32. उन प्रणालियों में जहां न्यायाधीशों के अनुशासन और उन्हें हटाए जाने की शक्ति विधानमंडल से भिन्न किसी संस्था में निहित है, न्यायाधीशों के अनुशासन और उन्हें हटाए जाने से संबंधित अधिकरण स्थायी होगा और यह प्रमुखत: न्यायपालिका के सदस्यों को मिलाकर बनाया जाएगा ।

33. न्यायालय के मुखिया को प्रशासनिक मामलों में न्यायाधीशों पर नियंत्रण रखने की अधीक्षण संबंधी शक्ति होगी ।"

न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर विश्व सम्मेलन (मोंट्रियल : 1983)

अब हम 1983 में मोंट्रियल में हुए न्यायपालिका की स्वतंत्रता के विश्व सम्मेलन के बारे में चर्चा करना चाहेंगे । इसमें एक संकल्प पारित किया गया था जो न्यायाधीशों की स्वतंत्रता पर सार्वभौमिक घोषणा के संबंध में था । अंतरराष्ट्रीय न्यायाधीशों की स्वतंत्रता और जवाबदेही पर चर्चा के उपरांत इसमें अलग से राष्ट्रीय न्यायाधीशों की भी चर्चा है । भाग 2 के पैरा 2 में न्यायपालिका की स्वतंत्रता के प्रति निर्देश है, पैरा 3 में अर्हताओं, चयन और प्रशिक्षण की चर्चा है, पैरा 4 में तैनाती, प्रोन्नति और स्थानांतरण का उल्लेख है और पैरा 5 में न्यायाधीशों की पदावधि का वर्णन है।

पैरा 6 में न्यायाधीशों की उन्मुक्तियों और विशेषाधिकारों की चर्चा है तथा पैरा 7 में उनकी निरर्हता का उल्लेख है । पैरा 8 में अनुशासन और हटाए जाने की चर्चा है जो इस प्रकार है :

"8. अनुशासन और हटाया जाना

2.32 किसी न्यायाधीश के विरुद्ध की गई शिकायत पर समुचित पद्धति के अधीन शीघ्रातिशीघ्र और ऋजुतापूर्वक कार्यवाही की जाएगी और न्यायाधीश को शिकायत के प्रारंभिक प्रक्रम पर इस बाबत टिप्पणी करने का अवसर भी प्रदान किया जाएगा । शिकायत के प्रारंभिक प्रक्रम इस बाबत परीक्षा को उस समय तक गोपनीय रखा जाएगा जब तक कि न्यायाधीश द्वारा अन्यथा अनुरोध न किया जाए ।

2.33 (क) न्यायिक अनुशासन या हटाए जाने की कार्यवाहियां जब आरंभ कर दी जाएं तो वे ऐसे न्यायालय या बोर्ड के समक्ष की जाएंगी जो प्रमुखत: न्यायपालिका द्वारा चयन किए गए उसके सदस्यों से मिलाकर बनाया गया है ।

(ख) तथापि हटाए जाने की शक्ति अधिमानत: उपर्युक्त पैरा 2.33(क) में निर्दिष्ट न्यायालय या बोर्ड की सिफारिश पर महाभियोग या संयुक्त आग्रह (समावेदन) द्वारा विधानमंडल में निहित होगी ।

2.34 प्रत्येक प्रकार की अनुशासनिक कार्रवाई न्यायिक आचरण के स्थापित मानकों पर आधारित होगी ।

2.35 न्यायाधीशों के अनुशासन की कार्यवाहियों में न्यायाधीशों के प्रति ऋजुता सुनिश्चित की जाएगी और उन्हें पूर्ण सुनवाई का अवसर भी प्रदान किया जाएगा ।

2.36 विधानमंडल के समक्ष कार्यवाहियों को छोड़कर अनुशासन और हटाए जाने की कार्यवाहियां बंद कमरे में की जाएंगी । तथापि, न्यायाधीश यह अनुरोध कर सकता है कि सुनवाई जनता के समक्ष की जाए किन्तु इस बाबत निर्णय अनुशासनिक अधिकरण द्वारा अंतिम रूप से युक्तियुक्त दृष्टि से किए जाने के अध्यधीन होगा । अनुशासनिक कार्यवाहियों में, चाहे वे बंद कमरे में की जाएं या जनता के समक्ष, के निर्णयों को प्रकाशित किया जाएगा।

2.37 विधानमंडल के समक्ष कार्यवाहियों या इनके संबंध में के अपवाद में, अनुशासनिक

अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध न्यायालय में अपील की जा सकेगी ।

2.38 किसी भी न्यायाधीश को उसके ऐसे कदाचार या असमर्थता के साबित आधारों जो उसे पद पर बने रहने के लिए अनुपयुक्त ठहराते हैं के सिवाय पद से नहीं हटाया जाएगा ।

2.39 यदि न्यायालय उत्सादित हो जाता है, तो उस न्यायालय में कार्य करने वाले न्यायाधीशों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और उन्हें उसी हैसियत में किसी अन्य न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया जाएगा।"

लुसाका संगोष्ठी (सेमिनार) (1986)

अब हम न्यायाधीशों और वकीलों की स्वतंत्रता पर लुसाका में तारीख 10 से 14 नवंबर, 1986 तक हुई संगोष्ठी की बाबत चर्चा करेंगे । इसे न्यायाधीशों और वकीलों की स्वतंत्रता के केन्द्र और अंतरराष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग द्वारा प्रायोजित किया गया था । पैरा 33 से 42 में सेवा शर्तों और पदावधि के प्रति निर्देश है और पैरा 45 में अनुशासन, निलंबन तथा हटाए जाने की चर्चा है । यह पैरा इस प्रकार है :

"45. संयुक्त राष्ट्र संघ के आधारभूत सिद्धांतों से संबंधित पैरा 17 से 20 में वर्णित सिद्धांतों जिनमें न्यायाधीश को न्यायिक आचरण के स्थापित मानकों के अनुसार अनुशासनिक कार्रवाई में ऋजु और गोपनीय सुनवाई प्रत्याभूत की गई है और यह उपबंधित है कि उन्हें निलंबित या पद से तभी हटाया जाएगा जब उनका कदाचार या असमर्थता साबित हो जाए और जिनमें अनुशासनिक विनिश्चयों के स्वतंत्र रूप में पुनर्विलोकन के लिए भी उपबंध है को राष्ट्रीय स्तर पर लागू किया जाना चाहिए ।"

कराकस सम्मेलन (1999)

अंतरराष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग द्वारा तारीख 16-18 जनवरी, 1999 के दौरान कराकस, वेनजुएला में न्यायाधीशों और वकीलों की स्वतंत्रता के संबंध में एक और सम्मेलन आयोजित किया गया था । इस सम्मेलन में विधि-शासन के सिद्धांतों, न्यायपालिका की स्वतंत्रता और मानवाधिकारों की अभिपुष्टि करते हुए एक कार्रवाई योजना पारित की गई थी ।

न्यायिक आचरण के बंगलौर सिद्धांत (2002)

अब हम न्यायिक आचरण के बंगलौर सिद्धांत, 2002 के बारे में चर्चा करेंगे । इनमें न्यायपालिका की स्वतंत्रता से संबंधित संयुक्त राष्ट्र संघ के आधारभूत सिद्धांतों के प्रति निर्देश के उपरांत न्यायपालिका की स्वतंत्रता से संबंधित पहले बनाए गए विभिन्न सिद्धांतों को उपवर्णित किया गया है । स्वतंत्रता के प्रश्न से संबंधित पैरा 1.1 से 1.6 इस प्रकार हैं :

"मूल्य 1 : स्वतंत्रता सिद्धांत

न्यायिक स्वतंत्रता विधि-शासन की पूर्व अपेक्षा है और ऋजु विचारण की मूल प्रत्याभूति है। अत: न्यायाधीश व्यक्तिगत रूप में और संस्थागत पहलुओं में न्यायिक स्वतंत्रता को कायम रखेगा और उसे दर्शित करेगा ।

1.1 न्यायाधीश न्यायिक कृत्यों का निष्पादन तथ्यों का निर्धारण करके और विधि के विवेकपूर्ण बोध के अनुसार किसी प्रकार के बाहय प्रभाव, उत्प्रेरणा, दबाव, धमकी, हस्तक्षेप, चाहे यह कहीं से भी या किसी कारण से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दिया गया हो, की परवाह किए बिना, स्वतंत्र रूप से करेगा ।

1.2 न्यायाधीश साधारणत: समाज के प्रति और विशिष्टत: किसी विवाद जिसमें उसे अधिनिर्णय देना है के पक्षकारों के प्रति स्वतंत्र होगा ।

1.3 न्यायाधीश सरकार के कार्यपालिक और संसदीय अंगों से कोई अनुचित संबंध नहीं रखेगा और न ही उनके प्रभाव में आएगा । वह उनसे स्वतंत्र रूप में दूरी बनाए रखकर युक्तियुक्त संप्रेक्षक की भांति कार्य करेगा ।

1.4 न्यायाधीश अपने न्यायिक कर्तव्यों के पालन में उन विनिश्चयों के संबंध में जिन्हें वह स्वतंत्र रूप से देने के लिए विबाध्य है अपने न्यायिक सहयोगियों से स्वतंत्र होगा ।

1.5 न्यायाधीश न्यायपालिका की संस्थागत और प्रचालन संबंधी स्वतंत्रता को बनाए रखने और उसमें वृद्धि करने के लिए अपने न्यायिक कर्तव्यों के निर्वहन के क्षोपायों को बढ़ावा देगा और उन्हें कायम रखेगा ।

1.6 न्यायाधीश न्यायपालिका में जनता के विश्वास को बनाए रखने के लिए जो कि न्यायिक स्वतंत्रता के अनुरक्षण का मूलाधार है न्यायिक आचरण के उच्च मानकों को प्रदर्शित

करेगा और उन्हें बढ़ावा देगा ।"

बंगलौर सिद्धांतों के पैरा 2.1 से 2.5 में न्यायिक आचरण, निष्पक्षता के सिद्धांतों की प्रमुख रूप से चर्चा है, पैरा 3.1 और पैरा 3.2 में उनकी ईमानदारी के बारे में वर्णन है, पैरा 4.1 से 4.16 में औचित्य की चर्चा है, पैरा 5.1 से 5.5 में क्षमता और पैरा 6.1 से 6.7 में न्यायाधीशों की सक्षमता और कर्मठता की चर्चा है । इस घोषणा में अनुशासन की प्रक्रिया का वर्णन नहीं है ।

लेटिमर हाउस सिद्धांत और कॉमनवेल्थ के लिए दिशानिर्देश (1998)

लेटिमर दिशानिर्देश "कॉमनवेल्थ प्रतिरूप (मॉडल) के लिए.....संसदीय सर्वोच्चता, न्यायिक स्वतंत्रता" पर हुई वार्ता जिसे कॉमनवेल्थ वकील संगम, कॉमनवेल्थ विधिक शिक्षा संगम, कॉमनवेल्थ मजिस्ट्रेट और न्यायाधीश संगम तथा कॉमनवेल्थ संसदीय संगम द्वारा संयुक्त रूप से प्रायोजित किया गया था में बनाए गए थे । यह सम्मेलन 15-19 जून, 1998 के मध्य लेटिमर हाउस, ब्रिटेन में हुआ था । जहां तक न्यायिक जवाबदेही का संबंध है इसका वर्णन न्यायिक जवाबदेही (के), अनुशासन शीर्षक के अधीन पैरा 6(1) में इस प्रकार है :

"(i) ऐसे मामलों में जिनमें न्यायाधीश को हटाया जाना है, उसे आरोपों की बाबत पूरी तरह से अवगत कराए जाने, सुनवाई के दौरान प्रतिनिधित्व किए जाने, प्रतिरक्षा किए जाने और एक स्वतंत्र तथा निष्पक्ष अधिकरण द्वारा निर्णय सुनाए जाने का अधिकार प्राप्त है । न्यायाधीश को हटाए जाने के आधारों में :

(क) न्यायिक कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थता; और

(ख) गंभीर कदाचार

सम्मिलित है ।

(ii) अन्य सभी मामलों में प्रक्रिया का संचालन न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश द्वारा किया जाना चाहिए ।

(iii) अनुशासनिक प्रक्रिया में न्यायाधीश की भर्त्सना सम्मिलित नहीं है । यदि किसी प्रकार की भर्त्सना की जानी है तो वह मुख्य न्यायाधीश द्वारा व्यक्तिगत रूप में की जानी

चाहिए ।'

न्यायपालिका की स्वतंत्रता के सिद्धांतों का बीजिंग कथन (1995)

न्यायपालिका की स्वतंत्रता के सिद्धांतों का बीजिंग कथन 19 अगस्त, 1995 में तैयार किया गया था । इसकी उद्देशिका में संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर, सार्वभौमिक घोषणा, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आधारों पर प्रसंविदा तथा सिविल और राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा के प्रति निर्देश है । इसमें आगे अपराध निवारण और अपराधियों के व्यवहार पर संयुक्त राष्ट्र संघ की छठी कांग्रेस के प्रति निर्देश है । इसमें मिलान, इटली में 26 अगस्त से 6 सितंबर, 1985 में हुई अपराध निवारण और अपराधियों के व्यवहार पर संयुक्त राष्ट्र संघ की सातवीं कांग्रेस जिसके द्वारा न्यायपालिका की स्वतंत्रता के सिद्धांतों से संबंधित आधारभूत सिद्धांतों को अंगीकार किया गया था के प्रति निर्देश है । इसमें अपराध निवारण और अपराधियों के व्यवहार पर संयुक्त राष्ट्र संघ की सातवीं कांग्रेस के बारे में भी चर्चा है जिसमें उपर्युक्त आधारभूत सिद्धांतों को राष्ट्रीय, प्रादेशिक और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लागू किए जाने की सिफारिश की गई थी । इसमें तारीख 17-18 जुलाई, 1982 को एशिया मानवाधिकार स्थायी समिति और तारीख 13-15 सितंबर, 1993 को कोलंबो, श्रीलंका में आयोजित एशिया और प्रशांत भूभाग के मुख्य न्यायमूर्तियों के 5वें सम्मेलन में पारित विधि की भी चर्चा है । इसमें यह निष्कर्ष निकलकर सामने आया कि टोकियो सिद्धांतों की पुनरीक्षा की जाए । इस आधार पर न्यायपालिका की स्वतंत्रता के नवीन सिद्धांत 19 अगस्त, 1995 को बीजिंग में तैयार किए गए थे । सिद्धांत सं. 3 से 9 में न्यायपालिका की स्वतंत्रता और सिद्धांत सं. 18 से 30 में पदावधि और अनुशासनिक कार्रवाई लागू किए जाने से संबंधित सिद्धांतों के प्रति निर्देश है । ये इस प्रकार हैं :

"3. न्यायपालिका की स्वतंत्रता से यह अपेक्षित है कि

(क) न्यायपालिका अपने समक्ष सभी मामलों का विनिश्चय तथ्यों का निष्पक्षता के साथ निर्धारण करके और विधि के सही बोध के अनुसार किसी प्रकार के अनुचित प्रभाव, चाहे वह किसी भी स्रोत से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में डाला जाए, की परवाह किए बिना करेगी ।

(ख) न्यायपालिका को प्रत्यक्ष रूप में या पुनर्विलोकन के माध्यम से न्याय्य प्रकृति के सभी विवाद्यकों की बाबत अधिकारिता प्राप्त है ।

4. न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अनुरक्षण विधि-शासन पर आधारित स्वतंत्र समाज में न्यायपालिका द्वारा उसके कृत्यों के समुचित निर्वहन और उसके उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। अत: यह आवश्यक है कि ऐसी स्वतंत्रता राज्य द्वारा प्रत्याभूत की जाए और यह संविधान तथा विधि में वर्णित हो ।

5. सरकार की अन्य संस्थाओं के उचित उद्देश्यों और कृत्यों का सम्मान करना और उनका पालन करना न्यायपालिका का कर्तव्य है । इन संस्थाओं का भी न्यायपालिका के उचित उद्देश्यों और कृत्यों का सम्मान करना और उनका पालन करना कर्तव्य है ।

6. विनिश्चय करने की प्रक्रिया में न्यायपालिका के किसी पदानुक्रमी संगठन और ग्रेड या रैंक के किसी प्रकार के अंतर द्वारा न्यायाधीश द्वारा अनुच्छेद 3(क) के अनुसार निर्णय सुनाए जाने की बाबत व्यक्तिगत रूप में या सामूहिक रूप में अपनी न्यायाधीश की हैसियत में कार्य करते हुए प्रयोग की जाने वाली अधिकारिता से संबंधित कर्तव्य पालन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा । न्यायपालिका व्यक्तिगत रूप में और सामूहिक रूप में संविधान और विधि के अनुसार अपने कृत्यों का निष्पादन करेगी ।

7. न्यायाधीश न्यायपालिका की अखंडता और स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए अपने सभी क्रियाकलापों में किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार नहीं करेंगे और न ही ऐसा कुछ करेंगे जिससे अनुचित व्यवहार प्रतीत हो ।

8. न्यायपालिका के सदस्यों के रूप में अपने कर्तव्यों के संगत, न्यायाधीश अन्य नागरिकों की भांति अभिव्यक्ति, विश्वास, संगम और एकत्र होने की स्वतंत्रता के हकदार हैं ।

9. न्यायाधीश किसी लागू विधि के अध्यधीन अपने हितों का प्रतिनिधित्व करने और अपने वृत्तिक प्रशिक्षण के संवर्धन के लिए किसी प्रकार का संगम बनाने और उसमें सम्मिलित होने तथा अपनी स्वतंत्रता की संरक्षा के लिए ऐसी अन्य कार्रवाई, जो वे उचित समझें, करने के लिए स्वतंत्र होंगे ।"

पदावधि और अनुशासनिक कार्रवाई को लागू होने वाले सिद्धांत

"18. न्यायाधीशों को अपनी पदावधि की सुरक्षा प्राप्त होगी ।

19. यह स्वीकार्य है कि कुछ देशों में न्यायाधीशों की पदावधि की समय-समय पर जनता के मतदान की औपचारिक प्रक्रिया द्वारा पुष्टि की जाती है ।

20. तथापि, यह सिफारिश की जाती है कि समरूप अधिकारिता का प्रयोग करने वाले सभी न्यायाधीशों की नियुक्ति ऐसी अवधि के लिए की जाएगी जो विशिष्ट आयु प्राप्त किए जाने पर समाप्त होगी ।

21. किसी न्यायाधीश की पदावधि में उसके कार्यकाल के दौरान उसके अहित में परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए ।

22. न्यायाधीशों को साबित असमर्थता, किसी अपराध में दोषसिद्ध किए जाने, या ऐसे आचरण जो उन्हें न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए अनुपयुक्त ठहराए जाने के कारण ही पद से हटाया जाएगा ।

23. इस बात को भी मान्यता प्रदान की जाती है कि इतिहास और संस्कृति में भिन्नता होने के कारण न्यायाधीशों को हटाए जाने की बाबत अपनाई जाने वाली प्रक्रियाएं भिन्न-भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न हो सकती हैं । कुछ समाजों में संसदीय प्रक्रियाओं द्वारा हटाए जाने को पारंपरिक रूप में अपनाया गया है । दूसरे समाजों में इस प्रक्रिया को उपयुक्त नहीं माना गया है । हटाए जाने के कुछ आधारों पर विचार करना समुचित नहीं है क्योंकि ये यदाकदा ही प्रयोग में लाए जाते हैं और इनका विशेष रूप से गंभीर कारणों से अन्यथा आश्रय लेने से दुरूपयोग हो जाएगा ।

24. जहां न्यायाधीश को जनता के मत द्वारा हटाए जाने की संसदीय प्रक्रिया या प्रक्रियाओं को नहीं अपनाया जाता है, वहां न्यायाधीशों को हटाए जाने की प्रक्रिया अवश्य ही न्यायपालिका के नियंत्रण के अधीन होनी चाहिए ।

25. जहां न्यायाधीश को जनता के मत द्वारा हटाए जाने की संसदीय प्रक्रिया या प्रक्रियाएं लागू नहीं हैं, वहां न्यायाधीश को हटाए जाने के लिए यह प्रस्तावित है कि सर्वप्रथम यह अवधारण करने के प्रयोजनार्थ कि क्या औपचारिक कार्यवाहियां शुरू की जा सकती हैं हटाए जाने के लिए सुझाए गए कारणों की परीक्षा की जानी चाहिए । औपचारिक कार्यवाहियां तभी आरंभ की जानी चाहिएं जब यह उपदर्शित हो कि उनके लिए पर्याप्त कारण हैं ।

26. न्यायाधीश जिसे हटाए जाने की ईप्सा की गई है को हर हाल में ऋजु सुनवाई का अधिकार होगा।

27. सभी अनुशासनिक, निलंबन या हटाए जाने से संबंधित कार्यवाहियों का अवधारण न्यायिक आचरण के स्थापित मानकों के अनुसार ही किया जाएगा ।

28. अनुशासनिक कार्यवाहियों में, चाहे वे बंद कमरे में की जाएं या जनता के सामने, के निर्णय प्रकाशित किए जाने चाहिएं ।

29. यदि न्यायालय जिसका न्यायाधीश सदस्य है उत्सादित कर दिया जाता है तो इस कारण न्यायाधीश को हटाया नहीं जाएगा और यह हटाए जाने का स्वीकार्य आधार नहीं होगा । जब न्यायालय को उत्सादित कर दिया जाए या इसका पुनर्गठन किया जाए, तो इसके सभी विद्यमान सदस्यों को इसके प्रतिस्थापन में पुन: नियुक्त किया जाना चाहिए या समान हैसियत और पदावधि के किसी अन्य न्यायिक पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए । न्यायालय के उन सदस्यों को जिनके लिए कोई आनुकल्पिक पद उपलब्ध नहीं कराया जा सकता है अवश्यमेव ही पूर्ण प्रतिकर प्रदान किया जाना चाहिए ।

30. न्यायपालिका द्वारा न्यायाधीशों को उनकी सहमति के बिना एक अधिकारिता या कृत्य से दूसरे को अंतरित नहीं किया जाएगा किंतु जब अंतरण कार्यपालिका द्वारा न्यायपालिका के साथ उचित परामर्श के पश्चात् बनाई गई एकरूप नीति के अनुसरण में किया जाए, तो न्यायाधीश द्वारा ऐसी सहमति देने से अयुक्तियुक्त रूप में इनकार नहीं किया जाएगा ।"

यह प्रकट है कि बीस मुख्य न्यायमूर्तियों ने पहले अगस्त, 1997 में बीजिंग कथन को अंगीकार किया। इस कथन पर मनीला में अगस्त, 1997 में हुए मुख्य न्यायमूर्तियों के सात सम्मेलनों में पुन: चर्चा हुई और संपूर्ण एशिया-प्रशांत क्षेत्र के 32 मुख्य न्यायमूर्तियों द्वारा हस्ताक्षर किए गए । जहां तक न्यायिक स्वतंत्रता, पदावधि और अनुशासनिक कार्रवाई से संबंधित सिद्धांतों का संबंध है, वे सारभूत रूप में बीजिंग में पारित उपर्युक्त सिद्धांतों जैसे ही हैं । तारीख 19 अगस्त, 1995 को बीजिंग में भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति ए. एम. अहमदी का प्रतिनिधित्व करते हुए उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति एस. सी. अग्रवाल भी इन पर हस्ताक्षर करने वाले लोगों में से थे ।

अध्याय-5

गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की धारा 220(2)(बी) और न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 1964 पर संसद् की संयुक्त समिति

गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 और न्यायमूर्ति एस. पी. सिन्हा वाला मामला (1948)

न्यायमूर्ति एस. पी. सिन्हा, जो इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश थे, का मामला संविधान के आरंभ से पूर्व का एकमात्र मामला है जिसमें किसी न्यायाधीश को गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की धारा 220(2)(बी) के अधीन निर्देश के अनुसरण में हटाया गया था ।

20 जुलाई, 1948 को युनाइटेड प्रॉविन्सेज़ की सरकार द्वारा की गई याचिका के अनुसरण में गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की धारा 220(2)(बी) के अधीन भारत के गवर्नर जनरल द्वारा एक निर्देश किया गया और शिकायत फेडरल कोर्ट ऑफ इण्डिया को अग्रेषित की गई । पहले ऐसे मामलों को प्रिवी कौंसिल को निर्दिष्ट किए जाने की प्रक्रिया थी । किंतु वर्तमान निर्देश द इण्डिया (प्रॉविज़नल कॉन्सटीटयूशनल) ऑर्डर, 1947 और द इण्डिया (प्रॉविज़नल कॉन्सटीटयूशनल) अमेन्डमेंट ऑर्डर, 1948 के कारण फेडरल कोर्ट के समक्ष आया ।

फेडरल कोर्ट ने निर्देश की प्राप्ति पर इसकी एक प्रति न्यायाधीश को उसके उत्तर की ईप्सा करते हुए भेजी । तत्पश्चात्, गवर्नर जनरल ने गवर्नर की याचिका के तथ्यों और उसमें किए गए अभिकथनों के समर्थन में शपथपत्र फाइल किए और इन्हें न्यायाधीश पर तामील किया गया । न्यायाधीश ने उत्तर में शपथपत्र फाइल किए । गवर्नर जनरल ने प्रत्युत्तर में शपथपत्र फाइल किए । न्यायाधीश ने यह अनुरोध किया कि उस अभिसाक्षी को जिसने शपथपत्र फाइल किए बुलाया जाए । इसे मंजूर कर लिया गया । तत्पश्चात्, जांच जो पूरे तीन सप्ताह तक चली में साक्ष्य जिसमें न्यायाधीश की ओर से प्रतिपरीक्षा भी शामिल थी लेखबद्ध किया गया । तारीख 22 मार्च, 1949 को साक्ष्य पूरा हुआ ।

कार्यवाहियां फेडरल कोर्ट के समक्ष बंद कमरे में की गईं, तथापि न्यायालय ने यह कहा कि इसे नज़ीर न माना जाए । पांच आरोपों से संबंधित सामग्री पर विचार करने के उपरांत फेडरल कोर्ट ने यह अभिनिर्धारित किया कि दो मामलों में उसके आचरण से संबंधित एक आरोप साबित हो गया है । चूंकि कदाचार के दो उदाहरण साबित हो गए, इसलिए फेडरल कोर्ट की यह राय थी कि उसके

पद पर बने रहने से न्याय प्रशासन पर तो प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा ही साथ ही यह लोक हित के भी विरुद्ध होगा । न्यायालय ने हटाए जाने की सिफारिश की ।

तारीख 22 अप्रैल, 1949 के आदेश द्वारा गवर्नर जनरल श्री सी. राजगोपालाचारी ने गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935 की धारा 220(2) के अधीन हटाए जाने का आदेश यह कहते हुए पारित किया कि भारतीय उच्च न्यायालयों के इतिहास में यह एकमात्र मामला है ।

न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 1964 और संसद् की संयुक्त समिति की रिपोर्ट (1966)

न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 संसद् की संयुक्त समिति की, जिसने जनवरी, 1966 में न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 1964 से संबंधित रिपोर्ट पर चर्चा की, रिपोर्ट के उपरांत विधि बन गया। विधेयक, 1964 लाए जाने का मुख्य कारण यह था कि उच्चतम न्यायालय के एक न्यायाधीश जो अस्वस्थ थे, कुछ व्यक्तियों के अनुसार, उच्चतम न्यायालय में अपने न्यायिक कर्तव्यों का निर्वहन करने की स्थिति में नहीं थे । प्रश्न यह उठा कि उनसे कृत्य न करने के लिए क्या कहा जा सकता है और यदि हां, तो किस रीति में । 1964 का विधेयक संसद् की संयुक्त समिति को निर्दिष्ट कर दिया गया ।

समिति की रिपोर्ट तारीख 17 मई, 1966 को अंतिम रूप से पेश की गई थी और तत्पश्चात् विधेयक में जिसे आरंभत: 1964 में लोकसभा में पेश किया गया समिति की रिपोर्ट के आलोक में उपांतरण किया गया और इसे 1968 में संसद् द्वारा पारित कर दिया गया ।

संयुक्त समिति द्वारा 1966 में विधेयक में त्रुटियां इंगित की गई थीं जिन्हें सुधार कर इस विधेयक को संसद् द्वारा 1968 में अंतत: पारित कर दिया गया । 15, 17 जनवरी और 14 फरवरी, 1966 को संयुक्त समिति के समक्ष साक्ष्य दिया गया जिसमें श्री सी. के. दफ्तरी, भारत के तत्कालीन अटर्नी जनरल, श्री एम. सी. सीतलवाड, डॉ. एल. एम. सिंघवी, श्री एन. सी. चटर्जी, श्री जी. एस. पाठक, श्री के. के. शाह, श्री आर. सी. एस. सरकार, श्री पी. एन. सप्रू, श्री एम. पी. कामथ और श्री एम. एन. कौल जैसी महान विभूतियां थीं । इस साक्ष्य से संविधान के अनुच्छेद 124 और 125 के निर्वचन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । चर्चा मुख्य रूप से 1965 के विधेयक के उन कतिपय उपबंधों पर की गई जो, समिति के अनुसार, संविधान के उपबंधों का अतिक्रमण करते थे ।

1966 में संयुक्त समिति के समक्ष जिन कुछ प्रश्नों पर चर्चा हुई वे संविधान के अनुच्छेद

121, 124, 125 और 217 जो वर्तमान प्रसंग में सुसंगत हैं के निर्वचन से संबंधित थी । वास्तव में, इनमें से कुछ बिन्दुओं का न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी वाले मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा विचार करके निराकरण कर दिया गया है । इसलिए हम यह महसूस करते हैं कि उक्त संयुक्त समिति के समक्ष हुई चर्चा के प्रति संक्षेप में निर्देश करना उचित रहेगा ।

न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 1964

(सुविधा की दृष्टि से हम विधेयक के 'खण्ड' शब्द के लिए 'धारा' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं)

विधेयक की धारा 2 में परिभाषाएं दी गई हैं और धारा 2(ग) में यह कहा गया है कि 'न्यायाधीश' शब्द से उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश अभिप्रेत है जिसके अंतर्गत भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्ति भी आते हैं ।

विधेयक की धारा 3 में लोकसभा अध्यक्ष और राज्यसभा के सभापति द्वारा गठित की जाने वाली "समिति द्वारा किसी न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता की बाबत अन्वेषण" करने की चर्चा है । धारा 3 की उपधारा (1) में उस रीति के प्रति निर्देश है जिसमें कोई प्रस्ताव लोकसभा में लाया जाएगा । ऐसा प्रस्ताव लोकसभा के कम से कम सौ सदस्यों द्वारा या राज्यसभा के कम से कम पचास सदस्यों द्वारा लाया जाना चाहिए । ऐसी स्थिति में लोकसभा अध्यक्ष या राज्यसभा के सभापति, यथास्थिति, ऐसे किन्हीं व्यक्तियों से जिन्हें वे ठीक समझें परामर्श करके और ऐसी किसी सामग्री पर जो उन्हें उपलब्ध हो पर विचार करने के उपरांत प्रस्ताव को स्वीकार कर सकते हैं या उसे स्वीकार करने से मना कर सकते हैं ।

धारा 3 की उपधारा (2) में यह कहा गया है कि यदि प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है, तो लोकसभा अध्यक्ष या, यथास्थिति, संसद् प्रस्ताव को लंबित रखेंगे और उन आधारों की बाबत जिन पर किसी न्यायाधीश को हटाए जाने की प्रार्थना की गई है अन्वेषण किए जाने के प्रयोजनार्थ एक समिति गठित करेंगे जिसमें तीन सदस्य होंगे । रीति जिसमें सदस्य चुने जाएंगे इस प्रकार है :

> "(क) एक सदस्य उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और अन्य न्यायाधीशों में से चुना जाएगा; (ख) एक सदस्य उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों में से चुना जाएगा; और (ग) एक सदस्य ऐसे व्यक्तियों में से चुना जाएगा जो लोकसभा अध्यक्ष या राज्यसभा के सभापति, यथास्थिति, की राय में प्रख्यात विधिवेत्ता हो ।"

धारा 3 की उपधारा (3) यह उपबंध करती है कि समिति न्यायाधीश के विरुद्ध निश्चित आरोप विरचित करेगी जिनके आधार पर अन्वेषण किया जाना प्रस्थापित है । धारा 3 की उपधारा (4) यह उपबंध करती है कि आधारों के कथन के साथ आरोपों के संबंध में न्यायाधीश को संसूचित किया जाएगा और उसे अपना लिखित कथन फाइल करने के लिए युक्तियुक्त अवसर प्रदान किया जाएगा। धारा 3 की उपधारा (5) न्यायाधीश की चिकित्सीय परीक्षा के लिए उपबंध करती है, यदि अभिकथन यह है कि वह शारीरिक या मानसिक असमर्थता के कारण प्रभावी रूप से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में असफल था । चिकित्सा बोर्ड को अपनी रिपोर्ट समिति के समक्ष प्रस्तुत करनी होगी ।

उपधारा (7) के अधीन न्यायाधीश को चिकित्सीय रिपोर्ट के संबंध में अपना पक्षकथन प्रस्तुत करने के लिए एक और अवसर प्रदान किया जाना चाहिए और आरोपों में संशोधन किया जा सकता है, यदि आवश्यक हो, और यदि उनमें संशोधन किया जाता है, तब न्यायाधीश को एक और अवसर प्रदान किया जाएगा ।

धारा 3 की उपधारा (8) केन्द्रीय सरकार को न्यायाधीश के विरुद्ध वाद चलाने के लिए एक अधिवक्ता नियुक्त करने की अनुज्ञा देती है, यदि अध्यक्ष या सभापति द्वारा ऐसी अपेक्षा की जाए।

धारा 4 यह कथन करती है कि समिति अन्वेषण करने में अपनी स्वयं की प्रक्रिया विनियमित कर सकेगी और साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने के लिए या साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए न्यायाधीश को युक्तियुक्त अवसर प्रदान करेगी । अन्वेषण के पश्चात्, समिति को अध्यक्ष या जैसा कि मामला हो, सभापति या यदि यह दोनों द्वारा संयुक्त रूप से गठित है, दोनों को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होगी । रिपोर्ट इसके पश्चात् संसद् के दोनों सदनों में रखी जाएगी ।

विधेयक की धारा 5 समिति की समन जारी करने, दस्तावेज प्रदान और प्रस्तुत किए जाने की अपेक्षा करने, शपथ पर साक्ष्य प्राप्त करने, साक्षियों या दस्तावेजों इत्यादि की परीक्षा करने के लिए समन जारी करने की शक्ति पर चर्चा करती है ।

धारा 6 यह उपबंध करती है कि यदि रिपोर्ट में यह पाया जाता है कि न्यायाधीश दोषी नहीं है या किसी असमर्थता से ग्रस्त नहीं है, तब प्रस्ताव नामंजूर किया जाना होगा । दूसरी ओर, यदि रिपोर्ट न्यायाधीश के विरुद्ध है तब प्रस्ताव और रिपोर्ट पर सदन, जिसमें कि यह लंबित है, के द्वारा

विचार किया जाएगा । यदि प्रस्ताव अनुच्छेद 124(4), या अनुच्छेद 218 के अनुसार प्रत्येक सदन द्वारा अंगीकृत किया जाता है तब कदाचार या असमर्थता साबित हुई समझी जाएगी और न्यायाधीश को हटाए जाने के लिए समावेदन प्रत्येक सदन में उसी भांति प्रस्तुत किया जाएगा जिसमें कि प्रस्ताव ग्रहण किया गया है ।

उपधारा 7 दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति को नियम बनाने के लिए समर्थ बनाती है । संयुक्त समिति 15 सदस्यों से गठित होगी जो अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे ।

ये 1964 के विधेयक के मुख्य उपबंध थे जो संयुक्त समिति के समक्ष चर्चा के लिए रखा गया था ।

संयुक्त समिति के समक्ष चर्चा

श्री सी. के. दफ्तरी, भारत के महान्यायवादी द्वारा दिया गया साक्ष्य अनुच्छेद 124(4) से संबंधित है । उन्होंने यह कहा कि एक प्रस्ताव संसद् के दोनों सदनों में से एक के समक्ष प्रस्तुत किया गया है, प्रश्न यह था कि क्या अनुच्छेद 121 के अधीन किसी न्यायाधीश के आचरण के संबंध में कोई चर्चा की जा सकती है । उक्त अनुच्छेद "राष्ट्रपति को एक समावेदन करने के लिए" एक प्रस्ताव पर के सिवाए चर्चा प्रतिषिद्ध करता है । श्री जी. एस. पाठक ने यह इंगित किया कि प्रस्ताव लाने के प्रारंभिक प्रक्रम पर प्रस्ताव एक परिवाद या याचिका की प्रकृति में होता है । कदाचार या असमर्थता साबित किए जाने के पश्चात् ही केवल समावेदन अनुच्छेद 124(4) के अधीन वस्तुतः राष्ट्रपति को किया जा सकता है । इसलिए प्रस्ताव लाने के प्रक्रम पर कोई चर्चा नहीं की जा सकती । उन्होंने इस पर बल दिया कि यदि प्रारंभिक प्रक्रम पर चर्चा की जाती है तब चरित्र हनन हो सकता है । श्री पी. एन. सप्रू ने यह सुझाव दिया कि वह प्रक्रम जिस पर प्रस्ताव लाया जाता है उस समय चर्चा से बचना चाहिए । श्री जी. एस. पाठक ने यह इंगित किया कि अनुच्छेद 121 में शब्द "कोई चर्चा इसमें इसके पश्चात् उपबंधित रीति से उस न्यायाधीश को हटाने की प्रार्थना करने वाले समावेदन को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करने के प्रस्ताव पर ही होगा, अन्यथा नहीं", को प्रयुक्त किया गया है और इससे यह अभिप्रेत है कि प्रस्ताव का कदाचार या असमर्थता के सबूत के पश्चात् ही केवल समर्थन किया जाना चाहिए । उन्होंने यह उल्लेख किया कि अनुच्छेद 124(4) के अधीन, प्रथमतया कदाचार या असमर्थता साबित की जानी चाहिए और केवल तत्पश्चात् ही प्रस्ताव का सदन

के कुल सदस्यों के बहुमत द्वारा समर्थन किया जाना चाहिए । अनुच्छेद 124(4) के अभिकथनों के साबित किए जाने के पूर्व प्रस्ताव लाए जाने के प्रक्रम पर सदन के बहुमत जिसके अनुसरण में समिति की नियुक्ति की जाती है, की अपेक्षा नहीं करता है । श्री पी. एन. सप्रू ने यह उल्लेख किया कि वह प्रक्रम जिस पर प्रस्ताव लाया जाता है, के समय ब्रिटेन और कामनवैल्थ राष्ट्रों, जैसे कनाडा और आस्ट्रेलिया की संसदों में भी कोई चर्चा करने की अनुज्ञा नहीं दी जाती है । उन्होंने यह सुझाव दिया कि प्रस्ताव लाए जाने के प्रक्रम पर संसद् बंद कमरे में बैठक कर सकती है, किन्तु श्री जी. एस. पाठक ने यह सुझाव दिया कि इसके बजाए विधि जो कि बनाई जानी है, में यह कथन किया जा सकता है कि कोई चर्चा नहीं की जानी चाहिए । संसद् में चर्चा केवल इसके पश्चात् ही की जा सकती है जब न्यायिक अधिकरण यह विनिश्चय करे कि कदाचार और असमर्थता साबित किए गए हैं ।

तथापि, प्रारंभ में श्री सी. के. दफ्तरी ने इस मत को स्वीकार नहीं किया था । उनके अनुसार अनुच्छेद 124(4) के अधीन एक बार प्रस्ताव के लाए जाने पर अनुच्छेद 121 के अधीन चर्चा पर प्रतिषेध हट जाता था । उन्होंने यह कथन किया कि हमें इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि वहां दो प्रक्रम होते हैं और न्यायाधीश के आचरण के संबंध में चर्चा केवल बाद के प्रक्रम के लिए ही अनुज्ञप्त की जाती है । बाद में श्री सी. के. दफ्तरी ने अपने मत को बदला और यह कथन किया कि केवल कदाचार या असमर्थता के सबूत के पश्चात् ही चर्चा की जा सकती है । श्री पी. एन. सप्रू ने भी यह सुझाव दिया कि दो प्रक्रम होते हैं । श्री पी. बर्मन के अनुसार प्रस्ताव के लाए जाने के प्रक्रम पर अध्यक्ष/सभापति इसका विनिश्चय करेगा कि क्या इसे समिति को निर्दिष्ट करे । उक्त प्रक्रम पर भी चर्चा की जा सकती है क्योंकि अनुच्छेद 121 उक्त प्रक्रम पर भी चर्चा किए जाने पर वर्जना हटाता है । श्री जी. एस. पाठक के अनुसार प्रस्ताव को लंबित रखा जाता है और न्यायिक अधिकरण के समक्ष सबूत के पश्चात् ही चर्चा की जा सकती है । श्री पी. बर्मन के अनुसार एक ही प्रस्ताव के दो पहलू होते हैं । उनका श्री डी.एल. सेन गुप्ता द्वारा समर्थन किया गया था । उन्होंने यह भी कहा कि संसद् न्यायाधीश को दोषमुक्त कर सकती है । यद्यपि, समिति ने उसे दोषी अभिनिर्धारित किया हो । किन्तु, यदि समिति न्यायाधीश को दोषी अभिनिर्धारित नहीं करती, तब मामला समाप्त हो जाता है चूंकि कोई 'साबित कदाचार' नहीं है । अनेक सदस्यों ने यह मत व्यक्त किया कि समावेदन के पूर्व 'कदाचार का सबूत' होना चाहिए । श्री के. के. शाह के अनुसार अनुच्छेद 121 प्रस्ताव के संबंध में उल्लेख करता है किन्तु अनुच्छेद 124(4) प्रस्ताव के संबंध में उल्लेख नहीं

करता । समावेदन केवल प्रस्ताव के पश्चात् ही किया जा सकता है । किन्तु, 'सबूत' के पहले कोई चरित्र हनन नहीं किया जाना चाहिए । डा. सिंघवी ने राबर्ट मैकग्रेगोर डेविसन का संदर्भ लेते हुए यह कथन किया कि कनाडा में संयुक्त समावेदन किया जाता है । श्री पी. बर्मन ने यह कथन किया कि 'कदाचार को परिभाषित करना अत्यन्त ही दुष्कर है' । श्री देबव्रत मुकर्जी ने इससे सहमति व्यक्त की । तब सदस्यों ने यह कहा कि समिति यह भी कह सकती है कि परिवाद 'तंग करने वाला' है ।

एक अन्य मुद्दा जिस पर चर्चा की गई थी वह यह था कि क्या कोई प्रस्ताव अनुच्छेद 124(5) के अधीन एक विधि बनाए जाने के पूर्व अनुच्छेद 124(4) के अधीन लाया जा सकता है । डा. सिंघवी ने आस्ट्रेलिया के टाड के मत को उत्कथित किया । उन्होंने जहां तक संयुक्त राज्य अमेरिका में सीनेट में प्रक्रिया का संबंध है जैफरसंस मैन्युअल को भी उत्कथित किया ।

एक अन्य प्रश्न यह था कि क्या राष्ट्रपति समावेदन के पश्चात् स्वतः कृत्य कर सकता है और क्या उसे प्रस्ताव के ग्रहण किए जाने के मामले में विवेकाधिकार होगा या क्या उसे कार्यपालिका के मत को मानना चाहिए । श्री सी. के. दफ्तरी ने यह मत व्यक्त किया कि मंत्रिमंडल सलाह राष्ट्रपति पर बाध्यकर है । जहां तक संसद् का संबंध है यह समिति की रिपोर्ट से आबद्ध नहीं है ।

श्री एम. एन. कौल, जो लोक सभा के भूतपूर्व महासचिव थे और बाद में इंस्टिट्यूट आफ कांस्टिट्यूशनल एण्ड पार्लियामेंटरी स्टडीज़, नई दिल्ली के निदेशक बने, ने विस्तृत साक्ष्य दिया । उन्होंने यह सुझाव दिया कि न्यायाधीश का विचारण, स्वरूप में न्यायिक होना चाहिए । उन्होंने यह भी कथन किया कि जब कभी कोई सदस्य किसी कार्यरत न्यायाधीश के विरुद्ध परिवाद करता है,तब अध्यक्ष/सभापति के लिए यह आवश्यक है कि इस पर विचार करे कि क्या कोई प्रथमदृष्टया मामला बनता था । संविधान के प्रवृत्त होने के पश्चात् पहला मामला जो उद्भूत हुआ था वह एक प्रबुद्ध वैज्ञानिक डा. मेघनाथ साहा द्वारा एक न्यायाधीश के विरुद्ध किए गए एक परिवाद के संबंध में था । नोटिस अध्यक्ष श्री मावलंकर के समक्ष आया जिन्होंने उसकी संवीक्षा की और यह महसूस किया था कि नोटिस को ग्रहण करने से पूर्व पहले यह पता लगाना आवश्यक था कि क्या एक प्रथमदृष्टया मामला बनता था । उन्होंने कहा कि "यह शक्ति मैं आदेश में प्रत्येक बात लाए बिना भी मामलों का निपटारा करने के लिए प्रयुक्त कर सकता हूं ।" महत्वपूर्ण विषय पर टिप्पणियां स्वयं महासचिव की वैयक्तिक अभिरक्षा में ही बनी रही थीं । श्री मावलंकर ने यह भी कहा कि "मेरा पहला कर्तव्य सदस्य के लिए भेजना है" । इसलिए उच्च सांविधानिक पदों पर आसीन व्यक्तियों के विरुद्ध ऐसे परिवादों

की पहले अध्यक्ष द्वारा यह पता लगाने के लिए परीक्षा की जानी चाहिए कि क्या उनके विरुद्ध एक प्रथमदृष्टया मामला बनता था । यह प्रतीत होता है कि उन्होंने डा. मेघनाथ साहा को कहा " देखिए, आपने नोटिस दिया है; आप एक प्रमुख सदस्य हैं और मैं जानता हूं कि आपके पास कुछ प्रथमदृष्टया साक्ष्य हो सकता है किन्तु एक अध्यक्ष के रूप में यह मेरा कर्तव्य है कि मैं अपनी संतुष्टि करूं.....प्रारंभिक तौर पर यह मेरी शक्ति और दायित्व है कि मैं इसे ग्रहण करूं या इसे ग्रहण न करूं । मेरा विचार यह है कि मैं इस पर अत्यन्त गंभीरता से विचार करूं, अर्थात् यदि मेरे पास और कोई रास्ता नहीं बचता, तब केवल उन परिस्थितियों में इसे अपने आदेश में उल्लेख करूंगा ।" यदि सदस्य बिना किसी न्यायोचित्य के परिवाद करता है, तब वह अध्यक्ष की नाराजगी का भागी होगा । अध्यक्ष को प्रारंभिक तौर पर अभिकथनों की जांच करनी होगी और उन्हें सत्यापित करना होगा । उसे सदस्य से पूछना चाहिए कि क्या सदस्य ने कुछ सत्यापन किया था और स्वयं की संतुष्टि की थी । उक्त मामले में परिवाद यह प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीश लम्बे समय से निर्णयों को उद्घोषित करने में विलम्ब कर रहे थे और उनमें से एक न्यायाधीश सेवानिवृत्त होने वाला था । किन्तु श्री मावलंकर ने यह कहा कि प्रस्ताव ग्रहण करने के पूर्व, वह संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को लिखेंगे । उन्होंने यह बात गृह मंत्री और भारत के मुख्य न्यायाधीश की अवेक्षा में भी लाई । मुख्य न्यायाधीश ने यह उत्तर दिया था कि वह मामले में उपयुक्त कार्यवाही कर रहे हैं । किन्तु गृह मंत्री और मुख्य न्यायाधीश ने उस रीति की प्रसंशा की जिसमें कि अध्यक्ष ने प्रस्ताव सीधे ही ग्रहण किए बिना मामले पर चर्चा की थी । तत्समय के प्रधानमंत्री, श्री जवाहरलाल नेहरू ने भी अध्यक्ष द्वारा किए गए कार्य का समर्थन किया था । अन्ततः प्रस्ताव की धमकी सफल हुई और समस्या को सुलझाया गया था । मामलों का निपटारा किया गया और निर्णय उद्घोषित किए गए थे । डा. साहा, जिन्होंने परिवाद किया था वह भी संतुष्ट थे । श्री एम. एन. कौल ने एक अन्य उच्च न्यायालय से प्राप्त दो अन्य परिवादों को निर्दिष्ट किया और वह भी उपर्युक्त रीति में सुलझाया गया था जब न्यायाधीशों को यह जानकारी मिली कि अध्यक्ष के पास एक परिवाद पड़ा हुआ था और मामला उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सहायता लेते हुए सुलझाया गया था । तीसरा मामला उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति इमाम से संबंधित था, जिनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं चल रहा था और जिन्होंने अन्ततः समान परिस्थितियों में त्यागपत्र दिया था । इसके पश्चात् ही सरकार ने यह महसूस किया कि संविधान के अनुच्छेद 124 खंड(5) के अधीन विधि बनाई जानी चाहिए । उनके अनुसार अनुच्छेद 121 और अनुच्छेद 124(4) में निर्दिष्ट किए गए प्रस्ताव से ऐसा प्रस्ताव अभिप्रेत है जो कि सदन के विचारार्थ है और जो इसके प्रायोजकों के चित्त

में है । अध्यक्ष प्रस्ताव को खारित कर सकता है यदि यह तंग करने वाला है । यदि वह प्रथमदृष्टया मामला पाते हैं, तब उस स्थिति में वह प्रस्ताव को ग्रहण करेंगे । मात्र यह कारण कि प्रस्ताव अनुच्छेद 124(4) के अधीन ग्रहण किया गया है इससे यह अभिप्रेत नहीं है कि न्यायाधीश के विरुद्ध अभिकथन साबित हो गया है । यह तब भी प्रस्तुतकर्ताओं की दृष्टि में बना रहता है । उन्होंने कथन किया कि यह कार्यपालिका के लिए नहीं होना चाहिए कि वह अध्यक्ष को क्रियाशील करे अपितु यह केवल संसद् के सदस्य के लिए ही होना चाहिए कि वे एक प्रस्ताव के माध्यम से अध्यक्ष को क्रियाशील करे । यह अनुज्ञेय नहीं है कि उक्त प्रक्रम पर कार्यपालिका को दृष्टिपटल पर लाया जाए। अध्यक्ष द्वारा प्रस्ताव पर नोटिस, अन्वेषण और सबूत गठित नहीं करता है । अध्यक्ष द्वारा प्रस्ताव का ग्रहण किया जाना भी अन्वेषण और सबूत गठित नहीं करता है । कागजों पर प्रस्ताव को लाना, अन्वेषण और सबूत का भाग नहीं है । संसद् तब तक दृष्टिपटल पर नहीं आती जब तक कि समिति की रिपोर्ट संसद् के समक्ष नहीं रखी जाती है । इसलिए, यह सक्षमता संसद् में है कि वह पूर्व प्रक्रमों के संबंध में विधि बनाए । संसद् के किसी भी सदस्य को यह नहीं सोचना चाहिए कि जब वह प्रस्ताव लाता है, तो आरोप साबित हो गए हैं । वह केवल कार्यप्रणाली को ही गतिमान करता है । उस प्रक्रम पर यदि सदस्य प्रथमदृष्टया मामले के संबंध में अध्यक्ष को संतुष्ट नहीं कर पाता है, तब अध्यक्ष यह कह सकता है कि वह संतुष्ट नहीं है या उसमें कोई आधार नहीं है । श्री के. के. शाह के अनुसार अनुच्छेद 121 में प्रयुक्त किए गए शब्द "कोई चर्चा इसमें इसके पश्चात् उपबंधित रीति से उस न्यायाधीश को हटाने की प्रार्थना करने वाले समावेदन को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करने के प्रस्ताव पर ही होगी, अन्यथा नहीं", केवल समावेदन के बाद के प्रक्रम को निर्दिष्ट करते हैं और न कि प्रस्ताव के प्रक्रम को । किन्तु श्री कौल के अनुसार यह दोनों प्रक्रमों को निर्दिष्ट करते हैं । दोनों प्रक्रमों के अधीन चर्चा की जा सकती है । किन्तु, श्री शाह ने यह उल्लेख किया कि अनुच्छेद 124(4) "बहुमत से समर्थित समावेदन के पश्चात्" और मतगणना राष्ट्रपति को प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् ही हटाए जाने के संबंध में है । अन्यथा प्रारंभिक प्रक्रमों पर जब प्रस्ताव लाया जाता है चरित्र हनन हो सकता है । किन्तु, श्री कौल के अनुसार प्रारंभिक प्रक्रम पर अधिक चर्चा नहीं होनी चाहिए और एक कन्वेंशन स्थापित किया जाना चाहिए कि उक्त प्रक्रम पर कोई चर्चा नहीं होनी चाहिए । यदि लोक सभा राष्ट्रपति को समावेदन करती है, यह राज्य सभा से भी न्यायाधीश के हटाए जाने के लिए राष्ट्रपति को समरूप समावेदन प्रस्तुत करने के लिए राज्य सभा से प्रार्थना करेगा । दोनों सदन स्वतंत्र रूप से कार्यवाही कर सकते हैं या वे एक संयुक्त सत्र भी कर सकते हैं । यदि कोई व्यक्ति राष्ट्रपति को याचिका भेजता है, तब वह संबंधित मंत्री को इसे अग्रेषित कर सकते हैं जो इसे अध्यक्ष

को निर्दिष्ट करने के पूर्व या सदन में प्रस्ताव लाए जाने के पूर्व कुछ प्रारंभिक जांच कर सकता है । राष्ट्रपति को यह भी स्वतंत्रता है कि वह परिवाद को मंत्री के माध्यम से भारत के मुख्य न्यायाधीश को परिवाद भेजे । राष्ट्रपति को एक अधिकरण नियुक्त करने की शक्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि राष्ट्रपति कार्यपालिका की सलाह पर कृत्य करता है । अधिकरण सदन द्वारा नियुक्त किया जाना चाहिए ।

यह इंगित किया गया था कि अभियुक्त न्यायाधीश को काउंसेल नियुक्त करने का अधिकार, सुनवाई का अधिकार, प्रतिपरीक्षा करने का अधिकार और ऐसे निकाय जो अभिकथनों का अन्वेषण कर रहा है, के समक्ष साक्ष्य इत्यादि प्रयुक्त करने का अधिकार दिया जाना चाहिए । श्री देबब्रत मुकर्जी ने बार-बार श्री पाल से पूछा कि क्या प्रस्ताव लाए जाने के प्रक्रम पर प्रायोजक या इसके समर्थन में अन्य सदस्यों द्वारा भाषण दिया जा सकता है या क्या अनुच्छेद 121 एक वर्जन होगा किन्तु श्री कौल का यह मत था कि अनुच्छेद 121 प्रस्ताव के लाए जाने के प्रक्रम पर भी वर्जना को हटाता है किन्तु श्री मुकर्जी इससे सहमत नहीं थे । तथापि, श्री कौल ने यह इंगित किया कि सदस्य वाक्-स्वातंत्र्य के अपने अधिकार को उक्त प्रक्रम पर त्यक्त कर सकता है किन्तु श्री मुकर्जी ने यह इंगित किया कि यदि अध्यक्ष मामले को समिति को निर्दिष्ट करने के पूर्व प्रथमदृष्टया मामला होने के संबंध में संतुष्ट है तब समस्या आसानी से सुलझाई जा सकती है और प्रारंभिक प्रक्रम पर यह एक कानूनी प्रक्रिया बन जाती है बजाए एक प्रारंभिक प्रक्रिया के ।

श्री एम. सी. सीतलवाड ने इंडियन ज्यूरिस्ट्स कमीशन और इंस्टिट्यूट आफ कांस्टिट्यूशनल एण्ड पार्लियामेंटरी स्टडीज़ का प्रतिनिधित्व करते हुए यह सहमति व्यक्त की कि सरकार की प्रस्ताव लाने के मामले में कोई भूमिका नहीं होनी चाहिए और यह केवल संसद् के सदस्यों के लिए होनी चाहिए । उन्होंने इस पर सहमति व्यक्त की कि विधान यह उपबंध कर सकता है कि संसद् जांच करने के लिए एक निकाय नियुक्त कर सकती है । श्री सीतलवाड ने यह सुझाव दिया कि संसद् की नियम बनाने की समिति यह व्यवस्था कर सकती है कि उस प्रक्रम पर जबकि प्रस्ताव सदन में प्रारंभिक तौर पर लाया जाता है, कोई भाषण और चर्चा न की जाए । उनका यह मत था कि प्रारंभिक प्रक्रम पर न्यायाधीश के आचरण के संबंध में चर्चा किए जाने से बचना चाहिए । उनका यह भी मत था कि अनुच्छेद 124 का खण्ड (5) केवल एक समर्थकारी उपबंध था । उनका यह भी मत था कि सेवानिवृत्त न्यायाधीश अधिकरण का सदस्य नहीं होना चाहिए । तत्पश्चात्, संयुक्त समिति ने

तारीख 13 मई, 1966 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की (कुछ सदस्यों ने इससे विसम्मति प्रकट की) ।

संयुक्त समिति ने यह सिफारिश की कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुनिश्चित और बनाए रखने के लिए, कार्यपालिका को, अन्वेषण की प्रक्रिया के प्रत्येक प्रक्रम से अलग रखा जाना चाहिए और यह प्रारंभिक कार्य केवल संसद् के पास होना चाहिए । प्रस्ताव के ग्रहण किए जाने के पूर्व, अध्यक्ष या सभापति ऐसे व्यक्तियों से परामर्श कर सकेगा जो कि वह उचित समझे या अन्य सामग्री एकत्रित कर सकेगा और प्रस्ताव को या तो ग्रहण कर सकेगा या नामंजूर कर सकेगा । यदि वह प्रस्ताव को ग्रहण करता है, तो उसे प्रस्ताव लंबित रखना चाहिए और तीन सदस्यों से सम्मिलित एक समिति का गठन करना चाहिए, जिसमें एक सदस्य उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों में से चुना जाएगा, एक अन्य सदस्य उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों में से चुना जाएगा और अन्य सदस्य पारंगत विधिवेत्ताओं में से चुना जाएगा । समिति की रिपोर्ट अध्यक्ष या सभापति या दोनों को प्रस्तुत की जानी चाहिए जिससे कि दोनों सदनों के समक्ष रखी जा सके ।

संयुक्त समिति ने यह भी महसूस किया कि यदि अन्वेषक निकाय न्यायाधीश को माफ करता है तब प्रस्ताव पर कोई आगे कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए । तथापि, यदि रिपोर्ट न्यायाधीश के विरुद्ध है तब प्रस्ताव सदन में या सदनों में, जिसमें यह लंबित है, विचार किए जाने के लिए लिया जाना चाहिए । यदि प्रस्ताव प्रत्येक सदन द्वारा अनुच्छेद 124(4) सपठित अनुच्छेद 218 के अनुसार ग्रहण किया जाता है तब कदाचार या असमर्थता साबित हुई 'समझी' जानी चाहिए और तब प्रत्येक सदन द्वारा राष्ट्रपति को एक समावेदन प्रस्तुत किया जाना चाहिए । नियम बनाने का कार्य संसद् की संयुक्त समिति को दिया जाना चाहिए और न कि सरकार को ।

उक्त सुझावों के परिणामस्वरूप, 1964 के विधेयक में संशोधन किया गया था और अन्ततः न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 पारित किया गया था ।

अध्याय 6

न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी वाले मामले में भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित सांविधानिक सिद्धांत

(संविधान के अनुच्छेदों 121, 124, 125 और न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 के संबंध में)

इस अध्याय में हम न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 के विभिन्न उपबंधों के निर्वचन और उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के 'हटाए' जाने के संबंध में सांविधानिक सिद्धांतों पर चर्चा करेंगे ।

उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी को हटाए जाने के लिए प्रारंभ की गई जांच के संबंध में अनेकों निर्णयों में उच्चतम न्यायालय द्वारा अनेक सिद्धांत अधिकथित किए गए हैं । ये निर्णय चार हैं और निम्न हैं – (i) सब कमेटी आन जुडीशियल एकांउटेबिलिटी बनाम भारत संघ, 1991 (4) एस. सी. सी. 699; (ii) सरोजिनी रामास्वामी (श्रीमती) बनाम भारत संघ, 1992 (4) एस. सी. सी. 506; (iii) कृष्णास्वामी बनाम भारत संघ, 1992 (4) एस. सी. सी. 605; और (iv) लिली थामस बनाम अध्यक्ष, लोक सभा, 1995 (4) एस. सी. सी. 234.

न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी वाले मामले के संक्षिप्त तथ्य और निर्णय :

उपर्युक्त निर्णयों में अधिकथित सिद्धांतों को निर्दिष्ट करने के लिए अग्रसर होने के पूर्व हम उन तथ्यों की पृष्ठभूमि का वर्णन करना चाहेंगे जिनमें उपर्युक्त निर्णय उद्भूत हुए ।

न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किए गए थे और उनके विरुद्ध उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ के मुख्य न्यायाधीश के पद पर कार्य करते समय उनके द्वारा वित्तीय अनौचित्य और अन्य अनियमितताएं बरतने के कतिपय अभिकथन लगाए गए थे । जांच के चलते समय ही उनकी उच्चतम न्यायालय में प्रोन्नति हो गई थी । तत्समय के भारत के मुख्य न्यायाधीश, न्यायमूर्ति सब्यसाची मुखर्जी ने अभिकथनों की अवेक्षा की और न्यायमूर्ति रामास्वामी को यह सलाह दी कि वे अभिकथनों के साफ होने तक न्यायिक कार्यों से प्रविरत रहें । तारीख 18 जुलाई, 1990 को पत्र की प्राप्ति पर न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी ने प्रथम बार में तारीख 23 जुलाई, 1990 से छह सप्ताह के लिए छुट्टी का आवेदन किया। मुख्य न्यायाधीश ने कार्यालय को छुट्टी के उनके आवेदन पर कार्यवाही करने का निदेश दिया। ये तथ्य भारत के मुख्य न्यायाधीश के तारीख 20 जुलाई, 1990 को बार को जारी किए गए कथन में अंतर्विष्ट हैं ।

भारत के मुख्य न्यायाधीश ने तब उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों से सम्मिलित एक समिति नियुक्त की (जिसमें न्यायमूर्ति बी. सी. रे, न्यायमूर्ति के. जे. शेट्टी और न्यायमूर्ति एम. एन. वेंकटचलय्या थे) जिसकी अध्यक्षता न्यायमूर्ति बी. सी. रे द्वारा की गई और इस समिति से यह पता लगाने के लिए तथ्यों की जांच करने के लिए कहा गया कि क्या अभिकथनों में ऐसी कोई प्रथमदृष्टया सत्यता है जो न्यायाधीश से यह अपेक्षा करें कि वे न्यायिक कार्यों को न करें । उक्त समिति आरोपों की जांच करने वाली समिति नहीं थी, अपितु केवल एक प्रथमदृष्टया रीति में तथ्यों को अभिनिश्चित करने के लिए गठित की गई थी । कुछ जांच के पश्चात् इसने यह मत अभिव्यक्त किया कि नैतिक अधमता अंतर्वलित करने वाले अनुचित आचरण के आरोप साबित नहीं हुए थे । इसने तब इस पर विचार किया कि क्या एक नियमित जांच संस्थित किए जाने के पूर्व न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी से एक न्यायाधीश के रूप में कार्य करने से प्रविरत रहने को कहा जा सकता है । इसका यह मत था कि जब तक उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में उनकी नियुक्ति करने वाला

सांविधानिक वारंट प्रवृत्त है, उनसे अपने न्यायिक कार्यों को न करने के लिए नहीं कहा जा सकता है । निम्न कथन किया गया :

"परिणामस्वरूप, जब तक कि मामले समुचित स्तरों पर अंतिम रूप से परीक्षा नहीं किए जाते, यह अभिनिर्धारित करना कठिन है कि न्यायाधीश अपने पद के न्यायिक कर्तव्यों का निर्वहन करने से विरत रहे । तथापि, यदि समस्त सामग्री का सावधानी पूर्वक विश्लेषण करने पर समुचित प्राधिकारी ऐसे तथ्य पाते हैं जिनके आधार पर नैतिक अधमता के निष्कर्ष से न बचा जा सके और यदि भारत के मुख्य न्यायाधीश सहमत होते हैं कि वे मूल्यांकन सद्भावी हैं और युक्तियुक्त रूप से साबित किए गए तथ्य ऐसे निष्कर्षों को न्यायोचित ठहराते हैं या ग्रहण करते हैं, केवल तभी यह कहा जा सकता है कि न्यायाधीश के लिए अपने न्यायिक कर्तव्यों का निर्वहन करना उलझनपूर्ण होगा । तब तक वित्तीय प्रतिपूर्तियों के माध्यम से हमने जो कुछ इंगित किया है उसके अलावा कुछ भी कहना कदाचित अनुपयुक्त होगा, जिसका न्यायाधीश की नियुक्ति के सांविधानिक वारंट के विधिक परिणामों को प्रभावित करने का प्रभाव हो सकता है ।"

इस प्रकार न्यायमूर्ति बी. सी. रे समिति ने विचार किया कि उस प्रक्रम पर जबकि अभिकथनों में जांच भी न की गई हो, न्यायाधीश के नियुक्ति के वारंट के अनुसार कृत्य करने के अधिकार पर निषेध के लिए कोई न्यायोचित्य नहीं था ।

तत्पश्चात् तारीख 28 फरवरी, 1991 को लोक सभा के 108 सदस्यों ने नवीं लोक सभा के अध्यक्ष को विद्वान् न्यायाधीश को संविधान के अनुच्छेद 124(4) सपठित न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 के उपबंधों के अधीन हटाए जाने के लिए राष्ट्रपति को सम्बोधित एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया । तारीख 12 मार्च, 1991 को लोक सभा के अध्यक्ष ने अपनी सामान्य शक्तियों और इसी भांति उक्त अधिनियम की धारा 3 के अधीन अपनी शक्तियों के तात्पर्यित प्रयोग में प्रस्ताव ग्रहण किया और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पी. बी. सावंत, मुम्बई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश पी. डी. देसाई और न्यायमूर्ति ओ. चिन्नप्पा रेड्डी एक न्यायविद जो उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश भी थे, की तीन सदस्यों की समिति का गठन किया जिसे उन आधारों का अन्वेषण करना था जिनके आधार पर न्यायाधीश को हटाए जाने की प्रार्थना की गई थी । इस प्रकार

यह समिति 1968 के अधिनियम की धारा 3 के अधीन गठन की गई थी ।

प्रस्ताव ग्रहण करने और उपर्युक्त समिति का गठन करने के अध्यक्ष के विनिश्चय के तुरन्त पश्चात् नवीं लोक सभा की कालावधि इसके विघटन पर अपनी अवधि के पूर्व ही समाप्त हो गई थी। उच्चतम न्यायालय ने तारीख 29 अक्तूबर, 1991 के अपने निर्णय द्वारा घोषित किया कि प्रस्ताव और इसी भांति अध्यक्ष का विनिश्चय व्यपगत नहीं हुए हैं और समिति जांच कर सकती है । (देखिए सब कमेटी आन जुडीशियल एकांउटेबिलिटी बनाम भारत संघ, 1991 (4) एस. सी. सी. 699 वाला मामला) । हम निर्णय में विनिश्चय किए गए विभिन्न सांविधानिक मुद्दों को पृथक् रूप से निर्दिष्ट करेंगे ।

उक्त निर्णय के पश्चात् समिति ने जांच प्रारंभ की और अभिकथनों के आधार पर 14 आरोप विरचित किए । न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी ने नोटिस दिए जाने के बावजूद जांच में भाग नहीं लिया था । समिति ने साक्ष्य लिया और तारीख 20 जुलाई, 1992 को 14 आरोपों के संबंध में एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार की । उन्होंने आरोप सं. 1, 2, 3, 4, 7, 8, 9, 11, 13 और 14 को साबित हुआ अभिनिर्धारित किया, आरोप सं. 5 साबित नहीं हुआ था (आरोप सं. 7 के निष्कर्ष के अध्यधीन), आरोप सं. 6 और 10 भी साबिति नहीं हुए थे । उसने यह अभिनिर्धारित किया कि आरोप सं. 12 आंशिक रूप से साबित हुआ था ।

उक्त प्रक्रम पर, न्यायमूर्ति रामास्वामी की पत्नी श्रीमती सरोजिनी रामास्वामी ने 1992 की रिट याचिका सं. 514 यह निदेश दिए जाने की प्रार्थना करते हुए फाइल की कि समिति लोक सभा के अध्यक्ष को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने के पूर्व न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी को रिपोर्ट की एक प्रति प्रस्तुत करे जिससे कि न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी न्यायालय के समक्ष न्यायिक पुनर्विलोकन कार्यवाहियों में समिति के निष्कर्षों को चुनौती दे सकें । उच्चतम न्यायालय ने एक अन्य विस्तृत निर्णय द्वारा रिट याचिका को तारीख 27 अक्तूबर, 1992 को खारिज कर दिया । (देखिए सरोजिनी रामास्वामी बनाम भारत संघ, 1992(4) एस. सी. सी. 506 वाला मामला) । उच्चतम न्यायालय द्वारा इस निर्णय में पुनः अनेक महत्वपूर्ण सांविधानिक सिद्धांत अधिकथित किए गए थे जिन्हें हम विस्तार में निर्दिष्ट करेंगे ।

तत्पश्चात्, श्री कृष्णास्वामी जो संसद् सदस्य थे, ने 1992 की रिट याचिका सं. 149 फाइल

की जिसमें उन्होंने सब कमेटी आन जुडीशियल एकाउंटेबिलिटी बनाम भारत संघ, 1991 (4) एस. सी.सी. 699 वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के पूर्वतर निर्णय के पुनर्विलोकन की ईप्सा की थी । एक अन्य व्यक्ति श्री राज कंवर ने यह दलील देते हुए 1992 की रिट याचिका सं. 140 फाइल की कि प्रस्ताव का नोटिस और अध्यक्ष द्वारा इसका ग्रहण किया जाना असांविधानिक थे । ये दोनों रिट याचिकाएं उच्चतम न्यायालय द्वारा कृष्णास्वामी बनाम भारत संघ, 1992 (4) एस. सी. सी. 605 वाले मामले में तारीख 27 अक्तूबर, 1992 को दिए गए इसके तीसरे निर्णय में खारिज की गई थीं ।

संसद् में समिति की रिपोर्ट रखे जाने के पश्चात् न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी को रिपोर्ट की एक प्रति दी गई थी और उन्होंने वस्तुतः संसद् के समक्ष एक लिखित ज्ञापन फाइल किया । संसद् में श्री कपिल सिब्बल, वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उनका प्रतिनिधित्व किया गया था । अनेक सदस्यों के प्रविरत होने के कारण हटाए जाने के लिए प्रस्ताव अन्ततः सफल नहीं हुआ था ।

तत्पश्चात्, सुश्री लिली थामस ने यह कथन करते हुए एक रिट याचिका फाइल की कि संसद् के वे सदस्य जो मतगणना से प्रविरत रहे थे, उनके संबंध में यह समझा जाना चाहिए कि उन्होंने समिति के निष्कर्षों को स्वीकार किया था । यह रिट याचिका खारिज की गई थी ।

ये चार निर्णय संविधान के अनुच्छेद 121, 124, 125 के निर्वचन और न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 के संबंध में अनेक महत्वपूर्ण सिद्धांत अधिकथित करते हैं, जो वर्तमान न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 2005 के उपबंधों का विश्लेषण करने के लिए नितांत सुसंगत हैं । ये सिद्धांत इस अध्याय में विस्तृत रूप से निर्दिष्ट किए जाएंगे ।

उपर्युक्त निर्णयों में चर्चा करने के पूर्व हम अध्यक्ष द्वारा नियुक्त की गई न्यायमूर्ति पी. बी. सावंत समिति की रिपोर्ट में उद्भूत हुए बिन्दुओं को निर्दिष्ट करेंगे ।

सावंत समिति रिपोर्ट (20 जुलाई,1992) :

हम पहले ही यह कथन कर चुके हैं कि प्रस्ताव ग्रहण करने के पश्चात् लोक सभा के माननीय अध्यक्ष ने अधिनियम की धारा 3 के अधीन न्यायमूर्ति सावंत समिति नियुक्त की थी ।

उपर्युक्त समिति ने यह कथन किया था कि उच्च न्यायालय अधिनियम, 1861 की धारा 4 के अधीन और गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट, 1915 की धारा 102 के अधीन भारत में उच्च न्यायालयों

के न्यायाधीश हर या हिज मेजेस्टी के 'प्रसाद पर्यन्त' पद धारण करते थे । तथापि, गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट, 1935 की धारा 220(2) के परन्तुक (ख) के अधीन यह उपबंध किया गया था कि न्यायाधीश को उसके पद से नहीं हटाया जा सकता जब तक कि प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति हर या हिज मेजेस्टी द्वारा निर्देश किए जाने पर यह सिफारिश नहीं करती कि न्यायाधीश को कदाचार या चित्त या शरीर की शैथिल्यता के आधार पर हटा दिया जाए ।

भारत के संविधान के उपबंधों के अधीन उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए 60 वर्ष (जिसे बाद में संशोधन कर 62 वर्ष कर दिया गया) और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के लिए 65 वर्ष की पदावधि का उपबंध करते हुए अनुच्छेद 124(2) के द्वितीय परन्तुक के खण्ड (ख) में यह कथन किया गया था कि सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश को अनुच्छेद 124 के खण्ड (4) में उपबंधित रीति से उसके पद से हटाया जा सकेगा । अनुच्छेद 124 का खण्ड (4) यह कथन करता है कि उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को उसके पद से तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक "साबित कदाचार या असमर्थता" के आधार पर ऐसे हटाए जाने के लिए संसद् के प्रत्येक सदन द्वारा अपनी कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत द्वारा समर्थित समावेदन पारित होने के पश्चात् राष्ट्रपति के समक्ष उसी सत्र में रखे जाने पर राष्ट्रपति द्वारा आदेश नहीं किया जाता । अनुच्छेद 124 का उपखण्ड (5) यह उपबंध करता है कि संसद् खण्ड(4) के अधीन किसी समावेदन के रखे जाने की तथा न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता के अन्वेषण और साबित करने की प्रक्रिया का विधि द्वारा विनियमन कर सकेगी । अनुच्छेद 217 यह उपबंध करता है कि उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के मामले में वे अनुच्छेद 124 के खण्ड (4) में उपबंधित रीति से, उनके पदों से राष्ट्रपति द्वारा हटाए जा सकेंगे ।

समिति ने तब न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 और न्यायाधीश (जांच) नियम, 1969 के उपबंधों को निर्दिष्ट किया और इंगित किया कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, संविधान और विधियों के अधीन व्यापक शक्तियों का प्रयोग करते हैं और शक्तियों की अत्यन्त व्यापकता और उन्हें प्रदान की गई उन्मुक्ति, यह अपेक्षा करते हैं कि न्यायाधीश भयहीन और स्वतंत्र हों, किन्तु उन्हें एक उच्च स्तर की साधुता (ईमानदारी) को अपनाना चाहिए जिससे कि जनता में विश्वास उत्पन्न हो सके जो कि न्यायालय से प्रतितोष की ईप्सा करते हैं और करना

चाहेंगे । जबकि न्यायाधीशों की मिथ्या और दुर्भावनापूर्ण आघातों से संरक्षा करना आवश्यक है, इसके साथ-साथ न्यायपालिका की अच्छी छवि की भी उन न्यायाधीशों से संरक्षा करना आवश्यक है जो स्वयं ऐसी रीति में कार्य करते हैं जिससे कि उक्त छवि कलंकित होती हो ।

समिति ने तब अनुच्छेद 124(4) में प्रयुक्त शब्द "कदाचार" को निर्दिष्ट किया और आनुषंगिक रूप से शब्द "अवचार" के अर्थ को निर्दिष्ट किया जो कि समिति के अनुसार एक प्रबल शब्द प्रतीत होता है किन्तु शब्द "कदाचार" के मुकाबले संकुचित है । इसने तब संविधान में प्रयुक्त शब्द " साबित कदाचार" के अर्थ पर विचार किया और यह कथन किया कि ये शब्द कदाचित आस्ट्रेलिया के संविधान की धारा 72(ii) से लिए गए हैं । उन्होंने डा. ग्रिफिथ, महासालिसिटर और श्री सी. डब्ल्यू. ग्यूपिनकस क्यू सी, के मतों को भी निर्दिष्ट किया जो कि न्यायमूर्ति मरफी के अभिकथित कदाचार के मामले में आस्ट्रेलिया में सीनेट के समक्ष रखे गए थे । समिति ने तब ब्रिस्ले ब्राउन द्वारा लिखित एक लेख (जिल्द 26 हावर्ड ला रिव्यू, पृष्ठ 684) को इस संबंध में निर्दिष्ट किया कि कौनसा आचरण संयुक्त राज्य अमेरिका में फेडरल न्यायपालिका के एक न्यायाधीश के महाभियोग की अपेक्षा करेगा । समिति ने संयुक्त राज्य अमेरिका के जज स्टीवर्ड एफ. ला मोट्टे जूनियर (एफ एल ए) 341 सदर्न रिपोर्टर (सैकेण्ड सीरीज़ 513), जज हैरी ई. क्लाईबोर्ने (रिपोर्ट 99 - 688, 99वीं कांग्रेस सैकेण्ड सेशन) वाले मामलों को निर्दिष्ट किया और जज वाल्टर एल. निक्सन जूनियर (101 - 36 या 101वीं कांग्रेस फर्स्ट सेशन), जज एलसी एल. हैस्टिंग्स (रिपोर्ट 100-810, 110वीं कांग्रेस सैकेण्ड सेशन) और जज रिचर्ड ए. नेपोलिटानो (317 एफ. सप्ली. 79(1970)) वाले मामलों को भी निर्दिष्ट किया और अन्त में स्टीफन चांडलर बनाम जुडीशियल कौंसिल आफ टैन्थ सर्किट आफ दि यू एस. (398 यू. एस. 74) वाले मामले को भी निर्दिष्ट किया ।

समिति द्वारा अधिकथित महत्वपूर्ण प्रतिपादनाओं में से एक, महाभियोग कार्यवाहियों में अपेक्षित "सबूत के स्तर" से संबंधित है । समिति ने सुप्रीम कोर्ट फ्लोरिडा के मुख्य न्यायाधीश बेन एफ. ओवरटन के शिकागो-कैंट ला रिव्यू में दिए गए एक लेख को निर्दिष्ट किया । संयुक्त राज्य अमेरिका में सबूत का स्तर अधिसंभाव्यता की प्रबलता से अधिक था अर्थात् अपेक्षित स्तर "स्पष्ट और विश्वसनीय साक्ष्य" था और यह "कदाचार" के मामले में अपेक्षित स्तर था जो कि एक अधिक्षेपनीय अपराध माना गया था । समिति ने यह महसूस किया कि हमारे देश में स्तर "युक्तियुक्त संदेह से परे

सबूत" होना चाहिए । इसने निम्न कथन किया :

"हमारे विचार में स्पष्ट और विश्वसनीय साक्ष्य की संकल्पना यद्यपि सुखद हो सकती है, यह अनावश्यक कृत्रिमता और परिष्करण अन्तःस्थापित करती है । महाभियोग कार्यवाही कठोर भाव में स्यूई जेनेरिस है, जो प्रकृति में न तो दीवानी है और न ही दांडिक प्रकृति की है । उच्चतम न्यायालय या एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के विरुद्ध आरोप की घोरता, महाभियोग कार्यवाहियों का अनूठापन और वर्जनकारी परिणाम यदि आरोप साबित हुए अभिनिर्धारित किए जाते हैं, उच्च श्रेणी के सबूत पर जोर देना व्यावहारिक, संरक्षित और आवश्यक बनाते हैं । हमारे मत में सबूत का उक्त स्तर बिना किसी और परिष्करण के युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत है ।"

उन्होंने इसके अतिरिक्त निम्नलिखित और जोड़ा :

"संविधान, न्यायाधीश (जांच) अधिनियम और न्यायाधीश (जांच) नियम हमें एक संकेत देते हैं जो कितना भी सूक्ष्म हो, कि अधिनियम के अधीन जांच, दांडिक सदृश कार्यवाहियों की प्रकृति की होनी विचार की गई है । शब्द "अन्वेषण" प्रायिक रूप से दांडिक मामलों से सहयुक्त है और संविधान के अनुच्छेद 124(4) और न्यायाधीश (जांच) अधिनियम दोनों में ही प्रयुक्त किया गया है । अधिनियम की धारा 3(3) द्वारा समिति से यह अपेक्षित है कि वह उसके आधार पर जिसके आधार पर अन्वेषण किया जाना प्रस्थापित है, न्यायाधीश के विरुद्ध निश्चित 'आरोप' विरचित करे । धारा 6 शब्द 'दोषी' और 'दोषी नहीं' को प्रयुक्त करती है । न्यायाधीश (जांच) का नियम 7 'न्यायाधीश के अभिवाक्' के संबंध में उल्लेख करता है और पुनः शब्दों 'दोषी' और 'दोषी नहीं' को प्रयुक्त करता है । हमारे मत में शब्द 'अन्वेषण', 'आरोप', 'अभिवाक्', 'दोषी', 'दोषी नहीं' जो सभी साधारणतया दांडिक कार्यवाहियों से सहयुक्त हैं, का प्रयोग हमें कार्यवाहियों के दांडिक सदृश प्रकृति के होने के संबंध में सूचित करते हैं ।"

"वस्तुतः, पूर्व में 1870 में प्रिवी कौंसिल ने औपनिवेशिक न्यायाधीशों के हटाए जाने का एक ज्ञापन जारी किया था जिसमें इसने हटाए जाने के लिए कार्यवाही को दांडिक सदृश वर्णित किया था ।"

अन्ततः, समिति ने अनुच्छेद 124(4) के अधीन जांच के लिए लागू होने वाली निम्नलिखित प्रतिपादनाओं को अधिकथित किया :

"(1) शब्द 'कदाचार' जो अनुच्छेद 124(4) और (5) और संविधान के अन्य सुसंगत उपबंधों के संदर्भ में उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को लागू है, से न्यायाधीश का ऐसा आचरण या आचरण का अनुक्रम अभिप्रेत है जो न्यायपालिका की प्रतिष्ठा के प्रति अपकीर्तिकर या बदनामी करता है और जिसके कारण जनता का न्यायपालिका में विश्वास और भरोसा खंडित हो जाता है । यह आपराधिक कृत्यों या विधि द्वारा प्रतिषिद्ध कृत्यों तक ही सीमित नहीं है । यह विधि के प्रतिकूल कृत्यों तक भी सीमित नहीं है । यह न्यायिक कार्यालय से जुड़े कृत्यों तक सीमित नहीं है । यह न्यायाधीश की सभी गतिविधियों पर विस्तारित है जो चाहे सार्वजनिक हों या प्राईवेट ।

(2) कृत्य या लोप जानबूझकर किया गया होना चाहिए । जानबूझकर का घटक सदोष, बिना सोचे विचारे, उपेक्षापूर्ण, नियमों या स्थापित आचार संहिता के प्रति असम्मान से दर्शित हो सकेगा । यद्यपि एक एकल कृत्य जानबूझकर न हो, कृत्यों की श्रृंखला जानबूझकर कृत्य किए जाने के निष्कर्ष को परिणाम कर सकते हैं ।

(3) धनीय पुरस्कार किसी कृत्य या लोप को 'कदाचार' से कम नहीं होगा यदि व्यक्ति साशय गंभीर और घोर अपराध कारित करता है जो कि स्पष्ट रूप से अपरिशोधनीय प्रकृति के हों और पता लग जाने पर पुरस्कार प्रदान किया गया हो ।

(4) 'कदाचार' आचरण तक ही सीमित नहीं है चूंकि न्यायाधीश वर्तमान न्यायिक कार्यालय का प्रभार धारण करता है । यह पूर्व न्यायिक पदों के धारण किए जाने के समय कृत्यों या लोपों पर भी विस्तारित होता है, यदि ऐसे कृत्य या लोप उसे वर्तमान न्यायिक पदभार धारण करने के अयोग्य बनाते हैं ।

(5) युक्ति संदेह के परे सबूत है और न कि अधिसंभाव्यता का संतुलन ।

(6) 'कदाचार' न्यायाधीश (जांच) अधिनियम के अधीन गठित जांच समिति द्वारा साबित हुआ अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए ।

(7) न्यायाधीश जिसके विरुद्ध एक जांच की जा रही है, इस सांविधानिक आबद्धता के अधीन है कि वह जांच प्राधिकारी के साथ सहयोग करे और जांच में बाधा डालने के लिए छोटी-मोटी आपत्तियां न उठाए जिस दशा में उसके विरुद्ध विधिसम्मत रूप से एक प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जा सकेगा ।'

इस प्रकार सावंत समिति की रिपोर्ट पर की गई उपर्युक्त चर्चा से न्यायिक स्वतंत्रता की महत्ता, इसकी व्यापकता पर पर्याप्त रोशनी पड़ती है और इसलिए उनका उत्तरदायी होना आवश्यक है और क्या बातें 'कदाचार' गठित करती हैं और प्रकृति में दांडिक सदृश कार्यवाहियों में अपेक्षित 'सबूत का स्तर' क्या हो और सबूत 'युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत' होना चाहिए, इन सभी पर पर्याप्त रोशनी डाली गई है ।

(क) प्रथम निर्णय : सब कमेटी आन जुडीशियल एकांउटेबिलिटी बनाम भारत संघ, 1991 (4) एस. सी. सी. 699 : लोकसभा के विघटन का प्रभाव :

प्रथम निर्णय तारीख 29 अक्तूबर, 1991 को न्यायमूर्ति बी. सी.रे, न्यायमूर्ति एल. एम. शर्मा, न्यायमूर्ति एम. एन. वेंकटचलय्या, न्यायमूर्ति जे. एस. वर्मा और न्यायमूर्ति एस. सी. अग्रवाल द्वारा गठित संविधान न्यायपीठ द्वारा दिया गया था । हम पहले ही यह उल्लेख कर चुके हैं कि सब कमेटी आन जुडीशियल एकांउटेबिलिटी द्वारा फाइल किए गए इस मामले में मुख्य विवाद्यक यह था कि क्या नवीं लोक सभा के विघटन पर, उक्त लोक सभा में संसद् के 108 सदस्यों द्वारा प्रस्तुत किया गया प्रस्ताव और प्रस्ताव का ग्रहण किया जाना व्यपगत हो गए थे ।

न्यायमूर्ति बी. सी. रे ने उच्चतम न्यायालय की ओर से मत व्यक्त करते हुए निम्नलिखित व्यापक सिद्धांत अधिकथित किए । उन्होंने यह कथन किया कि संसदीय कार्यवाहियां केवल उसके पश्चात् ही प्रारंभ होती हैं जब प्रस्ताव के अनुसरण में अध्यक्ष द्वारा नियुक्त की गई समिति द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है, और यह कि प्रस्ताव ग्रहण किए जाने के पूर्वतर कृत्य समिति को निर्देश करने और समिति के समक्ष कार्यवाहियां, संसदीय कार्यवाही का भाग नहीं थी और इसलिए वे व्यपगत नहीं होंगे । उच्चतम न्यायालय ने यह भी उल्लेख किया कि 1968 के अधिनियम की धारा

3 में प्रयुक्त प्रस्ताव के ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर शब्द 'प्रस्ताव' के प्रयोग से संसदीय प्रक्रिया के भीतर नियमित प्रस्ताव से भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए और रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने के पूर्व प्रारंभिक प्रक्रम पर एक प्रस्ताव से केवल "एक परिवाद या एक अभिकथन" अभिप्रेत है । न्यायालय ने यह कथन किया कि 1968 का अधिनियम और तदधीन विरचित किए गए नियम संविधान के अनुच्छेद 118 के अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों को अधिक्रांत करते हैं और पश्चात्कथित अनुच्छेद संसद् के प्रत्येक सदन द्वारा विरचित प्रक्रिया के नियमों पर चर्चा करता है ।

उपर्युक्त उच्चतम न्यायालय द्वारा निकाले गए विस्तृत निष्कर्ष हैं । अब हम इस मामले में सुसंगत चर्चा को निर्दिष्ट करेंगे ।

उपर्युक्त निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने इस तथ्य को निर्दिष्ट किया (देखिए पैरा 16) की विधिसम्मत शासन संविधान का एक आधारभूत पहलू था, और न्यायपालिका की स्वतंत्रता विधिसम्मत शासन का एक आवश्यक घटक है । अनुच्छेद 124(2) और अनुच्छेद 217(1) उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में भारत के मुख्य न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श किया जाना अपेक्षित करते हैं । ये उपबंध न्यायाधीश के सेवाकाल की निश्चितता भी सुनिश्चित करते हैं । संविधान न्यायाधीशों के वेतन की भी संरक्षा करता है । अनुच्छेद 121 यह उपबंध करता है कि उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के, अपने कर्तव्यों के निर्वहन में किए गए आचरण के विषय में संसद् में कोई चर्चा इसमें इसके पश्चात् उपबंधित रीति से उस न्यायाधीश को हटाने की प्रार्थना करने वाले समावेदन को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करने के प्रस्ताव पर ही होगी, अन्यथा नहीं । अनुच्छेद 124(4) और अनुच्छेद 124(5) सेवाकाल के समयपूर्व अवधारण के विरुद्ध संरक्षा प्रदान करता है । अनुच्छेद 124(4) के अनुसार उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश 'साबित कदाचार या असमर्थता' के आधार के सिवाए उसके पद से नहीं हटाया जाएगा । इन सभी उपबंधों का सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन किया जाना चाहिए । इस प्रकार अर्थान्वयन करते हुए अन्य राष्ट्रों में न्यायाधीश के हटाए जाने के लिए विधि और प्रक्रिया तुलनात्मक दृष्टि में पृष्ठभूमि और स्थिति का उपबंध कर सकते हैं, किन्तु इसका निदान हमारी सांविधानिक स्कीम के भीतर ही पाया जाना चाहिए । निस्संदेह सांविधानिक स्कीम को समझने के लिए और निर्वचन के लिए एक उचित परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए एक तुलनात्मक

दृष्टिकोण अच्छा है । उच्चतम न्यायालय ने तब ब्रिटेन और कनाडा और आस्ट्रेलिया में प्रचलित प्रक्रिया को निर्दिष्ट किया । इसने ओन्टारियो के सुप्रीम कोर्ट के न्यायमूर्ति लियो लैंडरेविल्ली, आस्ट्रेलिया में न्यायमूर्ति मरफी के विरुद्ध और क्वींसलैंड के सुप्रीम कोर्ट के न्यायमूर्ति वास्ता के विरुद्ध जांच के मामले को निर्दिष्ट किया । न्यायालय ने साउथ आस्ट्रेलिया के सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति एल. जे. किंग के मतों को निर्दिष्ट किया (जो "मिनिमम स्टैंडर्डस आफ जुडीशियल इंडिपेंडेंस" ,1984 (58) ए. एल. जे. 340) में व्यक्त किए गए थे जो इस प्रभाव के थे कि संसद् द्वारा सम्बोधन के पश्चात् हटाया जाना अत्यन्त ही विरल था क्योंकि अधिकतर मामलों में संबंधित न्यायाधीश त्यागपत्र दे देंगे । इसके अतिरिक्त, क्योंकि न्यायिक आचरण के स्तर जो कि सामान्यतया तय किए गए हैं अत्यन्त हीं उच्च स्तर के हैं, इसलिए विधायिका द्वारा हटाया जाना अत्यन्त ही विरल था । उच्चतम न्यायालय ने न्यू साउथ वेल्स के सुप्रीम कोर्ट के न्यायमूर्ति एम. एच. मैकलेलैंड के एक लेख को भी निर्दिष्ट किया ('डिसिप्लिनिंग आस्ट्रेलियन जजिस' 1990 (64) ए. एल. जे. 388) जिसमें यह सुझाव दिया गया था कि ऐसा विधान होना चाहिए जो अधिकरण के समक्ष प्रक्रिया अधिकथित करे, और गठित किया गया अधिकरण उच्च न्यायालय की पर्यवेक्षणीय अधिकारिता के अधीन होना चाहिए और अधिकरण से अपील उच्च न्यायालय के समक्ष होनी चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने यह भी इंगित किया कि आस्ट्रेलिया में सुधारों के संबंध में सुझाव देने के लिए एक संविधान आयोग का गठन किया गया था और उक्त आयोग ने यह अवधारण करने के लिए एक राष्ट्रीय न्यायिक अधिकरण की स्थापना करने का सुझाव दिया था जो यह अवधारण करेगा कि अधिकरण द्वारा पाए गए कौन से कृत्य 'कदाचार या असमर्थित' गठित करेंगे जिनमें पद से हटाया जाना आवश्यक होगा । (देखिए "फ्राम दि अदर साइड आफ दि बार टेबल : एन एडवोकेट्स व्यू आफ दि जुडिशियरी", 1987 10 यूनिवर्सिटी आफ न्यू साउथ वेल्स ला जर्नल 179) ।

न्यायमूर्ति बी. सी. रे ने इसके पश्चात् संघीय प्रणाली में "देशद्रोह, रिश्वतखोरी या उच्च अपराधों के लिए दोषसिद्धि" के आधार पर महाभियोग के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका में पद से हटाए जाने की प्रक्रिया को निर्दिष्ट किया । संयुक्त राज्य अमेरिका में बहुसंख्य राज्यों में भी न्यायाधीशों के हटाए जाने के लिए समरूप उपबंध हैं । कुछ राज्यों में, गवर्नर द्वारा विधायिकाओं के दोनों सदनों को सम्बोधन द्वारा या विधायिकाओं के एक संयुक्त संकल्प द्वारा हटाए जाने के लिए

उपबंध बनाया गया था । कुछ राज्यों में हटाए जाने की प्रकृति राज्य के सुप्रीम कोर्ट में निहित की गई थी जबकि कुछ राज्यों में हटाए जाने के लिए आरोपों की सुनवाई के लिए विशेष न्यायालयों की व्यवस्था की गई थी । न्यूयार्क राज्य में, न्यायालय "कोर्ट आन दि जुडिशियरी" के रूप में जाना जाता था (देखिए हेनरी जे. अब्राहम, दि जुडीशियल प्रोसेस, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 45) । 1932 में एक संघीय विधि पारित की गई थी (यू. एस. कोड के टाइटिल 28 में सम्मिलित की गई है) और उक्त विधि 1939 में एक अन्य अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित की गई थी जिसमें जुडीशियल काउंसिल्स के लिए उपबंध किया गया था । उक्त विधि जुडीशियल काउंसिल्स रिफार्म एण्ड जुडीशियल कंडक्ट एण्ड डिसएबिलिटी ऐक्ट, 1980 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था । इस अधिनियम में जुडीशियल कांउंसेल्स को न्यायिक आचरण के विरुद्ध परिवादों को प्राप्त करने के लिए सशक्त किया गया था जो कि " न्यायालयों के व्यवस्था के प्रभावी और द्रुत प्रशासन के हित के प्रतिकूल था,या यह अभिकथन करना कि ऐसा न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट मानसिक या शारीरिक निःशक्तता के कारण पद के सभी कर्तव्यों का निर्वहन करने में असमर्थ है ।" उक्त अधिनियम संयुक्त राज्य अमेरिका की संबंधित जुडीशियल काउंसेलों और जुडीशियल कांफ्रेंस की प्रशासन प्रणाली के भीतर ऐसे परिवादों पर कार्यवाही करने के लिए विस्तृत एक न्यायिक प्रक्रिया विहित करता है । जहां तक राज्यों का संबंध था, 50 राज्यों के अपने न्यायाधीशों को अनुशासित करने के लिए विधियां थीं और प्रत्येक में एक विभिन्न प्रकार का गठित आयोग एकल पंक्ति में या अनेक पंक्तियों में गठित किया गया था जो निर्णय और संस्तुति कार्यों से पृथक् तथ्य पता लगाने की वांछनीयता पर आधारित था । कमीशन की सिफारिशें (संस्तुतियां) स्टेट सुप्रीम कोर्ट को इसकी प्रभावशाली मद्रण अनुमति के लिए भेजी जाएंगी सिवाए उन राज्यों के जहां वे विधायिकाओं द्वारा प्राप्त की जानी थी जिनके पास न्यायिक पद से हटाने की शक्ति बनी हुई थी । (देखिए राबर्ट जे. जेनौसिक, इनसाइक्लोपीडिया आफ दि अमेरिकन जुडीशियल सिस्टम, जिल्द II , पृष्ठ 575-78) ।

न्यायमूर्ति बी. सी. रे ने तब इंटरनेशनल बार एसोसिएशन की अक्तूबर 1982 को नई दिल्ली में आयोजित इसके उन्नीसवीं द्वैवार्षिक सम्मेलन में पारित किए गए मिनिमम स्टैंडर्ड्स आफ जुडीशियल इंडिपेंडेंस में अंतर्विष्ट "जुडीशियल रिमूवल एण्ड डिसिप्लिन" के संबंध में निदेशों को निर्दिष्ट किया (पैरा 27 से 32) जो निम्नलिखित प्रभाव के थे :

"27. न्यायाधीशों के अनुशासन और उनके हटाए जाने के लिए कार्यवाहियों में न्यायाधीशों के प्रति ऋजुता सुनिश्चित की जानी चाहिए और सुनवाई के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाना चाहिए ।

28. अनुशासन के लिए कार्यवाहियां बंद कमरे में की जानी चाहिए । तथापि, न्यायाधीश यह प्रार्थना कर सकते हैं कि सुनवाई सार्वजनिक रूप से की जाए जो अनुशासनिक अधिकरण द्वारा इस प्रार्थना के अंतिम रूप से और तर्कपूर्ण निपटारे के अध्यधीन होगी । अनुशासनिक कार्यवाहियों में निर्णय चाहे बंद कमरे में दिए जाएं या सार्वजनिक रूप से, यह प्रकाशित किए जा सकेंगें ।

29. (क) न्यायाधीशों के हटाए जाने के लिए आधार विधि द्वारा निश्चित होना चाहिए और स्पष्ट रूप से परिभाषित होना चाहिए ।

(ख) समस्त अनुशासनिक कार्यवाही विधि द्वारा प्रस्थापित या न्यायालय के स्थापित नियमों में प्रख्यापित न्यायिक आचरण के स्तरों पर आधारित होनी चाहिए ।

30. न्यायाधीश पद से हटाए जाने के अध्यधीन नहीं होगा जब तक कि किसी आपराधिक कृत्य के कारण या घोर या बारंबार उपेक्षा या शारीरिक या मानसिक असमर्थता के कारण उसने स्वतः ही स्वयं को न्यायाधीश का पद धारण करने के लिए अयोग्य न दर्शा दिया हो ।

31. उन प्रणालियों में जहां न्यायाधीश के अनुशासन और उनके हटाए जाने की शक्ति विधायिका से भिन्न एक संस्था में निहित की गई है वहां न्यायाधीशों के अनुशासन और हटाए जाने के लिए अधिकरण स्थायी होगा और वह मुख्य रूप से न्यायपालिका के सदस्यों से गठित होगा ।

32. न्यायालय के अध्यक्ष को विधिसम्मत रूप से प्रशासनिक मामलों में न्यायाधीशों को नियंत्रण करने की पर्यवेक्षणीय शक्तियां प्राप्त होंगी ।"

(रेखांकित पंक्तियों पर बल दिया गया है)

न्यायमूर्ति बी. सी. रे ने तब तारीख 10 जून, 1983 को मांट्रियल में आयोजित "फर्स्ट वर्ल्ड कान्फ्रेंस आन दि इंडिपेंडेंस आफ जजिस" और "यूनिवर्सल डेक्लेरेशन आन दि इंडिपेंडेंस आफ

जस्टिस" के निम्नलिखित खंडों को निर्दिष्ट किया जो "डिस्सिप्लिन एण्ड रिमूवल आफ नेशनल जजिस" से संबंधित हैं :

"2.32 न्यायाधीश के विरुद्ध एक परिवाद पर तत्परता से और ऋजुतापूर्वक एक उचित पद्धति के अधीन कार्यवाही की जाएगी और न्यायाधीश को प्रारंभिक प्रक्रम पर परिवाद के संबंध में टिप्पणी करने का अवसर दिया जाएगा । परिवाद की इसके प्रारंभिक प्रक्रम पर परीक्षा गोपनीय रखी जाएगी जब तक कि न्यायाधीश द्वारा अन्यथा प्रार्थना न की जाए ।

2.33(क) न्यायिक तौर पर हटाए जाने या अनुशासन के लिए कार्यवाहियां जब प्रारंभ की जाती हैं, एक न्यायालय के समक्ष की जाएंगी या एक बोर्ड के समक्ष की जाएंगी जो मुख्य रूप से न्यायपालिका के सदस्यों, जो न्याय पालिका द्वारा चयन किए जाएंगे, से गठित होगी ।

(ख) तथापि, महाभियोग द्वारा या संयुक्त सम्बोधन द्वारा हटाए जाने की शक्ति विधायिका में निहित होगी जो मुख्य रूप से न्यायालय या निकाय जो 2.33(क) में निर्दिष्ट किए गए हैं, की सिफारिश पर किया जाएगा.....।

2.34 समस्त अनुशासनिक कार्यवाही न्यायिक आचरण के स्थापित स्तरों पर आधारित होनी चाहिए ।

2.35 न्यायाधीशों के अनुशासन के लिए कार्यवाहियां न्यायाधीश के प्रति ऋजुता और पूर्ण सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाना सुनिश्चित करेंगे ।

2.36 विधायिका के समक्ष कार्यवाहियों के अपवाद के साथ अनुशासन और हटाए जाने के लिए कार्यवाहियां बंद कमरे में की जाएंगी । तथापि, न्यायाधीश यह प्रार्थना कर सकेंगे कि सुनवाई सार्वजनिक रूप से की जाए जो अनुशासनिक अधिकरण द्वारा उनकी इस प्रार्थना के अंतिम और तर्कपूर्ण रूप से निपटारे के अध्यधीन होगी । अनुशासनिक कार्यवाहियों में निर्णय चाहे बंद कमरे में दिए गए हों या सार्वजनिक रूप से, प्रकाशित किए जा सकेंगे ।

2.37 विधायिका के समक्ष कार्यवाहियों के अपवाद स्वरूप या उनके संबंध में अनुशासनिक अधिकरण का विनिश्चय न्यायालय में अपील किए जाने के अध्यधीन होगा ।

2.38 न्यायाधीश असमर्थता या कदाचार के साबित आधारों जो उसे पद पर बने रहने के लिए

अयोग्य बनाते हों, के सिवाए हटाए जाने के अध्यधीन नहीं होगा ।

2.39 उस स्थिति में जब न्यायालय समाप्त कर दिया जाता है,तब इस न्यायालय मेंकार्य कर रहे न्यायाधीश प्रभावित नहीं होंगे सिवाए उनका स्थानांतरण समान प्रास्थिति में एक अन्य न्यायालय में कर दिया जाएगा ।"

(रेखांकित पंक्तियों पर बल दिया गया है)

न्यायमूर्ति बी. सी. रे ने तब "बेसिक प्रिंसिपल्स आन दि इंडिपेंडेंस आफ दि जुडिशियरी" के पैरा 17 से 20 को निर्दिष्ट किया जहां तक वे अनुशासन, निलंबन और पद से हटाए जाने से संबंधित हैं तथा जो 26 अगस्त से 6 सितम्बर, 1985 के दौरान मीलान में आयोजित "37वीं यू. एन. कांग्रेस आन दि प्रिवेंशन आफ क्राइम एण्ड ट्रीटमेंट आफ आफेंडर्स" द्वारा पारित किए गए थे :

"17. किसी न्यायाधीश के द्वारा उसकी न्यायिक और वृत्तिक क्षमता में किए गए कार्य के विरुद्ध किए गए आरोप या परिवाद पर एक उचित प्रक्रिया के अधीन शीघ्रता से और ऋजुता पूर्वक कार्यवाही की जाएगी । न्यायाधीश को उचित सुनवाई का अधिकार प्राप्त होगा । मामले के प्रारंभिक प्रक्रम पर परीक्षा गोपनीय रखी जाएगी जब तक कि न्यायाधीश द्वारा अन्यथा प्रार्थना न की जाए ।

18. न्यायाधीश केवल असमर्थता या कदाचार जो उन्हें उनके कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए अयोग्य बनाते हों के लिए ही निलंबन या पद से हटाए जाने के अध्यधीन होंगे ।

19. समस्त अनुशासनिक, निलंबन या पद से हटाए जाने की कार्यवाहियां न्यायिक आचरण के स्थापित स्तरों के अनुसार निपटाई जाएंगी ।

20. अनुशासनिक, निलंबन या पद से हटाए जाने की कार्यवाहियों में विनिश्चय एक स्वतंत्र पुनर्विलोकन के अध्यधीन होना चाहिए । यह सिद्धांत सर्वोच्च न्यायालय के विनिश्चयों और महाभियोग या समान कार्यवाहियों में विधायिका के विनिश्चयों पर लागू नहीं होगा ।"

उपर्युक्त संकल्प संयुक्त राष्ट्रसंघ की साधारण सभा द्वारा तारीख 9 नवम्बर, 1985 और 13 दिसम्बर, 1985 को पृष्ठांकित किया गया था ।

उच्चतम न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि भारत के संविधान के प्रवर्तन के पूर्व गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट, 1935 की धारा 200(2) किसी न्यायाधीश के हटाए जाने के प्रश्न पर प्रिवी कौंसिल की अनुशासनिक समिति द्वारा विनिश्चय किए जाने की अपेक्षा करती थी । इससे यह अर्थ निकलता है कि विनिश्चय न्यायिक निकाय द्वारा किया जाना होता था ।

उच्चतम न्यायालय ने इसके पश्चात् इस संबंध में एक और महत्वपूर्ण पहलू पर विचार किया कि क्या भारत में हटाए जाने की प्रक्रिया विशुद्ध रूप से राजनीतिक प्रक्रिया थी या क्या यह न्यायाधीश के हटाए जाने की राजनीतिक और न्यायिक प्रक्रिया का विवेकपूर्ण सम्मिश्रण थी । न्यायमूर्ति बी. सी. रे ने रिसले ब्राउन (दि इम्पीचमेंट आफ दि फेडरल जुडिशियरी, (1912-1913), (हावर्ड ला रिव्यू 684) के मत के अनुसार और प्रोफेसर मॉरो कैपेलेटी के उनकी पुस्तक "दि जुडीशियल प्रासेस इन कम्पेरेटिव परसपैक्टिव" (1989) में व्यक्त किए गए मतों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् यह इंगित किया कि संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रक्रिया राजनीतिक थी किन्तु भारत में यह राजनीतिक और न्यायिक प्रक्रियाओं का समावेश थी । इसमें यह मत व्यक्त किया गया कि "किन्तु भारत में सांविधानिक स्कीम न्यायाधीशों के हटाए जाने के लिए राजनीतिक और न्याय प्रक्रियाओं के न्यायोचित्य सम्मिश्रण की वांछा करती है । यद्यपि, प्रथमतया देखने पर यह प्रतीत होता है कि अनुच्छेद 124 के खण्ड (4) और खण्ड 4(5) के अंगीकृत किए जाने से संबंधित संविधान सभा की कार्यवाहियां यह दृष्टव्य होता है कि इसके प्रतिकूल इंगित करती थीं और कदाचार या असमर्थता के अभिकथनों की सत्यता की न्यायिक प्रक्रिया द्वारा अधिक सावधानीपूर्वक परीक्षा द्वारा अवधारण का परिवर्जन करने का आशय रखती थीं, किन्तु यह सही निष्कर्ष नहीं है.....।"

इस संदर्भ में न्यायमूर्ति बी. सी. रे ने संविधान सभा में सर अलादि कृष्णास्वामी अय्यर और श्री के. संथानम के तारीख 29 जुलाई, 1947 को दिए गए भाषणों और श्री एम. अनंतसायनम आयंगर के प्रस्ताव को, जो केवल एक न्यायिक अधिकरण के लिए था (जो इस कारण नामंजूर कर दिया गया था क्योंकि सर अलादि ने न्यायिक और राजनीतिक प्रक्रिया के संयुग्म की प्रस्थापना की थी) को निर्दिष्ट किया । इसलिए, कार्यवाही अनन्य रूप से न्यायिक नहीं थी । दूसरे शब्दों में इसका जांच का भाग न्यायिक हो सकता है जबकि हटाए जाने का भाग संसदीय होगा ।

उच्चतम न्यायालय ने प्रस्ताव की सूचना (नोटिस) के जारी किए जाने के लिए और इस संबंध

में कि अध्यक्ष या सभापति, जैसा कि मामला हो प्रस्ताव ग्रहण करने के पूर्व किससे परामर्श कर सकेंगे के संबंध में प्रक्रिया को निर्दिष्ट किया । धारा 3 'व्यक्तियों' से परामर्श करने की अनुज्ञा देती है । यदि प्रस्ताव ग्रहण किया जाता है, तब अध्यक्ष/सभापति को प्रस्ताव लंबित रखना होगा और तब समिति का गठन करना होगा । धारा 6(2) के अधीन, यदि समिति की रिपोर्ट में यह निष्कर्ष अंतर्विष्ट है कि न्यायाधीश किसी कदाचार का दोषी है या किसी असमर्थता से ग्रस्त है तब धारा 3 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट किया गया प्रस्ताव समिति की रिपोर्ट के साथ संसद् या सदनों जिसमें कि यह लंबित है द्वारा विचारार्थ लिया जाएगा । उच्चतम न्यायालय ने यह इंगित किया कि धारा 3 और धारा 6(2) का प्रभाव निम्न प्रकार है :

> "इस उपबंध का प्रभाव यह है कि प्रस्ताव तब तक लंबित रखा जाएगा जब तक कि समिति अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं करती और यदि समिति यह पाती है कि न्यायाधीश दोषी है, तब प्रस्ताव विचार किए जाने के लिए लिया जाएगा । केवल एक प्रस्ताव परिकल्पित किया गया है जो लंबित बना रहेगा । इस संबंध में शब्दों की कोई परिसीमा तात्पर्यित नहीं की जानी चाहिए कि प्रस्ताव सदन के विघटन के प्रायिक प्रभाव के अध्यधीन लंबित रखा जाएगा ।"

उच्चतम न्यायालय ने इसके आगे यह उल्लेख किया कि 1968 के अधिनियम में इंगित की गई प्रक्रिया अनुच्छेद 118 के अधीन संदन द्वारा बनाए गए किन्हीं नियमों को अधिक्रांत करती है । जबकि पूर्ववर्ती अनुच्छेद विघटन पर प्रस्ताव के व्यपगत होने को समर्थ बनाती है, ऐसी कोई बात 1968 के अधिनियम द्वारा अनुध्यात नहीं की गई थी जो कानूनी अनुच्छेद 124(5) के अधीन पारित किया गया था । भारत में संसदीय संप्रभुता की संकल्पना और अधिक लागू नहीं है। यह उच्चतम न्यायालय द्वारा केशव सिंह वाले मामले में व्यक्त किए गए मतों से स्पष्ट है । 1964 के मामले का विशेष संदर्भ सं. 1 (1965 (1) एस. सी. आर. 413) जिसमें मुख्य न्यायमूर्ति गजेन्द्र गडकर ने निम्न मत व्यक्त किया :

> ".....यद्यपि हमारी विधायिकाओं को सर्वांगीण शक्तियां हैं, वे संविधान के तात्विक और सुसंगत उपबंधों द्वारा विहित सीमाओं के भीतर कृत्य करती हैं ।"

और

"लिखित संविधान द्वारा शासित लोकतांत्रिक देश में संविधान, सर्वोच्च और प्रभुत्व संपन्न होता है ।"

उच्चतम न्यायालय के इसके पश्चात् अनुच्छेद 124(4) में उल्लेख किए गए खण्ड "साबित कदाचार और असमर्थता" में शब्द "साबित" के अर्थ पर विचार किया । न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 121 या अनुच्छेद 124(4) में निर्दिष्ट किया गया समावेदन प्रस्तुत करने के लिए कोई प्रस्ताव नहीं किया जा सकता "जब तक कि कदाचार या असमर्थता से संबंधित अभिकथन संसद् के दोनों सदनों से परे किसी फोरम (मंच) में साबित हुए नहीं पाए जाते हैं ।" अनुच्छेद 124(4) के अधीन न्यायाधीश के हटाए जाने के लिए कोई प्रस्ताव अनुज्ञेय नहीं होगा और संसद् के सदन तब तक दृष्टिपटल पर नहीं आते हैं "जब तक कि संसद् के दोनों सदनों के बाहर का कोई प्राधिकारी कदाचार या असमर्थता का निष्कर्ष अभिलिखित नहीं करता ।" यह अभिप्रेत है कि न्यायिक और संसदीय प्रक्रियाएं दोनों का सामंजस्य किया गया है और परस्पर मिली हुई हैं । अनुच्छेद 121 यह उल्लेख करता है कि उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश के आचरण के संबंध में संसद् में चर्चा पर वर्जना राष्ट्रपति को एक समावेदन प्रस्तुत करने के लिए एक प्रस्ताव किए जाने पर समाप्त हो जाती है जिसमें इसमें इसके पश्चात् उपबंध की गई रीति में न्यायाधीश के हटाए जाने की प्रार्थना की जाती है ।" शब्द प्रस्ताव और इसमें इसके पश्चात् उपबंध किया गया खण्ड अनुच्छेद 124 के खण्ड (4) में निर्दिष्ट किए गए प्रस्ताव के प्रति एक स्पष्ट निर्देश है जो साबित कदाचार या असमर्थता अर्थात् इसको विधायिका के बाहर "साबित होने के पश्चात् इसके संबंध में प्रस्ताव की संकल्पना को अस्तित्व में लाता है ।"

अनुच्छेद 124(5) में विधि बनाने के लिए उपबंध एक समर्थकारी उपबंध नहीं था अपितु संसद् द्वारा हटाए जाने की शक्ति पर एक पूर्व शर्त के रूप में सम्मिलित किया गया था । उच्चतम न्यायालय ने इसके पश्चात् निम्न अभिनिर्धारित किया :

" ..... इस संबंध में संसदीय प्रक्रिया खण्ड (5) के अधीन अधिनियमित विधि के अनुसार कदाचार या असमर्थता के सबूत के पश्चात् ही केवल प्रारंभ होती है, अन्वेषण के लिए तंत्र और कदाचार या असमर्थता के सबूत का निष्कर्ष कानूनी होने के कारण खण्ड (5) के अधीन अधिनियमित विधि के उपबंधों द्वारा ही पूर्ण रूप से विनियमित होती है । यह भी अनुच्छेद 121

अभिकथन को एक प्रस्ताव के रूप में वर्णन किया गया है क्योंकि यह अध्यक्ष या सभापति को किया गया एक परिवाद है और संसद् के सदस्यों की विनिर्दिष्ट संख्या द्वारा किया जाता है । धारा 3 के अधीन एक परिवाद प्राप्त करने पर, यदि अध्यक्ष/सभापति की यह राय है कि अन्वेषण के लिए एक प्रथमदृष्टया मामला बनता है, तब वह न्यायिक समिति का गठन करेंगे जो कि विहित की गई है; यदि संसदीय प्रक्रिया और न्यायिक प्रक्रिया पृथक् हैं, तब संसद् की प्रक्रिया केवल तभी प्रारंभ होगी जब न्यायिक निकाय साबित कदाचार या असमर्थता का निष्कर्ष अभिलिखित करता है और इसके संबंध में अध्यक्ष/सभापति को रिपोर्ट करता है । यह स्पष्ट हो जाता है जब अनुच्छेद 124 के खण्ड (4) का अनुच्छेद 317 के साथ लोक सेवा आयोग के सदस्यों के हटाए जाने के संबंध में अर्थान्वयन किया जाता है जहां शब्द 'साबित' प्रयुक्त नहीं किया गया है । अन्वेषण की प्रक्रिया और सबूत को इंगित करने के लिए धारा 3 में शब्द प्रस्ताव का प्रयोग इससे धारा 3 और धारा 6 में उक्त अभिव्यक्ति के प्रयोग के साथ होने पर भी सदन में एक प्रस्ताव नहीं बनाता है । यदि अभिकथन साबित नहीं हुआ है, तब अध्यक्ष को अनुच्छेद 124 के खण्ड (4) के अधीन प्रक्रिया प्रारंभ करने की आवश्यकता नहीं है । इसलिए अध्यक्ष अधिनियम के अधीन एक कानूनी प्राधिकारी है और इस रूप में चुना गया है क्योंकि आगे की प्रक्रिया संसदीय है और संसद् के सदस्यों को प्रारंभिक परिवाद करने का प्राधिकार होने के कारण परिवाद प्रस्ताव के रूप में वर्णन किया गया है । न्यायालय ने इसके पश्चात् निम्न मत व्यक्त किया :

> "वास्तव में, अधिनियम हटाए जाने की प्रक्रिया के न्यायिक और राजनीतिक पहलुओं दोनों के सांविधानिक दर्शन को प्रकट करता है । सर्वोच्च प्राधिकारी इस अर्थ में संसद् के पास ही बना रहता है कि यद्यपि अन्वेषण करने वाली समिति यह निष्कर्ष अभिलिखित करती है कि न्यायाधीश आरोपों का दोषी है, किन्तु संसद् के लिए यह तब भी विनिश्चय करना खुला रहता है कि वह हटाए जाने के लिए राष्ट्रपति को एक समावेदन प्रस्तुत करे । किन्तु, यदि समिति यह निष्कर्ष अभिलिखित करती है कि न्यायाधीश दोषी नहीं है, तब हटाए जाने की प्रक्रिया में राजनीतिक पहलू का कोई विकल्प नहीं उठता । वस्तुतः विधि न्यायाधीश के उत्तरदायित्व की संकल्पना और न्यायिक स्वतंत्रता के महत्व को अंतर्वलित करने वाले विधान का एक सुसभ्य नमूना है ।

के सामंजस्य में है । स्थिति यह होगी कि किसी न्यायाधीश के विरुद्ध कदाचार या असमर्थता का अभिकथन किया जाना चाहिए, अनुच्छेद 124(5) के अधीन संसद् द्वारा अधिनियमित विधियों के अनुसार अन्वेषित और साबित पाया जाना चाहिए तथा उक्त प्रक्रम तक संसद् मामले में अंतर्वलित नहीं होगी; उक्त विधि द्वारा उपबंध की गई रीति में न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता को साबित पाए जाने पर, उक्त आधार पर, न्यायाधीश के हटाए जाने के लिए राष्ट्रपति को एक समावेदन प्रस्तुत करने के लिए प्रस्ताव अनुच्छेद 124(4) के अधीन प्रत्येक सदन में प्रस्तुत किया जाएगा; कदाचार या असमर्थता के सबूत के पश्चात् इस प्रकार प्रस्तुत किया गया प्रस्ताव और न्यायाधीश के हटाए जाने की प्रार्थना करते हुए राष्ट्रपति को इस संबंध में इसका समावेदन प्रस्तुत किए जाने पर, अनुच्छेद 121 में अंतर्विष्ट चर्चा पर वर्जना समाप्त हो जाती है और न्यायाधीश के आचरण के संबंध में संसद् में चर्चा की जा सकती है; और आगे का परिणाम संसद् एक एक सदन में प्रस्ताव के परिणाम पर आधारित होगा । तथापि, यदि अधिनियमित विधि में उपबंध किए गए तंत्र द्वारा निकाला गया निष्कर्ष यह है कि अभिकथन साबित नहीं किया गया है ; तब मामला समाप्त हो जाता है तब अनुच्छेद 124(4) के अनुसार प्रस्ताव लाने के लिए कोई अवसर नहीं है ।"

(रेखांकित पंक्तियों पर बल दिया गया है)

उच्चतम न्यायालय ने इसके आगे यह मत व्यक्त किया कि शब्द "साबित" से हमारी विधिक प्रणाली में समझी गई रीति में सबूत अभिप्रेत है अर्थात् एक न्यायिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप । नीति यह प्रतीत होती है कि अभिकथन किए जाने पर अन्वेषण के प्रारंभ किए जाने के साथ-साथ "कदाचार या असमर्थता" के सबूत तक का समस्त प्रक्रम अनुच्छेद 124(5) के अधीन अधिनियमित की गई विधि द्वारा विनियमित है और अनुच्छेद 121 में उपबंध किए गए निर्वचन को देखते हुए, उक्त तंत्र संसद् के बाहर का कोई तंत्र होना चाहिए और इसके भीतर का नहीं । यदि ऐसा है तब यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि संसद् का कदाचार या असमर्थता साबित पाए जाने तक न तो कोई भूमिका है और न ही इसका अनुच्छेद 124(5) के अधीन अधिनियमित विधि में उपबंध किए गए तंत्र के ऊपर कोई नियंत्रण है । ससद् दृष्टिपटल पर तभी आती है जब उक्त तंत्र द्वारा यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि अभिकथित कदाचार या असमर्थता साबित हो गई हैं । शुरुआती

अध्यक्ष ने कदाचार या असमर्थता के अभिकथित आधारों पर अन्वेषण करने के लिए एक समिति का गठन किए जाने पर प्रस्ताव ग्रहण करते हुए संसद् के एक भाग के रूप में कृत्य नहीं किया है । उक्त प्रक्रम पर सदन दृष्टिपटल पर नहीं आता है ।'

(रेखांकित पंक्तियों पर बल दिया गया है)

उच्चतम न्यायालय ने इसके पश्चात् प्रस्ताव ग्रहण करने के प्रक्रम पर नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को निम्न प्रकार निर्दिष्ट किया : इसने यह कथन किया कि धारा 3 के प्रक्रम पर जब अध्यक्ष एक प्रस्ताव ग्रहण करते हैं, तब न्यायाधीश अधिकार स्वरूप ऐसी सूचना (नोटिस) के लिए हकदार नहीं है । किन्तु यह अध्यक्ष को नहीं रोकता यदि उसके समक्ष प्रस्तुत किए गए तथ्य और परिस्थितियां यह इंगित करते हैं कि सुनवाई उपयुक्त है और उसे सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए ।

न्यायालय ने तब एक तर्क निर्दिष्ट किया कि (अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 32 के अधीन) एक न्यायिक अध्युपाय का प्रयोग किया जाना जैसा कि इस मामले में सब कमेटी आन जुडीशियल एकाउंटेबिलिटी द्वारा फाइल किया गया है, न्यायाधीश जिसके संबंध में अन्वेषण किया जा रहा है उसे न्यायिक कृत्यों को करने से अवरूद्ध किया जा सकता है । उच्चतम न्यायालय ने यह इंगित किया कि 'न्यायपालिका स्वतः' ऐसा नहीं कर सकती है । यह हो सकता है कि न्यायाधीश अपनी स्वयंकी अंतर्भावना से स्वेच्छया से कृत्य न करे जबकि अनुच्छेद 317(2) के अधीन 'निलंबन' के लिए संविधान में एक विनिर्दिष्ट उपबंध दिया गया है, जो लोक सेवा आयोग के एक सदस्य को जांच के चलने के दौरान कार्य करने से निवारित करता है, अनुच्छेद 124(4) में निलंबन की ऐसी कोई शक्ति नहीं थी । न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया :

"अनुच्छेद 124(4)के अधीन हटाए जाने की प्रक्रिया के पूरा होने तक न्यायाधीश को निषेध करने के लिए.....अनुच्छेद 317(2) के अधीन विधिक उपबंध के अभाव में आवश्यक रूप से यह इंगित नहीं करता है कि न्यायाधीश उक्त अवधि के दौरान सतत् रूप से कृत्य करता रहेगा । यह बात स्वतः विद्वान् न्यायाधीश के मर्यादा की भावना पर निर्भर करती है और भारत के मुख्य न्यायाधीश के मत द्वारा स्पष्ट किए गए न्यायिक परम्परा पर निर्भर करता है । यह प्रत्याशा की जानी चाहिए कि विद्वान् न्यायाधीश ऐसी स्थिति में भारत के मुख्य न्यायाधीश की

सलाह से एक परिवादी के रूप में मार्गदर्शित होगा जब तक कि वह स्वयं यह विनिश्चय नहीं करता कि वह इस अंतराल के दौरान न्यायिक कर्तव्यों का निर्वहन करने से प्रविरत रहते हुए मर्यादा का पालन करे.....। संविधान ने अनुच्छेद 317(2) में लोक सेवा आयोग के एक सदस्य के निलंबन के लिए उपबंध करते हुए ऐसी ही एक स्थिति पर उच्चतर सांविधानिक पदों पर आसीन व्यक्तियों यथा वरिष्ठ न्यायाधीशों और राष्ट्रपति और भारत के उप-राष्ट्रपति जो महाभियोग का सामना कर रहे हों, के मामले में ऐसा एक उपबंध बनाने से जानबूझकर अपने को प्रविरत किया है । यह उपधारणा करना युक्तियुक्त है कि संविधान के निर्माताओं ने यह उपधारणा की थी कि उक्त स्थिति में न्यायाधीश द्वारा एक वांछनीय परिपाटी का अनुसारण किया जाएगा और उक्त स्थिति में निलंबन की शक्ति का प्रयोग करना अपेक्षित नहीं होगा ।"

(रेखांकित पंक्तियों पर बल दिया गया है)

(न्यायालय को ऐसी विधि पर चर्चा नहीं करती होती, यदि कोई अनुच्छेद 124(5) के अधीन बनाई जाती है जो मामलों के सूचीबद्ध न किए जाने की अनुज्ञा देती हो) ।

उपर्युक्त चर्चा यह दर्शित करती है कि सांविधानिक विधि के अनेक महत्वपूर्ण सिद्धांत उच्चतम न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 124, 121, 217 के संदर्भ में प्रत्येक मामले में और न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 द्वारा अधिकथित किए गए थे । यह सिद्धांत न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 2005 के उपबंधों की चर्चा के मामले में अत्यन्त सुसंगत हैं ।

(ख) **द्वितीय निर्णय : श्रीमती सरोजिनी रामास्वामी बनाम भारत संघ, 1992 (4) एस. सी.सी. 506:**

हम पहले ही उन परिस्थितियों का वर्णन कर चुके हैं जिनके अधीन और जिस अनुतोष के लिए यह याचिका श्रीमती सरोजिनी रामास्वामी द्वारा फाइल की गई थी । उन्होंने मुख्य रूप से एक निदेश की ईप्सा की कि सावंत समिति की रिपोर्ट की एक प्रति संसद् में इस पर चर्चा किए जाने के पूर्व से न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी को प्रदान की जाए ।

उच्चतम न्यायालय ने सांविधानिक स्कीम और 1968 के अधिनियम के उपबंधों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया कि रिपोर्ट की प्रति तब तक प्रदान नहीं की जा सकती जब

तक रिपोर्ट संसद् द्वारा विचार किए जाने के लिए उसके समक्ष प्रस्तुत नहीं की जाती और जब तक कि राष्ट्रपति द्वारा पद से हटाए जाने का आदेश पारित नहीं किया जाता । चर्चा के दौरान उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न विधिक सिद्धांतों को अधिकथित किया । हम उन्हें अब प्रस्तुत करेंगे ।

अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन प्रस्ताव ग्रहण करने के प्रक्रम पर, धारा यह अनुध्यता करती है कि अध्यक्ष/सभापति 'ऐसे व्यक्तियों से परामर्श करने के पश्चात्, यदि कोई हों जो कि उन्हें उपलभ्य हो सकें' , प्रस्ताव को या तो ग्रहण कर सकते हैं या प्रस्ताव को ग्रहण करने से इनकार कर सकते हैं । इन शब्दों का निर्वचन करते हुए उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि परामर्श की इस प्रक्रिया में यह उपधारण करना युक्तियुक्त था कि परामर्श किए जाने वाले व्यक्तियों में से एक व्यक्ति भारत का मुख्य न्यायाधीश होगा जो भारतीय न्यायपालिका का अध्यक्ष होने के अलावा उच्चतम न्यायालय के कार्यरत न्यायाधीश के चयन और उपलब्धता में अंतर्वलित प्राधिकारी भी होगा और एक उच्च न्यायालय का कार्यरत मुख्य न्यायाधीश अधिनियम की धारा 3(2) के अधीन गठित समिति का सदस्य होगा, यदि प्रस्ताव अध्यक्ष/सभापति द्वारा ग्रहण किया जाता है ।

उच्चतम न्यायालय ने न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1969 और विशेष रूप से नियम 9 को निर्दिष्ट किया और यह कथन किया कि जहां समिति द्वारा यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि न्यायाधीश "दोषी नहीं" था, और यदि एक सदस्य विसम्मत टिप्पण करता है, न्यायाधीश "दोषी" था तब सदन के समक्ष निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाने की आवश्यकता नहीं है जबकि ऐसी स्थिति में जहां "दोषिता" का निष्कर्ष 2 सदस्यों द्वारा दिया जाता है और एक सदस्य "दोषी नहीं" का निष्कर्ष निकलता है, तब दोनों निष्कर्ष सदन के समक्ष रखे जाने चाहिए । यह नियमों का प्रभाव था ।

जहां समिति द्वारा "दोषी नहीं" का निष्कर्ष दिया जाता है, तब हटाए जाने की सम्पूर्ण प्रक्रिया समाप्त हो जाती है और न्यायाधीश के विरुद्ध हटाए जाने के लिए संसदीय प्रक्रिया प्रारंभ करना अनुज्ञेय नहीं होगा । यह केवल वहां है जहां समिति द्वारा 'दोषी' होने का निष्कर्ष निकाला जाता है और रिपोर्ट सदन के समक्ष प्रस्तुत की जाती है वहां संसदीय प्रक्रिया प्रारंभ होती है । यह इंगित करता है कि समिति द्वारा "दोषी" होने का निष्कर्ष, यदि कोई किया जाता है, यह प्रस्ताव तक " अपक्व" है, यदि यह दोषिता के निष्कर्ष पर आधारित है, यह अनुच्छेद 124 द्वारा अनुध्यात होने के रूप में मंजूर किया गया है । इसके तत्पश्चात् भी जब तक राष्ट्रपति पद से हटाए जाने का आदेश

जारी करते हैं, तब तक हटाए जाने के आदेश यदि कोई है, के पारित किए जाने के पूर्व न्यायालय में कोई कार्यवाही न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए प्रारंभ नहीं की जा सकती है । कारण यह है कि यद्यपि रिपोर्ट में "दोषी" होने का निष्कर्ष है, संसद् तब भी हटाए जाने के लिए प्रस्ताव पारित नहीं करेगा । संसद् में रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने तथा समिति के समक्ष कार्यवाहियां प्रकृति में कानूनी और न्यायिक हैं और केवल संसदीय या राजनीतिक प्रक्रिया प्रारंभ होती है ।

सब कमेटी आन जुडीशियल एकाउंटेबिलिटी बनाम भारत संघ, 1991 (4) एस. सी. सी. 699 वाले मामले में दिए गए पूर्वतर निर्णय में उल्लेख की गई प्रक्रिया "न्यायाधीशों के हटाए जाने के लिए राजनीतिक और न्यायिक प्रक्रियाओं का विवेकपूर्ण सम्मिश्रण है ।" अन्य राष्ट्रों में न्यायाधीशों के हटाए जाने के लिए विभिन्न स्कीमें भारत में समस्याओं का निदान प्रस्तुत नहीं करती हैं, यद्यपि वे नजीर के रूप में महत्व रखती हैं । वे कुछ मार्गदर्शन कर सकती हैं ।

संसद् जांच समिति के निष्कर्ष से अपने निष्कर्ष को प्रतिस्थापित नहीं करती है । यदि ये अपेक्षित सदस्यों के प्रस्ताव को ग्रहण नहीं करने का विनिश्चय करती है तब हटाए जाने के लिए प्रस्ताव असफल हो जाएगा और कार्यवाहियां समाप्त हो जाएंगी । किन्तु, ऐसा करने में, संसद् प्रस्ताव स्वीकार न करने का विनिश्चय नहीं करती है, क्योंकि यह समिति द्वारा अभिलिखित किए गए "दोषी" होने के निष्कर्ष को स्वीकार और उसके आधार पर कृत्य करने से इनकार करती है । संसद् यह इसके समक्ष प्रस्तुत सामग्री (अर्थात् रिपोर्ट और तदधीन निर्दिष्ट विषय-वस्तु) के आधार पर विवाद्यकों पर चर्चा करने के पश्चात् करती है । रिपोर्ट और सामग्री पर विचार करने के उक्त प्रक्रम पर संबंधित न्यायाधीश को रिपोर्ट की एक प्रति प्रस्तुत की जाएगी और एक अवसर भी प्रदान किया जाएगा कि वह इस संबंध में अपना पक्षकथन प्रस्तुत करे कि निष्कर्ष क्यों स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए ।

इस संदर्भ में क्वींसलैंड के सुप्रीम कोर्ट द्वारा न्यायमूर्ति वास्ता के मामले में आस्ट्रेलिया में संसद् द्वारा अनुसरण की गई प्रक्रिया को उच्चतम न्यायालय ने निर्दिष्ट किया । उक्त मामले में आस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री ने यह स्पष्ट किया था कि संसद् में कार्यवाहियों के दौरान न्यायाधीशों को एक अवसर दिया जाना चाहिए था और न्यायाधीश संसद् के समक्ष वैयक्तिक तौर पर या अपने विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से जैसा कि वह चाहे, उपस्थित हो सकता है । आस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री के कथन का

सुसंगत भाग निम्न प्रकार है :

" मैं यह विश्वास करता हूं कि न्यायमूर्ति वास्ता को अधिकार है.....और हमारा यह कर्तव्य है कि उन्हें इसके लिए मंजूर करें कि वे हमें वैयक्तिक तौर पर या अपने विधिक प्रतिनिधियों के द्वारा जैसा कि वह चाहें, समावेदन करें ।"

उच्चतम न्यायालय ने इसके अतिरिक्त यह उल्लेख किया कि प्रस्ताव पारित होने के पश्चात् ही केवल कदाचार 'साबित हुआ समझा जाता है' जैसा कि अधिनियम की धारा 6(3) में कथन किया गया है और इस समय तक समिति के निष्कर्ष अपक्व होते हैं ।

यह दोहराते हुए कि समिति द्वारा निकाला गया "दोषिता" का निष्कर्ष संसद् पर बाध्यकर नहीं है, उच्चतम न्यायालय ने यह भी कथन किया कि प्रस्ताव मतगणना होते समय संसद् से कोई कारण देने की अपेक्षा नहीं की जाती है यदि यह प्रस्ताव ग्रहण करना नहीं चुनती । निम्नलिखित सुसंगत मत हैं : (पृष्ठ 553 पर)

"यद्यपि, जांच समिति द्वारा निकाला गया "दोषी" होने के निष्कर्ष का न्यायिक पुनर्विलोकन केवल वैधता के संबंध में सीमित आधारों पर अनुज्ञेय हो सकेगा, तब भी संसद् की शक्ति हटाए जाने के लिए प्रस्ताव विचार करते समय इतनी सीमित नहीं होगी क्योंकि संसद् इसके समक्ष प्रस्तुत की गई सम्पूर्ण सामग्री पर विचार करने पर समिति द्वारा निकाले गए 'दोषी' होने के निष्कर्ष के बावजूद प्रस्ताव स्वीकार न करने से संबंधित है जो इसे उस सामग्री के प्रमाणक महत्व का परिशीलन करने को समर्थ बनाता है जिस पर निष्कर्ष आधारित है और किसी विशिष्ट मामले में प्रस्ताव ग्रहण करने की वांछनीयता का विनिश्चय करने के लिए संसद् प्रस्ताव पर मतगणना द्वारा विनिश्चय करती है और अपने विनिश्चय के लिए कोई कारण देना इसके लिए अपेक्षित नहीं है यदि यह प्रस्ताव ग्रहण करना नहीं चुनती है ।"

(रेखांकित पंक्तियों पर बल दिया गया है)

उपर्युक्त पाठ से, यह स्पष्ट होता है कि उच्चतम न्यायालय के अनुसार, जबकि न्यायिक पुनर्विलोकन की परिधि रिपोर्ट में दिए गए वैधता के कारणों तक सीमित है, संसद् की अधिकारिता की परिधि रिपोर्ट पर विचार करते समय व्यापक है और कारणों की वैधता तक सीमित नहीं है अपितु

साक्ष्य के प्रमाणिक महत्व की परीक्षा करने पर भी विस्तारित हो सकती है और इसके साथ ही अतिरिक्त फायदा यह है कि संसद् को प्रस्ताव ग्रहण न करने के लिए कोई कारण देने की आवश्यकता नहीं है । यह न्यायालय में रिपोर्ट को कोई चुनौती दिए जाने के प्रतिकूल है जहां कि न्यायालय को कारण देने होते हैं । यह एक अन्य कारण था कि यह न्यायाधीश के हित में क्यों होना चाहिए कि इसके किए जाने की रिपोर्ट के तैयार किए जाने के तुरन्त पश्चात् न्यायालय में रिपोर्ट को चुनौती न दे और यह संसदीय प्रक्रिया के परिणाम के कारण उनके लिए अधिक फायदेमंद होगा और यदि यह उसके विरुद्ध जाती है, तब वह राष्ट्रपति द्वारा पद से हटाए जाने का आदेश पारित किए जाने के पश्चात् पद से हटाए जाने को चुनौती दे सकता है । ऐसा ही है यद्यपि समिति के पास न्यायालय का साज-सामान हो किन्तु तब भी इसका विनिश्चय अपक्व है । यदि समिति यह विनिश्चय करती है कि न्यायाधीश "दोषी नहीं" है उक्त विनिश्चय अंतिम होगा और जहां ऐसा विनिश्चय किया जाता है, वहां यह निश्चायक होगा और तब जांच की सम्पूर्ण प्रक्रिया समाप्त हो जाती है और संसदीय प्रक्रिया प्रारंभ नहीं होती और बंद कर दी जानी चाहिए ।

समिति की रिपोर्ट अपक्व होने के कारण जांच समिति संविधान के अनुच्छेद 136 के प्रयोजन के लिए एक "अधिकरण" के रूप में व्यवहार नहीं की जा सकती है । न्यायाधीश को दोषी अभिनिर्धारित करने की समिति की रिपोर्ट इसके अध्यक्ष/सभापति को प्रस्तुत किए जाने के पूर्व उक्त प्रक्रम पर चुनौती नहीं दी जा सकती है और अधिनियम और नियम जानबूझकर समिति द्वारा रिपोर्ट फाइल किए जाने के तुरन्त पश्चात् न्यायाधीश को रिपोर्ट की एक प्रति दिए जाने का उपबंध नहीं करते हैं ।

उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि न्यायाधीश का निवेदन कि रिपोर्ट को अध्यक्ष/सभापति के समक्ष प्रस्तुत किए जाने के पूर्व, रिपोर्ट के प्रक्रम पर ही न्यायिक पुनर्विलोकन किया जाना चाहिए और न कि हटाए जाने के आदेश पारित किए जाने के पश्चात् क्योंकि संसद् द्वारा एक बार यह ग्रहण कर लिए जाने पर यह एक राजनीतिक प्रश्न बन जाता है, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है । निवेदन सही नहीं है क्योंकि 1968 के अधिनियम के साथ पठित अनुच्छेद 124 के अधीन प्रक्रिया कानून के अधीन भागतः न्यायिक है और रिपोर्ट के पश्चात् संसद् में भागतः राजनीतिक है । संयुक्त राज्य अमेरिका में महाभियोग के पश्चात् न्यायिक पुनर्विलोकन वर्जित था

क्योंकि सीनेट में प्रक्रिया राजनीतिक मानी जाती है, सीनेट सर्वोच्च प्राधिकारी है और जांच सीनेट द्वारा बनाए गए नियमों के अधीन की जाती है । वहां समिति द्वारा की गई जांच एक राजनीतिक प्रक्रिया का भाग मानी जाती है । ऐसी एक स्थिति 1968 के अधिनियम के उपबंधों के साथ पठित अनुच्छेद 124 द्वारा अनुध्यात नहीं की गई थी ।

उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि वर्तमान में प्रवृत्ति यह थी कि कुछ परिस्थितियों में राजनीतिक प्रश्न भी न्यायालयों में चर्चा किए जा सकते हैं । किन्तु, जहां यह कानून के बल के कारण आंशिक रूप से न्यायिक है और इसलिए राजनीतिक, वहां पद से हटाए जाने के पश्चात् न्यायिक पुनर्विलोकन स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं थी । इसने निम्न कथन किया (पृष्ठ 569) :

> "उपर्युक्त चर्चा कुछ सीमाओं के भीतर न्यायिक पुनर्विलोकन वहां भी ग्रहण करने की आधुनिक प्रवृत्ति को इंगित करती है जहां सम्पूर्ण प्रक्रिया राजनीतिक है चूंकि पावेल (395 यू. एस. 486) (1969) में चर्चा किया गया "पालिटिकल क्वश्चन डाक्ट्रेन" प्रक्रिया को अनुज्ञप्त करता है । ऐसा मामलों में जहां सम्पूर्ण प्रक्रिया राजनीतिक है, राजनीतिक प्रक्रिया के पूरा होने पर अनुज्ञेय सीमा तक न्यायिक पुनर्विलोकन किए जाने पर संदेय नहीं है । सिद्धांत स्वरूप ऐसा कोई कारण प्रतीत नहीं होता है कि भारत में न्यायाधीश के पद से हटाए जाने की सम्पूर्ण प्रक्रिया के अंत में न्यायिक पुनर्विलोकन जहां यह एक मिश्रित प्रक्रिया है जिसका राजनीतिक प्रक्रिया केवल एक भाग है वहां राजनीतिक प्रक्रिया सहित सम्पूर्ण प्रक्रिया के पूरा होने के पश्चात् न्यायिक पुनर्विलोकन क्यों प्रयोग नहीं किया जा सकता है ।"

उच्चतम न्यायालय ने इसके पश्चात् संविधान के अनुच्छेद 122 को निर्दिष्ट किया जो संसद् की कार्यवाहियों में जांच करने से न्यायालयों को प्रतिषिद्ध करता है किन्तु यह इंगित किया कि न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 और न्यायाधीश (जांच) नियम, 1969 के उपबंधों के साथ पठित अनुच्छेद 124(4) और (5) के उपबंधों को देखते हुए, प्रतिषेध हटाया गया है और न्यायाधीश को संसद् के सदनों के समक्ष एक अवसर दिया जाना चाहिए । नैसर्गिक न्याय के उपर्युक्त सिद्धांत का उल्लंघन अवैधता कारित करेगा और यह न्यायिक संवीक्षा से मुक्त नहीं होगा । यह केशव सिंह वाले मामले, 1965[5] (1) एस. सी. आर. 413 में अधिकथित सिद्धांतों के अनुसार है । सब कमेटी

आन जुडीशियल एकांउटेबिलिटी बनाम भारत संघ, 1991 (4) एस. सी. सी. 699 वाले मामले में व्यक्त किए गए मत निम्नलिखित प्रभाव के है : "अनुच्छेद 124(5) के अधीन बनाई गई विधि अनुच्छेद 118 के अधीन बनाए गए नियमों पर अभिभावी होगी और यह संसद् के दोनों सदनों पर बाध्यकर होगी । ऐसी एक विधि का उल्लंघन अवैधता गठित करेगा और यह अनुच्छेद 122(1) के अधीन न्यायिक संवीक्षा से मुक्त नहीं है ।"

किन्तु कार्यवाहियां केवल तभी आक्षेप की जा सकती हैं जब राष्ट्रपति ने हटाए जाने के लिए एक आदेश पारित कर दिया हो । न्यायमूर्ति वर्मा (जो वह तत्समय थे) ने विधि को निम्न रूप में संक्षिप्ततः प्रस्तुत किया (पृष्ठ 572-73) :

> "95. कुल मिलाकर स्थिति यह है : उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों का प्रत्येक न्यायाधीश अपनी नियुक्ति होने पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 124 के खण्ड (4) और (5) में उपबंध की गई रीति में के सिवाए अपने कार्यकाल के दौरान अपने पद से हटाया जा सकता है । अनुच्छेद 124(5) के अधीन संसद् द्वारा बनाई गई विधि, यथा न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 और न्यायाधीश (जांच) नियम, 1969 जो तदधीन विरचित किए गए थे, का उच्चतम न्यायालय या एक उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के हटाए जाने के लिए भारत में अंगीकृत की गई सांविधानिक स्कीम का पता लगाने के लिए अनुच्छेद 124(4) के साथ पठन किया जाना चाहिए । अनुच्छेद 124(5) के अधीन इस प्रकार अधिनियमित की गई विधि यह उपबंध करती है कि किसी पदेन न्यायाधीश के विरुद्ध किए गए किसी अभ्यारोपण के संबंध में उसे उसके पद से हटाए जाने के लिए प्रक्रिया प्रारंभ किए जाने को समर्थ करने के लिए अन्य सभी रीतियों का अपवर्जन करते हुए अधिनियम में विनिर्दिष्ट संसद् के सदस्यों की न्यूनतम संख्या से कम से समर्थित नहीं होना चाहिए । विहित की गई रीति में प्रक्रिया के प्रारंभ होने पर अध्यक्ष/सभापति को यह विनिश्चय करना होता है कि क्या अभ्यारोपण अन्वेषण किए जाने की अपेक्षा करता है । यदि वह संसद् के सदस्यों की विनिर्दिष्ट न्यूनतम संख्या द्वारा प्रस्ताव के रूप में किए गए अभ्यारोपण पर कार्यवाही करना नहीं चुनते तब मामला वहां पर समाप्त हो जाता है । दूसरी ओर यदि अध्यक्ष/सभापति, उपलब्ध सामग्रियों पर विचार करने पर और ऐसे व्यक्तियों से परामर्श करने के पश्चात् जोकि वह उपयुक्त समझें, यह राय गठित

करते हैं कि न्यायाधीश के विरुद्ध अभ्यारोपण के संबंध में अन्वेषण के लिए एक प्रथमदृष्टया मामला बनता है, वह अधिनियम की धारा 3(2) के अनुसार कमेटी आफ जुडीशियल फंक्शनरीज़ का गठन करेंगे । यदि जांच समिति इसके द्वारा किए गए अन्वेषण के पूरा होने पर यह निष्कर्ष अभिलिखित करती है कि न्यायाधीश 'दोषी नहीं' है, तब प्रक्रिया वहां पर समाप्त हो जाती है और कोई भी यहां तक संसद् भी जांच समिति द्वारा अभिलिखित किए गए "दोषी नहीं" होने के निष्कर्ष के प्रश्न पर विचार करने के लिए सशक्त नहीं है । यदि जांच समिति द्वारा निकाला गया निष्कर्ष यह है कि न्यायाधीश "दोषी" है, तब संसद् समिति की रिपोर्ट और कारण, यदि कोई है जो संबंधित न्यायाधीश द्वारा अपने को पद से हटाए जाने के लिए दर्शाया गया है जिसके संबंध में उसे अधिनियम की धारा 4(2) के अधीन अध्यक्ष/सभापति को रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् एक अवसर दिया गया है, सहित अन्य उपलब्ध सामग्रियों पर न्यायाधीश के हटाए जाने के लिए प्रस्ताव पर विचार करेगी । इसके प्रभावी होने के लिए, इस अवसर में संबंधित न्यायाधीश को अध्यक्ष/सभापति द्वारा धारा 4(3) के अधीन संसद् के समक्ष रिपोर्ट के प्रस्तुत किए जाने के पूर्व उसकी एक प्रति प्रदान किया जाना भी सम्मिलित है । यदि संसद् न्यायाधीश के हटाए जाने के लिए प्रस्ताव ग्रहण नहीं करती है, तब प्रक्रिया किसी भी ओर से कोई चुनौती उपलब्ध न होने के साथ समाप्त हो जाती है । यदि न्यायाधीश के हटाए जाने के लिए प्रस्ताव संसद् द्वारा अपेक्षित बहुमत के साथ ग्रहण किया जाता है जिसकी परिणति संविधान के अनुच्छेद 124(4) के अधीन भारत के राष्ट्रपति द्वारा पद से हटाए जाने के आदेश में दी है, केवल तभी संबंधित न्यायाधीश को पद से हटाए जाने के आदेश के विरुद्ध अनुज्ञेय आधारों पर न्यायिक पुनर्विलोकन का अध्युपाय उपलब्ध होगा । प्रक्रिया का कानूनी भाग, जिसके अधीन जांच समिति द्वारा दोषी होने का निष्कर्ष निकाला गया, न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन है जैसा कि सब कमेटी आन जुडीशियल एकाउंटेबिलिटी वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, किन्तु इसमें यहां इंगित की गई रीति में, अर्थात् केवल पद से हटाए जाने का एक आदेश किए जाने की दशा में और इसके पश्चात् अकेले व्यथित न्यायाधीश के कहने पर । जांच समिति स्वरूप में कानूनी है किन्तु संविधान के अनुच्छेद 136 के प्रयोजन के लिए एक अधिकरण नहीं है ।"

(रेखांकित पंक्तियों पर बल दिया गया है)

ऐसा कथन करने के पश्चात् विद्वान् न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया कि उपर्युक्त मत सब कमेटी आन जुडीशियल एकाउंटेबिलिटी बनाम भारत संघ वाले मामले में बहुमत के पूर्णतया अनुसार है कि किसी न्यायाधीश के हटाए जाने की प्रक्रिया का कानूनी भाग न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन है ।

तृतीय निर्णय : कृष्णास्वामी बनाम भारत संघ : 1992 (4) एस. सी.सी. 605 :

हम पहले ही यह उल्लेख कर चुके हैं कि कृष्णास्वामी जो संसद् सदस्य थे, ने न्यायमूर्ति सावंत समिति की कार्वाहियां अभिखंडित करने की प्रार्थना करते हुए उच्चतम न्यायालय के समक्ष 1992 की रिट याचिका सं. 149 फाइल की थी । इसके साथ-साथ ही, राज कंवर ने भी 1992 की रिट याचिका सं. 140 यह कथन करते हुए फाइल की थी कि न्यायमूर्ति सावंत समिति संविधान के अनुच्छेद 145(3) का उल्लंघन करती है ।

दोनों रिट याचिकाओं में कब कमेटी पर जुडीशियल एकाउंटेबिलिटी वाले मामले में दिए पूर्वतर निर्णयों को चुनौती दी गई थी और उक्त मामले में विनिश्चय किए गए बिंदुओं (मुद्दों) पर नए सिरे से विचार किए जाने की ईप्सा की गई थी ।

उच्चतम न्यायालय ने प्रारंभिक आधारों पर इन दलीलों को नामंजूर किया कि याचियों को कोई सुने जाने का अधिकार नहीं था । यह बहुमत का मत था । एक अल्पमत निर्णय भी था किन्तु बहुमत के निर्णय को देखते हुए इस पर चर्चा करना आवश्यक नहीं है ।

चतुर्थ निर्णय : लिली थामस बनाम अध्यक्ष, लोक सभा, 1993 (4) एस. सी. सी.234 :

याची सुश्री लिली थामस ने अनुच्छेद 32 के अधीन यह घोषणा किए जाने की ईप्सा करते हुए उच्चतम न्यायालय के समक्ष आवेदन किया कि न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी के विरुद्ध महाभियोग का प्रस्ताव जो न्यायाधीश के उनके पद से उन्हें हटाए जाने के लिए लोक सभा में प्रस्तुत किया गया है, अनुच्छेद 124(4) में अभिव्यक्ति "बहुमत से समर्थित" अर्थान्वयन करते हुए ऐसी रीति में लाया गया समझा जाना चाहिए कि कोई सदस्य जो मतगणना से प्रविरत रहा था उसके संबंध में यह समझा

जाए कि उसने प्रस्ताव का समर्थन किया है । यह भी दावा किया गया था कि उच्चतम न्यायालय अनुच्छेद 124(4) के निरसन के लिए सिफारिश कर सकता है क्योंकि यह काम करने योग्य नहीं रहा है और कार्य नहीं कर रहा है और यह एक उपयुक्त उपबंध द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए ।

याचिका खारिज की गई थी और उक्त संदर्भ में, उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि समावेदन के लिए कार्यवाहियां स्वरूप आंशिक तौर पर न्यायिक और आंशिक तौर पर राजनीतिक हैं । यह प्रतीत होता है कि कानूनी प्रक्रिया तब प्रारंभ होती है जब अध्यक्ष 1968 के अधिनियम के अधीन कार्यवाही करते हैं और तब समाप्त होती है जब अध्यक्ष द्वारा नियुक्त न्यायाधीशों की समिति अध्यक्ष को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करती है । तत्पश्चात् संसद् में प्रस्ताव पर वाद-विवाद और चर्चा और मतगणना प्रकृति में राजनीतिक है । मत देने के अधिकार में तटस्थ बने रहने का अधिकार भी विवक्षित है । इसलिए, वे सदस्य जो प्रविरत रहे थे उनके संबंध में यह नहीं माना जा सकता कि उन्होंने पद से हटाए जाने के लिए प्रस्ताव के पक्ष में मत डाला है ।

ये न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी से संबंधित चार मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित सांविधानिक सिद्धांत हैं और 2005 के विधेयक के उपबंधों पर चर्चा करते समय ध्यान में रखे जाने चाहिए ।

अध्याय 7

ब्रिटेन में पद से हटाए जाने की प्रक्रिया

इंग्लैण्ड और वेल्स में न्यायाधीशों के हटाए जाने के संबंध में उपबंध उनसे भिन्न हैं जो स्काटलैंड में लागू हैं । जहां तक इंग्लैण्ड और वेल्स में वरिष्ठ न्यायालयों के न्यायाधीशों का संबंध है, सुसंगत उपबंध सुप्रीम कोर्ट ऐक्ट, 1981 की धारा 11(3) में अंतर्विष्ट हैं । धारा 11(3) यह उपबंध करती है कि सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त व्यक्ति "हर मेजेस्टी द्वारा पार्लियामेंट के दोनों सदनों द्वारा उन्हें समावेदन प्रस्तुत किए जाने पर उनके द्वारा हटाए जाने की शक्ति के अध्यधीन 'सद्व्यवहार' के दौरान पद धारण करेगा ।" हाउस आफ लार्ड्स (साधारणतया लार्ड्स आफ अपील) में न्यायाधीशों को लागू एक समान उपबंध एडमिनिस्ट्रेटिव जूरिस्डिक्शन ऐक्ट, 1876 की धारा 6 में अंतर्विष्ट है । (प्रोफेसर शीमोन शेट्रीट द्वारा 'जजेज आन ट्रायल' में एक गहन चर्चा की गई है, (1976) अध्याय IV, भाग III पृष्ठ 87) ।

वर्तमान में कांस्टिट्यूशनल रिफार्म ऐक्ट, 2005 में वरिष्ठ न्यायालयों के न्यायाधीशों से अपील न्यायालयों के न्यायाधीशों तक के अनुशासन के संबंध में उपबंध हैं । यह अधिनियम इस अध्याय के पश्चात्वर्ती भाग में विस्तार से निर्दिष्ट किया जाएगा ।

<u>कामन ला : महाभियोग, रिट आफ स्काईरे फेसियास (scire facias) और पार्लियामेंट द्वारा समावेदन</u>

कामन ला में 'सद्व्यवहार' के दौरान एक पद का प्रदान किया जाना, जीवन पर्यन्त के लिए एक पद का सृजन करता है जो पद धारण करने वाले व्यक्ति की मृत्यु पर या "सद्व्यवहार" के भंग पर ही केवल पर्यवसित हो सकता है । (देखिए कोक आन लिटलेटन, पैरा 42क) । पद धारण करने वाला इस शर्त के अधीन पद धारण करता है कि वह सद्व्यवहार का व्यवहार करेगा । इस शर्त के भंग पर, अनुदाता पद पर्यवसित करने के लिए हकदार है । 'सद्व्यवहार' के दौरान पद धारण करने वाले व्यक्तियों को स्काईरे फेसियास की रिट द्वारा प्रारंभ हुई न्यायिक कार्यवाहियों द्वारा या दांडिक दोषसिद्धि पर पद से हटाया जा सकता है । इसके अतिरिक्त एडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस ऐक्ट, 1973 की धारा 12 के अधीन ऐसा न्यायाधीश जो त्यागपत्र देने में असमर्थ है, का पद चिकित्सीय प्रमाणपत्र के आधार पर लार्ड चांसलर द्वारा रिक्त किया जा सकता है ।

ऐक्ट आफ सेटलमेंट, 1700 से पूर्व, कामन ला के अधीन 'सद्व्यवहार' के दौरान धारित न्यायिक पद, लेटर्स पेटेंट ऐक्ट निरसन करने के लिए रिट द्वारा या दांडिक दोषसिद्धि पर प्रारंभ न्यायिक कार्यवाहियों द्वारा महाभियोग द्वारा पर्यवसित किया जा सकता है । (देखिए जिल्द 8, हाल्सबरी, ला आफ इंग्लैण्ड, पृष्ठ 680, चतुर्थ संस्करण, 1974) । तथापि, ऐक्ट आफ सेटलमेंट ने एक परिवर्तन किया और न्यायिक सेवावधि की सुरक्षा स्थापित की और उपबंध किया कि न्यायाधीश सद्व्यवहार के दौरान पद धारण करते हैं, "किन्तु पार्लियामेंट के दोनों सदनों के समावेदन पर उन्हें पद से हटाया जा सकेगा" , अर्थात् पार्लियामेंट के प्रत्येक सदन द्वारा न्यायाधीश के हटाए जाने के लिए पारित एक समावेदन पर जो क्राउन को प्रस्तुत किया जाता है जिसके आधार पर क्राउन विधिक रूप से न्यायाधीश को हटा सकेगा ।

प्रोफेसर शीलरात के अनुसार ऐक्ट आफ सेटलमेंट, 1700 के इस उपबंध का प्रभाव तीन शताब्दियों तक विवादपूर्ण बना रहा । एक मत यह था कि 1700 के अधिनियम ने न्यायिक सेवावधि की सुरक्षा स्थापित करने के द्वारा और समावेदन द्वारा हटाए जाने की नई तंत्र प्रणाली के द्वारा अधिनियम के पूर्व अभिभावी पद से हटाए जाने की सभी अन्य रीतियों का अपवर्जन किया जैसे महाभियोग और केवल चांसलर ही इस संबंध में कदम उठा सकता है । अन्य मत यह था कि अधिनियम समावेदन द्वारा एक अतिरिक्त अध्युपाय स्थापित करता है जो अवलंब लिया जा सकता है जब परिवाद किया गया कदाचार उन शर्तों का विधिक भंग गठित नहीं करता जिन पर पद धारण किया गया था (रिट आफ स्काइरे फेसियास की अपेक्षा करते हुए)।

ऐक्ट आफ सेटलमेंट, 1700 की उद्देशिका यह कथन करती है कि अधिनियम "क्राउन की शक्तियों को और सीमित करने के लिए एक अधिनियम था ।" इससे यह अर्थ निकलता है कि ऐक्ट आफ सेटलमेंट महाभियोग की शक्ति का अपवर्जन नहीं करता था जो कि पूर्वोत्तर विद्यमान थी । अधिनियम के पूर्व क्राउन लेटर्स पेटेंट ऐक्ट निरसन के लिए स्काईरे फेसियास की एक रिट फाइल करने के द्वारा या आपराधिक सूचना पर न्यायाधीश के विरुद्ध कार्यवाही कर सकता था । तथापि, प्रोफेसर शीमोन शेट्रीट के अनुसार (पृष्ठ 90-115) अधिनियम का सामान्यतया स्वीकृत निर्वचन यह था कि जबकि न्यायाधीशों को 'अच्छे व्यवहार' के दौरान पद धारण करना चाहिए और अच्छे व्यवहार के भंग के सिवाए क्राउन द्वारा हटाए नहीं जा सकते थे । स्काईरे फेसियास में स्थापित कार्यवाहियों

में पार्लियामेंट को पद से हटाए जाने की असीमित शक्ति प्राप्त थी । अधिनियम के शब्द यह दर्शित करते हैं कि धारा का प्रथम भाग 'अच्छे व्यवहार' के दौरान सेवावधि का उपबंध करता है जबकि द्वितीय भाग शब्द 'किन्तु' से प्रारंभ होता है और समावेदन द्वारा पद से हटाए जाने की शक्ति स्थापित करता है । यह शब्द 'किन्तु' 'अच्छे व्यवहार' और 'समावेदन' को एक दूसरे से अलग करता है । शब्दों का ऐसा उल्लेख प्रबलता से "अच्छे व्यवहार" के दौरान सेवावधि के परिणाम के रूप में 'समावेदन' द्वारा हटाए जाने की शक्ति के विरुद्ध है । निर्वचन यह है कि वहां पर पद से हटाए जाने की स्थायी रूप से स्वतंत्र और असीमित शक्ति है । इस प्रकार पार्लियामेंट तकनीकी भाव में 'अच्छे व्यवहार' की विचारणाओं तक सीमित नहीं है ।

प्रोफोसर शेट्रीट के अनुसार यह मत पार्लियामेंट में चर्चाओं द्वारा समर्थित है । इस प्रकार ऐक्ट आफ सेटलमेंट, 1700 के पश्चात् न्यायाधीश जो अच्छे सद्व्यवहार के दौरान पद धारण करेंगे किन्तु पार्लियामेंट में समावेदन द्वारा, महाभियोग द्वारा स्काईरे फेसियास या दांडिक दोषसिद्धि द्वारा पद से हटाए जा सकते हैं ।

ऐसा होने पर भी, यह यह स्पष्ट नहीं है कि क्या स्काईरे फेसियास या अन्य न्यायिक कार्यवाहियों द्वारा आज भी न्यायिक रूप से पद से हटाया जाना संभव है । सामान्यतया आज स्वीकृत मत यह है और संभवतया शताब्दियों से यही मत रहा है, कि न्यायाधीश समावेदन पर के सिवाए पद से नहीं हटाए जा सकते हैं । प्रोफेसर शेट्रीट ने यह कथन किया है कि 1976 में उनकी पुस्तक के प्रकाशन के पूर्व 140 वर्षों में सामान्यतया यह स्वीकृत स्थिति रही है कि समावेदन पद से हटाए जाने की अनन्य तंत्र प्रणाली है । यह सांविधानिक परिपाटी पर आधारित है । प्रोफेसर हूड फिलिप्स का यह मत था कि अब क्राउन के लिए यह आज्ञापक था कि वह समावेदन की परिपाटी का पालन करे। जबकि न्यायाधीश 'सद्व्यवहार' के दौरान पद धारण करते हैं, पार्लियामेंट को न केवल कदाचार के लिए पद से हटाए जाने की असीमित शक्ति प्राप्त है अपितु किसी अन्य कारण के आधार पर भी प्राप्त है । इस प्रकार पार्लियामेंट कि शक्ति किन्हीं कानूनी परिसीमाओं के अध्यधीन नहीं है ।

ब्रिटेन में यह भी मत है कि समावेदन के लिए प्रस्ताव लाए जाने पर पार्लियामेंट की एक कार्यवाही न्यायालयों की अधिकारिता समाप्त कर देती है ।(मेरिक्स बनाम हीथकोट - एमोरी, (1955 (1) चांसरी पृष्ठ 567) ।

पार्लियामेंट ने तब हस्तक्षेप नहीं किया है जब एक न्यायाधीश के विरुद्ध न्यायालय-पद्धति और प्रक्रिया के संबंध में एक विरुद्ध परिवाद प्राप्त होता है या जब विनिश्चय अपील न्यायालय में उलट दिया गया है । ऐसी स्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं जिनमें न्यायिक व्यवहार एक आपराधिक अपराध से लघु था और न्यायाधीशों के न्यायिक कर्तव्यों के परे था और ऐसी स्थितियों में, एक न्यायाधीश के आचरण पर पार्लियामेंट द्वारा चर्चा की गई है और तब न्यायालय में एक कार्यवाही की विषयवस्तु बन जाता है । इस प्रकार जब एक न्यायाधीश अपनी प्राइवेट क्षमता में किसी अन्य व्यक्ति पर आक्षेप करता है जिससे कोई संसद् सदस्य एक समावेदन लाने के लिए उत्प्रेरित होता है और बाद में यदि अपकृत्य की एक कार्रवाई न्यायाधीश के विरुद्ध की जाती है तब न्यायालय को पूरी अधिकारिता होगी ।

ऐक्ट आफ सेटलमेंट, 1700 के पूर्व कामन ला के अधीन, क्राउन न्यायाधीश को निलंबित कर सकता था यद्यपि, वे 'सद्व्यवहार' के दौरान पद धारण करते हों । ऐसे दो रिकार्ड किए गए मामले हैं जहां क्राउन ने इस शक्ति का प्रयोग किया, जैसे जज जॉन वाल्टर और जज जॉन आर्चर के मामलों में । इन दोनों मामलों में न्यायाधीश अपनी परिलब्धियों को सतत रूप से प्राप्त करते रहे थे और उनकी हकदारी भी बनी रही थी । निलंबन से यह अभिप्रेत था कि वे अपने पदीय कर्तव्यों को नहीं कर सकते थे । प्रोफ्सर शेट्रीट ने यह कथन किया कि (पृष्ठ 111) ऐक्ट आफ सेटलमेंट, 1700 ने न्यायाधीशों के संबंध में इस विशेषाधिकार शक्ति को समाप्त कर दिया है । उन्होंने यह कथन किया कि यद्यपि विधि में यह नितांत स्पष्ट है कि एक सुप्रीम कोर्ट न्यायाधीश निलंबित नहीं किया जा सकता है, पद्धति में, उसे एक दांडिक विचारण के लंबित रहने के दौरान या नैतिक दोषारोपण अंतर्वलित करने वाले कदाचार के लिए पार्लियामेंट के समक्ष कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान छुट्टी लेने की प्रत्याशा निश्चित रूप से की जाएगी । यह आवश्यक है क्योंकि उसके ऊपर गंभीर अभ्यारोपण के होते हुए भी पहले की तरह ही प्रायिक तौर पर एक न्यायाधीश के रूप में न्याय करने का कार्य करने को उसे अनुज्ञप्त करने से जनता का विशेष रूप से उसके समक्ष न्यायिक कार्यवाहियों की निष्पक्षता में विश्वास खंडित होने की संभाव्यता है और सामान्य रूप से न्यायिक प्रक्रिया में भी उनका विश्वास खंडित होने की संभाव्यता है । (जज केरनिच के. एस. 1825, जिल्द 13, पार्लियामेंटरी डिबेट्स, 2000 सीरीज़, 1138 आर्टि. 1149) ।

प्रोफेसर शेट्रीट ने यह कथन किया है कि (पृष्ठ 112) की यदि दांडिक कार्यवाहियां नैतिक दोषारोपण, हिंसा या बेईमानी अंतर्वलित करने वाले एक अपराध के लिए एक न्यायाधीश के विरुद्ध संस्थित की जाती हैं और न्यायाधीश विचारण के लंबित रहने के दौरान छुट्टी लेने से इनकार करता है या पद से त्यागपत्र देने से इनकार करता है, तब सामान्यतया यह विश्वास किया जाता है कि प्रशासनिक व्यवस्थाएं यह सुनिश्चित करने के लिए की जाएंगी कि उसकी सूची में कोई केस न सौंपे जाएं । यह संभवतया प्रभाग के अध्यक्ष द्वारा क्लर्क इंचार्ज आफ दि काज़ लिस्ट को अनुदेश देते हुए किया जाएगा कि वह उक्त विशिष्ट न्यायाधीश के लिए कोई सूची तैयार न करें । समान व्यवस्थाएं प्रकट रूप से वहां भी की जाएंगी यदि कोई न्यायाधीश के वृद्धावस्था या रुग्णता के कारण अंग कार्य करना बंद कर देते हैं किन्तु वह सेवानिवृत्त होने से इनकार कर देता है । 1950 के दशक में किसी न्यायाधीश पर दबाव डाले जाने पर भी जब वह उसका अनुसरण नहीं करता था तब उसे कोई कार्य नहीं सौंपा जाता था और अन्ततः उसे सेवानिवृत्त कर दिया जाता है । प्रोफेसर शेट्रीट ने अभिलेख पर न लाया गया मामला संयुक्त राज्य अमेरिका में चांडलर्स वाले मामले की याद दिलाता है (1969) 398 यू. एस. 74 (देखिए (1965) 382 यू. एस. 1003) वाला मामला भी), जहां संघीय न्यायाधीश ने असफल रूप से जुडीशियल काउंसेल के आदेश को चुनौती दी जिसने यह निदेश दिया था कि ऐसा कोई भी मामला नहीं दर्शाया जाना चाहिए जो कि उसे सौंपा गया हो जिनमें पूर्व में सूचीबद्ध मामले भी सम्मिलित थे ।

तथापि, प्रोफेसर शेट्रीट ने यह कथन किया कि (पृष्ठ 113) निस्संदेह न्यायाधीश अपनी न्यायिक शक्ति को कायम किए हुए हो यद्यपि उसे मामले न सौंपे गए हों और यदि कोई व्यथित व्यक्ति उसके कक्ष में आता है या घर में आता है, या गली में सड़क पर मिलता है और एक व्यादेश के लिए प्रार्थना करता है, तब उसे उस व्यक्ति को उचित न्यायिक उपचार प्रदान करने की पूरी अधिकारिता है । न्यायाधीश अपने पद का शीर्षक धारण किए रहता है और उसे तब भी उसका वेतन प्राप्त होता है । एकमात्र कार्य जो कि वह प्रशासनिक व्यवस्थाओं के कारण नहीं कर सकता, वह उसकी सूची में मामलों की सुनवाई करने के लिए न्यायपीठ में नियमित रूप से बैठ पाना है । न तो क्लर्क और न ही प्रभाग के अध्यक्ष को उसे न्यायिक कार्य सौंपने का कोई कानूनी कर्तव्य है यदि न्यायाधीश को मामले आबंटित किए जाने की मांग करने का कोई अधिकार नहीं है और प्रभाग के

अध्यक्ष और क्लर्क को उसे मामले सौंपने का कोई कर्तव्य नहीं है, न्यायाधीश न्यायिक उपचार के लिए हकदार नहीं है । यह इस कारण से है कि क्योंकि ऐसा व्यक्ति जिसके साथ अन्याय नहीं हुआ है वह एक न्यायिक उपचार के लिए हकदार नहीं है । इसी भांति, न्यायाधीश कोई न्यायिक उपचार प्राप्त नहीं कर सकता यदि उसे केवल अपने कक्ष में सुनवाई के लिए अत्यन्त ही छोटे मामले सौंपे गए थे । यह ब्राइटोन काउंसिल के एक सदस्य के मामले में एक अनुरूपता है जिसका नाम सभी समितियों से हटा दिया गया था । (मैंटोन बनाम ब्राइटोन,1951 (2) क्वींस बैंच 393) ।

यह कामन ला के अधीन और ऐक्ट आफ सप्लीमेंट, 1700 और सुप्रीम कोर्ट ऐक्ट, 1981 के पश्चात् की स्थिति है ।

ब्रिटेन में हाल ही की गतिविधियां

लार्ड चांसलर ने जुलाई, 1994 में यह कथन किया कि "कदाचार" में निम्न सम्मिलित हो सकते हैं : "नशे में गाड़ी चलाने के लिए दोषसिद्धि, हिंसा, बेईमानी या अनैतिक आचरण अंतर्वलित करने वाला कोई अपराध और धार्मिक या रंगभेद के आधारों पर अपराध कारित करने की संभाव्यता वाले आचरण के संबंध में साबित परिवाद या जो यौन उत्पीड़न गठित करता हो" सम्मिलित हैं । (देखिए एड्डी एण्ड डर्बीशायर आन दि इंगलिश लीगल सिस्टम, सातवां संस्करण, 2001, पृष्ठ 289)।

आज तक ब्रिटेन में महाभियोग की प्रक्रिया या हटाए जाने के लिए समावेदन के सिवाए न्यायाधीशों के विरुद्ध परिवाद करने के लिए कोई प्रारूपिक कार्यप्रणाली नहीं है । । कभी-कभी अपील न्यायालयों ने न्यायाधीशों की अनुचित व्यवहार के लिए आलोचना की है जैसे सो जाना, व्यग्रतापूर्ण संकेत करना और अत्यधिक रूप से हस्तक्षेप करना या असमर्थता के लिए और न्यायाधीश द्वारा विचारण किए जाने वाले मामले के संबंध में प्रेस में टीका-टिप्पणी करना । (देखिए रोडनी ब्राजियर कांस्टिट्यूशनल प्रैक्टिस : दि फाउंडेशन आफ ब्रिटिश गवर्नमेंट, तृतीय संस्करण, 1999, पृष्ठ 289) ।

जुडीशियल कारस्पोंडेंस यूनिट एण्ड प्रोटोकाल : 1998

1998 में लार्ड चांसलर ने न्यायाधीशों के विरुद्ध परिवादों पर कार्यवाही करने के लिए विनिर्दिष्ट

दायित्वों के साथ एक जुडीशियल कारस्पॉडेंस यूनिट का गठन किया था । उक्त यूनिट लार्ड चांसलर के विभाग में जुडीशियल ग्रुप की परिधि के भीतर है । न्यायालय द्वारा मामलों पर कार्यवाही किए जाने के संबंध में परिवादों पर सामान्यतया कोर्ट्स सर्विस की कस्टम्स सर्विस यूनिट द्वारा कार्यवाही की जाती है । कोर्ट्स सर्विस, लार्ड चांसलर के विभाग का एक कार्यपालक अभिकरण है । (देखिए चाऊ पाक – क्वान, रिसर्च एण्ड लाइब्रेरी डिवीजन, पार्लियामेंटरी कौंसिल सेक्रेटेरिएट, हांग कांग, 2002 द्वारा लिखित "मैकेनिज्म फार हैंडलिंग कम्पलेन्ट्स अगेंस्ट जजेज" है) ।

हाल ही के वर्षों में अन्वेषण की बढ़ती हुई जटिल और गहन रीति को देखते हुए उसकी बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए यूनिट का विस्तार किया गया है । 13 सदस्यों के स्टाफ का लगभग 600 हजार पाउंड्स खर्च होता है । वर्ष 2002-2003 में उसकी खर्चों के लिए बजट आबंटन 53 हजार पाउंड्स था ।

न्यायाधीशों के विरुद्ध परिवादों पर कार्यवाही करते समय यूनिट द्वारा एक प्रोटोकाल प्रयुक्त किया जाता है । लार्ड चांसलर केवल "वैयक्तिक आचरण" के संबंध में परिवादों पर विचार करता है और न कि न्यायिक विषयों के संबंध में । शब्द "वैयक्तिक आचरण" से न्यायाधीश का वादकर्ताओं, प्रतिवादियों या अन्यों के साथ न्यायालय में व्यवहार और न्यायाधीश का मामले पर चर्चा करते समय व्यवहार या रीति अभिप्रेत है । वैयक्तिक आचरण में ऐसे विषय सम्मिलित हो सकेंगे जैसे विचारण के अनुक्रम के दौरान न्यायाधीश द्वारा अनुचित व्यक्ति या असम्माननीय टिप्पणियां किया जाना जो कि मामले में उसके द्वारा दिए गए विनिश्चयों का भाग गठित नहीं करते और न्यायालय के बाहर न्यायाधीश द्वारा किया गया व्यवहार अनुचित हो और न्यायपालिका के सम्मान को खंडित करने की प्रवृत्ति रखता हो ।

अभिकथित अशिष्टता, मामले पर कार्यवाही करने के दौरान विभेद या पक्षपात करने के संबंध में परिवाद न्यायिक अपील प्रक्रियाओं के प्रति उत्तरदायी हो सकेंगे, किन्तु न्यायिक आचरण विशेष रूप से जहां अभिकथन यह है कि रंगभेद के आधार पर विभेद का कृत्य या यौन आधारों पर विभेद के कृत्य ने परिवादी के प्रति अपराध कारित किया है, के संबंध में परिवादों पर भी कार्यवाही की जा सकेगी ।

परिवाद परिवादी के चयन और परिवाद की प्रकृति के आधार पर सीधे ही यूनिट को या पार्लियामेंट के सदस्यों की मार्फ़त भेजे जा सकेंगे । प्रारंभ में एक संवीक्षा किए जाने की प्रक्रिया अंगीकृत की जाती है । न्यायिक विनिश्चयों की गुणता से संबंधित परिवाद खारिज किए जाएंगे । उन मामलों में भी परिवाद स्वीकार किया जाना इनकार किए जाएंगे यदि परिवाद की गई सुनवाई लम्बे अरसे पूर्व हुई थी और संबंधित न्यायाधीश से मामले को स्मरण करने की युक्तियुक्त रूप से प्रत्याशा नहीं की जा सकती क्योंकि इसकी सुनवाई दो वर्ष से भी अधिक पहले हुई थी ।

अन्वेषण के प्रथम प्रक्रम पर संबंधित न्यायाधीश के समक्ष टिप्पणियों के लिए परिवाद रखने की परिवादी की रजामंदी की ईप्सा की जाती है जब तक परिवादी की यह रजामंदी प्राप्त नहीं होती, अन्वेषण जारी नहीं रहेगा और परिवाद खारिज कर दिया जाएगा । यदि सहमति दी गई है, तब एक पत्र संबंधित न्यायाधीश को 10 दिनों के भीतर अपनी टिप्पणियां करने के लिए कहते हुए उसे सम्बोधित किया जाएगा । यदि परिवाद भ्रष्टाचार, यौन या रंगभेद के आधार पर पक्षपात या आपराधिक गतिविधि अंतर्वलित करने वाली गंभीर प्रकृति का है तब लार्ड चांसलर परिवाद को अधिसूचित करेगा । एक बार अन्वेषण पूरा होने पर परिवाद का मूल्यांकन किया जाता है जब तक कि परिवाद अत्यन्त ही तुच्छ प्रकृति या स्पष्ट रूप से अनुचित न हो । अन्य गंभीर मामले लार्ड चांसलर को भेजे जाते हैं । परिवादी को अन्वेषण के प्रक्रम के संबंध में सूचित किया जाता है ।

जहां तक अनुशासनिक कार्यवाही का संबंध है लार्ड चांसलर आचरण के स्तर तय करता है । लार्ड चांसलर की पदच्युति करने की शक्तियां कदाचार या असमर्थता के आधार पर उच्च न्यायालय के स्तर से नीचे के न्यायाधीशों तक सीमित है । एक औपचारिक सार्वजनिक भर्त्सना लार्ड चांसलर द्वारा पदच्युति किए जाने से थोड़ा कम, एक बड़ा दण्ड है ।

1980 से एक प्ररूपिक परिवाद और अनुशासनिक प्रणाली की स्थापना करने के लिए अनेक मांगे की गई थीं । एक प्रभावशाली ग्रुप जिसे "जस्टिस" कहा जाता है ने 1992 में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी कि वर्तमान में अप्ररूपिक व्यवस्थाओं से कुछ अधिक व्यवस्थाएं किए जाने की आवश्यकता है ।

नवीनतम कांस्टिट्यूशनल रिफार्म ऐक्ट, 2005

हाल ही में कांस्टिट्यूशनल रिफार्म्स ऐक्ट, 2005 पारित किया गया था । अध्याय 4 में चार भाग हैं । भाग 1 विधिसम्मत शासन के संबंध में है; भाग 2 लार्ड चांसलर के कार्यालय को उपांतरित

करने की व्यवस्थाओं के संबंध में है, भाग 3 सुप्रीम कोर्ट के संबंध में है, भाग 4 नियुक्तियों और अनुशासन के संबंध में है । भाग 4 का अध्याय 1 आयोग और आम्बड्समैन के संबंध में है । अध्याय 2 नियुक्तियों के संबंध में है और अध्याय 3 अनुशासन के संबंध में है ।

2005 के अधिनियम के पूर्व, लार्ड चांसलर उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से निचले न्यायालय के न्यायाधीशों को हटा सकते थे किन्तु वरिष्ठ न्यायालयों (सुपीरियर कोर्ट्स) के न्यायाधीश केवल समावेदन प्रक्रिया द्वारा ही हटाए जा सकते थे ।

किन्तु, 2005 के अधिनियम के भाग 4 के अध्याय 3 के अधीन लार्ड चांसलर लार्ड चीफ जस्टिस से परामर्श करने के पश्चात् अनुसूची 14 में सूचीबद्ध न्यायाधीशों को हटा सकते थे । लार्ड चीफ जस्टिस एक सलाह, एक प्रारूपिक चेतावनी जारी कर सकते हैं या अनुशासनिक प्रयोजनों के लिए धिग्दंड दे सकते हैं । वह न्यायाधीश को निलंबित भी कर सकते थे । लार्ड चीफ जस्टिस एक जांच किए जाने के लिए किसी "न्यायिक पदधारी" को नामनिर्दिष्ट कर सकते थे । किन्तु, जहां तक पद से हटाए जाने का संबंध है, समावेदन के द्वारा प्रक्रिया बनी रही थी ।

अध्याय 3 अनुशासनिक शक्तियों के संबंध में है, और उसमें धारा 108 से धारा 121 अंतर्विष्ट हैं । धारा 108 निम्न प्रकार है :

"108. अनुशासनिक शक्तियां :

(1) लार्ड चांसलर की अनुसूची 14 में सूचीबद्ध किसी व्यक्ति को पद से हटाने की कोई शक्ति केवल तभी प्रयोग की जा सकती है जब लार्ड चांसलर ने विहित प्रक्रियाओं और इसी भांति (किन्हीं अन्य अपेक्षाओं जिनके शक्ति अध्यधीन है) का पालन किया हो ।

(2) लार्ड चीफ जस्टिस निम्नलिखित शक्तियों में से किसी का प्रयोग कर सकेगा किन्तु केवल तभी जब लार्ड चांसलर सहमत हों और विहित प्रक्रियाओं का पालन किया गया हो ।

(3) लार्ड चीफ जस्टिस अनुशासनिक प्रयोजनों के लिए एक न्यायिक पदधारी को एक प्रारूपिक सलाह; या एक प्रारूपिक चेतावनी या धिग्दंड दे सकते हैं । (किन्तु यह धारा उसे निर्बन्धित नहीं करती जो कि वह अनौपचारिक रूप से या अन्य प्रयोजनों के लिए

कर सकते हैं या जहां कोई सलाह या चेतावनी एक विशिष्ट पदधारी को सम्बोधित नहीं की गई है) ।

(4) वह व्यक्ति को उसके न्यायिक पद से किसी भी अवधि के लिए निलंबित कर सकेंगे जिसके दौरान निम्नलिखित लागू होता है :–

(क) व्यक्ति दांडिक कार्यवाहियों के अध्यधीन है;

(ख) व्यक्ति दांडिक कार्यवाहियों में अधिरोपित एक दंडादेश भोग रहा है;

(ग) व्यक्ति को एक अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और अपराध गठित करने वाले आचरण के संबंध में विहित प्रक्रियाओं के अध्यधीन है ।

(5) वह ऐसे व्यक्ति को न्यायिक पद से किसी भी अवधि के लिए निलंबित कर सकेंगे, यदि –

(क) व्यक्ति को एक दांडिक अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है,

(ख) विहित प्रक्रियाओं के अधीन यह अवधारित किया गया है कि व्यक्ति को पद से हटाया जाए, और

(ग) लार्ड चीफ जस्टिस को लार्ड चांसलर की सहमति के साथ यह प्रतीत होता है कि न्यायपालिका में विश्वास बनाए रखने के लिए निलंबन आवश्यक है।

(6) वह ऐसे व्यक्ति को एक वरिष्ठ न्यायाधीश (सीनियर जज) के पद से किसी भी अवधि के लिए निलंबित कर सकेंगे जिसके दौरान व्यक्ति एक समावेदन की कार्यवाहियों के अध्यधीन है ।

(7) वह अनुसूची 14 में सूचीबद्ध पदधारी को उस अवधि के लिए निलंबित कर सकेंगे जिसके दौरान व्यक्ति –

(क) एक अपराध के लिए अन्वेषणाधीन है, या

(ख) विहित प्रक्रियाओं के अध्यधीन है ।

(8) जब इस धारा के अधीन व्यक्ति को किसी पद से निलंबित किया जाता है, वह उस पदके

किसी भी कार्य को नहीं कर सकेगा (किन्तु पदधारी के रूप में उसके अन्य अधिकार प्रभावित नहीं होते हैं) ।

इसलिए, धारा 108(3) से (7) के अधीन लार्ड चीफ जस्टिस 'न्यायिक पदधारियों' अर्थात् सीनियर जज और अनुसूची 14 में सूचीबद्ध किए गए न्यायाधीशों के विरुद्ध उपधारा (3) में उल्लेख किए गए विभिन्न प्रकार के आदेशों को पारित कर सकते हैं । 'सीनियर जजेज' से मास्टर आफ रूल्स, प्रेसीडेंट क्वींस बैंच, प्रेसीडेंट फैमिली डिवीजन, चांसलर आफ हाई कोर्ट, लार्ड जस्टिस आफ अपील और हाई कोर्ट का प्यूइसने जज, अभिप्रेत हैं । (हाऊस आफ लार्ड्स के जजेज वस्तुतः लार्ड चीफ जस्टिस द्वारा किए जाने वाले अध्युपायों के अधीन नहीं आते हैं) ।

निलंबन की शक्ति उस समय भी अवलंब ली जा सकती है जब दांडिक कार्यवाहियां या समावेदन कार्यवाहियां लंबित हों ।

धारा 119 लार्ड चीफ जस्टिस के धारा 100(3) से (7) के अधीन कर्तव्य एक 'न्यायिक पदधारी' को प्रत्यायोजित किए जाने का उपबंध करती है और निम्न प्रकार है :

"धारा 119. कर्तव्यों का प्रत्यायोजन :

(1) लार्ड चीफ जस्टिस धारा 109(4) में यथा परिभाषित न्यायिक पदधारी को सुसंगत धारा के अधीन अपने किन्हीं कर्तव्यों का प्रयोग करने के लिए नामनिर्दिष्ट कर सकेगा :

(2) सुसंगत धाराएं निम्न हैं :

(क) धारा 108(3) से (7);

(ख) धारा 111(2);

(ग) धारा 112;

(घ)धारा 116(3)(ख)"

'न्यायिक पदधारी' को धारा 109(4) में परिभाषित किया गया है । (नीचे देखिए) ।

इसलिए यह देखा जाता है कि लार्ड चीफ जस्टिस धारा 108(3) से (7) के अधीन अन्वेषण के कर्तव्यों को एक अन्य 'न्यायिक पदधारी' को प्रत्यायोजित कर सकता है ।

इसलिए, जांच केवल समकक्ष व्यक्तियों द्वारा ही की जा सकती है और अंतिम विनिश्चय लार्ड चीफ जस्टिस द्वारा किए जाते हैं ।

धारा 109 "अनुशासनिक शक्तियां : निर्वचन" के संबंध में है और निम्न प्रकार है :

धारा 109 "अनुशासनिक शक्तियां" : निर्वचन :

(1) इस धारा का, धारा 108 के प्रयोजनों के लिए प्रभाव है ।

(2) ऐसा व्यक्ति दांडिक कार्यवाहियों के अध्यधीन होता है यदि ब्रिटेन के किसी भाग में यदि उसके विरुद्ध एक अपराध के लिए कार्यवाहियां प्रारंभ हुई हैं और समाप्त नहीं हुई हैं और वह समय जब कार्यवाहियां प्रारंभ हुई हैं और समाप्त हुई हैं, इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए ऐसे समय हैं जो कि विहित किए गए हों ।

(3) ऐसा व्यक्ति उस समय से एक समावेदन के लिए कार्यवाहियों के अध्यधीन होता है जब व्यक्ति को उसके पद से हटाने के लिए एक समावेदन के लिए संसद् के प्रत्येक सदन में एक प्रस्ताव की सूचनी दी जाती है जो निम्नलिखित दशाओं के सबसे पहले घटित होने के अध्यधीन होती है –

क. या तो सूचना (नोटिस) वापस ले ली जाती है;

ख. या प्रस्ताव में ही संशोधन किया जाता है जिससे कि यह व्यक्ति को उसके पद से हटाने के लिए समावेदन का एक प्रस्ताव और अधिक नहीं बना रहता है;

ग. या तो प्रस्ताव वापस ले लिया जाता है, व्यपगत हो जाता है या इस पर असहमति व्यक्त की जाती है;

घ. जहां एक समावेदन प्रत्येक सदन द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, प्रत्येक सदन को समावेदन के उत्तर में हर मेजेस्टी का एक संदेश सुनाया जाता है ।

(4) "जुडीशियल आफिस" से निम्न अभिप्रेत है –

क. सीनियर जज का पद, या

ख. अनुसूची 14 में सूचीबद्ध किया गया एक पद;

और " न्यायिक पदधारी" से एक न्यायिक पदधारण करने वाला व्यक्ति अभिप्रेत है ।

(5) "सीनियर जज" से इनमें से कोई अभिप्रेत है –

क. मास्टर आफ दि रोल्स;

ख. प्रेसीडेंट आफ दि क्वींस बैंच डिवीजन;

ग. प्रेसीडेंट आफ दि फैमिली डिवीजन;

घ. चांसलर आफ दि हाई कोर्ट;

ङ. लार्ड जस्टिस आफ अपील;

च. हाई कोर्ट का प्यूइस्ने जज ।

(6) " दंडादेश" में जुर्माने से भिन्न कोई दण्ड सम्मिलित है ।(और " दण्ड भोगना" का तदनुसार पठन किया जाना चाहिए) ।

(7) वे समय, जब व्यक्ति धारा 108(4) या (7) के प्रयोजन के लिए विहित प्रक्रियाओं के अध्यधीन आ जाता है या प्रविस्त हो जाता है, ऐसे समय हैं जो विहित किए जा सकेंगे ।

(8) "एक अपराध के लिए अन्वेषणाधीन" का ऐसा अर्थ अभिप्रेत होगा जो विहित किया जाए।

अनुसूची 14 : अनुसूची 14 विभिन्न अन्य पदों को निर्दिष्ट करती है जिनसे हम संबंधित नहीं है । धारा 115 प्रक्रिया के संबंध में विनियमों पर चर्चा करती है और यह कथन करती है कि लार्ड चीफ जस्टिस लार्ड चांसलर की सहमति से, अन्वेषण में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया के लिए और किसी व्यक्ति द्वारा न्यायिक पदधारियों द्वारा किए गए कदाचार के अभिकथनों का अवधारण करने के लिए विनियम बना सकेंगे । धारा 116 विनियमों की अंतर्वस्तुओं पर चर्चा करती है । धारा 115 और 116 निम्न प्रकार हैं :

" धारा 115. प्रक्रियाओं के संबंध में विनियम :

लार्ड चीफ जस्टिस लार्ड चांसलर की सहमति से प्रक्रियाओं के लिए उपबंध करते हुए विनियम बना सकेंगे जो कि निम्न में अनुसरण किए जाने हैं –

क. किसी व्यक्ति द्वारा न्यायिक पदधारियों द्वारा कदाचार किए जाने के संबंध में किए गए अभिकथनों का अन्वेषण और अवधारण ;

ख. धारा 110 से धारा 112 के अधीन पुनर्विलोकन और अन्वेषण (जिनमे आवेदन या निर्देश करना सम्मिलित है) ।

धारा 116. विनियमों की अंतर्वस्तुएं ;

(1) धारा 115(क) के अधीन विनियमों में निम्नलिखित में से किसी के संबंध में उपबंध सम्मिलित हो सकेगा –

(क) वे परिस्थितियां जिनमें अन्वेषण एक परिवाद किए जाने के आधार पर या अन्यथा के आधार पर किया जाना चाहिए या किया जा सकेगा;

(ख) परिवाद पर अन्वेषण किए जाने के पूर्व परिवादी द्वारा उठाए जाने वाले कदम ;

(ग) अन्वेषणाधीन पदधारी द्वारा या परिवादी या अन्य व्यक्ति द्वारा उठाए जाने वाले कदमों सहित एक अन्वेषण का किया जाना;

(घ) समय सीमा में वृद्धि किए जाने के लिए कोई कदम उठाए जाने और प्रक्रियाओं के लिए समय सीमा;

(ङ) वे व्यक्ति जिनके द्वारा अन्वेषण या एक अन्वेषण का भाग किया जाना है;

(च) अन्वेषणाधीन पदधारी या किसी अन्य व्यक्ति के संबंध में लार्ड चीफ जस्टिस लार्ड चांसलर द्वारा अवधारित किए जाने वाले विषय;

(छ) अन्वेषणों के अभिलेखों के संबंध में अध्यपेक्षाएं;

(ज) संसूचनाओं या कार्यवाहियों की गोपनीयता के संबंध में अध्यपेक्षाएं;

(झ) किसी व्यक्ति को सूचना या इसके उपबंध के संबंध में प्रकाशित करने संबंधी अध्यपेक्षाएं ।

(2) विनियम –

(क) विहित प्रक्रियाओं के अनुसरण में किए गए निष्कर्षों के अनुसार धारा 108 के अधीन कर्तव्यों के प्रयोग में या उक्त धारा की उपधारा (1) में वर्णित कर्तव्यों के संबंध में एक विनिश्चय किए जाने की अपेक्षा कर सकेंगे;

(ख) यह अपेक्षा कर सकेंगे कि लार्ड चीफ जस्टिस या लार्ड चांसलर द्वारा उन कर्तव्यों का प्रयोग करते समय या उनका प्रयोग करने से पूर्व उनके द्वारा विहित कदम उठाए जाएं ।

(3) जहां धारा 115(क) के अधीन विनियम अन्वेषणाधीन पदधारी पर या एक परिवादी पर कोई अध्यपेक्षा अधिरोपित करते हैं, वहां अध्यपेक्षा का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति ऐसी प्रक्रियात्मक शास्ति यदि कोई हो के दायित्व से भिन्न दायित्व उपगत नहीं करता है । (जिनमें निलंबन या परिवाद का खारिज किया जाना सम्मिलित हो सकेगा) –

(क) जो कि विनियमों द्वारा विहित की जा सकेगी, या

(ख) जो लार्ड चीफ जस्टिस और लार्ड चांसलर द्वारा या उनमें से किसी के द्वारा इस प्रकार विहित उपबंधों के अनुसार अवधारित की जा सकेगी ।

(4) धारा 115 के अधीन विनियम –

(क) कोई विहित अध्यपेक्षा लागू न करने के संबंध में उपबंध कर सकेंगे यदि लार्ड चीफ और जस्टिस लार्ड चांसलर इस पर सहमति व्यक्त करते हैं ;

(ख) विभिन्न प्रयोजनों के लिए विभिन्न उपबंध बना सकेंगे ।

(5) इस धारा की कोई भी बात धारा 115 की व्यापकता को सीमित नहीं करेगी ।

यह यू. के. कांस्टिट्यूशनल रिफार्म ऐक्ट, 2005 के सुसंगत उपबंध हैं ।

अध्याय 8

महाभियोग और समावेदन प्रक्रिया भिन्न है

महाभियोग

पद से हटाने के लिए महाभियोग कार्यवाही, जो कि विधानमण्डल द्वारा किया गया विचारण है, और न्यायाधीश को पद से हटाने के लिए दोनों सदनों द्वारा हीज और हर मजेस्टी को किए गए समावेदन के बीच बहुत फर्क है । इस संबंध में शीमोन शीट्रीट द्वारा लिखित पुस्तक 'जजिस आन ट्रायल' (1976) के भाग - 3 के अध्याय 5 और 6 में चर्चा है । यह पहलू महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत के संविधान में केवल राष्ट्रपति (अनुच्छेद 56, 61) के मामले में "महाभियोग" शब्द का प्रयोग किया गया है । उप-राष्ट्रपति के मामले में उन्हें राज्यसभा के संकल्प द्वारा पद से हटाया जा सकता है (अनुच्छेद 67(ख)), उपसभापति के मामले में राज्यसभा के संकल्प द्वारा (अनुच्छेद 90(ग)) उन्हें हटाया जा सकता है, लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के मामले में उन्हें लोकसभा के संकल्प (अनुच्छेद 94(ग)) द्वारा पद से हटाया जा सकता है तथा उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के मामले में उन्हें संसद के प्रत्येक सदन द्वारा राष्ट्रपति को किए गए समावेदन स पद से हटाया जा सकता है (अनुच्छेद 124, 125 और 217) । इस प्रकार, महाभियोग चलाकर, संकल्प पारित करके या समावदेन द्वारा पद से हटाए जाने के बीच फर्क है ।

महाभियोग को "महापराध और लघुपराध" के संबंध में विचारण के लिए आरक्षित किया गया है । वास्तव में, महाभियोग विधानमंडल द्वारा किया जाने वाला ऐसा विचारण है जिसमें हाउस आफ कामन अभियोजक होता है और हाउस आफ लार्डस उच्च न्यायालय और ज्यूरी के कृत्यों का प्रयोग करता है तथा निष्कर्ष निकालकर दंडादेश अधिरोपित करता है । (मे की पार्लियामेंटरी प्रेक्टिस 39, 17 वां संस्करण, 1964) । महाभियोग असाधारण अपराध और असाधारण अपराधियों के लिए आरक्षित है किंतु सभी व्यक्ति चाहे वह कुलीन हो या सामान्य व्यक्ति हो, को किसी भी अपराध के लिए अभियोजित किया जा सकता है । इंग्लैंड में क्राउन के विरुद्ध आंदोलन में महाभियोग संसद् के पास एक राजनैतिक हथियार था । उपापराध के अंतर्गत शासकीय अवचार जैसे कि कार्य की अवहेलना, शक्ति का दुरुपयोग, अधिकारों का दमन या निधियों का दुरुपयोग सम्मिलित हैं । इसके

अंतर्गत ऐसे कृत्य भी आते हैं जिन्हें संसद् अपने परमाधिकारों पर अधिक्रमण मानती है और इसके अंतर्गत भ्रष्टाचार, विध्वंसकारी क्रियाकलाप और राजद्रोह भी सम्मिलित हैं । क्राउन अपने परमाधिकार का प्रयोग करके अर्थात् संसद् के सत्र का पर्यवसान या किसी तरह उसका विघटन करके महाभियोग कार्यवाहियों हस्तक्षेप नहीं कर सकता है और न ही क्राउन अभियुक्त को माफ कर सकता है । वर्ष 1805 से इंग्लैंड में महाभियोग नहीं चलाया गया है । इस संबंध में कार्यवाही सदैव हाउस आफ कामन में आरंभ की जाती है । ये कार्यवाहियां किसी व्यथित व्यक्ति द्वारा याचिका फाइल करके या समिति की रिपोर्ट के आधार पर या उसके ध्यान में लाने के पश्चात किसी सुसंगत सूचना के आधार पर भी आरंभ की जा सकती हैं । महाभियोग कार्यवाहियों को आरंभ करने के लिए एक प्रस्ताव लाया जाना आवश्यक है । सदन और आगे जांच के लिए मामले को किसी समिति को निर्देशित कर सकता है या अभियुक्त के महाभियोग में भाग नहीं ले सकता है । किंतु अंतिम संकल्प से पहले सदन बार में अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप से या कांउसेल द्वारा सुनेगा । यदि प्रस्ताव पारित कर दिया जाता है तब जिस सदस्य ने प्रस्ताव किया है वह बार में जाएगा और अभियुक्त पर महाभियोग चलाएगा । इसके पश्चात् जिस समिति को महाभियोग का दोषारोपण करने के लिए नियुक्त किया गया है वह उन्हें हाउस आफ कामन को परिदत्त करेगी तथा हाउस आफ कामन से उत्तर मिलने के पश्चात् उसकी एक प्रति अभियुक्त को भेजी जाएगी । हाउस आफ लार्डस में विचारण आरंभ किया जाता है । हाउस आफ कामन अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए प्रबंधकों की नियुक्ति करता है । अभियुक्त को बुलाया जाता है और यदि वह भाग लेने नहीं आता है तो उसको गिरफ्तार करके हाउस आफ लार्डस के समक्ष पेश किया जाता है । अभियुक्त या उसके काउंसेल को सुनने के पश्चात् हाउस आफ लार्डस 'दोषी होने' या 'दोषी न होने' का निर्णय पारित करता है । प्रत्येक कुलीन व्यक्ति से अलग-अलग आरोप के संबंध में अपनी राय देने के लिए कहा जाता है । यदि साधारण बहुमत द्वारा उसे दोषी नहीं पाया जाता है तब लार्डस ऐसे महाभियोग को खारिज कर देंगे । यदि दोषी पाया जाता है तब लार्डस तब तक निर्णय पारित नहीं करेंगे जब तक कि हाउस आफ कामन मांग नहीं करता है । हाउस आफ कामन के अध्यक्ष की राय अभिप्राप्त करने के पश्चात् हाउस आफ लार्डस दोषी व्यक्ति पर दंडादेश अधिरोपित करेगा । महाभियोग प्रक्रिया में किसी व्यक्ति को कारावास, जुर्माना, पद से हटाना, पद से निरर्हित करने या अन्यथा दंडित किया जा सकता है या यदि अपराध मृत्यु दंड से संबंधित है तब उस व्यक्ति को मृत्यु दंडादेश भी दिया जा सकता है ।

तथापि, हाउस आफ कामन बीच में ही कार्यवाहियों को बंद कर सकता है और आगे कार्यवाही नहीं कर सकता । यहां तक कि दोषसिद्धि के पश्चात् भी हाउस आफ कामन अभियुक्त को माफ कर सकता है ।

हाउस आफ लार्डस में महाभियोग कार्यवाहियों में, प्रक्रियात्मक रक्षोपायों का पालन किया जाता है । अभियुक्त को सुना जाता है और उसे सभी अभिसाक्ष्यों की प्रतियां दी जाती हैं तथा अभियुक्त की एक वकील द्वारा सहायता की जा सकती है । प्रत्येक लार्ड विचारण में हाजिर होना चाहिए । महाभियोग कार्यवाहियों में साक्ष्य की सुनवाई और दलीलों को किसी समिति को प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता है क्योंकि महाभियोग कार्यवाहियों में "सभी लार्डस न्यायाधीश होने चाहिएं" । जब किसी विधि के प्रश्न के बारे में कोई संदेह हो तब लार्डस उस विषय के संबंध में अंतिम विनिश्चय निकालने से पहले न्यायाधीशों से परामर्श कर सकते हैं । न्यायाधीशों की राय अभियुक्त की मौजूदगी में दी जानी चाहिए । महाभियोग कार्यवाहियां आपराधिक प्रकृति की होती हैं और उनके संबंध में इसी प्रकार विचार किया जाना चाहिए । (देखें बर्जर, इम्पीचमेंट फार हाई क्राइम्स एंड मिसडेमिन्यूरस, 1971, 44 साउथ केलिफोर्निया लॉ रिव्यू 395, पृष्ठ 400-415; देखें बर्जर आन इम्पीचमेंट एंड गुड बिहेवियर, 1970, 79 लार्ड ला जर्नल 1475, पृष्ठ 1518-1519) ।

कई मामलों में संसद् के विरुद्ध क्राउन का समर्थन करने के लिए न्यायालयों के न्यायाधीशों पर महाभियोग चलाया गया था । किंतु अंतिम बार महाभियोग वर्ष 1805 में चलाया गया था ।

पद से हटाने के लिए दोनों सदनों को किया गया समावेदन महाभियोग कार्यवाहियों से भिन्न है

समावेदन द्वारा पद से हटाने के लिए (प्रो. शट्रीट द्वारा अपनी पुस्तक 'जजिस आन ट्रायल' (1976) के अध्याय - 6 में चर्चा की गई है) महाभियोग से भिन्न है । इस बाबत संदेह है कि पद से हटाने के लिए समावेदन किसी भी सदन में किया जा सकता है या ऐसा समावेदन केवल हाउस आफ कामन में ही उद्भूत होना चाहिए । यद्यपि ऐसी कार्यवाहियां किसी भी सदन में उद्भूत हो सकती हैं किंतु श्रेयस्कर यह होगा कि ये कार्यवाहियां "हाउस आफ कामन में उद्भूत की जाएं" ([देखें – हाल्सबरी लॉज इन इग्लैंड 681(चौथा संस्करण) 1974] । कुछ मामलों को छोड़कर, कार्यवाहियां सदैव हाउस आफ कामन में ही उद्भूत हुई हैं । किसी न्यायाधीश के आचरण की जांच करने के लिए प्रस्ताव लाकर ऐसी कार्यवाहियां आरंभ की जा सकती हैं । ऐसा प्रस्ताव किसी व्यथित

व्यक्ति की याचिका या किसी आयोग की रिपोर्ट या किसी संसद सदस्य द्वारा किए गए अन्वेषण के आधार पर लाया जा सकता है । संसद् क्राउन को समावेदन करने के लिए एक संकल्प पारित कर सकती है जिसमें यह प्रार्थना की गई हो कि जांच आयोग न्यायाधीश के आचरण या उसके द्वारा न्यायालय की कार्यवाही चलाने में अपनाई गई पद्धति का अन्वेषण करे । किसी न्यायाधीश के आचरण के संबंध में जांच करने करने के प्रस्ताव के संबंध में उस न्यायाधीश को पूर्व सूचना दी जानी चाहिए जिससे कि वे आरोपों का सामना करने के लिए अन्य संसद सदस्यों को अपनी प्रतिरक्षा के बारे में संसूचित कर सके । सूचना दिए जाने और प्रस्ताव पर बहस की अवधि के बीच में सरकार और अन्य सदस्य कुछ जांच करेंगे और मामले पर अपनी राय बनायेंगे । सम्यक् सूचना दिए जाने के पश्चात् सदस्य किसी पश्चात्वर्ती तारीख को अभिकथित अवचार पर कथन करेंगे । यदा-कदा शिकायत को आरोप-पत्र में सम्मिलित किया जाता है । आरोप पेश किए जाने के पश्चात् सदस्य मामले को जांच के लिए चयन समिति या समस्त सदन की समिति को निर्देशित करेंगे । आरोप विनिर्दिष्ट और स्पष्ट होने चाहिएं और जांच आरंभ करने से पहले विश्वसनीय साक्ष्य पुरःस्थापित किए जाने चाहिए । यह एक स्थापित परिपाटी है कि "किसी समावेदन के लिए ऐसी प्रक्रिया तब तक संस्थित नहीं करनी चाहिए जब तक कि किसी न्यायाधीश के विरुद्ध प्रथमदृष्ट्या ऐसा ठोस मामला न बनता हो जिससे कि समावेदन को न्यायोचित ठहराया जा सके" । यदि इन अपेक्षाओं का समाधान नहीं किया जाता है तब मामले को और आगे जांच के लिए निर्दिष्ट नहीं किया जाएगा ।

यदि अपेक्षाओं का समाधान कर दिया जाता है तब सदस्य गुणागुण के आधार पर मामले का विनिश्चय कर सकेंगे किंतु व्यवहारिक रूप से न्यायिक अवचार से संबंधित मामले को जांच के लिए चयन समिति को निर्देशित किया जाता है और कुछ मामलों में मामले को इस आधार पर खारिज कर दिया जाता है कि पद से हटाने के लिए किया गया समावेदन अभिकथित अवचार के लिए न्यायोचित नहीं है (प्रो. शीट्रीट की पुस्तक का पृष्ठ 132) । वास्तव में, कई मामलों में चयन समिति द्वारा और आगे की गई जांच में न्यायाधीशों के पक्ष में तथ्य प्रकट हुए जिनकी वजह से कार्यवाहियों का परित्याग करना पड़ा । अवचार के आधार पर पद से हटाने के लिए समावेदन करने के लिए और आगे जांच करने के लिए निर्देशित करने के सिद्धांत के अलावा इस संबंध में अन्य बातों पर भी विचार किया जाना चाहिए । ऐसी जांच से अभियुक्त न्यायाधीश को तब नुकसान पहुंच सकता है जबकि विशेष रूप से न्यायालय में पश्चात्वर्ती गैर-संसदीय प्रक्रियाएं संभव हों । किसी न्यायाधीश

द्वारा अपने न्यायिक कृत्यों का प्रयोग करते हुए किए गए कार्य के लिए आत्यंतिक उन्मुक्ति प्राप्त है किंतु यदि कोई न्यायाधीश अपने न्यायिक कृत्यों से इत्तर अवचार के मामले में जिनकी वजह से उनके विरुद्ध सिविल या दांडिक कार्रवाई की जा सकती है तब संसद् से बाहर पश्चात्वर्ती कार्यवाहियां की जा सकती हैं । तथ्य यह है कि किसी न्यायाधीश के आचारण की जांच करना, चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो, अपने आप में एक दंड है और संसद् को इस बात का विनिश्चय करते समय सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए कि ऐसे मामले को जांच के लिए निर्देशित किया जाए या नहीं । (स्मिथ का मामला (1834), 21 पार्लियामेंटरी डिबेट्स, पृष्ठ 333, तीसरी अंकावली, 272)। यदि सदन यह विनिश्चय करता है कि जांच की जाए तब वह जांच करता है, या वह मामले को किसी चयन समिति या सम्पूर्ण सदन की समिति को निर्देशित कर सकता है । ऐसी समिति साक्ष्य एकत्रित करती है और न्यायाधीश सहित साक्षियों को सुनती है और इसके पश्चात् समिति अपनी सिफारिशें देती है और जिनके संबंध में सदन में चर्चा की जाती है । न्यायाधीश को सम्यक् सूचना और दस्तावेजों की प्रतियां दी जाती है तथा वह अपने काउंसेल के माध्यम से या व्यक्तिगत रूप से उपसंजात हो सकते हैं और अपनी प्रतिरक्षा में साक्ष्य पुरःस्थापित कर सकते हैं । हाउस आफ कामन द्वारा रिपोर्ट का अनुमोदन किए जाने के पश्चात् इस पूरी प्रक्रिया को पुनः हाउस आफ लार्डस में दोहराया जाता है जिसमें समिति का गठन करने, बार के समक्ष साक्ष्य की सुनवाई, बहस और विचार-विमर्श भी सम्मिलित है (प्रो. शीट्रीट की पुस्तक के पृष्ठ 133-134) । यदि लार्डस भी इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि क्राउन के समक्ष समावेदन किया जाए तब वह हाउस आफ कामन द्वारा समावेदन में उनके लिए छोड़ गए खाली स्थान में अपना शीर्षक अंतःस्थापित करते हैं । ऐसा करने के पश्चात्, हाउस आफ कामन को इस बाबत सूचना दी जाती है और और हर मजेस्टी के समक्ष समावेदन प्रस्तुत किया जाता है । केवल वर्ष 1830 में सर जोनाह बेरिंगटन के मामले में यह संपूर्ण प्रक्रिया एक ही बार में पूरी की गई थी । इस प्रक्रिया के दौरान प्रक्रियात्मक रक्षोपाय का पालन किया जाता है, आरोप लिखित में होने चाहिएं, न्यायाधीश को सूचना और आरोपों की प्रतियां दी जानी चाहिएं, न्यायाधीश को सुना जाए और उन्हें अपनी प्रतिरक्षा में साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने या साक्षियों को बुलाने की अनुज्ञा दी जाए । ऐसा समिति द्वारा की जा रही जांच के प्रक्रम पर किया जाता है । हाउस आफ कामन द्वारा पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर आरोपों में फेरबदल नहीं किया जा सकता है । विलंब से बचने के लिए यह सिद्धांत अपनाया जाता है कि "जब किसी न्यायाधीश को

अपराधिता के संबंध में आरोपित किया जाता है तब उसे यथासम्भव कम से कम समय में या तो दोषमुक्त किया जाना चाहिए या सिद्धदोष ठहराया जाना चाहिए" (देखें – ओ. ग्रेडी वाला मामला (1823)) । संसद् के सत्र के प्रारंभ में ही कार्यवाहियां प्रारंभ की जाती हैं ताकि ये कार्यवाहियां अगले सत्र तक न चल सकें । कई बार ऐसा इसलिए किया जाता है जिससे न्यायाधीशों को जनता में अपमानित न होना पड़े । प्रो. शिमोन शीट्रीट ने यह विचार व्यक्त किया है कि "मिथ्या आरोपों के परिणामस्वरुप न्यायाधीशों की लोक अपमान से संरक्षा करने में सदन की चिंता हाउस आफ कामन द्वारा जारी किए इस आदेश से प्रकट होती है कि मुख्य न्यायाधीश लार्ड एलनब्रो के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सदन की पत्रिकाओं से हटाया दिया जाए" (1816, 34 पार्लियामेंटरी डिबेटस प्रथम अंकावली, पृष्ठ 131) ।

क्या संसद् की प्रक्रिया को " न्यायिक" माना जाए या नहीं, इस संबंध में प्रो. शीमोन शीट्रीट ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है –

> "किसी न्यायाधीश के आचरण की जांच करने के लिए लाए गए प्रस्ताव के आधार पर उसे पद से हटाने के लिए समावेदन करने से संबंधित प्रक्रिया को विनियमित करने वाले स्पष्ट कानूनी उपबंधों के अभाव में उत्पन्न होने वाले संदेहों को समावेदन पारित करने की दृष्टि से उन्हें सदन में की कार्यवाहियों के रूप में ग्रहण किया जा सकता है । वास्तव में प्रक्रिया के प्रश्न के संबंध में संसद् सदस्यों की राय अलग-अलग है । तथापि, कुलमिलाकर यह स्पष्ट है कि कार्यवाहियों को न्यायिक प्रकृति का माना गया है और अभियुक्त न्यायाधीश की संरक्षा करने तथा न्यायालयों में लोक विश्वास को बनाए रखने के लिए प्रक्रियात्मक रक्षोपायों का पालन किया जाता है । समावेदन के लिए की गई कार्यवाहियों को न्यायिक प्रकृति का माना जाता है और यह बात महाभियोग की कार्यवाहियों में सदन द्वारा पद से हटाने के लिए समावेदन करने पर सदस्यों द्वारा उचित प्रक्रियात्मक परिपाटी का पालन करने के संबध में दिए गए मत से भी दिए गए निर्देश का समर्थन होता है ।"

सरकार की भूमिका के संबंध में प्रो. शीट्रीट का यह कहना है कि प्रारंभिक अन्वेषण के बिना कोई भी जांच नहीं की जानी चाहिए । इस सिद्धांत को कई मामलों में स्वीकार किया गया है । यह सिद्धांत "संपूर्ण साम्राज्य में सम्यक् न्याय प्रशासन" की सरकार की जिम्मेदारी और न्याय प्रदान करने

वाले को हानिकर या दोषपूर्ण अभियोग से संरक्षा प्रदान करने की उसकी बाध्यता का द्योतक है । (देखें– ए. टोड, पार्लियामेंटरी गर्वनमेंट इन इंग्लैंड, 730, पृ. 741 (1867) । इसके साथ-साथ लार्ड चांसलर द्वारा सामान्य रूप से न्यायाधीशों से सम्पर्क किया जाता है और उन्हें अपने आशयों का खंडन करने का अवसर दिया जाता है जैसे कि बरोन गुरनी (1843) और केल्ली के मामले में किया गया है । एक अन्य सिद्धांत यह भी है कि संसद् में ऐसी कार्यवाहियां सरकार, अर्थात् कार्यपालिका द्वारा आरंभ न की जाएं अपितु ऐसी कार्यवाहियां, जब तक अवचार गंभीर प्रकृति का न हो, सदस्यों द्वारा ही आरंभ की जानी चाहिएं । महाभियोग की कार्यवाहियां के विपरीत, इग्लैंड में संसद् के विघटन या सत्रावसान पर, किसी न्यायाधीश को पद से हटाए जाने के लिए किए गए समावेदन की कार्यवाहियां समाप्त हो जाती हैं । (हमारे उच्चतम न्यायालय ने सब कमेटी आन ज्यूडिशियल अकाउंटेबिलिटी बनाम भारत संघ (1991(4) एससीसी 699) वाले निर्णय में इसके विपरीत मत व्यक्त किया है । उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि सदन का विघटन हो जाने से समावदेन समाप्त नहीं होता है) । कई बार जब पद से हटाने के लिए किया गया समावेदन असफल हो जाता है तब बहस के दौरान न्यायाधीशों की साधारण रूप से निंदा की जाती है (प्रो. शीट्रीट की पुस्तक का पृ. 139) ।

अध्याय 9

कनाडा (फेडरल) और उसके राज्यों में न्यायाधीशों को पद से हटाने की प्रक्रिया

(क) फेडरल न्यायालय

कनेडियन कांस्टीट्यूशन ऐक्ट 1867 (कनेडियन संविधान अधिनियम, 1867) की धारा 99(1) में यह उपबंध किया गया है कि वरिष्ठ न्यायालयों के न्यायाधीश "सदाचार" की अवधि तक पद धारण कर सकेंगे और उन्हें केवल सीनेट और हाउस आफ कामन के समावेदन पर केवल गवर्नर जनरल द्वारा पद से हटाया जा सकता है । सुप्रीम कोर्ट ऐक्ट की धारा 9(1) में भी इसी प्रकार का निबंधन किया गया है । कनाडा की संसद् ने भी परिसंघीय रूप से नियुक्त किए गए न्यायाधीशों द्वारा सदाचार भंग किए जाने के अभिकथन का निर्धारण करने के लिए एक प्रक्रिया अधिकथित की है । जजिस ऐक्ट, 1985 के अधीन कनेडियन ज्यूडिशियल कांउसिल (कनेडियन न्यायिक परिषद्) द्वारा यह कार्य किया जाता है । इस ऐक्ट द्वारा 1971 के पूर्व कानून को निरसित किया गया है । यह पता चला है कि कनाडा की संसद् के समक्ष किसी न्यायाधीश को पद से हटाने की परिस्थिति कभी उत्पन्न ही नहीं हुई है यद्यपि कई बार ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने से पहले ही न्यायाधीश या तो सेवानिवृत्त हो जाते हैं या त्यागपत्र दे देते हैं । यदि विषय इतना गंभीर नहीं है कि न्यायाधीश को पद से हटाने की सिफारिश की जाए वहां परिषद् , जहा उपयुक्त हो, किसी न्यायाधीश के आचरण के संबंध में अननुमोदन अभिव्यक्त कर सकती है ।

कनाडा की न्यायिक परिषद् के समक्ष कुछ सिद्धांतों को स्वीकार किया गया है वे ये हैं कि अकथित न्यायाधीशों या न्यायपालिका के बारे में साधारण शिकायतों पर पूरी तरह से या मामले के गुणागुण के आधार पर अन्वेषण करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है ।

जजिस ऐक्ट, 1985 (न्यायाधीश अधिनियम, 1985)

कनाडा में न्यायाधीशों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई किए जाने के संबंध में उपबंध (आर.एस. 1985, सी.जे.-1) किए गए हैं । इस अधिनियम के भाग (धारा 58 से 71) में कनेडियन ज्यूडिशियल काउन्सिल (कनाडा की न्यायिक परिषद्) की बाबत उपबंध किए गए हैं ।

धारा 59(1) के अधीन यह उपबंध किया गया है कि न्यायिक परिषद् , (क) कनाडा के

मुख्य न्यायमूर्ति, जो कि परिषद् के अध्यक्ष होंगे, (ख) मुख्य न्यायमूर्ति और प्रत्येक वरिष्ठ न्यायालय या शाखा या उसके प्रखंड का कोई ज्येष्ठ सहयुक्त मुख्य न्यायमूर्ति तथा ज्येष्ठ सहयुक्त मुख्य न्यायमूर्ति, (ग) सुप्रीम कोर्ट आफ यूकोन, सुप्रीम कोर्ट आफ नार्थ वेस्ट राज्यक्षेत्र और नूनावूट कोर्ट आफ जस्टिस की धारा 22(3) में यथापरिभाषित ज्येष्ठ न्यायाधीश और (घ) कोर्ट मार्शल अपील कोर्ट आफ कनाडा के मुख्य न्यायमूर्ति से मिलकर बनेगी । ये सभी न्यायाधीश हैं ।

(धारा 59(1) के उपखंड (ड.) और धारा 59 की उपधारा (2) और (3) को निरसित कर दिया गया है) । धारा 59 की उपधारा (4) में यह उपबंध किया गया है कि परिषद् का प्रत्येक सदस्य मेम्बर्स कोर्ट के एक न्यायाधीश को परिषद् के प्रतिस्थापित सदस्य के रूप में नियुक्त कर सकता है और वह सदस्य जिस अवधि के लिए उसे नियुक्त किया गया है उस अवधि के दौरान कार्य करेगा किंतु कनाडा के मुख्य न्यायमूर्ति, कनाडा के उच्चतम न्यायालय के किसी सदस्य को नियुक्त करने के बदले, उस न्यायालय के किसी पूर्व सदस्य को परिषद् के प्रतिस्थापित सदस्य के रूप में नियुक्त कर सकते हैं ।

इस अधिनियम की धारा 60 में परिषद् के उद्देश्यों और शक्तियों को निर्दिष्ट किया गया है । धारा 60 की उपधारा (1) में यह उपबंध किया गया है कि परिषद् का उद्देश्य वरिष्ठ न्यायालयों में न्यायिक सेवा में कुशलता और एकरूपता तथा गुणवत्ता में सुधार करना है । उपधारा (2) में यह उपबंध किया गया है कि उपर्युक्त उद्देश्य को अग्रसर करने के लिए परिषद् धारा 63 में वर्णित शिकायतों या अभिकथनों की जांच और अन्वेषण कर सकती है । उपधारा 2(घ) में यह उपबंध किया गया है कि परिषद् धारा 69 में वर्णित जांच कर सकती है ।

धारा 63 में परिषद् द्वारा जांच करने के संबंध में उपबंध किया गया है जो कि निम्नलिखित है : –

"63.(1) परिषद् , मंत्री या प्रांत के महान्यायवादी (अटर्नी जनरल) के अनुरोध पर, पैरा 65 (2)(क) से (घ) में उपवर्णित कारणों में से किसी एक कारण के आधार पर वरिष्ठ न्यायालय के किसी न्यायाधीश को पद से हटाने के लिए जांच प्रारंभ कर सकती है ।

(2) परिषद् किसी वरिष्ठ न्यायालय के किसी न्यायाधीश की बाबत की गई शिकायत या

अभिकथन का अन्वेषण करा सकती है ।

(3) परिषद् , इस धारा के अधीन कोई जांच या अन्वेषण कराने के प्रयोजन के लिए, मंत्री द्वारा यथा पदाभिहित किए गए किसी प्रांत की बार के ऐसे सदस्यों, जिनके पास कम से कम दस वर्ष का अनुभव हो, के साथ अपने सदस्यों में से एक या एक से अधिक सदस्यों को पदाभिहित कर सकती है ।

(4) इस धारा के अधीन जांच या अन्वेषण करने वाली परिषद् या जांच समिति को एक वरिष्ठ न्यायालय माना जाएगा और ऐसी परिषद् या जांच समिति के पास –

(क) किसी व्यक्ति या साक्षी को अपने समक्ष बुलाने की और शपथ, मौखिक रूप से या लिखित में या यदि साक्षी सिविल मामलों में प्रतिज्ञान करने का हकदार है तो सत्यनिष्ठ प्रतिज्ञान के आधार पर साक्ष्य देने की अपेक्षा कर सकती है और जिस मामले की वह जांच कर रही है उस मामले का पूरा अन्वेषण करने के लिए जो दस्तावेज और साक्ष्य वह आवश्यक समझती है, उन्हें प्रस्तुत करने करने के लिए कह सकती है ; और

(ख) परिषद् या जांच समिति इसी शक्ति का प्रयोग करते हुए किसी व्यक्ति या साक्षी को हाजिर होने का निदेश दे सकती है तथा ऐसा व्यक्ति या साक्षी ऐसी परिषद् या जांच समिति के समक्ष उसी प्रकार साक्ष्य देने के लिए बाध्य है जिस प्रकार जांच या अन्वेषण के दौरान प्रांत के किसी वरिष्ठ न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता है ।"

(5) परिषद् इस धारा के अधीन जांच या अन्वेषण से संबंधित या उद्भूत होने वाली किसी सूचना या उसके समक्ष रखे गए दस्तावेजों का प्रकाशन कराने से तब प्रतिषिद्ध कर सकती है जब उसकी यह राय हो कि ऐसा प्रकाशन लोकहित में नहीं है ।

(6) इस धारा के अधीन कोई जांच या अन्वेषण सार्वजनिक या प्राइवेट रूप से तब तक नहीं किया जा सकता है जब तक कि मंत्री द्वारा ऐसी जांच या अन्वेषण सार्वजनिक रूप से करने की अपेक्षा न की गई हो ।"

इस अधिनियम की धारा 64 में सुनवाई की सूचना के बारे में उपबंध किया गया है जो कि निम्नलिखित है : –

"64. धारा 63 के अधीन जिस न्यायाधीश की बाबत कोई जांच या अन्वेषण किया जाना है उसे जांच या अन्वेषण की उचित विषयवस्तु और सुनवाई के समय की तथा स्थान की बाबत सूचना दी जाएगी तथा उसे व्यक्तिगत रूप से या काउंसेल द्वारा सुनवाई का और साक्षियों की प्रतिपरीक्षा का अवसर दिया जाएगा तथा वह अपनी ओर से साक्ष्य भी पेश कर सकता है/कर सकती है ।"

अधिनियम की धारा 65 में रिपोर्ट और सिफारिशों की बाबत उपबंध किया गया है ।

यह स्पष्ट है कि परिषद् न्यायाधीश को आयु या निःशक्तता या अवचार के आधार पर या अपने पद का सम्यक् रूप से निष्पादन न करने या अपने आचरण द्वारा या अन्यथा पद का निष्पादन करने में बेमेल होने की स्थिति में न्यायाधीश को पद से हटाने की सिफारिश कर सकती है । अधिनियम में पद से हटाने से भिन्न कोई अन्य उपाय अनुज्ञात नहीं किया गया है । धारा 66 में किसी न्यायाधीश के असमर्थ या निःशक्त होने जाने के कारण अनुपस्थिति के लिए छुट्टी के आधारों को निर्दिष्ट किया गया है । यह धारा निम्नलिखित है –

"गर्वनर इन काउन्सिल, धारा 65(2) के अनुसरण में, किसी न्यायाधीश को असमर्थता या निःशक्तता के आधार पर ऐसी अवधि की अनुपस्थिति के लिए छुट्टी मंजूर कर सकती है, जो मामले की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उचित और समुचित समझे, और यदि ऐसी अनुपस्थिति के लिए छुट्टी मंजूर की जाती है तब ऐसी अनुपस्थिति के लिए मंजूर की गई छुट्टी की अवधि के लिए ऐसे न्यायाधीश को वेतन का संदाय किया जाएगा ।"

धारा 66 की उपधारा (3) में ऐसे न्यायाधीश की वार्षिकी के संबंध में उपबंध किया गया है जो त्यागपत्र दे देता है और यह धारा निम्नलिखित है –

"गर्वनर इन काउन्सिल किसी ऐसे न्यायाधीश को, जिसे असमर्थ या निःशक्त पाया जाता है और यदि ऐसा न्यायाधीश त्यागपत्र दे देता है तब गर्वनर इन काउन्सिल उसे इस प्रकार वार्षिकी मंजूर कर सकता है जैसे कि त्यागपत्र देते समय किसी न्यायाधीश को वार्षिकी मंजूर की जाती है । "

धारा 69(3) में यह उपबंध किया गया है कि गर्वनर इन काउन्सिल मंत्री की सिफारिश पर

किसी व्यक्ति के संबंध में इस धारा के अधीन किसी जांच के संबंध में उपधारा 65(1) में वर्णित रिपोर्ट के पश्चात् (जिसे गर्वनर इन काउन्सिल द्वारा सीनेट या हाउस आफ कामन या सीनेट और हाउस आफ कामन के संयुक्त समावेदन के अलावा पद से हटाया गया हो) आदेश द्वारा ऐसे व्यक्ति को पद से हटा सकती है । धारा 70 में संसद् को दी जाने वाली रिपोर्ट और धारा 69(3) के अनुसरण में गर्वनर इन काउन्सिल द्वारा किए गए किसी आदेश के संबंध में यह उपबंध किया गया है कि इससे सुसंगत सभी रिपोर्टें और साक्ष्य ऐसा आदेश पारित किए जाने के 15 दिन के भीतर संसद् के पटल पर रखे जाएंगे और यदि संसद् की बैठक नहीं चल रही है तब संसद् के किसी भी सदन की अगली बैठक प्रारंभ होने के प्रथम 15 दिन में से किसी भी दिन संसद् के पटल पर रखे जाएंगे ।

धारा 71 में संसद् या गर्वनर इन काउन्सिल द्वारा पद से हटाए जाने के बारे में उपबंध किया गया है । इस धारा में यह उपबंध किया गया है कि धारा 63 से 70 में से किसी भी धारा के अधीन प्रयोग की गई किसी शक्ति के प्राधिकार के अधीन कुछ भी नहीं किया गया है या लोप नहीं किया गया है और इस धारा के अधीन हाउस आफ कामन, सीनेट या गर्वनर इन काउन्सिल के अधिकार या कर्तव्य पर इन धाराओं में से किसी भी धारा के अधीन की गई जांच के संबंध में न्यायाधीश या किसी अन्य व्यक्ति को पद से हटाए जाने के संबंध में कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

कनाडा की उपविधियां

कनेडियन ज्यूडिशियल काउन्सिल (कनाडा न्यायिक परिषद्) ने उप-विधियां बनाई हैं जिन्हें कनेडियन ज्यूडिशियल काउन्सिल इन्क्वारिज एंड इन्वेस्टिगेशन बाए-लाज (कनेडियन न्यायिक परिषद् जांच और अन्वेषण उप-विधियां) (एसओआर/2002-371) कहा गया है । उपविधि सं. 2 में धारा 63(3) के अधीन एक जांच समिति का गठन किए जाने के संबंध में निर्दिष्ट किया गया है । उपविधि सं. 3 में-स्वतंत्र काउंसेल नियुक्त किए जाने की बाबत उपबंध किया गया है । उपविधि सं. 4 में किसी विधिक काउंसेल को किसी जांच समिति में नियुक्त किए जाने की बाबत उपबंध किया गया है । उपविधि सं. 5 से 7 में जांच समिति की कार्यवाही के संबंध में उपबंध किया गया है और ये निम्नलिखित हैं :–

"5.(1) जांच समिति किसी न्यायाधीश से संबंधित किसी सुसंगत शिकायत या

अभिकथन पर विचार कर सकती है, जो उसके ध्यान में लाया जाए ।

(2) स्वतंत्र काउंसेल उस न्यायाधीश को सभी शिकायतों या अभिकथनों की पर्याप्त सूचना देगा जिनके संबंध में जांच समिति द्वारा विचार किया जाना है जिससे कि वह न्यायाधीश उनका उत्तर दे सके ।"

6.(1) जांच समिति की सुनवाई तब तक सार्वजनिक रूप से की जा सकेगी जब तक कि अधिनियम की धारा 63(6) के अधीन रहते हुए जांच समिति यह अवधारित नहीं करती है कि लोक हित और न्याय के सम्यक प्रशासन के लिए पूरी सुनवाई या किसी भाग की सुनवाई प्राइवेट रूप से की जाए ।

(2) जांच समिति यदि यह अवधारित करती है कि उसके समक्ष प्रस्तुत की गई किसी सूचना या दस्तावेज का प्रकाशन लोक हित में करना उचित नहीं है तब वह ऐसे प्रकाशन को प्रतिषिद्ध कर सकती है ।

7. जांच समिति अपनी जांच या अन्वेषण न्याय के सिद्धांतों के अनुसार करेगी ।"

उपविधि सं. 8 में जांच समिति की रिपोर्ट को निर्दिष्ट किया गया है जो कि निम्नलिखित है–

"8.(1) जांच समिति अपनी रिपोर्ट परिषद् को प्रस्तुत करेगी और इस रिपोर्ट में यह निष्कर्ष निकालेगी कि न्यायाधीश को पद से हटाने की सिफारिश की जाए या नहीं ।

(2) परिषद् को रिपोर्ट प्रस्तुत करने के पश्चात् परिषद् का कार्यपालक निदेशक, न्यायाधीश, स्वतंत्र काउंसेल और सुनवाई में उपस्थित होने वाले अन्य व्यक्तियों या निकायों को एक प्रति देगा ।

(3) यदि सार्वजनिक रूप से सुनवाई की गई है तब रिपोर्ट सार्वजनिक रूप से उपलब्ध कराई जाएगी ।"

उपविधि सं. 9 और 10 में जांच समिति की रिपोर्ट के संदर्भ में न्यायाधीश की ओर से की जाने वाली कार्रवाई का उल्लेख किया गया है जो कि निम्नलिखित है : –

"9.(1) जांच समिति की रिपोर्ट मिलने के पश्चात् तीस दिन के भीतर न्यायाधीश

(क) रिपोर्ट की बाबत परिषद् को लिखित में निवेदन करेगा ; और

(ख) परिषद् को यह अधिसूचित करेगा कि वह परिषद् के समक्ष काउंसेल के साथ या उसके बिना, रिपोर्ट की बाबत संक्षेप में मौखिक कथन करने के लिए स्वयं हाजिर होना चाहता है या चाहती है ।

(2) यदि न्यायाधीश, उपधारा (1) में उपवर्णित समय सीमा के भीतर, अपने नियंत्रण से बाहर किसी कारण से ऐसा नहीं करता है तो न्यायाधीश परिषद् से समय बढ़ाए जाने का अनुरोध कर सकता है ।

(3) यदि परिषद् यह मानती है कि उसका अनुरोध न्यायोचित है तब वह समय बढ़ा सकती है ।

10.(1) यदि न्यायाधीश जांच रिपोर्ट की बाबत लिखित में निवदेन करता है तब परिषद् का कार्यपालक निदेशक स्वतंत्र काउंसेल को एक प्रति उपलब्ध कराएगा । स्वतंत्र काउंसेल प्रति के प्राप्त होने के 15 दिन के पश्चात् परिषद् के समक्ष न्यायाधीश का लिखित निवेदन प्रस्तुत करेगा ।

(2) यदि न्यायाधीश परिषद् के समक्ष मौखिक कथन करता है तब स्वतंत्र काउंसेल भी उपस्थित होना चाहिए और परिषद् मौखिक कथन का उत्तर देने के लिए उसे आमंत्रित कर सकती है ।

(3) न्यायाधीश द्वारा मौखिक कथन सार्वजनिक रूप से दिया जाना चाहिए और यदि परिषद् यह अवधारित करती है कि लोकहित में ऐसा नहीं किया जा सकता है तब ऐसा कथन सार्वजनिक रूप से नहीं किया जा सकता है ।"

यह स्पष्ट है कि जांच समिति को न्याय के अनुसार कार्यवाही करनी चाहिए और इसके अंतर्गत न्यायाधीश को सुनवाई का अवसर देना भी है । इसके अतिरिक्त कनेडियन उपविधियों के अधीन जांच समिति के समक्ष न्यायाधीश को सुनवाई का अवसर दिया जाता है और जांच समिति द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत करने के पश्चात् भी न्यायिक परिषद् के समक्ष दोबारा सुनवाई का अवसर दिया जाता है । न्यायिक परिषद् केवल न्यायाधीशों से मिलकर बनती है ।

उपविधि सं. 11 और 12 में परिषद् द्वारा जांच समिति की रिपोर्ट के संबंध में विचार करने की बाबत उपबंध किए गए हैं जो कि निम्नलिखित हैं :–

"11.(1) परिषद् जांच समिति की रिपोर्ट और न्यायाधीश या स्वतंत्र काउंसेल द्वारा किए गए लिखित निवेदन या मौखिक कथन पर विचार करेगी ।

(2) पैरा 2(3)(ख) में उल्लिखित व्यक्ति और जांच समिति के सदस्य परिषद् द्वारा रिपोर्ट पर विचार किए जाने या पश्चात्वर्ती परिषद् के विचार-विमर्श में भाग नहीं लेंगे ।"

12. यदि परिषद् की यह राय है कि जांच समिति की रिपोर्ट अस्पष्ट या अपूर्ण है और स्पष्टीकरण या अनुपूरक जांच या अन्वेषण करना आवश्यक है तब वह विनिर्दिष्ट निदेशों के साथ जांच समिति को प्रश्नगत पूरे मामले या उसके भाग को वापस भेज सकती है ।

उपविधि सं. 13 में यह उल्लेख किया गया है कि परिषद् का कार्यपालक निदेशक न्यायाधीश को परिषद् द्वारा मंत्री को प्रस्तुत किए गए उसके निष्कर्षों की एक प्रति उपलब्ध कराएगा । उपविधि सं. 14 में यह उल्लेख किया गया है कि ये उपविधियां तारीख 1 जनवरी, 2003 से प्रवृत्त होंगी ।

यह उल्लेखनीय है कि परिषद् अपनी रिपोर्ट मंत्री को प्रस्तुत करती है, पश्चात्वर्ती प्रक्रिया अधिनियम में दी गई है और इसका उल्लेख ऊपर धारा 69(3) में किया गया है कि गर्वनर इन काउन्सिल की सिफारिश के आधार पर मंत्री उस व्यक्ति को पद से हटा देगा (यदि वह ऐसा करने के लिए सक्षम है, अन्यथा सीनेट या हाउस आफ कामन के किसी समावेदन पर या सीनेट या हाउस आफ कामन के संयुक्त समावेदन पर ऐसा कर सकता है) । धारा 70 में यह उपबंध किया गया है कि गर्वनर इन काउन्सिल के आदेश को संसद् के समक्ष उसकी अगली बैठक में रखा जाएगा ।

शिकायत प्रक्रिया

तारीख 1 जनवरी, 2003 से कनेडियन न्यायिक परिषद् द्वारा अनुमोदित " शिकायत प्रक्रिया" के संबंध में व्यापक रूप से अधिकथित किया गया है । प्रक्रिया की धारा 2.2 के अधीन परिषद् का कार्यपालक निदेशक कपट करने के लिए की गई शिकायतों या स्पष्ट रूप से शिकायत प्रक्रिया का

दुरुपयोग करने की बाबत की गई शिकायतों की बाबत फाइल नहीं खोलेगा । अज्ञात स्रोत से प्राप्त शिकायत पर भी यथासंभव इस प्रकार की कार्रवाई की जाएगी । धारा 3.4 के अधीन यदि शिकायत के संबंध में फाइल खोल दी गई है और इसके पश्चात् शिकायतकर्ता अपनी शिकायत वापस लेना चाहता है तब परिषद् का अध्यक्ष शिकायत वापस लेने के कारण लोक हित और अपेक्षित न्याय के सम्यक् प्रशासन के आधार पर ऐसी फाइल को बंद कर देगा । धारा 3.5 के अधीन अध्यक्ष फाइल का पुनर्विलोकन करेगा और यदि उसका यह मत है कि शिकायत नगण्य, तंग करने, अनुचित प्रयोजन के लिए की गई है और स्पष्ट रूप से सारहीन है तथा इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है या आचरण अंतर्ग्रस्त न होने के कारण परिषद् की अधिकारिता से बाहर है तब वह उस फाइल को बंद कर देगा । अध्यक्ष फाइल का पुनर्विलोकन करेगा और शिकायतकर्ता से अतिरिक्त जानकारी मांग सकता है या न्यायाधीशों या अपने मुख्य न्यायमूर्ति से टीका-टिप्पणी प्राप्त कर सकता है । जब धारा 3.6 के अधीन अध्यक्ष फाइल बंद कर देता है तब कार्यपालक निदेशक न्यायाधीश या उसके मुख्य न्यायमूर्ति को शिकायत की एक प्रति और शिकायत के संबंध में फाइल बंद करने का पत्र भेजेगा । धारा 4.1 के अधीन यदि अध्यक्ष, किसी न्यायाधीश से टिका-टिप्पणी मांगते हैं तब कार्यपालक निदेशक न्यायाधीश को और उसके मुख्य न्यायमूर्ति को लिखित में टीका-टिप्पणी करने का अनुरोध करेगा । धारा 5(1)(क)(i) के अधीन अध्यक्ष न्यायाधीश और मुख्य न्यायमूर्ति के उत्तर का और शिकायत के संबंध में मिली अन्य सुंसगत सामग्री का पुनर्विलोकन करने तथा यदि अध्यक्ष इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि शिकायत में कोई गुणता नहीं है और इस पर आगे विचार करने की आवश्यकता नहीं है तो वह फाइल को बंद कर देगा । यदि न्यायाधीश यह स्वीकार करता है कि उसका आचरण अनुचित था किंतु अध्यक्ष की यह राय हो कि इस संबंध में आगे कार्यवाही करने की आवश्यकता नहीं तब भी वह शिकायत की फाइल को बंद कर देगा । धारा 5.1(ख) के अधीन अध्यक्ष धारा 5.3 के अधीन उपचारी उपाय के अनुसरण में फाइल को लंबित रखते हुए प्रास्थगित कर सकता है । धारा 5.1 के खंड (ग) के अधीन अध्यक्ष परिषद् को और आगे जांच करने और रिपोर्ट तैयार करने या जहां न्यायाधीश अपनी गलती, व्यवहार को स्वीकार करता है तब धारा 5.1(क)(ii) के अधीन आने वाली फाइल को बंद करने से पहले लिखित में न्यायाधीश को उसके आचरण के बारे में उल्लेख करते हुए यदि आवश्यक हो तो अपनी चिन्ता भी अभिव्यक्त कर सकते

हैं । धारा 5.3 के अधीन अध्यक्ष, न्यायाधीशों, मुख्य न्यायमूर्तियों के साथ परामर्श करने के पश्चात् और न्यायाधीश की सहमति से समस्या को बातचीत करके या अन्य उपचारी उपायों द्वारा हल करने की सिफारिश कर सकते हैं और यदि उनका यह समाधान हो जाता है कि इस बाबत उचित रूप से कार्यवाही की गई है तब वे फाइल को बंद कर सकते हैं । धारा 5.4 के अधीन न्यायाधीश को पत्र की एक प्रति दी जाएगी ।

धारा 6 के अधीन वह प्रक्रिया अधिकथित की गई है जहां परिषद् के सदस्य अंतर्ग्रस्त होते हैं । धारा 9 के अधीन, पैनल में 3 या 5 सदस्य होंगे जिनमें अध्यक्ष भी सम्मिलित है और इस प्रयोजन के लिए स्थापित न्यायाधीशों के रोस्टर में से 1 या 2 अवर न्यायाधीशों का चयन किया जा सकता है परन्तु यह कि अध्यक्ष और पैनल में अधिक सदस्य परिषद् के होंगे । इस पैनल में ऐसे न्यायाधीश नहीं होने चाहिएं जो उस न्यायालय के हों जिस न्यायालय के सदस्य के विरुद्ध शिकायत की गई है । धारा 9.3 के अधीन कार्यपालक निदेशक पैनल के गठन के बारे में न्यायाधीश को इत्तिला देगा । धारा 9.4 में यह उपबंध किया गया है कि न्यायाधीश को पैनल द्वारा जिस जानकारी के संबंध में विचार किया जाना है वह जानकारी न्यायाधीश को उपलब्ध कराई जाएगी । हो सकता है उसको यह जानकारी पहले दी गई हो या न दी गई हो और उसे उसका उत्तर देने के लिए युक्तियुक्त अवसर दिया जाएगा । धारा 9.5 के अधीन पैनल को फाइल निर्देशित करने के पश्चात् अध्यक्ष परिषद् द्वारा शिकायत के गुणागुण पर और आगे विचार करने में भाग नहीं लेगा । धारा 9.6 में यह उपबंध किया गया है कि पैनल फाइल का पुनर्विलोकन करेगा और आगे जांच करने का निदेश दे सकता है या यदि मामला इतना गंभीर नहीं है जिसकी वजह से पद से हटाना आवश्यक हो तब फाइल को बंद कर देगा या बातचीत आदि जैसे उपचारी उपायों के लंबित रहते हुए फाइल को आस्थगित रखेगा । यदि पैनल परिषद् को धारा 63(3) के अधीन किसी जांच का गठन करने की सिफारिश इसलिए करता है क्योंकि मामला इतना गंभीर है कि पद से हटाना आवश्यक हो तब वह इस बाबत परिषद् और न्यायाधीश रिपोर्ट देगा । यदि मामले की फाइल को बंद कर दिया जाता है तब पैनल न्यायाधीश को उसके आचरण के निर्धारण के बारे में सूचना देगा । धारा 10 के अधीन अध्यक्ष परिषद् के उन सदस्यों को नामित करेगा जो जांच समिति के सदस्य होंगे और इसके अध्यक्ष का पदाभिहित करेगा । धारा 10.4 के अधीन परिषद् यह विनिश्चय करेगी की मामला इतना गंभीर

नहीं है जिसकी वजह से पद से हटाना आवश्यक हो या यह विनिश्चय करेगी कि धारा 63.2 के अधीन जांच की जाए क्योंकि मामला इतना गंभीर हो सकता है जिसक वजह से पद से हटाना आवश्यक हो । धारा 12.7 के अधीन जहां जांच समिति गठित की जाती है वहां शिकायतकर्ता को तदनुसार सलाह दी जाएगी ।

(ख) कनाडा में प्रांतों के न्यायाधीश

फेडरल पद्धति में वरिष्ठ न्यायालय के न्यायाधीशों, जिन्हें केवल संसद् द्वारा संविधान अधिनियम, 1867 (कांस्टीट्यूशन ऐक्ट, 1867) की धारा 99 द्वारा यथा नियत की गई प्रक्रिया द्वारा पद से हटाया जा सकता है, के विपरीत अधिकांश प्रांतों में प्रांतीय रूप से नियुक्त किए गए न्यायाधीशों को मंत्रिमंडल द्वारा विधानमंडल को पूर्व समावेदन किए बिना, पद से हटाया जा सकता है किंतु सरकार प्रांतीय न्यायिक परिषद् की सिफारिशों से आबद्ध होती है ।

ओनटरियो, उत्तरी-पश्चिमी राज्यक्षेत्र और नूनावल में विधानमंडल द्वारा पद से हटाया जाता है जबकि ब्रिटिश कोलंबिया और न्यू फाउंडलैंड में प्रांतीय न्यायिक परिषद् द्वारा ही पद से हटाया जा सकता है ।

क्यूबेक के न्यायधीश को न्याय मंत्री द्वारा केवल तब पद से हटाया जा सकता है जब क्यूबेक न्यायिक परिषद् की सिफारिशों का पालन करते हुए क्यूबेक कोर्ट आफ अपील द्वारा सिफारिश की गई हो । किन्तु, मंत्री न्यायाधीश को हटाने की सिफारिश को खारिज कर सकता है । (क्रिसटिन स्मिज, 2001, वर्कपोलिस. काम)

कनाडा में न्यायिक परिषदों से संबधित विनिश्चयाधार

न्यायिक परिषदों के समक्ष कार्यवाहियों और उनकी सांविधानिकता से संबंधित कुछ विवाद्यकों पर कनेडियन उच्चतम न्यायालय और राज्य फेडरल न्यायालयों के कुछ निर्णय हैं जिनके संबंध में "अध्याय 2 में निर्देशित चर्चा या मुद्दों" के अध्याय 20 में विचार किया गया है ।

अध्याय 10

आस्ट्रेलिया (फेडरल) और स्टेट कोर्ट्स (राज्य न्यायालयों) में की प्रक्रिया और न्यायमूर्ति मर्फी वाला मामला

आस्ट्रेलियन फेडरल पद्धति

आस्ट्रेलियन कांस्टीट्यूशन (आस्ट्रेलिया का संविधान) की धारा 72 (ii) सुप्रीम कोर्ट, काउंटी कोर्ट और मिनिस्टरस कोर्ट को शासित करती है । इस धारा में यह उपबंध किया गया है कि न्यायिक अधिकारियों को, एक ही सत्र में संसद् के दोनों सदनों के ऐसे समावेदन के आधार पर जिसमें सिद्ध कदाचार या असमर्थता के आधार पर पद से हटाने की प्रार्थना की गई हों, गवर्नर इन काउन्सिल द्वारा पद से हटाया जा सकता है अन्यथा नहीं ।

आस्ट्रेलिया में यह सुस्थापित नहीं है कि समावेदन के आधार पर किसी न्यायाधीश को पद से हटाया जाना न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन है या नहीं । नेशनल आस्ट्रेलियन कन्वेशन, 1897 की बहसों से यह दर्शित होता है कि संवैधानिक उपबंधों से यह उपदर्शित होता है कि न्यायाधीश के अभिकथित कदाचार के संबंध में विनिश्चय केवल दोनों सदनों ही न्यायाधीश का काम करते हैं और उनके समावेदन तथा उसके पश्चात् गवर्नर जनरल की कार्रवाई का पुनर्विलोकन उच्च न्यायालय द्वारा नहीं किया जा सकता । इस संबंध में 1896-1897 में की बहस के पृष्ठ 952 पर श्री इशांक और श्री बारटन के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था वह उल्लेखनीय है । तथापि, दो पार्लियामेंटरी कमिश्नरस ने यह राय व्यक्त की है कि उच्च न्यायालय पद से हटाए जाने के विनिश्चय का पुनर्विलोकन कर सकता है और जहां साक्ष्य से ऐसा मामला प्रकट नहीं होता है कि मामला कदाचार की कोटि के अंतर्गत आता है तब वह पद से हटाने के विनिश्चय को अभिखंडित कर सकता है ।

आस्ट्रेलिया में यह स्थापित नहीं है कि गवर्नर जनरल दोनों सदनों द्वारा किए गए किसी समावेदन के अनुसार कार्रवाई करने के लिए आबद्ध है या नहीं । सामान्य रूप से यह माना जाता है कि समावेदन आबद्धकारी होता है । तथापि, पार्लियामेंटरी कमिश्नरस में से एक ने यह मत व्यक्त किया है कि किसी समावेदन पर कार्रवाई करने के लिए गवर्नर जनरल का विवेकाधिकार परिरक्षित है (देखें अध्याय 20 का पृ. 511) ।

यह प्रश्न सैद्धांतिक हो सकता है क्योंकि गवर्नर जनरल मंत्रिमंडल के परामर्श के आधार पर ही समावेदन में अंतर्विष्ट कदाचार के सबूत को संभवतया स्वीकार करता है ।

दोनों सदन यह अवधारित करते हैं कि प्रश्न का विनिश्चय सदन में किया जाए या उन्हें सलाह देने के लिए किसी अन्य निकाय को कहा जाए । वर्ष, 1984 में नियुक्त दो सीनेट समितियों और वर्ष 1986 में नियुक्त किए गए संसदीय जांच आयोग ने उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, न्यायमूर्ति मर्फी के आचरण की जांच की थी और उनसे यह अपेक्षा की गई थी कि वे तथ्यों का पता लगाए और यह सलाह दी जाए कि न्यायमूर्ति मर्फी के आचरण से कदाचार का गठन होता है या नहीं । ऐसा करना तब अनुज्ञेय है जब तक सदन कदाचार के प्रश्न का वास्तविक अवधारण करने के लिए प्रत्यायोजन नहीं करते हैं ।

"सिद्ध" शब्द का प्रयोग करनें से यह निष्कर्ष निकलता है कि ये प्रक्रियाएं न्यायिक हैं और इसके लिए आरोप विरचित करना और पूरी जांच करना आवश्यक है और सदन द्वारा न्यायाधीश को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए । यह परिस्थिति वहां उद्भूत होती है जहां किसी जांच समिति को प्रथमदृष्ट्या कदाचार के तथ्यों का निष्कर्ष निकालने के लिए प्रत्यायोजित किया गया हो । सदन न्यायालयों द्वारा पालन की जाने वाली कार्यवाहियों को या किसी अन्वेषण रीति को अपना सकता है । यदि किसी अन्य जांच में पहले से ही तथ्य एकत्रित कर लिए गए हैं या न्यायालय में किसी अपराध के लिए दोषसिद्धि की गई है, तब सदन यह विनिश्चय कर सकता है कि और साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है । साधारणतया, अन्वेषण करने के लिए एक चयन समिति नियुक्त की जाती है ।

ओडजरस् आस्ट्रेलियन सीनेट प्रेक्टिस

ओडजरस् आस्ट्रेलियन सीनेट प्रेक्टिस (11वां संस्करण, 2004) जिसका संपादन हैरी इवान्स द्वारा किया गया है, उन्होंने आस्ट्रेलिया के संविधान की धारा 72(ii) में निर्दिष्ट न्यायाधीशों द्वारा किए गए "कदाचार" के संबंध में कई संवैधानिक प्रश्नों और समावेदन के आधार पर पद से हटाने की प्रक्रिया की बाबत उद्भूत होने वाले विभिन्न विवाद्यकों पर व्यापक रूप से विचार-विमर्श किया है ।

किसी समावेदन के पश्चात् गवर्नर जनरल इन काउन्सिल द्वारा पद से हटाने के संबंध में पारित किए गए आदेश का पुनर्विलोकन किया जाए या नहीं, इस बाबत पार्लियामेंटरी कमिश्नरों में से दो कमिश्नरों ने पहले ही यह मत व्यक्त किया है कि न्यायिक पक्ष की ओर से इस संबंध में उच्च न्यायालय पुनर्विलोकन कर सकता है और आदेश को अभिखंडित कर सकता है । तथापि, लेखक ने निक्सन बनाम यू. एस. [1993 (508) यू. एस. 927] वाले मामले में अमेरिकी निर्णय को निर्दिष्ट किया है जिसमें अमेरिका के उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि महाभियोग द्वारा किसी न्यायाधीश को पद से हटाने का न्यायिक रूप से पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता ।

दोनों सदनों द्वारा समावेदन के पश्चात् गवर्नर जनरल के विवेकाधिकार के प्रश्न के संबंध में लेखक ने यह कहा है कि यह स्थापित नहीं है कि गवर्नर जनरल इन काउन्सिल दोनों सदनों द्वारा किए गए किसी समावेदन के अनुसार कार्य करने के लिए आबद्ध है या नहीं । उनका कहना यह है कि साधारणतया यह समझा जाता है कि क्योंकि सदन " साबित किए गए" आधारों पर कार्य करता है इसलिए सदनों द्वारा किया गया समावेदन आबंद्धकर होता है । तथापि, पार्लियामेंटरी कमिश्नरों में से एक कमिश्नर ने यह मत व्यक्त किया है कि धारा 72 ने क्राउन के इस विवेकाधिकार को बनाए रखा है कि वह समावेदन पर कार्यवाही कर सकता है या नहीं कर सकता है । पहले निर्दिष्ट किया गया प्रश्न सैद्धांतिक लग सकता है क्योंकि अंततः गवर्नर जनरल को मंत्रालय की सलाह के अनुसार कार्य करना होता है । इस प्रश्न के संबंध में कि "कदाचार" के प्रश्न की बाबत संसद् के सदन स्वयं विनिश्चय करें या नहीं या वे इस कृत्य को समिति को प्रत्यायोजित कर दें इस संबंध में सहमति नहीं है क्योंकि ऐसा कोई कानून नहीं है जिसमें किसी विशिष्ट प्रक्रिया का आदेश किया गया हो । किंतु वे सदनों के प्रयोजन के लिए अंतिम अवधारण के लिए इस कृत्य का प्रत्यायोजित कर सकते हैं ।

जहां तक न्यायाधीश को सुने जाने का संबंध है, ऐसी सुनवाई अंतिम रूप से सदनों में की जानी चाहिए यद्यपि हो सकता है कि संबंधित न्यायाधीश को किसी ऐसी समिति, जिसने साक्ष्य अभिलिखित किया हो, के समक्ष यह अवसर दिया गया हो । इसलिए कदाचार के संबंध में सदन अंतिम विनिश्चय निकालते हैं ।

लेखक द्वारा एक अन्य महत्वपूर्ण मत यह व्यक्त किया गया हैं कि प्रत्येक सदन में अलग-

अलग सुनवाई की जानी चाहिए । इस संबंध में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया है : –

"यह सोचा जा सकता है कि दोनों सदनों की ओर से की गई जांच सिफारिश के जैसी है, किंतु इस संबंध में ठोस दलील यह दी जा सकती है कि कोई जांच एक सदन द्वारा सदैव आरंभ की जाती है दूसरा सदन ऐसी जांच में तब तक अंतर्ग्रस्त नहीं होगा जब तक कि किसी समावेदन में उसकी सहमति प्राप्त करने का अनुरोध न मिले । दोनों सदनों में अलग-अलग इस रीति में जांच करने से वह न्यायाधीश जिसके संबंध में जांच की जा रही है उसको दो बार सुनवाई का अवसर मिल जाता है और धारा 72 के रचियाताओं का भी यही आशय था। दोनों सदनों द्वारा संयुक्त कार्रवाई किए जाने सह ये रक्षोपाय समाप्त हो जाएगा ।"

इसलिए यह प्रतीत होता है कि मत यह है कि जिस समिति को आरंभ में जांच प्रत्यायोजित की जाती है वह सदनों में एक की समिति होती है न कि दोनों सदनों की । इसके अतिरिक्त यदि सदनों में से एक सदन की समिति अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर देती है और वह सदन प्रथमदृष्ट्या समिति के निष्कर्षों से सहमत है तब वह सदन दूसरे सदन से अपने संकल्प के संबंध में सहमति देने का अनुरोध करेगा और जब अन्य सदन से ऐसी सहमति की ईप्सा की जाती है तब न्यायाधीश को अन्य सदन में अलग से अवसर दिया जाना चाहिए ।

एक और अन्य प्रश्न यह है कि जिस समिति या चयन समिति को जांच प्रत्यायोजित की जाती है वह प्रत्यायोजन के भागरूप दी गई शक्ति के अधीन साक्ष्य प्रस्तुत करने अर्थात् साक्षियों को बुलाए जाने और दस्तावेजों को पेश करने के लिए बाध्य कर सकती है या नहीं । यह संदेहास्पद है कि क्या कोई सदन अकेला ही कार्रवाई करते हुए विधिपूर्ण रूप से अपने सदस्यों से अतिरिक्त व्यक्तियों या किसी निकाय को ऐसी कोई शक्ति प्रदत्त कर सकता है ?

एक और अन्य प्रश्न यह उठता है कि क्या इस प्रकार नियुक्त की गई समिति केवल साक्ष्य एकत्रित करेगी और इसलिए विशेष रक्षोपाय आवश्यक नहीं हैं । कोई ऐसा निकाय जो मात्र साक्ष्य एकत्रित करता है संभवतया उसे व्यापक कार्यवाहियों की आवश्यकता नहीं है या उसके लिए रक्षोपायों का उपबंध करना आवश्यक नहीं है । तथापि, कोई ऐसा निकाय जिसे साक्ष्य पेश करने के लिए मजबूर करने की शक्ति है उस पर कुछ अवरोध अधिरोपित किए जाने चाहिएं । यदि कोई समिति औपचारिक रूप से साक्ष्य भी सुनती है और उस संबंध में निर्णय करती है तब रक्षोपाय

आवश्यक हैं। इसके पश्चात् लेखक ने महत्वपूर्ण कथन यह किया कि 'न्वेषण' और 'जांच' के बीच फर्क है ! इस संबंध में लेखक का निम्नलिखित मत है :–

"यह सुझाव दिया है कि साक्ष्य एकत्रित करने और साक्ष्य सुनने के कृत्यों को अलग-अलग करना बेहतर है । इसलिए आरंभिक जांच करने के लिए किसी चयन समिति से भिन्न किसी अन्वेषण निकाय के संबंध में उचित रूप से विचार किया जा सकता है और साक्ष्य पेश करने के लिए बाध्य करने की शक्ति और रक्षोपायों के संबंध में पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर विचार किया जाना चाहिए ।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि संसदीय जांच आयोग को वर्ष, 1986 में स्थापित करने के लिए जब संसद् के अधिनियम को पारित किया गया तब पूर्वगामी प्रश्नों पर पर्याप्त रूप से विचार नहीं किया गया था.....। उस निकाय को भी सम्मिलित किया गया जो साक्ष्य एकत्रित करने, साक्ष्य की औपचारिक सुनवाई और साक्ष्य के निर्णय के आधार पर सदनों को सलाह देने का कृत्य कर रहा था । इस निकाय को साक्ष्य प्रस्तुत कराने के लिए बाध्य करने की शक्ति दी गई थी । वास्तव में यह दोनों सदनों को रिपोर्ट देने का एक संयुक्त निकाय था । वस्तुतः यह निकाय संसद् के सत्र में न होने की अवधि में भी कार्य करता था जो कि किसी आरंभिक जांच के लिए उपयुक्त हो सकता है किंतु साक्ष्य की सुनवाई के लिए अनुचित है....। साधारणतया यह धारणा की जाती है कि साक्ष्य की औपचारिक सुनवाई के पश्चात् विचारण प्रक्रिया आरंभ की जाती है और यह प्रक्रिया तब आरंभ होती है जब धारा 72 के अधीन कोई सदन समावेदन के लिए सहमत हुआ हो ।"

इन टीका-टिप्पणियों के अनुसार, एक पृथक् निकाय जो तथ्यों के संबंध में अन्वेषण करने के पश्चात् आरोप विरचित करने के विनिश्चय पर पहुंचता है और एक अन्य निकाय जो अवरोध के साथ आरोपों की बाद में जांच करता है ऐसा निकाय, एक ही समिति द्वारा अन्वेषण और जांच करने के मुकाबले, उचित प्रतीत होता है ।

न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी वाले मामले में लोकसभा के समक्ष श्री कपिल सिब्बल ने अपने निवेदन में उपर्युक्त से संबंधित विवाद्यक पर बहस की थी । श्री कपिल सिब्बल ने यह दलील दी थी कि न्यायमूर्ति सावंत समिति के समक्ष कभी भी अन्वेषण नहीं किया गया और समिति ने सीधे ही

आरोप विरचित कर दिए और उनकी जांच की । उनके अनुसार यदि प्रक्रिया "सदृश-अपराध" की थी तब आरोप विरचित करने से पहले अन्वेषण अवश्य किया जाना चाहिए था । जांच केवल अन्वेषण के पश्चात् की जाती है ।

श्री सिब्बल ने यह दलील दी कि न्यायाधीश जांच अधिनियम, 1968 की धारा 3 के अधीन समावेदन ग्रहण करने के पश्चात् किसी समिति द्वारा 'अन्वेषण' कराया जाना अनुध्यात किया गया है । उन्होंने यह दलील दी कि समावेदन ग्रहण करने के पश्चात् समिति को सबसे पहले उन आधारों के संबंध में अन्वेषण करना चाहिए था जिन आधारों पर किसी न्यायाधीश को पद से हटाने की प्रार्थना की गई है और इसके पश्चात् आरोप विरचित करने चाहिएं थे । किन्तु अन्य सदस्यों (विशेष रूप से जार्ज फर्नांडिस) का उत्तर यह था कि धारा 3(3) में यह उपबंध किया गया है कि जिन आधारों पर अन्वेषण करने की प्रस्थापना की गई है उन्हीं आधारों पर समिति निश्चित आरोप विरचित कर सकती है । इस प्रकार कुछ सदस्यों के अनुसार उपधारा में पहले आरोप विरचित करने और इसके पश्चात् अन्वेषण करने के संबंध में अनुध्यात किया गया है । अधिनियम, 1968 की धारा 3(3) मे प्रयुक्त 'अन्वेषण' शब्द का आशय 'जांच' है ।

<u>स्टेट्स इन आस्ट्रेलिया</u>

कामनवेल्थ कांस्टीट्यूशन की धारा 72(ii) के अधीन फेडरल न्यायाधीशों को केवल संसद् को समावेदन करने के पश्चात् पद से हटाया जा सकता है, क्विनसलैंड, पश्चिमी आस्ट्रेलिया, दक्षिणी आस्ट्रेलिया और विक्टोरिया में के राज्यों के न्यायाधीशों को 'क्यूभडियो से बेन जेसीरिन्ट' पद्धति के अधीन पद से हटाया जा सकता है । कामनवेल्थ कांस्ट्रीट्यूशन में कतिपय निहित आधारों पर पद से हटाने के उपबंध सीमित हैं । किंतु किसी भी राज्य में न्यू साउथ वेल्स के सिवाय, राज्य की किसी विधि में पद से हटाने के निर्बन्धित उपबंध नहीं हैं । संसद् से कोई समावेदन नहीं किया जाता है यद्यपि इस संबंध में आधार विहित नहीं किए गए हैं(क्विनसलैंड, विक्टोरिया, साउथ आस्ट्रेलिया, वेस्टर्न आस्ट्रेलिया) या केवल संसद् से किसी समावेदन (तस्मानिया) या संसद् से किसी समावेदन पर किंतु केवल विहित आधारों पर पद से हटाया जाता है (न्यू साउथ वेल्स) ।

<u>न्यू साउथ वेल्सः ज्यूडिशियल आफिसरस ऐक्ट, 1986 (न्यायिक अधिकारी अधिनियम, 1986)</u>

संविधान अधिनियम, 1902 (न्यू साउथ वेल्स) की धारा 53 के भाग 9 को संविधान

(संशोधन) अधिनियम, 1992 (एन.एस.डब्ल्यू.) द्वारा अंतःस्थापित किया गया है जिसमें न्यायिक अधिकारियों को पद से हटाने का निम्नलिखित उपबंध किया गया है :–

"धारा 53(1) इस भाग (भाग 9) द्वारा यथा उपबंधित के सिवाय, न्यायिक पद के किसी धारक को पद से हटाया जा सकता है ,

(2) किसी न्यायिक पद के धारक को, संसद् के दोनों सदनों से एक ही सत्र में पद से हटाने की ईप्सा के समावेदन के आधार पर सिद्ध कदाचार या असमर्थता के आधार पर पद से हटाया जा सकता है ।

(3) किसी न्यायिक अधिकारी को पद से हटाने से पहले विधान द्वारा प्रक्रिया अधिकथित की जानी चाहिए और अपेक्षाओं को पूरा किया जाना चाहिए ।"

धारा 56 की धारा 4 में निलंबन, सेवानिवृत्ति और पद समाप्त किए जाने की बाबत उपबंध किए गए हैं ।

न्यू साउथ वेल्स ऐक्ट, 1986 में न्यायिक आयोग और आयोग के आचरण खंड को निर्दिष्ट किया गया है । धारा 3 में आयोग को न्यायिक आयोग के रूप में परिभाषित किया गया है और इस धारा में आचरण प्रभाग को भी परिभाषित किया गया है । धारा 5 के अधीन आयोग दस सदस्यों से मिलकर बनेगा जिनमें से छह सदस्य शासकीय होंगे और चार नियुक्त किए गए सदस्य होंगे । किंतु धारा 22 के अधीन आचरण प्रभाग जो अनुशासनिक कार्रवाई करता है, वह ऐसे तीन व्यक्तियों से मिलकर बनेगा जो सभी न्यायिक अधिकारी होते हैं ।

भाग 5 में आचरण प्रभाग की बाबत उपबंध किए गए हैं (धारा 13 और 14), न्यायिक अधिकारियों के विरुद्ध शिकायतों के संबंध में भाग 6 में उपबंध किए गए हैं । भाग 6 में चार खंड हैं। पहले प्रभाग में शिकायतें करने से संबंधित उपबंध (धारा 15 से 17) में हैं, दूसरे खंड में शिकायतों की आरंभिक परीक्षा के लिए उपबंध (धारा 18 से 21) हैं, तीसरे खंड में आचरण प्रभाग और रिपोर्ट प्रस्तुत करने के उपबंध (धारा 22 से 29) हैं, चौथे खंड में प्रकीर्ण पहलुओं के उपबंध (धारा 30 से 39) हैं ।

भाग 7 में न्यायिक अधिकारियों को निलंबित और पद से हटाने से संबंधित उपबध (धारा 40

से 43क) हैं । अनुसूची 3 में आचरण आयोग की प्रक्रिया से संबंधित उपबंध हैं ।

धारा 3(क) में "न्यायिक अधिकारी" को न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय का सहयुक्त न्यायाधीश, या जिला न्यायालय का न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट आदि के रूप में परिभाषित किया गया है ।

आयोग का आचरण प्रभाग तीन व्यक्तियों से मिलकर बनेगा और धारा 22 के अधीन इसका गठन किया जाता है । इस धारा में यह उपबंध किया गया है कि उपर्युक्त तीनों व्यक्ति न्यायिक अधिकारी होंगे और इनमें से एक सेवानिवृत्त अधिकारी हो सकता है ।

धारा 15 के अधीन शिकायतें आयोग को की जाएंगी किंतु आयोग शिकायतों पर तब तक कार्यवाही नहीं करेगा (सिवाय धारा 20 के अधीन जहां वह सरसरी तौर पर शिकायतों को खारिज कर सकता है) जब तक कि ऐसा प्रतीत न हो कि शिकायत को यदि सिद्ध कर दिया जाता है तो ऐसी शिकायत पर न्यायिक अधिकारी को पद से हटाने के लिए संसद् द्वारा विचार करना न्यायौचित्य है या जहां उपरोक्त रीति में सिद्ध कर दिया गया है तब हो सकता है पद से हटाने के लिए संसद् द्वारा विचार करना न्यायौचित्य न हो और आगे परीक्षा करने से न्यायिक रूप से और अधिकारी के शासकीय कृत्यों का निर्वहन प्रभावित होगा । धारा 15 की उपधारा (3) में यह उपबंध किया गया है कि शिकायत न्यायिक अधिकारी की नियुक्ति से पहले से उद्भूत हुए मामले से संबंधित नहीं होनी चाहिए या अधिनियम के प्रारंभ होने से पहले मामला उद्भूत नहीं होना चाहिए और जब तक ऐसा प्रतीत न हो कि पद से हटाने के लिए शिकायत को यदि सिद्ध कर दिया जाता तब संसद् के लिए विचार करना न्यायोचित हो सकता है तब तक शिकायत पर विचार नहीं किया जाएगा । धारा 15 की उपधारा (4) के अधीन न्यायिक या शासकीय कर्तव्यों का पालन करने में न्यायिक अधिकारी की सक्षमता के संबंध में शिकायत की जा सकती है । उपधारा (6) के अधीन शिकायत किसी दांडिक अपराध का गठन करने या गठन कर सकने के लिए की जा सकती है । यदि किसी न्यायालय द्वारा अभिकथनों की बाबत कार्यवाही की जा रही है तब आयोग या आचरण प्रभाग विचारण को स्थगित कर सकता है या किसी अन्य उचित कारण के लिए मामले को स्थगित कर सकता है ।

धारा 16 में यह उपबंध किया गया है कि मंत्री आयोग को किसी न्यायिक अधिकारी से

संबंधित किसी मामले को निर्देशित कर सकता है । धारा 17 में विनियमों में यथा उपबंधित शिकायतें करने की रीति की बाबत उपबंध किया गया है । शिकायत करने वाले व्यक्ति की जानकारी होनी चाहिए ।

आचरण प्रभाग को किसी मामले को निर्देशित करने से पहले आयोग को धारा 18 के अधीन आरंभिक परीक्षा करनी चाहिए और इसके पश्चात् धारा 19 के अधीन आयोग या तो सरसरी तौर पर शिकायत को खारिज कर सकता है या शिकायत को छोटी-मोटी शिकायत के रूप में वर्गीकृत कर सकता है या उसे गंभीर प्रकृति की शिकायत के रूप में वर्गीकृत कर सकता है । धारा 20 के अधीन आयोग यदि यह पाता है कि शिकायत मिथ्या, तंग करने या तुच्छ है या बहुत अधिक समय बीत चुका है या अन्य उपचार या प्रतितोष है या जहां शिकायत का संबंध न्यायिक या अन्य कृत्य से है अर्थात् पर्याप्त अपील या पुनर्विलोकन अधिकारों के अध्यधीन है या जिस व्यक्ति के विरुद्ध शिकायत की गई है वह व्यक्ति अब न्यायिक अधिकारी नहीं है या जहां साधारण रूप से शिकायत न्यायोचित नहीं है तब वह (आयोग) सरसरी तौर पर ऐसी शिकायत को खारिज कर सकता है ।

यदि शिकायत को सरसरी तौर पर खारिज नहीं किया गया है तब धारा 21 के अधीन उसे आचरण प्रभाग को निर्देशित किया जाएगा । धारा 23 के अधीन आचरण प्रभाग शिकायत की परीक्षा करेगा और ऐसा अन्वेषण आरंभ करेगा जो उचित हो । जहां तक संभव हो सके यह सारी कार्यवाही गुप्त रूप से की जाएगी ।

धारा 24 के अधीन आचरण प्रभाग सुनवाई करेगा और यदि शिकायत गंभीर प्रकृति की है तब सुनवाई सार्वजनिक रूप से तब तक नहीं की जाएगी जब तक प्रखंड प्राइवेट रूप से ऐसी सुनवाई करने का निदेश न दे । शिकायत यदि छोटी-मोटी प्रकृति की है तब सुनवाई प्राइवेट रूप से की जाएगी । आचरण प्रभाग यह निदेश दे सकता है कि सुनवाई में कौन मौजूद रहेगा । सुनवाई में न्यायिक अधिकारी का प्रतिनिधित्व विधि व्यवसायी कर सकता है ।

गंभीर प्रकृति की शिकायतों की दशा में आचरण प्रभाग को धारा 25 के अधीन कानून अर्थात् रायल कमीशन्स ऐक्ट, 1923 द्वारा कमिश्नरस को शक्तियां प्रदत्त की गई हैं । छोटी-मोटी शिकायतों की दशा में प्रभाग शपथ या प्रतिज्ञान के आधार पर साक्ष्य प्राप्त कर सकता है ।

आचरण प्रभाग उन्हीं आधारों पर शिकायतों को खारिज कर सकता है जिन आधारों पर आयोग सरसरी तौर पर किसी शिकायत को या शिकायत को सिद्ध नहीं किया गया है तब उस शिकायत को खारिज करता है ।

गंभीर शिकायत की दशा में धारा 29 के अधीन आचरण प्रभाग गवर्नर को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा । यदि प्रभाग का मत यह है कि पद से हटाने के लिए संसद् द्वारा विचार करने के लिए मामला न्यायौचित्य है तब प्रभाग के तथ्यों के संबंध में निष्कर्ष और राय को उपवर्णित करते समय एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा । गवर्नर द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत करने के पश्चात् मंत्री सदन के समक्ष रिपोर्ट को रखेगा । रिपोर्ट की एक प्रति आयोग को भी दी जाएगी । यदि शिकायत छोटी-मोटी प्रकृति की है तब आचरण प्रभाग आयोग को रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा । सभी दशाओं में प्रतियां न्यायिक अधिकारियों को दी जाएंगी ।

धारा 34 में ऐसे न्यायिक अधिकारी की चिकित्सा परीक्षा कराने का उपबंध किया गया है जब शिकायत में यह कथन किया गया हो कि अधिकारी शारीरिक या मानसिक रूप से अपने कृत्यों का कुशलतापूर्वक निर्वहन करने के योग्य नहीं है । धारा 41 में यह उपबंध किया गया है कि गवर्नर की आचरण प्रभाग की रिपोर्ट, जिसमें प्रभाग ने यह राय व्यक्त की हो कि पद से हटाने के लिए संसद् द्वारा विचार करने के लिए यह मामला न्यायोचित है, के अभाव में न्यायिक अधिकारी को पद से नहीं हटाया जा सकता है । धारा 40 में ऐसे न्यायिक अधिकारियों को निलंबित करने की अनुज्ञा दी गई है जिनके संबंध में शिकायत करने के पश्चात् आचरण प्रभाग ने यह रिपोर्ट दी हो कि ऐसे न्यायिक अधिकारी को पद से हटा दिया जाना चाहिए या उसे 12 मास या अधिक अवधि के लिए कारावास द्वारा दंडनीय किसी अपराध के लिए आरोपित किया जाता है या न्यू साउथ वेल्स या कहीं और किसी न्यायालय द्वारा ऐसे अधिकारी की दोषसिद्धि की गई हो ।

हम यह भी उल्लेख कर सकते हैं कि धारा 38 में यह अनुज्ञात किया गया है कि किसी शिकायतकर्ता को आयोग द्वा रा तंग करने वाला शिकायतकर्ता घोषित किया जा सकता है । धारा 36 और 37 महत्वपूर्ण हैं और इन धाराओं द्वारा प्रभाग के समक्ष दिए गए साक्ष्य या प्रभाग में फाइल किए गए दस्तावेजों में अंतर्विष्ट विषय को प्रकाशित करने से प्रतिषिद्ध किया गया है । इन धाराओं में यह भी उपबंध किया गया है कि यदि कोई व्यक्ति आचरण प्रभाग के निदेश का अधिक्रमण करके प्रकाशन करता है तो वह दंडनीय अपराध का दोषी होगा और उसे जुर्माने या एक वर्ष के कारावास या दोनों से दंडित किया जाएगा । धारा 37 द्वारा आयोग या आचरण प्रभाग के सदस्यों या अधिकारियों की जानकारी प्रकट करने से प्रतिषिद्ध किया गया है सिवाए इसके कि जहां

(क) जिस व्यक्ति से जानकारी अभिप्राप्त की गई है वह सहमति देता है या (ख) अधिनियम (धारा 8 और 9 के सिवाय) का प्रशासन या निष्पादन करने के संबंध में (ग) अधिनियम या किसी अन्य रिपोर्ट से उद्भूत होने वाली विधिक कार्यवाहियों के प्रयोजनों के लिए या (घ) किसी अन्य विधिपूर्ण बात के लिए ।

विक्टोरिया

"कोर्ट्स लेजीसलेशन (ज्यूडिशियल कंडक्ट) ऐक्ट, 2005" का विक्टोरिया द्वारा विक्टोरिया के संविधान, उच्चतम न्यायालय अधिनियम और अन्य अधिनियमों का संशोधन किया गया है ।

हम पहले संविधान अधिनियम, 1975 की धारा 77(1) और 77(4)(क) को निर्दिष्ट करेंगे जिनका संशोधन कोर्ट्स लेजीसलेशन (ज्यूडिशियल कंडक्ट) ऐक्ट, 2005 द्वारा किया गया है ।

(क) विक्टोरिया का संविधान अधिनियम, 1975 (2005 में यथा संशोधित) : भाग 3 में धारा 77(1) और 77(4)(क) निम्नलिखित है :–

"77. कमीशनस् आफ जजिस

(1) न्यायालय के न्यायाधीशों के कृत्य उपधारा (4) के अध्यधीन, हरमजेस्टी की मृत्यु हो जाने पर भी, उनके सदाचरण के दौरान पूरी तरह से बने रहेंगे और प्रवृत्त रहेंगे, यदि उनका आचरण किसी विधि, प्रथा या परिपाटी के विरुद्ध है तो इसके होते हुए भी, गवर्नर परिषद् और विधानसभा के समावेदन पर ऐसे न्यायाधीश को पद से हटा सकता है ।

(2) .....

(3) .....

(3क).....

(4) किसी न्यायाधीश के कृत्य प्रवृत्त नहीं रहेंगे और पद खाली हो जाएगा –

(क) न्यायालय संशोधन अधिनियम, 1986 की धारा 4 के प्रारंभ होने से पहले किसी ऐसे न्यायाधीश को नियुक्त किया गया है जिसने धारा 80क के अधीन कोई चयन नहीं किया है

72 वर्ष की आयु अभिप्राप्त करने के पश्चात् या

(ख).....

(ग) .....

(घ).....”

अधिनियम के भाग 2 में अंतर्विष्ट धारा 18(2) निम्नलिखित है :–

धारा 18. इस अधिनियम को परिवर्तित करने की संसद् की शक्ति :

(1) इस धारा के अध्यधीन रहते हुए, संसद् इस अधिनियम के उपबंधों में से किसी या सभी उपबंधों को, किसी अधिनियम द्वारा निरसित, परिवर्तित या बदल सकती है और उनके बदले अन्य धारा प्रतिस्थापित कर सकती है ।

(1क) .....

(1ख) .....

(2) किसी ऐसे विधेयक को हर मजेस्टी की अनुमति के लिए प्रस्तुत करना गवर्नर के विधिपूर्ण नहीं होगा जिसके द्वारा --

(क) ---------

(ख) ---------

(ग) ---------

(घ) ---------

(ड.) ---------

(च) ---------

(च क) भाग 7; या

(च ख) भाग 3 क क

(छ) पैरा (क) से (च ख) में विनिर्दिष्ट किसी उपबंध के लिए प्रतिस्थापित कोई उपबंध निरसित, परिवर्तित या फेरफार किया जाता है ;

.....

जब तक विधेयक को तीन बार पढ़ने के पश्चात् विशेष बहुमत द्वारा पारित नहीं किया जाता है ।"

अधिनियम, 2005 का उद्देश्य संविधान अधिनियम, 2005 का संशोधन करना था जिससे न्यायिक पद के धारक को पद से हटाने के आधारों की बाबत नए उपबंध बनाए जा सके और अन्वेषण अभिकरण आदि को नियुक्त करने के लिए उपबंध किया जा सके । संविधान अधिनियम, 1975 का संशोधन "(च ख) भाग 3 क क" शब्द अन्तःस्थापित करके संशोधन किया गया है और संविधान अधिनियम, 1975 की धारा 18 (2) (छ) में (च क) शब्दों के स्थान पर (च ख) शब्द रखे गए हैं ।

धारा 4 द्वारा भाग 3 के पश्चात् भाग 3 क क अन्तःस्थापित किया गया है । धारा 4 द्वारा भाग 3 क क अन्तःस्थापित किया गया जिसमें न्यायाधीशों को पद से हटाने की प्रक्रिया से संबंधित धारा 87 क क क से धारा 87 क क थ भी है ।

संविधान के 2005 में संशोधन करने का प्रभाव यह है कि नए भाग 3 क क में धारा 87 क क क से धारा क क थ प्रतिस्थापित किए जाने से इन धाराओं का संशोधन विशेष बहुमत के सिवाय नहीं किया जा सकता ।

धारा 87 क क क में अन्वेषण समिति को धारा 87 क क घ के अधीन नियुक्त की गई समिति के रूप में परिभाषित किया गया है । यह धारा "न्यायिक पद" शब्द को भी परिभाषित करती है । "न्यायिक पद" से अभिप्रेत है उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय का मास्टर, काउन्टी कोर्ट का न्यायाधीश, काउन्टी कोर्ट का मास्टर और मजिस्ट्रेट के पद हैं । इस धारा में "पैनल" शब्द को धारा 87 क क ग के अधीन स्थापित पैनल के रूप में परिभाषित किया गया है ।

धारा 87 क क ख में न्यायिक पद से हटाने के संबंध में उपबंध किया गया है जो कि निम्नलिखित है :-

"87 क क ख न्यायिक पद से हटाना :

(1) यदि सिद्ध कदाचार या असमर्थता के आधार पर पद से हटाने की प्रार्थना संसद के दोनों सदनों के समावेदन में की गई है और संसद विशेष बहुमत द्वारा सहमत हो जाती है उस समावेदन को गवर्नर को प्रस्तुत करने के पश्चात् गवर्नर इन काउन्सिल किसी न्यायिक पद के धारक को पद से हटा सकती है ।

(2) संसद के किसी सदन या संसद के दोनों सदनों का वह संकल्प जिसमें न्यायिक पद के धारक को पद से हटाने की प्रार्थना की गई है, शून्य है, यदि धारा 87 क क घ के अधीन नियुक्त की गई अन्वेषण समिति ने यह निष्कर्ष नहीं निकाला है कि ऐसे तथ्य विद्यमान नहीं हैं जो सिद्ध कदाचार या असमर्थता की कोर्ट के अन्तर्गत आते हों और जिनके आधार पर न्यायिक पद के धारक को पद से हटाना आवश्यक हो ।

(3) यह धारा किसी न्यायिक पद पर कालिक नियुक्ति या कार्यकारी नियुक्ति की अवधि बढ़ाती है किन्तु कालिक अवधि या समयावधि, जिसके लिए कार्य करने के लिए नियुक्ति की गई हो, के पर्यवसान पर धारित पद को पदधारित करने से निवारित नहीं करती है ।

(4) इस भाग द्वारा यथाउपबंधित के सिवाय, न्यायिक पद धारित करने वाले किसी व्यक्ति को उसके पद से हटाया नहीं जा सकता है ।"

धारा 87 क क ग (1) में ऐसे "न्यायिक पैनल" के गठन को निर्दिष्ट किया गया है जिसमें अटर्नी जनरल द्वारा नियुक्त किए गए सात व्यक्ति होंगे । धारा 87 क क ग (3) के अधीन कोई व्यक्ति नियुक्ति के लिए केवल तभी पात्र होता है यदि वह "अर्हक पद" धारित किया हो किन्तु अब धारित नहीं कर रहा है/कर रही है । उपधारा (3) निम्नलिखित है :-

"87 क क ग : न्यायिक पैनल

(1) इस भाग के प्रयोजनों के लिए 7 व्यक्तियों की एक पैनल स्थापित की जाती है ।

(2) नियुक्ति दस्तावेज में विनिर्दिष्ट समयावधि के लिए अटर्नी जनरल द्वारा पैनल के सदस्यों की नियुक्ति की जाती है ।

(3) कोई व्यक्ति पैनल सदस्य के रूप में नियुक्ति का पात्र तब होता यदि उसने अर्हक

पद धारित किया हो किन्तु अब वह पद धारित नहीं कर रहा/कर रही है ।

.....

धारा 87 क क क में 'अर्हक पद' को फेडरल कोर्ट आफ आस्ट्रेलिया, आस्ट्रेलिया का कुटुम्ब न्यायालय, कोर्ट आफ वेस्टर्न आस्ट्रेलिया, विक्टोरिया से भिन्न किसी राज्य का उच्चतम न्यायालय, आस्ट्रेलियन केपिटल टेरीटरी या नार्दन टेरीटरी के न्यायाधीश के पद के रूप में परिभाषित किया गया है । इसलिए पैनल में केवल सेवानिवृत्त न्यायाधीश होते हैं ।

धारा 87 क क घ में "अन्वेषण समिति" की नियुक्ति के संबंध में उपबंध किया गया है । इस धारा में यह उपबंध किया गया है कि यदि अटर्नी जनरल का यह समाधान हो जाता है कि इस बाबत अन्वेषण करने के युक्तियुक्त आधार हैं कि किसी न्यायिक पद के धारक द्वारा सिद्ध कदाचार या असमर्थता की कोटि के अन्तर्गत आने वाले ऐसे तथ्य विद्यमान है जिनके आधार पर पद के धारक को पद से हटाना आवश्यक हो तब समिति नियुक्त की जा सकती है । अन्वेषण समिति में धारा 87 क क ग में निर्दिष्ट किए गए सात व्यक्तियों के पैनल में से तीन सदस्य होंगे, जिन्हें अटर्नी जनरल द्वारा नियुक्त किया गया है और तीन सदस्यों का चयन करने के लिए अटर्नी जनरल तत्समय पैनल में के ज्येष्ठतम सदस्य से सिफारिश करने की ईप्सा करेगा । अटर्नी जनरल इन तीनों सदस्यों में से ज्येष्ठतम सदस्य को अध्यक्ष के रूप में भी नियुक्त करेगा ।

धारा 87 क क घ में अन्वेषक समिति की भूमिका को निर्देशित किया गया है जो कि निम्नलिखित है :-

"87 क क घ अन्वेषक समिति की भूमिका अन्वेषक समिति की भूमिका उसे निर्देशित न्यायिक पद के धारक से संबंधित मामले का अन्वेषण करना है और उसे विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर अपना यह निष्कर्ष निकाल कर अटर्नी जनरल को रिपोर्ट देगा कि ऐसे तथ्य विद्यमान हैं या नहीं जो सिद्ध कदाचार या असमर्थता की कोटि के अन्तर्गत आते हैं जिनके आधार पर पद के धारक को पद से हटाना आवश्यक हो ।"

धारा 87 क क च में "अन्वेषक समिति" की शक्तियों को निर्दिष्ट किया गया है जो कि निम्नलिखित हैं :-

"87 क क च. अन्वेषक समिति की शक्तियां

(1) अन्वेषक समिति के पास साक्ष्य अधिनियम, 1958 की धारा 17, 18, 19, 19क, 19ख, 19ग, 19घ, 19ङ, 20, 20क, 21 और 21क द्वारा प्रदत्त शक्तियां हैं और वह उनका एक ऐसी समिति के रूप में प्रयोग कर सकती है मानों कि वह समिति व्यक्तियों का एक ऐसा निकाय है जिसे गवर्नर इन काउन्सिल द्वारा कमीशन जारी किया गया है और समिति का सभापति उस कमीशन का अध्यक्ष या सभापति होगा ।

(2) अन्वेषक समिति द्वारा जब अपेक्षा की जाए तब कोई व्यक्ति उससे पूछे गए किसी प्रश्न का उत्तर देने या कोई दस्तावेज पेश करने से इस आधार पर इनकार नहीं करेगा कि उसे किसी अधिनियम द्वारा या उसके अधीन वह प्रश्न का उत्तर देने या दस्तावेज प्रस्तुत करने से प्रतिषिद्ध किया गया है ।

(3) जब किसी अन्वेषक समिति द्वारा किसी प्रश्न का उत्तर देने या दस्तावेज प्रस्तुत करने की किसी व्यक्ति से अपेक्षा की जाए तब किसी अधिनियम द्वारा या उसके अधीन का कोई उपबंध भंग नहीं होगा जिसके द्वारा उस उत्तर, दस्तावेज या किसी वस्तु में अन्तर्विष्ट किसी जानकारी को प्रकट करने से प्रतिषिद्ध किया गया हो ।"

धारा 87 क क छ में अन्वेषण की प्रक्रिया और साक्ष्य को निर्दिष्ट किया गया है, जो कि निम्नलिखित है :-

"87 क क छ. अन्वेषण में की प्रक्रिया और साक्ष्य

(1) यदि अन्वेषक समिति सहमत है तो अन्वेषण में किसी व्यक्ति या निकाय का प्रतिनिधित्व किसी अभिकर्ता या किसी अन्य प्रकार से किया जा सकता है ।

(2) अन्वेषक समिति साक्ष्य के नियमों से आबद्ध नहीं है और जांच में विवाद्यक विषय के संबंध में उसे ऐसी किसी रीति में सूचित किया जा सकता है जो वह उचित समझे ।

(3) अन्वेषक समिति अन्वेषण के संबंध या पालन की जाने वाली प्रक्रिया के लिए निदेश दे सकेगी ।"

अन्वेषक समिति आचरण के आधार पर एक रिपोर्ट तैयार करेगी और उक्त रिपोर्ट में अपने निष्कर्ष देगी तथा धारा 87 क क ज के अधीन अटर्नी जनरल को उक्त रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी । इस रिपोर्ट में ऐसे निष्कर्ष अवश्य निकाले जाने चाहिए कि सिद्ध कदाचार या असमर्थता की कोटि के अन्तर्गत आने वाले ऐसे तथ्य विद्यमान हैं जिनके आधार पर पद के धारक को पद से हटाना आवश्यक है । इस धारा की उपधारा (3) में यह उपबंध किया गया है कि अटर्नी जनरल, यदि ऐसा करना उचित समझे तो, अन्वेषक समिति की रिपोर्ट की एक प्रति संसद के प्रत्येक पटल के समक्ष रखी जा सकती है ।

यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि अधिनियम की धारा 5 द्वारा संविधान अधिनियम, 1975 की धारा 77 (1) का संशोधन किया गया है जिसके परिणामस्वरूप भाग 3 क क और उनके "अच्छे आचरण के दौरान" शब्दों का लोप कर दिया गया है । इस धारा द्वारा "किन्तु गवर्नर, काउन्सिल और विधानमंडल के समावेदन पर ऐसे न्यायाधीश को पद से हटा सकता है" शब्दों का भी लोप कर दिया गया है । धारा 5 द्वारा संविधान अधिनियम, 1975 की धारा 77 (4) (क) से पहले निम्नलिखित खंड "(क क क) भाग 3 क क के अनुसार गवर्नर इन काउन्सिल द्वारा न्यायाधीश को पद से हटाया जा रहा है; या (क क) किसी अधिनियम द्वारा या उसके अधीन न्यायाधीश के पद को समाप्त कर दिए जाने के आधार पर न्यायाधीश को पद से हटाया जा रहा है; या" अन्तःस्थापित किया गया है ।

भाग 3 में, संविधान अधिनियम, 1975 में भाग 3 क क. अन्तःस्थापित किए जाने के परिणामस्वरूप अन्य अधिनियमों में संशोधन करने के संबंध में, उपबंध किए गए हैं । इसके द्वारा उच्चतम न्यायालय अधिनियम, 1975 की धारा 104 (3 क) (ख) में "संसद के दोनों सदनों के समावेदन पर" शब्दों के लिए संशोधन करके "संविधान अधिनियम, 1975 के भाग 3 क क के अनुसार कोई काउन्सिल" शब्द प्रतिस्थापित किए गए हैं ।

तथ्य यह है कि विक्टोरिया के अधिनियम, 2005 द्वारा संविधान का संशोधन करने से यह दर्शित होता है कि संसद के दोनों सदनों के समावेदन पर पद से हटाने की प्रक्रिया के स्थान पर अब भाग 3 क क की प्रक्रिया प्रतिस्थापित की गई है । ऊपर जो उल्लेख किया गया है उसके अनुसार यदि "अन्वेषक समिति" पद से हटाने की सिफारिश करते हैं और अपनी रिपोर्ट अटर्नी जनरल को देती है तब अटर्नी जनरल धारा 87 क क ङ के अनुसार उस रिपोर्ट की एक प्रति संसद के सदन के

पटल पर रखेगा । इस रिपोर्ट में समिति के ये निष्कर्ष होंगे कि सिद्ध कदाचार या असमर्थता के ऐसे तथ्य विद्यमान हैं या नहीं जिनके आधार पर पद के धारक को पद से हटाना आवश्यक है ।

क्विनसलैंड : वैस्टर्न आस्ट्रेलिया और साउथ आस्ट्रेलिया

उच्चतम न्यायालय अधिनियम (क्विनसलैंड) की धारा 195 (1) में यह उबंध किया गया है कि उक्त उच्चतम न्यायालय के विद्यमान/भावी न्यायाधीशों का कोई कमीशन न्यायाधीश के अच्छे आचरण के दौरान प्रवृत्त रहेगा । तथापि, धारा 195 (2) में यह भी उपबंध किया गया है कि तथापि, हर मजेस्टी के लिए यह विधिपूर्ण होगा कि वे संसदीय विधानमंडल के समावेदन पर ऐसे न्यायाधीश/न्यायाधीशों को पद से हटा सकती है । क्यूनसलैंड में वर्ष 1922 से संसद का केवल एक सदन है । संविधान अधिनियम, 1867 (गिल्ड) धारा 15 में "क्यूमडियू से बेने जेसीरिन्ट" आयोग का भी उपबंध किया गया है जबकि धारा 15 समावेदन द्वारा पद से हटाने का भी उपबंध किया गया है । दोनों ही पद्धति उपलब्ध हैं । मेकलॉले बनाम वास्टा जज आफ क्यूनसलैंड सुप्रीम कोर्ट वाला मामला (जिसे न्यायमूर्ति वी रामास्वामी वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट किया गया है) समावेदन द्वारा पद से हटाने की दूसरी पद्धति पर आधारित था । आरम्भ में एक संसदीय जांच आयोग था जिसमें उच्चतम न्यायालय के तीन सेवानिवृत्त न्यायाधीश (गिब्स, लश और हेलशाम) थे । आयोग ने यह निष्कर्ष निकाला कि न्यायाधीश की राय में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में न्यायाधीश ने कोई अवचार नहीं किया है किन्तु यह भी निष्कर्ष निकाला कि कतिपय मानहानि कार्यवाहियों और कराधान संव्यवहारों से संबंधित साक्ष्य का अन्य कोई मामला नहीं है । राज्य संसदीय विधानमंडल ने पश्चात्वर्ती निष्कर्ष को गवर्नर के समावेदन के कारणों के रूप में अपनाया । इस समावेदन के आधार पर गवर्नर ने न्यायाधीश को जून, 1989 में पद से हटा दिया ।

वेस्टर्न आस्ट्रेलिया में, उच्चतम न्यायालय अधिनियम, 1935 की धारा 9 (1) और संविधान अधिनियम, 1889 (वेस्टर्न आस्ट्रेलिया) की धारा 54 और 55 में यह उपबंध किया गया है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश अच्छे आचरण के दौरान पद धारित करेंगे किन्तु हर मैजेस्टी को किए गए समावेदन द्वारा उन्हें पद से हटाया जा सकता है ।

वेस्टर्न आस्ट्रेलिया में, संविधान अधिनियम, 1934 (सा. आ.) की धारा 74 और 77 में इसी प्रकार का उपबंध किया गया है ।

तस्मानिया : उच्चतम न्यायालय अधिनियम, 1887 (तस्मानिया) की धारा 5 और सुप्रीम कोर्ट (जजस इनडिपेंडस) ऐक्ट, 1857 (तस.) के अधीन विनिर्दिष्ट आधारों के बिना समावेदन द्वारा पद से हटाने या निलंबित करने की केवल एक पद्धति है ।

आस्ट्रलिया का जस्टिस मर्फी वाला मामला --- समिति के समक्ष महत्वपूर्ण प्रक्रियात्मक विवाद्यक

समिति के समक्ष उद्भूत होने वाले विभिन्न प्रक्रियात्मक और साक्ष्यिक विवाद्यकों के सन्दर्भ में आस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय का न्यायमूर्ति मर्फी वाला मामला बहुत महत्वपूर्ण है । इस मामले में सबूत के स्तर, साक्षियों को साक्ष्य देने के लिए मजबूर करना, न्यायाधीश को चुप रहने का अधिकार, प्रतिपरीक्षा आदि करने का उसके अधिकार से संबंधित कई प्रश्न न्यायमूर्ति मर्फी द्वारा उठाए गए थे और इसका परिणाम यह हुआ कि पहली सीनेट समिति के निष्कर्षों को रद्द कर दिया गया और दूसरी सीनेट समिति नियुक्त की गई तथा इसके पश्चात् दांडिक कार्यवाही की गई जिसमें न्यायाधीश की दोषसिद्धि की किन्तु उन्हें रिहा किया गया और पुनः विचारण किया गया तथा इसके पश्चात् संसदीय जांच आयोग द्वारा अपने निष्कर्ष निकाले गए । किन्तु कार्रवाई किए जाने से पहले अक्तूबर, 1986 में न्यायाधीश की मृत्यु हो गई । [ओजरस आस्ट्रेलियन सीनेट प्रेक्टिस (2004), जिसका संपादन इवान्स, क्लर्क आफ दि सीनेट द्वारा किया गया है, में पूरी जांच कार्यवाहियों की चर्चा की गई है] ।

पहली सैनट समिति

न्यायमूर्ति मर्फी, आस्ट्रेलिया उच्च न्यायालय के न्यायाधीश एक भूतपूर्व सीनेटर थे और सैनट में लेबर पार्टी के नेता तथा श्री विह्टलाम की लेबर गवर्नमेंट में अटर्नी जनरल थे । वर्ष 1983-84 में दो समाचारपत्रों में कतिपय व्यक्तियों के बीच टेलीफोन पर की गई बातचीत के टेप की अभिकथित पांडुलिपि प्रकाशित की थी और इस बातचीत को अवैध रूप से न्यू साउथ वेल्स पुलिस फोर्स के सदस्यों ने रिकार्ड किया था । समाचारपत्रों ने यह दावा किया था कि इस बातचीत से यह पता चला है कि कुछ व्यक्ति संगठित अपराध के क्रियाकलापों में लिप्त हैं । इस बातचीत में जो व्यक्ति अन्तर्ग्रस्त थे उनकी पहचान नहीं हो सकी थी किन्तु इन व्यक्तियों में से एक व्यक्ति को "ज्येष्ठ न्यायाधीश" के रूप में निर्देशित किया गया था । रिकार्ड की गई इस बातचीत में उस न्यायाधीश और सिडनी के एक ऐसे सालिसिटर की बातचीत भी थी जिसके बारे में यह अभिकथन किया गया

था कि वह संगठित अपराध के मुखियाओं से सहयुक्त है । बाद में उस न्यायाधीश की पहचान न्यायमूर्ति मर्फी, उच्च न्यायालय आस्ट्रेलिया, जो उस देश का उच्चतर न्यायालय है, के रूप में हुई । लेबर गवर्नमेंट ने यह मत व्यक्त किया कि किसी जांच की आवश्यकता नहीं है किन्तु सरकार की इस इच्छा के विपरीत लिबरल नेशनल पार्टी और आस्ट्रेलिया के डेमोक्रेट, जिनका सीनेट में बहुमत था, ने न्यायाधीश के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए जोर दिया । सीनेट ने तारीख 28 मार्च, 1984 को एक चयन समिति की नियुक्ति अभिकथित बातचीत के मसौदे की वास्तविकता के संबंध में और इस बाबत की न्यायाधीश का आचरण कदाचार की ऐसी कोटि में आता है या नहीं जिसके कारण उसे पद से हटाना आवश्यक हो, की बाबत रिपोर्ट देने के लिए की ।

सीनेट द्वारा समिति को विभिन्न निदेश दिए गए थे । किन्तु समिति को यह निदेश दिया गया था कि वह व्यक्तियों की निजता के अधिकारों और उनकी ख्याति की संरक्षा करें और प्रक्रियात्मक पद्धतियों तथा विधि प्रवर्तन अभिकरणों (जिसके अन्तर्गत पुलिस भी है) द्वारा किए अन्वेषण को प्रकट न करे । साक्षियों को उनके उपसंजात होने के दौरान जिन विषयों पर विचार करने की प्रस्थापना थी उनकी सूचना दी गई थी और वे हाजिर होने से पहले लिखित में निवेदन कर सकते थे तथा काउंसेल द्वारा साक्षियों की सहायता की जा सकती थी । समिति ने अपनी कार्यवाहियों के लिए मार्गदर्शक सिद्धान्त अवधारित किए जिनमें यह कथन किया गया था कि वह प्राइवेट रूप से कार्यवाही कर सकती है और उसके समक्ष जो सामग्री प्रस्तुत की जाएगी उस सामग्री को वह तब तक प्रकाशित नहीं करेगी जब तक कि उसे सार्वजनिक करना आवश्यक न हो । साक्षियों को उनके अधिकार अधिसूचित किए जाएंगे और उनके विरुद्ध किए गए अभिकथनों की जानकारी दी जाएगी । समिति साक्षियों द्वारा प्राइवेट रूप से साक्ष्य देने के लिए साक्षियों के अनुरोध को तब तक स्वीकार कर सकती है जब तक कि समिति की यह राय न हो कि सार्वजनिक रूप से साक्ष्य की सुनवाई करना आवश्यक है । साक्षियों को यह अधिकार दिया गया था कि वे असंगतता या उनको अपराध में फंसाने से संबंधित प्रश्नों का विरोध कर सकते हैं । श्री मर्फी को अंतिम रूप से बुलाया नहीं गया किन्तु समिति ने उन्हें यह उपदर्शित किया था कि वह कई विषयों के संबंध में उनके साक्ष्य को सुनना चाहती है । ऐसा इसलिए किया गया था क्योंकि यह स्पष्ट नहीं था कि सैनट या उसकी समिति उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को बुला सकती है या नहीं ।

न्यायाधीश ने दांडिक विचारण में किसी अभियुक्त व्यक्तियों के सभी अधिकारों का दावा किया जिनके अन्तर्गत उसके विनिर्दिष्ट आरोप को अधिसूचित करने का अधिकार, यदि वह चाहे तो उपस्थित न होने का अधिकार तथा उसकी मौजूदगी में सभी साक्ष्य सुनने का तथा साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने का अधिकार सम्मिलित है । सीनेट की अभिव्यक्त अनुज्ञा के बिना न्यायाधीश के वकील द्वारा साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने की अनुज्ञा देना समिति की शक्ति के भीतर नहीं था । समिति ने यह मत व्यक्त किया कि वह केवल एक "अन्वेषक अभिकरण" है और जैसा कि अभियोजन प्राधिकारी के मामले में होता है कि वह यह अवधारण कर सकता है कि अभियोजन प्रारंभ किया जा सकता है या नहीं । समिति का विचार था कि यदि यह अवधारित किया जाता है और ऐसा करना आवश्यक हो तब वह सीनेट को यह सिफारिश कर सकती है कि साक्ष्य की औपचारिक रूप से सुनवाई की जाए और न्यायाधीश को अभियुक्त के अधिकार दिए जाएं ।

न्यायाधीश ने मौखिक साक्ष्य देने से इनकार कर दिया किंतु उसे मिले साक्ष्य की बाबत समिति को उसने लिखित कथन दिया । उनके वकील ने साक्ष्य और विधि के आधार पर दलीलें दीं ।

पहली सीनेट समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह अभिनिर्धारित किया कि उसका टेप और ट्रांसक्रिप्शन से समाधान नहीं हुआ है । उसने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायाधीश का आचरण "सिद्ध कदाचार" की कोटि में नहीं आता है ।

तथापि, समिति ने श्री बी. के साक्ष्य से उद्भूत होने वाले एक आनुषंगिक मामले को निर्दिष्ट किया, यदि इसे स्वीकार कर लिया जाता तब उससे एक और अन्य अपराध का न्यायाधीश दोषी होता अर्थात् वह मजिस्ट्रेट न्यायालय को कार्यवाहियों को सुपुर्द करने के लिए दबाव डालने का प्रयास करने के अपराध का दोषी होता । समिति ने इस प्रश्न पर विचार नहीं किया । इसलिए दूसरी सीनेट समिति की नियुक्ति की गई ।

दूसरी सीनेट समिति

चूंकि पहली सीनेट समिति की रिपोर्ट न्यायाधीश के पक्ष में थी, सीनेट में विरोधी दलों का बहुमत था इसलिए उन्होंने तारीख 6 सितम्बर, 1989 को श्री बी. के साक्ष्य में प्रकट किए गए विषयों, अर्थात् न्यायाधीश ने कार्यवाहियों को सुपुर्द करने के लिए दबाव डालने का प्रयास किया था

इस आधार पर एक और अन्य सीनेट समिति को नियुक्त कराया । विषयों में से एक विषय यह था कि क्या सीनेट, समिति को साक्षियों से जबरदस्ती साक्ष्य प्राप्त करने की शक्ति को प्रत्यायोजित कर सकती है । यह दर्शित करने के लिए कि समिति पक्षपाती नहीं है इसलिए दो स्वतंत्र कमिश्नरों को भी नियुक्त किया गया ।

समिति को विभिन्न निदेश दिए गए थे जो 23 पैराओं में हैं । सीनेट ने समिति को यह निदेश दिया कि वह अपने निष्कर्ष सबूत के दो स्तरों के के आधार पर अर्थात् अधिसंभाव्यता की प्रबलता और युक्तियुक्त संदेह के परे भी, दे सकती है । साक्षियों की परीक्षा समिति की सहायता करने वाले वकील और न्यायाधीश मर्फी का वकील भी तथा अन्य साक्षियों के वकील, कर सकते हैं । जब तक समिति बहुमत द्वारा अन्यथा अभिनिर्धारित न करे तब तक सुनवाई सार्वजनिक रूप से की जाएगी । न्यायाधीश मर्फी को किसी दांडिक विचारण में अभियुक्त के अधिकार दिए गए थे सिवाय इसके कि उन्हें बुलाया नहीं जाएगा किंतु साक्ष्य देने के लिए उन्हें आमंत्रित किया जा सकता है । उनकी मौजूदगी में या उनके काउंसेल की मौजूदगी में पूरा साक्ष्य लिया जाना था । यदि न्यायमूर्ति मर्फी साक्ष्य देना चाहते हैं तब उनकी प्रतिपरीक्षा की जा सकती है ।

दूसरी समिति ने न्यायाधीश के विरुद्ध अभिकथन विरचित किए और यह कथन किया कि वह एक न्यायालय के रूप में साक्ष्य के नियमों का पालन करेगी और केवल न्यायालय कार्यवाहियों में ग्राह्य साक्ष्य का ही अवलंब लेगी । श्री मर्फी के वकील ने साक्षियों की प्रतिपरीक्षा की । समिति की कार्यवाहियां संसदीय परिपाटी के अनुरूप नहीं थीं । श्री बी. की परीक्षा और प्रतिपरीक्षा की गई थी । श्री मर्फी ने साक्ष्य देने से इनकार कर दिया था । उनके काउंसलेन ने इस विनिश्चय के लिए यह कारण दिया कि सीनेट के निर्वाचन शीघ्र ही होने वाले हैं ।

दूसरी सीनेट समिति के सदस्यों की राय अलग थी । दो सदस्यों ने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायमूर्ति मर्फी की कार्रवाइयां न्याय के विपरीत हैं । एक कमिश्नर का युक्तियुक्त संदेह के परे समाधान हो गया था । दो अन्य सदस्यों का युक्तियुक्त संदेह के परे समाधान नहीं हुआ था । अपितु उन्होंने अधिसंभाव्यताओं के आधार पर उन्हें दोषी पाया था । एक अन्य सदस्य का युक्तियुक्त संदेह के परे समाधान नहीं हुआ था । तीन सीनेटरों ने सबूत के दोनों मानकों के अधीन उन्हें दोषी पाया । एक और अन्य सीनेटर ने किसी भी मानक द्वारा उन्हें दोषी नहीं पाया ।

जब सीनेट की बैठक हुई तब सभी दलों के सीनेटर इस बात के लिए सहमत नहीं हुए कि वे आगे और कार्रवाई नहीं करना चाहते हैं किंतु इसी दौरान निदेशक, लोक अभियोजन ने दो आरापों के आधार पर न्याय के सामान्य अनुक्रम में बाधा डालने का प्रयास करने के लिए अभियोजन करने का विनिश्चय किया ।

दांडिक कार्यवाही

वर्ष 1985-86 के दौरान दांडिक कार्यवाहियों में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि दो सीनेट समिति के समक्ष दिया गया साक्ष्य दांडिक न्यायालय में ग्राह्य नहीं है । इसके पश्चात् संसद् ने संसदीय विशेषाधिकार अधिनियम, 1987 पारित किया । इसके पश्चात् उच्चतम न्यायालय में विचारण के लिए मामले को सुपुर्द किया गया और फेडरल कोर्ट (अर्थात् उच्च न्यायालय) द्वारा इसकी पुष्टि की गई । [देखे– मर्फी बनाम डी. पी. पी. (1985) 60 एएलआर 299 वाला मामला] । उच्चतम न्यायालय द्वारा जुलाई, 1985 में न्यायाधीश की दोषसिद्धि की गई और उन्हें 18 मास के कारावास का दंडादेश दिया गया और अपील लंबित रहने के दौरान उन्हें रिहा कर दिया गया ।

इसके पश्चात् दोषसिद्धि को अभिखंडित कर दिया गया था क्योंकि मूल विचारण में विधिक प्रक्रियात्मक त्रुटियां थीं और उच्चतम न्यायालय में नया विचारण करने का आदेश किया गया था ।

दूसरे विचारण में न्यायाधीश ने साक्ष्य नहीं दिया अपितु न्यू साउथ वेल्स की विधि के अनुसार ज्यूरी को बिना शपथ के कथन करने के अपने अधिकार का प्रयोग किया जिसकी वजह से उसकी प्रतिपरीक्षा नहीं की जा सकी । विचारण न्यायाधीश ने उन्हें दोषमुक्त कर दिया किंतु अभियोजक ने दांडिक जांच को प्रभावित करने के संबंध में विभिन्न आरोपों के अधीन अभियोजन करने की सिफारिश की किंतु निदेशक, अभियोजन ने ऐसा करने से मना कर दिया ।

संसदीय आयोग द्वारा जांच

इसके पश्चात् मई, 1986 में अभिकथित टेलीफोन टेप किए जाने के संबंध में रायल कमीशन ने यह अभिनिर्धारित किया कि टेप और ट्रांस्क्रिप्टस असली हैं । इसी दौरान न्यायमूर्ति मर्फी ने उच्च न्यायालय में अपना पद ग्रहण करने का प्रयास किया । इसके पश्चात् सरकार ने एक संसदीय आयोग द्वारा नई जांच समिति नियुक्त की ।

विशेष कानून द्वारा संसदीय आयोग का गठन किया गया और इस आयोग को संसद् के दोनों सदनों में रिपोर्ट प्रस्तुत करनी थी । आयोग का गठन करने के लिए विधेयक लाया गया और दोनो सदनों में शीघ्रतापूर्वक उसे पारित कर दिया ।

आयोग बन्द सेशन में साक्ष्य सुन सकता था । आयोग में तीन विख्यात भूतपूर्व न्यायाधीशों को नियुक्त किया गया ।

अधिनियम में पूर्व विचारणों में जिन विवाद्यकों की परीक्षा की गई थी उन्हें भी आयोग द्वारा परीक्षा करने के लिए सम्मिलित किया गया । दूसरी सीनेट समिति से भिन्न न्यायाधीश को साक्ष्य देने के लिए बाध्य करने के लिए इसे अशक्त किया गया । यह केवल वह साक्ष्य ग्रहण कर सकता था जो न्यायालय में प्रतिग्राह्य हो । आयोग दूसरी सीनेट समिति के दस्तावेजों को देख सकता था और प्राइवेट रूम से साक्ष्य की सुनवाई कर सकता था ।

न्यायमूर्ति मर्फी ने आयोग की संवैधानिकता को प्रश्नगत किया किंतु उच्च न्यायालय ने उनके विरुद्ध अभिनिर्धारित किया (मर्फी बनाम लश (1986) 65 ए.एल.आर. 651) ।

अगस्त, 1986 में आयोग ने अपनी प्रारंभिक जांच पूरी की और साक्ष्य ग्रहण करने वाला था तब यह पता चला कि न्यायमूर्ति मर्फी टर्मिनल कैंसर से ग्रस्त हैं । चूंकि आरोपों की जांच करने में काफी समय लगना था इसलिए उस अधिनियम को निरसित करने के लिए विधेयक पुरःस्थापित किया गया जिसके अधीन आयोग का गठन किया गया था । तथापि, अधिनियम के निरसित होने से पहले कमीश्नरस् ने यह अभिनिर्धारित किया कि दांडिक अपराध में दोषसिद्धि के लिए संविधान के अधीन कदाचार केवल अपने न्यायिक कर्तव्यों को पूरा करने से संबंधित है । किंतु यह अभिनिर्धारित किया गया कि 'कदाचार' शब्द पद पर बने रहने के लिए अयोग्य आचरण है । इसी दौरान अक्तूबर, 1986 में न्यायमूर्ति मर्फी की मृत्यु हो गई और यह मामला समाप्त हो गया ।

अध्याय 11

हांगकांग, जर्मनी और स्वीडन में प्रक्रियाएं

हांगकांग:

कांस्टीट्यूशन आफ हांगकांग, 1990 (हांगकांग के संविधान, 1990)(यथासंशोधित) के अनुच्छेद 88 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि हांगकांग विशेष प्रशासनिक प्रदेश के न्यायालयों के न्यायाधीशों को किसी स्वतंत्र आयोग की सिफारिश के आधार पर मुख्य कार्यपालक अधिकारी द्वारा नियुक्त किया जाएगा । .

"धारा 89.

(1) हांगकांग विशेष प्रशासनिक प्रदेश के किसी न्यायालय के न्यायाधीश को केवल अपने कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ होने या कदाचार के लिए, अंतिम अपील न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा नियुक्त किए गए अधिकरण, जिसमें कम से कम तीन लार्ड, जज होंगे, की सिफारिश पर मुख्य कार्यपालक द्वारा पद से हटाया जाएगा ।

(2) मुख्य न्यायमूर्ति, अंतिम अपील न्यायालय हांगकांग विशेष प्रशासनिक प्रदेश का केवल अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने या कदाचार के लिए अन्वेषण मुख्य कार्यपालक द्वारा नियुक्त किए गए ऐसे अधिकरण द्वारा किया जाएगा जिसमें कम से कम पांच स्थानीय न्यायाधीश होंगे और इस अधिकरण की सिफारिश पर और इस विधि में विहित की गई प्रक्रिया के अनुसार मुख्य कार्यपालक द्वारा पद से हटाया जा सकता है ।"

धारा 90 की उपधारा (2) में यह उपबंध किया गया है कि अंतिम अपील के न्यायाधीशों और हांगकांग विशेष प्रशासनिक प्रदेश के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के संबंध में इस विधि के अनुच्छेद 88 और 89 में विहित की गई प्रक्रिया का पालन करने के अतिरिक्त संसदीय परिषद् का पृष्ठांकन अभिप्राप्त करेगा और ऐसी नियुक्ति या पद से हटाने के लिए अभिलेख के लिए नेशनल पीपल्स कांग्रेस की स्थायी समिति को रिपोर्ट करेगा ।

इसलिए हांगकांग में अन्वेषक अधिकरण में केवल न्यायाधीश होते हैं ।

फेडरल सेवा में के न्यायाधीशों के साथ "फेडरल सेवा न्यायालय" के रूप में स्थापित किया जाएगा उपधारा (2) में यह उपबंध किया गया है कि फेडरल सेवा न्यायालय कार्यवाहियां संचालित करेगा और इस प्रयोजन के लिए इसमें पीठासीन न्यायाधीश, दो स्थायी सहयुक्त न्यायाधीश और दो गैर-स्थायी सहयुक्त न्यायाधीश होंगे । पीठासीन न्यायाधीश और दो स्थायी सहयुक्त न्यायाधीश फेडरल कोर्ट आफ जस्टिस के सदस्य होंगे और दो गैर-स्थायी सहयुक्त न्यायाधीश जीवनपर्यन्त न्यायाधीश होंगे । न्यायालय का अध्यक्ष उसका स्थायी उपाध्यक्ष फेडरल सेवा न्यायालय के सदस्य नहीं हो सकते हैं । उपधारा (4) में यह उपबंध किया गया है कि फेडरल सेवा न्यायालय, न्यायालय गठन अधिनियम की धारा 132 के अर्थांतर्गत दांडिक प्रभाग के समान होंगे । धारा 62 में फेडरल सेवा न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में उपबंध किया गया है । उपधारा (1) में यह उपबंध किया गया है कि फेडरल सेवा न्यायालय अनुशासनिक मामलों और न्यायाधीशों की सेवानिवृत्ति, उनके स्थानांतरण, नियुक्ति की अकृतता, नियुक्ति का प्रतिसंहरण, पदच्युति, सेवा के लिए अयोग्य होने के कारण सेवानिवृत्ति या सेवा के लिए सीमित अयोग्यता के कारण सीमित नियोजन की बाबत अंतिम विनिश्चय करेगा ।

धारा 63 में यह उपबंध किया गया है कि फेडरल अनुशासनिक नियम अनुशासनिक मामलों में की कार्यवाहियों को लागू होंगे । धारा 64 में "अनुशासनिक उपायों" के उपबंध किए गए हैं जैसे कि किसी अनुशासनिक निर्णय में भर्त्सना या परिनिंदा या विनियामक जुर्माना या उच्चतम न्यायालय की फेडरेशन में से एक फेडरेशन के न्यायाधीश पर पद से हटाने का दंड अधिरोपित किया जाएगा । अध्याय 4 में फेडरल संविधान न्यायालय के न्यायाधीशों के संबंध में उपबंध किए गए हैं । धारा 69 में यह उपबंध किया गया है कि अधिनियम केवल फेडरल संविधान न्यायालय के न्यायाधीशों पर उनकी विशेष विधिक प्रास्थिति के अनुकूल मूल विधि और फेडरल न्यायालय गठन अधिनियम के अनुसरण में लागू होगा ।

दूसरे शब्दों में, न्यायाधीशों के विरुद्ध अनुशासनिक शक्तियां फेडरल सेवा न्यायालय, जिसमें केवल न्यायाधीश होते हैं, में निहित की गई हैं ।

डेविड पी. क्यूरी, प्रोफेसर आफ लॉ, शिकागो विश्वविद्यालय ने 'न्यायिक शक्ति का पृथक्करण' शीर्षक के अधीन (1998 वाल्यूम 61, लॉ एंड कांटेम्परेरी प्राबलम्स) एक लेख में यह

उल्लेख किया है कि जर्मन संविधान काफी हद तक न्यायिक स्वतंत्रता के संबंध में अमेरिका के संविधान की अपेक्षा ज्यादा संरक्षाकारी है । इसमें प्रशासनिक कार्रवाई को न्यायिक पुनर्विलोकन की गारंटी दी गई है और यह संवैधानिक न्यायालय के समक्ष सरकारी कार्रवाई की संवैधानिकता को चुनौती देने के उनके अधिकार को सुनिश्चित करता है तथा न्यायाधीशों को अनुशासित रहने या केवल दूसरे न्यायाधीशों द्वारा हटाए जाने की अनुज्ञा देता है ।

स्वीडन

अध्याय 12 के अनुच्छेद 8, जिसमें 'संसदीय नियंत्रण' के संबंध में उपबंध किया गया है, के अनुसार न्यायाधीशों को केवल स्वीडिश उच्चतम न्यायालय द्वारा पद से हटाया जा सकता है । अनुच्छेद 8 निम्नलिखित है –

"अनुच्छेद 8 :

(1) उच्चतम न्यायालय या उच्चतम प्रशासनिक न्यायालय के किसी सदस्य द्वारा अपने शासकीय कृत्यों का प्रयोग करते हुए किए गए किसी आपराधिक कार्य के लिए दांडिक विधि के अधीन की जाने वाली कार्यवाहियों को संसदीय ओम्बड्समेन या जस्टिस चांसलर के समक्ष लाया जाएगा ।

(3) इसी प्रकार उच्चतम न्यायालय परीक्षा करेगा और यह अवधारण करेगा कि इस संबंध में अधिकथित उपबंधों के अनुसार उच्चतम न्यायालय या उच्चतम प्रशासनिक न्यायालय के किसी सदस्य को पद से हटाया जा सकता है या कर्तव्य से निलंबित किया जा सकता है या उसकी चिकित्सीय परीक्षा कराने के लिए बाध्य है या नहीं । इस प्रभाव की कार्यवाहियां किसी संसदीय ओम्बड्समेन या जस्टिस चांसलर द्वारा आरम्भ की जाएंगी ।"

इस प्रकार स्वीडन में न्यायाधीशों के विरुद्ध अनुसासनत्मक कार्यवाही उच्चतम न्यायालय के सुपुर्द की गई है और इसके अन्तर्गत पद से हटाना या निलंबित करना भी है ।

अध्याय 12

त्रिनिडाड और टोबागो में कार्यवाहियां और प्रिवी कौंसिल का निर्णय (1994)

न्यायमूर्ति क्रेन का मामला और रीश बनाम क्रेन 1994 (1) आल ई. आर. 833 वाले मामले में प्रिवी काउन्सिल का मामला महत्वपूर्ण और दिलचस्प है । इस मामले का संबंध जांच लंबित रहने के दौरान न्यायाधीश के समक्ष मामलों को सूचीबद्ध न करने के विवाद्यक से है । प्रिवी काउन्सिल ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अन्वेषण (जो कि जांच से अलग है) के अन्य मामलों से भिन्न, न्यायाधीश के विरुद्ध आरोप विरचित किए जाने से पहले 'अन्वेषण' के प्रक्रम पर भी न्यायाधीश को अवसर देना उचित है ।

जस्टिस क्रेन को वर्ष, 1978 में न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया गया था और वे वर्ष 1985 से त्रिनिडाड और टोबागो उच्च न्यायालय के ज्येष्ठ अवर न्यायाधीश थे । प्रिवी काउन्सिल के समक्ष तीनों अपीलार्थी त्रिनिडाड और टोबागो के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए गए अधिकरण के सदस्यों थे । राष्ट्रपति द्वारा अधिकरण के सदस्यों की नियुक्ति इस प्रश्न के संबंध में जांच करने के लिए की गई थी कि न्यायमूर्ति क्रेन को पद से हटाया जाए या नहीं ।

न्यायमूर्ति क्रेन तारीख 27 जुलाई, 1990 तक, जो न्यायालय की चालू अवधि का अन्तिम दिवस था, उच्च न्यायालय में पीठासीन रहे थे और उसके बाद वे विदेश चले गए । उनके विदेश जाने से पहले और उनको सूचना दिए बिना मुख्य न्यायमूर्ति ने यह विनिश्चय किया कि अक्तूबर, 1990 से जनवरी, 1991 की अवधि के लिए न्यायमूर्ति क्रेन के समक्ष मामलों को सूचीबद्ध नहीं किया जाएगा । इस विनिश्चय को न्यायिक और विधिक सेवा आयोग, जिसके मुख्य न्यायमूर्ति अध्यक्ष थे, के समक्ष रखा गया था और आयोग ने उस संबंध में सहमति दी थी किन्तु न्यायमूर्ति क्रेन द्वारा छुट्टियों पर जाने से पहले उन्हें इस बाबत कोई सूचना नहीं दी गई थी । जब न्यायाधीश (क्रेन) वापस लौटे तब नई पदावधि से पहले सितम्बर के पहले दो सप्ताह में उन्हें कोई मामला समनुदेशित नहीं किया गया और वे केवल ऐसे न्यायाधीश जिन्हें कोई मामला इस प्रकार समनुदेशित नहीं किया गया था । न्यायमूर्ति क्रेन ने कई बार मुख्य न्यायमूर्ति से मिलने का प्रयास किया किन्तु वे असफल रहे और तारीख 8 अक्तूबर, 1990 को मुख्य न्यायमूर्ति के सचिव ने उन्हें दस्ती एक पत्र

दिया इसके पश्चात् वे मुख्य न्यायमूर्ति से मुलाकात कर सके । इस मुलाकात में मुख्य न्यायमूर्ति ने उन्हें बताया कि अगस्त, 1990 में उन्हें एक पत्र भेजा गया था जिसमें आयोग के विनिश्चय के बारे में सूचना दी गई थी, यद्यपि जस्टिस क्रेन को इसकी विषयवस्तु नहीं बताई गई थी । इसके पश्चात् तारीख 23 अगस्त, 1990 को मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा उपर्युक्त पत्र की एक प्रति न्यायमूर्ति क्रेन को भेजी गई । इसके पश्चात् न्यायमूर्ति क्रेन को मूल पत्र मिला जो कि उनकी अनुपस्थिति के दौरान बड़ी संख्या में आए पत्रों के ढेर में दबा हुआ था । मुख्य न्यायमूर्ति का पत्र निम्नलिखित था : "मुझे आपको यह सूचना देनी है कि न्यायिक और विधिक सेवा आयोग ने न्यायालय में आपके काम करने के बारे में की गई शिकायतों पर विचार किया है और आपके स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति के बारे में सन्देह है इसलिए उसने यह विनिश्चय किया है कि अगली सूचना तक आप न्यायालय में पीठासीन नहीं होंगे ।"

न्यायमूर्ति क्रेन ने तारीख 9 अक्तूबर, 1990 को आयोग को एक पत्र लिखा और यह लिखा कि शिकायत में विधिमान्य आधार नहीं है और यह विनिश्चय विधिविरुद्ध है । आयोग ने इस पत्र का उत्तर भेजा जिसके द्वारा उपर्युक्त पत्र में परिवर्तन करते हुए यह कहा कि आयोग ने यह विनिश्चय किया है कि और यह स्पष्ट किया जाता है कि आयोग मुख्य न्यायमूर्ति के विनिश्चय से सहमत है और इसलिए आयोग यह घोषणा करता है कि वे अगली सूचना दिए जाने तक न्यायालय में पीठासीन नहीं होंगे । इसके पश्चात् तारीख 15, 25 और 26 अक्तूबर, 1990 को आयोग की बैठकें हुईं । श्री पियरे नामक व्यक्ति ने पहली बैठक में आयोग के समक्ष यह अभिसाक्ष्य दिया कि संविधान की धारा 137 (3) के अधीन आयोग को राष्ट्रपति को लिखने से पहले आयोग के कब्जे में इस बाबत अधिक ब्यौरे और विनिर्दिष्ट साक्ष्य होना चाहिए था जिससे यह समर्थन होता कि न्यायाधीश अपने पद के कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ है ।

आयोग की दूसरी बैठक में मुख्य न्यायमूर्ति ने न्यायालय में जस्टिस क्रेन के काम करने से संबंधित आंकड़े और अभिलेख प्रस्तुत किए और इसके पश्चात् वे बैठक से चले गए और एक और अन्य सदस्य ने उनका आसन ग्रहण किया । मुख्य न्यायमूर्ति तारीख 26 अक्तूबर, 1990 को तीसरी बैठक में आए तब तक सदस्यों को सामग्री का अध्ययन करने के लिए पर्याप्त समय मिल गया था किन्तु मुख्य न्यायमूर्ति ने चर्चा में भाग नहीं लिया ।

इसके पश्चात् आयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि वह "अवर न्यायाधीश के पद से माननीय न्यायमूर्ति क्रेन को हटाने के संबंध में अन्वेषण करने के लिए धारा 137 (3) के अधीन राष्ट्रपति को अभ्यावेदन कर सकते हैं और तारीख 29 अक्तूबर, 1990 को आयोग ने ऐसा ही किया । तारीख 22 नवम्बर, 1990 को राष्ट्रपति ने अपीलार्थियों (सभी न्यायाधीशों) को अधिकरण के सदस्थ के रूप में संविधान के अनुच्छेद 137 (3) और (9) के अनुसरण में उपर्युक्त मुद्दे की जांच करने के लिए नियुक्त किया । न्यायमूर्ति क्रेन को उसी दिन टेलीविजन रिपोर्ट के माध्यम से आयोग के इस पत्र के बारे में जानकारी मिली और उन्होंने जब उन्हें यह बताया गया कि तारीख 3 दिसम्बर, 1990 को सुनवाई होगी तब उन्होंने तारीख 30 नबम्बर, 1990 को एक लिखित सूचना जारी की । तारीख 23 नवम्बर, 1990 के पत्र द्वारा राष्ट्रपति ने संविधान की धारा 137 (4) के अनुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में अपने पद के कृत्यों का निर्वहन करने से न्यायमूर्ति क्रेन को 'निलंबित' कर दिया । न्यायाधीश को आदेश की एक प्रति दी गई थी ।

राष्ट्रपति द्वारा इन दो आदेशों को पारित करने से पहले न्यायमूर्ति क्रेन ने न्यायिक पुनर्विलोकन किए जाने के लिए कहा और यह दलील दी कि मुख्य न्यायमूर्ति या आयोग न्यायालय में पीठासीन होने से उन्हें प्रतिषिद्ध नहीं कर सकते हैं और उन्होंने उनके विरुद्ध अन्वेषण की सिफारिश करने के आयोग के विनिश्चय को अधिकारातीत घोषित करने और अभिखंडित करने तथा राष्ट्रपति को आयोग द्वारा ऐसे किसी प्रश्न के संबंध में अन्वेषण करने के लिए अभ्यावेदन करने से प्रतिषिद्ध करने की ईप्सा की और किसी भी दशा में उन्हें पद से हटाने के प्रश्न पर अधिकरण के रूप में जांच कार्यवाही करने से तीनों अपीलार्थियों को प्रतिषिद्ध करने की प्रार्थना की । उन्होंने नुकसानी का भी दावा दिया । उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश न्यायमूर्ति ब्लेकमेन ने न्यायमूर्ति क्रेन के विरुद्ध अभिनिर्धारित किया जबकि अपील न्यायालय ने बहुमत द्वारा निर्णय को उलट दिया । न्यायाधीश इब्राहिम और डेविड ने न्यायमूर्ति क्रेन के पक्ष मे अभिनिर्धारित किया जबकि न्यायाधीश शर्मा ने उनके विरुद्ध अभिनिर्धारित किया । न्यायाधीश डेविड ने यह अभिनिर्धारित किया कि मुख्य न्यायमूर्ति पक्षपाती हैं इसलिए उनका विनिश्चय दूषित है, न्या. शर्मा ने इस दलील को नामंजूर कर दया । न्या. इब्राहिम ने यह निष्कर्ष निकाला कि अन्य मुद्दों के आधार पर न्यायाधीश के पक्ष में उनके द्वारा जो अन्य निष्कर्ष निकाले गए हैं उनको दृष्टिगत करते हुए इस प्रश्न का विनिश्चय करना

अनावश्यक है । आयोग ने प्रिवी काउन्सिल में अपील फाइल की और न्यायमूर्ति क्रेन ने प्रिवी काउन्सिल में प्रति-अपील फाइल की ।

प्रिवी काउन्सिल के समक्ष इस संबंध में विवाद नहीं किया गया था कि न्यायमूर्ति क्रेन को की गई शिकायतों के बारे में या आयोग द्वारा दिए गए आंकड़ों या अभिलेख के बारे में नहीं बताया गया था और न ही उन्हें यह बताया गया था कि आयोग ने उनको पद से हटाने के लिए सिफारिश करने का विनिश्चय किया है । तारीख 3 दिसम्बर, 1990 को राष्ट्रपति के सचिव ने न्यायमूर्ति क्रेन को अपने कृत्यों का पालन करने में 'असमर्थता' और/या कदाचार के आधार पर उन्हें पद से हटाए जाने के प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए अधिकरण को नियुक्त जाने के बारे में सूचित किया । दूसरे शब्दों में, यद्यपि मूल अभिकथन उनकी शारीरिक असमर्थता के बारे में था किंतु राष्ट्रपति द्वारा अधिकरण को किए गए निर्देश का संबंध न केवल उस पहलू से था अपितु उनके अभिकथित कदाचार से भी था ।

हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि यद्यपि विचारण न्यायाधीश ब्लेकमेन ने न्यायमूर्ति क्रेन के विरुद्ध अभिनिर्धारित किया किंतु वास्तव में उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि मुख्य न्यायमूर्ति और आयोग ने उनका निलंबन (अर्थात् उनके समक्ष मामलों को सूचीबद्ध न करना) करके अधिकारातीत कार्यवाही की है किंतु उन्होंने अनुतोष देने से इसलिए इनकार कर दिया क्योंकि न्यायमूर्ति क्रेन को निलंबित करने का राष्ट्रपति का पश्चात्वर्ती आदेश लागू हो गया था । अपील न्यायालय में बहुमत से यह स्वीकार किया गया कि निलंबन विधिविरुद्ध था क्योंकि प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है और नैसर्गिक न्याय और न्यायाधीश के संवैधानिक अधिकारों का भंग हुआ है ।

यह उल्लेख किया जा सकता है कि आयोग प्रारंभिक अन्वेषण करता है और यदि आयोग मामले को राष्ट्रपति को निर्देशित करता है तब वे नियमित जांच के लिए एक अधिकरण को नियुक्त करेंगे ।

प्रिवी काउन्सिल में लार्ड स्लाइन द्वारा अपने निर्णय में यह कहा गया कि पहला प्रश्न यह है कि अक्तूबर मास से आरंभ होने वाली अवधि में न्यायाधीश को मामले समनुदेशित न करने का विनिश्चय विधिविरुद्ध है या नहीं । इस प्रश्न का विनिश्चय किया जाना इसलिए आवश्यक है क्योंकि आयोग मुख्य न्यायमूर्ति के विनिश्चय से सहमत है ।

प्रिवी काउन्सिल में लार्ड स्लाइन द्वारा यह मत व्यक्त किया गया कि अक्तूबर, 1990 से आरंभ होने वाली अवधि में न्यायाधीश को "मामले समनुदेशित न करने" का विनिश्चय विधिपूर्ण था । यह स्पष्ट है कि आरंभ में यह विनिश्चय मुख्य न्यायमूर्ति का था और उनके विनिश्चय को आयोग द्वारा कार्यान्वित किया गया । मुख्य न्यायमूर्ति न केवल अपील न्यायालय के अध्यक्ष हैं अपितु वे उच्च न्यायालय के पदेन सदस्य भी हैं । वे त्रिनिडाड और टोबागो न्यायिक प्रशासन के प्रधान भी हैं । उन्हें मामलों को सूचीबद्ध करने की बाबत निदेश देने की शक्ति है (उच्चतम न्यायालय, 1975 के नियमों का आदेश 34 नियम 4(1)(घ) और नियम 21) । उनके पास आदेश 1 नियम 10(2) के अधीन अध्यारोही शक्ति भी है । इसलिए मुख्य न्यायमूर्ति के पास किसी विशिष्ट न्यायाधीश को विशिष्ट कार्य आबंटित करने की शक्ति है और वे ऐसे किसी विशिष्ट न्यायाधीश के समक्ष कतिपय मामलों को सूचीबद्ध नहीं कर सकते हैं जिसके पास पहले से ही कई आरक्षित निर्णय हों या वह रोगग्रस्त हो या किसी दुर्घटना में अंतर्ग्रस्त हो या कुटुंब या अन्य लोक बाध्यताओं के कारण प्रभावी रूप से कार्य न कर सकता हो ।

लार्ड स्लाइन इस बात से सहमत थे कि ऐसा किया जाना तब आवश्यक है जब किसी न्यायाधीश के विरुद्ध ऐसे अभिकथन किए गए हैं कि उसके कार्य का पुनर्गठन किया जाए, उदाहरण के लिए, उसे किसी अवधि के लिए केवल विशिष्ट प्रकार के मामले समनुदेशित किए जाएं और वह अन्य प्रकार के मामलों में अधिविष्ट न हो या अस्थायी रूप से ऐसे मामलों में अधिविष्ट ही न हो । तथापि, इस प्रकार की व्यवस्था मुख्य न्यायमूर्ति और संबंधित न्यायाधीश के बीच स्पष्ट और खुले रूप से विचार-विमर्श करने के पश्चात् और सहमति से की जानी चाहिए । इसके पश्चात् लार्ड स्लाइन ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया : –

> "तथापि, इन शक्तियों का प्रयोग, किसी न्यायाधीश के क्रियाकलापों का निलंबन या उसकी नियुक्ति समाप्त करने से संबंधित संविधान के विनिर्दिष्ट उपबंधों के विरुद्ध नहीं होना चाहिए । यह स्पष्ट है कि संविधान की धारा 137 में प्रक्रिया का उपबंध किया गया है और ऐसे निलंबन और सेवासमाप्ति के लिए एक अनन्य प्रक्रिया है और यदि न्यायिक स्वतंत्रता महत्वपूर्ण है तो किसी न्यायाधीश को निलंबित नहीं किया जा सकता और न ही किसी व्यक्ति द्वारा या अन्य रीति से उसकी नियुक्ति को समाप्त किया जा सकता है । इसलिए, विद्यमान मामले में

विवाद्यक यह है कि क्या मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा की गई कार्रवाई प्रशासनिक प्रबंधन के तौर पर उनकी अधिकारिता के भीतर आती है या नहीं या क्या यह तात्पर्यित निलंबन की कोटि में आता है ।"

इस संबंध में त्रिनिडाड और टोबागो के संविधान की धारा 137 उपखंड (4) को निर्दिष्ट करना आवश्यक है जो कि निम्नलिखित है : –

" धारा 137(4):

यदि किसी न्यायाधीश को उसके पद से हटाने से संबंधित प्रश्न को उपधारा (3) के अधीन किसी अधिकरण को निर्देशित किया गया है तब राष्ट्रपति, मुख्य न्यायमूर्ति के मामले में प्रधानमंत्री या मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न किसी न्यायाधीश के मामले में मुख्य न्यायमूर्ति की सलाह के अनुसार कार्यवाही करके न्यायाधीश को उसके पदीय कृत्यों का निर्वहन करने से निलंबित कर सकते हैं और राष्ट्रपति द्वारा ऐसे निलंबन को किसी भी समय, मुख्य न्यायमूर्ति के मामले में प्रधानमंत्री की सलाह या मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न किसी न्यायाधीश के मामले में मुख्य न्यायमूर्ति की सलाह के अनुसार, प्रतिसंहृत कर सकते हैं और ऐसा निलंबन ऐसे किसी मामले मे प्रभावी नहीं होगा :–

(क) जहां अधिकरण, राष्ट्रपति को यह सिफारिश करता है कि वे न्यायाधीश को पद से हटाने के मुद्दे को न्यायिक समिति को निर्देशित न करें, या

(ख) जहां न्यायिक समिति राष्ट्रपति को यह सलाह देती है कि न्यायाधीश को पद से नहीं हटाया जाना चाहिए था ।"

इस संदर्भ में धारा 137 के खंड (1), (2) और (3) को निर्दिष्ट करना उपयोगी हो सकता है । इस धारा में न्यायाधीश को पद से हटाने की प्रक्रिया के संबंध में उपबंध किए गए हैं । अधिनियम के अधीन आयोग अन्वेषण करता है और इसके पश्चात् राष्ट्रपति को जांच करने की आवश्यकता की बाबत सिफारिश करता है । इसके पश्चात् राष्ट्रपति जांच के लिए अधिकरण नियुक्त करता है । अधिकरण जांच करता है और राष्ट्रपति को सिफारिश करता है । राष्ट्रपति प्रिवी काउन्सिल से परामर्श करने के पश्चात् आदेश पारित करते हैं । धारा 137(1) से (3) निम्नलिखित हैं :–

"धारा 137:

(1) किसी न्यायाधीश को उसके पद से केवल अपने पद के कृत्यों का निर्वहन करने में असमर्थ (ऐसी असमर्थता मानसिक या शारीरिक या किसी अन्य कारण से हो) होने या कदाचार के आधार पर हटाया जा सकता है और ऐसे न्यायाधीश को इस धारा के उपबंधों के अनुसार ही इस प्रकार हटाया जाएगा अन्यथा नहीं ।

(2) राष्ट्रपति द्वारा किसी न्यायाधीश को तब पद से हटाया जा सकता है जब राष्ट्रपति द्वारा न्यायाधीश को पद से हटाने का प्रश्न न्यायिक समिति को निर्देशित किया गया हो और न्यायिक समिति ने राष्ट्रपति को यह सलाह दी हो कि असमर्थता या कदाचार के आधार पर ऐसे न्यायाधीश को पद से हटा देना चाहिए ।

(3) जहां मुख्य न्यायमूर्ति के मामले में या मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न किसी न्यायाधीश के मामले में न्यायिक और विधिक सेवा आयोग राष्ट्रपति को इस धारा के अधीन किसी न्यायाधीश को पद से हटाने के लिए अन्वेषण करने का अभ्यावेदन करता है, तब –

(क) राष्ट्रपति एक अधिकरण नियुक्त करेंगे जिसमें उनके द्वारा चयन किए गए अध्यक्ष और कम से कम दो सदस्य होंगे । राष्ट्रपति, मुख्य न्यायमूर्ति के मामले में प्रधानमंत्री की सलाह के अनुसार या मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न किसी न्यायाधीश के मामले में न्यायिक और विधिक आयोग से परामर्श करने के पश्चात् किसी ऐसे न्यायाधीश को, जो किसी ऐसे न्यालालय में पद धारित किए हुए है जिसकी कामनवेल्थ के कुछ भाग में सिविल या दांडिक मामलों में असीमित अधिकारिता है या किसी ऐसे न्यायालय से किसी न्यायालय में अपील करने की अधिकारिता है ;

(ख) अधिकरण मामले की जांच करेगा और तथ्यों की रिपोर्ट राष्ट्रपति को देगा तथा राष्ट्रपति को यह सिफारिश करेगा कि न्यायाधीश को पद से हटाने से संबंधित प्रश्न न्यायिक समिति को निर्देशित किया जाए या नहीं ; और

(ग) जहां अधिकरण ऐसी सिफारिश करता है वहां राष्ट्रपति तद्नुसार प्रश्न को निर्देशित करेंगे ।"

यहां "न्यायिक समिति" से अभिप्रेत है प्रिवी काउन्सिल की न्यायिक समिति ।

जांच लंबित रहने के दौरान पद से 'हटाने' और 'निलंबन' के लिए संविधान में की विनिर्दिष्ट प्रक्रिया को निर्दिष्ट करने के पश्चात् प्रिवी काउन्सिल ने यह मत व्यक्त किया कि अपील न्यायालय में बहुमत का निर्णय ठीक था और इस मामले में मात्र प्रशासनिक व्यवस्था से परे जो कुछ हुआ ऐसा करने के लिए मुख्य न्यायमूर्ति अन्यथा हकदार थे । इस तथ्य के होते भी कि प्रत्यर्थी को वेतन मिलता रहा और वास्तव में (जैसी कि दलील दी गई है) वे कुछ शक्तियों का प्रयोग करते रहे (उदाहरणार्थ, यदि सीधे ही संपर्क किया गया है तो व्यादेश मंजूर किए गए), प्रत्यर्थी को न्यायालय में आसीन न्यायाधीश के रूप में इन शक्तियों का प्रयोग करने से प्रभावी रूप से विवर्जित किया गया था । उन्हें अक्तूबर से जनवरी के रोस्टर में सम्मिलित नहीं किया गया और यह भी उपदर्शित नहीं किया गया था कि वे दोबारा आसीन होंगे । वास्तव में यह अनिश्चित निलंबन था । माननीय न्यायाधीशों की राय में ऐसा किया जाना मुख्य न्यायमूर्ति की शक्तियों के बाहर था । मुख्य न्यायमूर्ति की ऐसी कार्रवाई को राष्ट्रपति के पश्चात्वर्ती आदेश द्वारा भूतलक्षी प्रभाव से ठीक नहीं किया गया था । आयोग द्वारा किया गया निलंबन विधिविरुद्ध था और अपील न्यायालय के पास मुख्य न्यायमूर्ति के विनिश्चय को अभिखंडित करने का अधिकार था ।

इसी प्रकार आयोग द्वारा मुख्य न्यायमूर्ति के विनिश्चय की तात्पर्यित पुष्टि या उसका यह तात्पर्य कि वह अपनी शक्तियों का प्रयोग करके न्यायाधीश को निलंबित कर सकता है, यह स्पष्ट है कि उसके पास ऐसा करने की शक्ति नहीं थी और उसके विनिश्चय को भी अपास्त किया जाना चाहिए और अपील न्यायालय के बहुमत से दिए गए निर्णय में ऐसा ही किया गया है ।

इसके अतिरिक्त न्यायाधीश को पद से हटाने की प्रस्थापना के बारे में सूचना नहीं दी गई थी और न ही उन्हें उनके विरुद्ध की गई शिकायतों की कोई सूचना दी गई और उन्हें उत्तर देने का भी कोई अवसर नहीं दिया गया ।

कई मामलों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि साधारणतया जिस व्यक्ति की बाबत अन्वेषण किया जाता है उसके पास प्रारंभिक या आरंभिक कार्यवाहियों में अवसर दिए जाने का कोई अधिकार नहीं है । यह अधिकार पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर उद्भूत हो सकता है जब उसे शिकायत के बारे में जानने का अधिकार होता है । इसलिए इस मामले में यह प्रश्न उद्भूत हुआ है कि शिकायत

के बारे में जानने और पश्चात्वती प्रक्रम पर उत्तर देने का अधिकार आयोग द्वारा आरोप विरचित करने से पहले अन्वेषण के प्रक्रम पर न्यायाधीश को सूचना देने की बाध्यता या कर्तव्य है या नहीं । यह सत्य है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत द्वारा यह अपेक्षित नहीं है कि किसी व्यक्ति को उसके विरुद्ध की गई शिकायतों के बारे में बताया जाए और प्रश्नगत विशिष्ट प्रक्रम पर उसे उत्तर देने का अवसर दिया जाए । न्यायालयों द्वारा इस सिद्धांत को अपनाने का कारण यह है कि अन्वेषण निश्चित रूप से प्रारंभिक होता है और पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर शिकायतों के संबंध में पर्याप्त रूप से पूरा अवसर दिया जाता है और दूसरे पक्ष को भी सुना जाए इस सिद्धांत का पालन किए बिना जांच करना अत्यावश्यकता और प्रशासनिक आवश्यकता के लिए न्यायोचित है और ऐसी कोई प्रारंभिक सूचना दिए बिना अगले प्रक्रम के संबंध में कार्यवाही करने से कोई शक्ति या ख्याति को कोई नुकसान नहीं पहुंचता है और इस कानून स्कीम का अर्थान्वयन करने से उचित रूप से यह कहा जा सकता है कि पूर्व प्रक्रम पर शिकायत को जानने और उसका उत्तर देने का कोई अधिकार नहीं है ।

उपरोक्त यह मत व्यक्त करने के पश्चात् कि प्रारंभिक प्रक्रम पर शिकायत के सार को जानने का कोई अधिकार नहीं है, लार्ड स्लाइन ने तथापि यह मत व्यक्त किया कि कुछ मामलों में अन्वेषण के प्रक्रम पर अभ्यावेदन भेजने का अवसर दिया जा सकता है । उन्होंने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

> "किंतु माननीय न्यायाधीश की राय के अनुसार इस बाबत कोई आत्यंतिक सिद्धांत नहीं है और यदि ऐसा है भी तब प्रक्रिया के अधीन पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर उत्तर देने का अवसर है । डी. स्मिथ ज्यूडिशियल रिव्यू आफ एडमिनिस्ट्रेटिव ऐक्शन (चौथा संस्करण, 1980, पृ. 199) में यह मत व्यक्त किया है कि यदि अध्युपायों के प्रारंभिक प्रक्रम पर ही किसी कृत्य या प्रस्ताव के कारण किसी व्यक्ति के हित के प्रतिकूल कोई विनिश्चय निकल सकता है तब न्यायालय आमतौर से ऐसे व्यक्ति की इस दलील को नहीं मानते हैं कि आरंभिक कृत्य का विरोध करने के संबंध में वह सुनवाई का हकदार है विशेष रूप से उसकी उपर्युक्त दलील को तब नहीं माना जाता जब कि वह पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर सुने जाने का हकदार हो ।"

इसके पश्चात् लार्ड स्लाइन ने यह मत व्यक्त किया कि इस सिद्धांत का पालन किया जाए

या नहीं, न्यायालय को कठोर सिद्धांतों से आबद्ध नहीं होना चाहिए । न्यायालय को मामले से संबंधित सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए । इस प्रकार मत व्यक्त करने के पश्चात् लार्ड स्लाइन ने आरोप विरचित करने से पहले और अन्वेषण के दौरान अभ्यावेदन करने के अधिकार के पक्ष में निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

"स्पष्ट रूप से विद्यमान मामले में प्रत्यर्थी के पास अधिकरण और न्यायिक समिति के समक्ष पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर शिकायत का उत्तर देने का अवसर था । यह साधारण परिपाटी के अनुकूल है और यह निश्चायक नहीं है । धारा 137 में प्रक्रिया के तीनों प्रक्रमों में यह उल्लेख नहीं किया गया है कि प्रत्येक प्रक्रम में किस प्रक्रिया का पालन किया जाना है और निर्वचन के विषय के रूप में इसका आवश्यक रूप से यह अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता कि प्रथम प्रक्रम पर सूचना देने और सुनवाई करने के अधिकार को अपवर्जित किया गया है । इसके विपरीत, यदि प्रक्रिया के संबंध में उल्लेख नहीं किया गया है और अन्य बातों के अभाव में यह उपदर्शित होता है कि यह संभावना खुली छोड़ दी गई है कि ऐसी परिस्थितियां हो सकती हैं जिनमें उचित रूप से अपेक्षित हो कि जिस पक्षकार के मामले को निर्देशित किया जाना है उसे सूचित किया जाए और टीका-टिप्पणी करने का मौका दिया जाए । पहले ही यह कहना पर्याप्त नहीं है कि, जैसा कि अपीलार्थियों ने वास्तव में किया है अर्थात् यह स्वीकार किया गया है कि कुल मिलाकर प्रक्रिया को नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त लागू होंगे किन्तु अलग-अलग प्रक्रमों पर उनका पालन नहीं किया जाएगा । यह प्रश्न अनुत्तरित है कि आरम्भिक प्रक्रम पर दूसरे पक्ष को भी सुने जाने का सिद्धान्त लागू होगा या नहीं ।"

"..... आयोग को स्थापित करने का मात्र यह आशय नहीं है कि अभ्यावेदन के माध्यम से उसके समक्ष शिकायतें दर्ज की जाएंगी.....।" आयोग के समक्ष अभ्यावेदन करने से पहले इस संबंध में अवश्य ही समाधान हो जाना चाहिए कि वास्तव में प्रथमदृष्टया शिकायत दर्ज करने का पर्याप्त आधार है और आरोप पर्याप्त रूप में इतना गंभीर होना चाहिए जिसकी वजह से राष्ट्रपति को महाभियोग कार्यवाहियों के समतुल्य प्रभावी रूप से अभ्यावेदन करना आवश्यक हो ।"

विद्यमान मामले में आयोग ने मात्र शिकायत प्राप्त करने वाले निकाय के रूप में कार्य नहीं किया है । इसके विपरीत, आयोग ने यह विनिश्चय किया कि न्यायाधीश द्वारा अपने पदीय कृत्यों का

पालन करने में असमर्थ होने का समर्थन करने की बाबत उसके समक्ष ब्यौरेवार और विनिर्दिष्ट साक्ष्य पेश किए जाएं । यह दर्शित नहीं किया गया है कि यदि न्यायाधीश को सामग्री से अवगत कराया जाता और उनसे उनका उत्तर प्राप्त किया जाता तब अनावश्यक विलम्ब होता । इसलिए ऐसी कोई परिस्थिति नहीं थी जिसके आधार पर उस प्रक्रम पर न्यायाधीश से उत्तर मांगने की आवश्यकता थी ।

प्रिवी काउन्सिल ने आगे यह और मत व्यक्त किया है कि "यह कहना ठीक नहीं है कि आयोग की कार्रवाई किसी आपराधिक प्रक्रिया में प्रत्यर्थी पर पुलिस द्वारा आरोप फ़ाइल करने के विनिश्चय के सदृश हैं । आयोग का गठन और की गई प्रक्रिया की प्रकृति इस मामले में अर्ध-न्यायिक विनिश्चय के समान है ।"

प्रिवी काउन्सिल ने यह भी मत व्यक्त किया है :

"जैसी कि अपीलार्थियों द्वारा दलील दी गई है, यह सत्य है कि अभ्यावेदन करने का विनिश्चय स्वयं में दंड या शास्ति नहीं है और परिणामतः पदच्युत करने के लिए दो और अन्वेषण करने आवश्यक हैं, अर्थात् एक अधिकरण के समक्ष जिसके समक्ष जांच के लिए राष्ट्रपति निर्देशित करेंगे और दूसरा प्रिवी काउन्सिल के समक्ष जिसे राष्ट्रपति द्वारा निर्देशित किया जाएगा । माननीय न्यायाधीशों का यह मत है कि विद्यमान प्रश्न का हल निकालने के लिए यह बहुत साधारण दृष्टिकोण है । इस मामले में ब्यौरेवार आरोप विरचित करने के संबंध में प्रचार नहीं किया गया है फिर भी राष्ट्रपति के समक्ष अभ्यावेदन करने के विनिश्चय के संबंध में स्पष्ट रूप से काफी प्रचार किया गया था । वास्तव में, तारीख 22 नवम्बर को टेलीविजन समाचार में, स्पष्ट तौर पर प्रत्यर्थी को पुलिस द्वारा उन्हें उसके पद से निलंबित करने के राष्ट्रपति के विनिश्चय की प्रति दिए जाने से पहले ही यह रिपोर्ट दी गई कि प्रत्यर्थी को न्यायाधीश के पद से हटाया जाए या नहीं, राष्ट्रपति ने इस बाबत अन्वेषण करने के लिए एक अधिकरण की नियुक्ति की है ।"

जिस रीति में आयोग द्वारा राष्ट्रपति को अभ्यावेदन दिया गया था और राष्ट्रपति द्वारा अधिकरण नियुक्त करके प्रत्यर्थी को निलंबित किया गया उससे यह सन्देह उद्भूत होना लाजिमी था कि आयोग और यहां तक कि राष्ट्रपति का भी इस बाबत समाधान हो गया था कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध

आरोप बनते हैं । यदि प्रत्यर्थी को ऐसे आरोपों का उत्तर देने का मौका दिया जाता और यह मौका राष्ट्रपति को अभ्यावेदन करने से पहले दिया जाता तब यह सन्देह नहीं होता और प्रत्यर्थी की ख्याति को नुकसान पहुंचाने से बचा जा सकता था (पृ. 847) । प्रिवी काउन्सिल ने यह मत व्यक्त किया है कि यदि किसी आधार के बिना किसी न्यायाधीश के विरुद्ध, विशेष रूप से उनकी हैसियत को ध्यान में रखे बिना, ऐसे आरोप लगाए जाते हैं तो न केवल वर्तमान मामले में अपितु भविष्य में भी उनकी स्थिति दयनीय हो जाएगी । यदि न्यायालयों के सम्यक् प्रशासन में हस्तक्षेप किए बिना, इस औचित्य को प्राप्त करना है, तब जिस व्यक्ति के विरुद्ध शिकायत की गई है उसे अग्रिम प्रक्रम पर ही उसके विरुद्ध जो अभिकथन किया गया है उसकी सूचना दी जानी चाहिए और उसके पास अभिकथनों का कोई जबाब है तो वह उनके संबंध में उत्तर दे सकता है ।

इस सन्दर्भ में प्रिवी काउन्सिल ने कनेडियन न्यायिक परिषद् को अन्वेषण समिति द्वारा किए गए अभ्यावेदन [1982 (28) मेकगिल एल. जे. 380] और वर्ष 1984 में अमेरिका में न्यायाधीश के विरुद्ध सेनट न्यायिक समिति के अभ्यावेदन को निर्दिष्ट किया है । इन मामलों में प्रारम्भिक अन्वेषण के दौरान न्यायाधीश के विरुद्ध जो आरोप लगाए गए उनका अभिखंडन करने का अवसर दिया गया था । उन्होंने विशकोनसिन न्यायिक आयोग (1976 विशकोनसिन लॉ रिपोर्ट्स 563 पृ. 575) की प्रक्रिया के नियमों को भी निर्दिष्ट किया है जो कि निराले हैं और इन नियमों में स्पष्ट रूप से यह अपेक्षा की गई है कि किसी प्रारम्भिक अन्वेषण के अनुक्रम में और औपचारिक आरोप फाइल किए जाने से पहले या सुनवाई किए जाने से पहले न्यायाधीश को व्यक्तिगत रूप से उपसंजात होकर या पत्र द्वारा उत्तर देने का अवसर दिया जाता है । लार्ड स्लाइन ने आगे यह और मत व्यक्त किया है कि "ऐसा लगता है कि न्याय के अच्छे प्रशासन के हित में यह सोचा गया होगा कि अधिकरण के समक्ष अनन्यायोचित आरोपों को अधिकथित करने से पहले एक ऐसी प्रक्रिया अपनाई जाए जो कि न केवल न्यायाधीश के लिए बल्कि पूरी न्यायालय की व्यवस्था का बेकार का प्रचार न हो ।"

ऊपरकथित कारणों के आधार पर प्रिवी काउन्सिल ने यह मत व्यक्त किया कि न्यायमूर्ति क्रेन के साथ उचित रूप से व्यवहार नहीं किया गया है उन्हें आयोग को किए गए अभिकथनों की बाबत बताया जाना चाहिए था और उन्हें अभिकथनों का उत्तर देने का मौका दिया जाना चाहिए था, यह आवश्यक नहीं था कि अन्वेषण के प्रक्रम पर उन्हें मौखिक रूप से सुना जाता । प्रिवी काउन्सिल ने अपील न्यायालय के निर्णय की अभिपुष्टि की ।

अध्याय 13

सिंगापुर, न्यूजीलैंड, इजराइल और जांबिया में प्रक्रिया

सिंगापुर

सिंगापुर के संविधान (1963) के अनुसार उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के आचरण संबंधी अन्वेषण न्यायाधीशों को सौंपा गए हैं । संविधान का भाग VIII न्यायपालिका से संबंधित है । संविधान के अनुच्छेद 98 (2) में यह कहा गया है कि उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश त्यागपत्र दे सकता है किन्तु उसे अनुच्छेद 98 के खंड (3), (4), (5) के अनुसरण में प्रक्रिया के सिवाय पद से नहीं हटाया जाएगा ।

अनुच्छेद 98 (3) से (5) इस प्रकार है :

98(3) : यदि प्रधानमंत्री या मुख्य न्यायमूर्ति प्रधानमंत्री से परामर्श के पश्चात् राष्ट्रपति को यह अभ्यावेदन देता है कि उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को कदाचार या शारीरिक अथवा मानसिक दुर्बलता के कारण असमर्थता या किसी अन्य कारण के आधार पर हटाया जाए जिससे कि उसके पद के कृत्यों का समुचित रूप से निर्वहन किया जा सके वहां राष्ट्रपति खंड (4) के अनुसरण में एक अधिकरण की नियुक्ति करेगा और अधिकरण को ऐसा अभ्यावेदन निर्दिष्ट करेगा; और अधिकरण की सिफारिश पर न्यायाधीश को उसके पद से हटाया जा सकता है ।

(4) अधिकरण ऐसे पांच व्यक्तियों से कम से नहीं बनाया जाएगा जो उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के रूप में पद धारित करता हो या करते हों या यदि राष्ट्रपति को यह समीचीन प्रतीत होता है कि ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति की जाए जो कामनवैल्थ (राष्ट्रमंडल) के किसी भाग में समानान्तर पद धारित करता हो या करते हों और अधिकरण का ऐसा सदस्य अध्यक्षता करेगा जो निम्नलिखित क्रम में पहले हो अर्थात् जो मुख्य न्यायमूर्ति, न्यायाधीशों में अग्रता क्रम में हो और अन्य सदस्य पद पर उनकी नियुक्ति के अग्रता क्रम में हैसियत रखते हों और वे सदस्यता के लिए अर्हित हों (एक ही तारीख को दो सदस्यों की नियुक्ति के मामले में अधिक आयु वाले सदस्य का नाम कम आयु वाले सदस्य के पहले रखा जाएगा) ।

(5) खंड (3) के अधीन किसी निर्देश या रिपोर्ट के लंबित होने पर राष्ट्रपति अपने विवेक से कार्य करते हुए प्रधानमंत्री की सिफारिश प्राप्त कर सकता है और अन्य किसी न्यायाधीश के मामले में मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करने के पश्चात् उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को उसके कृत्यों के प्रयोग से निलंबित कर सकता है ।

न्यूजीलैंड

न्यूजीलैंड के संविधान (भाग 4, अनुच्छेद 23) में यह कहा गया है कि न्यायाधीशों को 'कदाचार' या पदीय कृत्यों का निर्वहन करने में 'असमर्थता' के आधार पर हाउस आफ रिपब्लिक के समावेदन पर संप्रभु या गवर्नर-जनरल द्वारा कार्रवाई के सिवाय नहीं हटाया जाएगा ।

न्यूजीलैंड में संसद ने जुडीशियल कन्डक्ट कमिश्नर और जुडीशियल कन्डक्ट पैनल एक्ट, 2004 पारित किया है ।

अधिनियम की धारा 4 में यह कहा गया है कि अधिनियम का प्रयोजन न्यायाधीशों को उनके पद से हटाने के संबंध में अनौपचारिक विनिश्चय दिए जाने के लिए समर्थ बनाने हेतु निष्पक्ष अन्वेषण प्रक्रिया का उपबंध करके, (ख) न्यायाधीशों के आचरण के संबंध में शिकायतें (परिवाद) प्राप्त करने और उनका निर्धारण करने के लिए पद अवधारित करके, और (ग) ऐसी ऋजु प्रक्रिया जो न्यायिक स्वतंत्रता और नैसर्गिक न्याय की अपेक्षाओं को मान्यता देती हो और संरक्षित करती हो, उपबंधित करके लोक विश्वास में वृद्धि करना और न्यायिक प्रणाली को अपक्षपातपूर्ण बनाना और ईमानदारी को संरक्षण प्रदान करना है ।

धारा 5 'न्यायाधीश' को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश या अपील न्यायालय के न्यायाधीश या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश या सह-न्यायाधीश या जिला न्यायाधीश इत्यादि के रूप में परिभाषित करती है । इसमें ऐसा व्यक्ति सम्मिलित है जो अस्थायी न्यायाधीश, अस्थायी सह-न्यायाधीश या कार्यकारी न्यायाधीश के रूप में पद धारित करता है, किन्तु इसमें सेवा-निवृत्त न्यायाधीश या पूर्व न्यायाधीश सम्मिलित नहीं है ।

अधिनियम धारा 7 के अधीन जुडीशियल कन्डक्ट कमिश्नर और धारा 21(1) के अधीन जुडीशियल कन्डक्ट पैनल की नियुक्ति के लिए उपबंध करती है ।

धारा 7 में यह कहा गया है कि कमिश्नर की नियुक्ति, महान्यायवादी (अटर्नी-जनरल) द्वारा मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से की जाएगी । धारा 8 कमिश्नर के कृत्यों और शक्तियों को परिभाषित करती है और इसमें यह कहा गया है कि कमिश्नर न्यायाधीशों के संबंध में शिकायतें प्राप्त करेगा और इन पर ऐसी रीति में कार्रवाई करेगा जो अधिनियम द्वारा अपेक्षित हो । वह शिकायतों की आरंभिक परीक्षा करेगा और समुचित मामलों में यह सिफारिश करेगा कि किसी न्यायाधीश के आचरण से संबंधित मामले या मामलों में जांच के लिए जुडीशियल कन्डक्ट पैनल बनाया जाए । इसमें यह कहा गया है कि कमिश्नर का यह कार्य नहीं है कि वह किसी न्यायाधीश द्वारा की गई विधिक कार्यवाहियों के संबंध में दिए गए या किए गए किसी अनुदेश, निदेश, आदेश, निर्णय और अन्य विनिश्चय की वैधता या विधिमान्यता को आक्षेपित करे या कोई प्रश्न उठाए । कमिश्नर को अपने कृत्यों को पूरा करने के लिए सभी आवश्यक शक्तियां प्राप्त होंगी । धारा 9 में यह कहा गया है कि कमिश्नर स्वतंत्र रूप से कार्य करेगा ।

धारा 11(1) में यह कहा गया है कि न्यायिक कर्तव्यों के प्रयोग या दुरुपयोग के संबंध में न्यायाधीश के आचरण के संबंध में शिकायत की जा सकेगी और ऐसी शिकायत दांडिक अपराध से संबंधित हो सकती है चाहे इस पर किसी न्यायालय द्वारा विचार किया गया हो या नहीं । कमिश्नर शिकायत पर (क) धारा 14 में उल्लिखित प्रक्रिया अपनाकर, (ख) धारा 15 के अधीन आरंभिक परीक्षा करके, और (ग) धारा 16 से 19 में उल्लिखित अन्य समुचित उपाय अपनाकर कार्रवाई करेगा । यह धारा, धारा 34 के अध्यधीन है ।

धारा 14 में यह कहा गया है कि कमिश्नर शिकायतें स्वीकार करके और अविलंब तत्परता से उन पर कार्रवाई करेगा । वह उस न्यायाधीश को एक प्रति भेजेगा जिसके संबंध में शिकायत की गई है । वह सुसंगत न्यायपीठ के अध्यक्ष से भी परामर्श करेगा । "न्यायपीठ के अध्यक्ष" पद को धारा 5 में उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति, अपील न्यायालय के अध्यक्ष (पीठासीन अधिकारी) या मुख्य ज़िला न्यायालय न्यायाधीश इत्यादि के रूप में परिभाषित किया गया है । यदि ऐसे परामर्श के पश्चात् कमिश्नर का यह समाधान हो जाता है कि मामले पर किसी न्यायालय द्वारा विचार किया जा रहा है या विचार किया जाएगा या इस संबंध में कोई अन्य बेहतर कारण मौजूद है तो कमिश्नर शिकायत पर विचार करना स्थगित कर सकता है । धारा 15 के अधीन कमिश्नर आरंभिक परीक्षा

करेगा और इस बाबत अपनी राय बनाएगा कि क्या शिकायत के यदि यह साबित हो जाती है, आधार पर न्यायाधीश के हटाने के संबंध में विचार किए जाने की आवश्यकता है अथवा क्या धारा 16(1) के अधीन शिकायत को खारिज करने के लिए कोई आधार है । आरंभिक परीक्षा के दौरान कमिश्नर न्यायाधीश के उत्तर की अपेक्षा कर सकता है । कमिश्नर नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के अनुसरण में कार्रवाई करेगा । वह ऐसी जांच कर सकता है जो उचित हो, न्यायालय से ऐसे दस्तावेज प्राप्त कर सकता है जो सुसंगत हों या न्यायपीठ के अध्यक्ष से परामर्श कर सकता है । तत्पश्चात् वह अपनी राय बनाएगा और इस राय के आधार पर वह शिकायत को खारिज कर सकता है जैसा कि धारा 16 में कहा गया है या वह शिकायत न्यायपीठ के अध्यक्ष को निर्दिष्ट कर सकता है जैसा कि धारा 17 में कहा गया है या यह सिफारिश कर सकता है कि महान्यायवादी न्यायाधीश के आचरण से संबंधित किसी मामले या मामलों की जांच करने के लिए जुडीशियल कन्डक्ट पैनल की नियुक्ति करे जैसाकि धारा 18 में कहा गया है ।

अन्य धाराओं पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक होगा कि धारा 12 का निर्देश किया जाए जो शिकायत से संबंधित है । कोई शिकायत किसी व्यक्ति द्वारा की जा सकती है या महान्यायवादी द्वारा हो सकती है या कमिश्नर की स्वप्रेरणा पर हो सकती है जिसे वह न्यायाधीश के आचरण से संबंधित किसी मामले या मामलों की शिकायत के रूप में मान सकता है । धारा 13 उस रीति के बारे में उपबंध करती है जिसमें कमिश्नर को शिकायत की जाएगी । ऐसी शिकायत लिखित में होनी चाहिए । इसमें न्यायाधीश के नाम का उल्लेख होना चाहिए और परिवादी द्वारा स्वयं अपना नाम दिया जाना चाहिए और उसे शिकायत में विषय-वस्तु का उल्लेख करना चाहिए । कमिश्नर शिकायतकर्ता से यह अपेक्षा कर सकता है कि वह कानूनी घोषणा प्ररूप फाइल करे ।

अब हम धारा 16 और 19 का निर्देश करेंगे । कमिश्नर ऐसी किसी शिकायत को खारिज कर सकता है जिसमें अपेक्षित सार न हो । खारिजी के लिए शर्तें ये हैं कि शिकायत कमिश्नर की अधिकारिता के भीतर नहीं आती या शिकायत न्यायाधीश के कृत्यों या कर्तव्यों पर प्रभाव नहीं डालती या जहां धारा 12 और 13 की अपेक्षाओं का अनुपालन नहीं किया गया है या शिकायत तुच्छ, कष्ट पहुंचाने वाली है या सद्भाविक नहीं है या शिकायत की विषय-वस्तु तुच्छ है या शिकायत न्यायिक विनिश्चय अथवा अन्य न्यायिक कृत्य से संबंधित है या वह व्यक्ति जिसके बारे में

शिकायत की गई है, अब न्यायाधीश नहीं रहा है या शिकायत पर पहले ही न्यायपीठ के अध्यक्ष द्वारा विचार किया जा चुका है या जहां कमिश्नर द्वारा इस बारे में पहले ही विचार किया जा चुका है और जहां धारा 17 या 18 के अधीन कार्रवाई करने के लिए कोई आधार मौजूद नहीं है ।

जहां कमिश्नर कोई शिकायत खारिज करेगा वहां वह उन आधारों के साथ शिकायतकर्ता को सूचित करेगा जिन पर खारिजी आधारित है ।

कमिश्नर धारा 17 के अधीन न्यायपीठ के अध्यक्ष (अर्थात् मुख्य न्यायमूर्ति) को शिकायतें निर्दिष्ट कर सकता है जहां उसके द्वारा शिकायत खारिज न की गई हो या जहां वह यह समझता है कि यह एक ऐसा मामला नहीं है जिसे जुडीशियल कन्डक्ट पैनल को निर्दिष्ट किया जाए अर्थात् जहां न्यायपीठ के अध्यक्ष द्वारा सुधारात्मक उपाय किए जा सकते हों । जहां कमिश्नर न्यायपीठ के अध्यक्ष को शिकायत निर्दिष्ट करता है वहां वह ऐसे निर्देश के बारे में शिकायतकर्ता को सूचना देगा ।

धारा 18 महत्वपूर्ण है और यह ऐसी सिफारिश करने के लिए कमिश्नर की शक्ति के संबंध में उपबंध करती है कि महान्यायवादी जुडीशियल कन्डक्ट पैनल की नियुक्ति करे । इस धारा में यह कहा गया है कि वह वहां सिफारिश करेगा जहां वह यह समझता है कि पैनल द्वारा ऐसी जांच आवश्यक है या न्यायोचित है और जहां अवकथित आचरण के, यदि साबित होता है, के आधार पर न्यायाधीश को हटाए जाने के संबंध में विचार किए जाने की आवश्यकता है । कमिश्नर सिफारिश के लिए कारण देगा और ऐसे कारणों के बारे में शिकायतकर्ता को संसूचित करेगा ।

धारा 19 आरंभिक जांच में कमिश्नर की गोपनीयता की ड्यूटी से संबंधित है ।

धारा 20 में यह कहा गया है कि जहां कमिश्नर यह सिफारिश करता है कि पैनल की नियुक्ति की जाए वहां वह महान्यायवादी और विशेष काउंसेल को फाइलें उपलब्ध कराएगा ।

धारा 21 महान्यायवादी को जुडीशियल कन्डक्ट पैनल की नियुक्ति के लिए समर्थ बनाती है (इसका यह अर्थ है कि न्यूजीलैंड अधिनियम के अधीन पैनल एक स्थायी पैनल नहीं है अपितु यह प्रत्येक मामले के संबंध में गठित किया जाता है) । महान्यायवादी पैनल की नियुक्ति करने से पूर्व उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से इस बारे में से परामर्श करेगा कि क्या ऐसे किसी पैनल का गठन किया जाए ।

धारा 24 पैनल के कृत्यों के संबंध में उल्लेख करती है जो इस प्रकार है :—

"(1) जुडीशियल कन्डक्ट पैनल कमिश्नर की सिफारिश पर महान्यायवादी द्वारा स्वयं को निर्दिष्ट जुडीशियल कन्डक्ट के मामले या मामलों में जांच करेगा और अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा ।

(2) पैनल महान्यायवादी द्वारा निर्दिष्ट मामले या मामलों में सुनवाई करेगा ।

(3) पैनल न्यायाधीश के आचरण से संबंधित अन्य किसी मामले में भी जो महान्यायवादी से प्राप्त निर्देश के दौरान उत्पन्न हो, जांच कर सकता है और अपनी रिपोर्ट दे सकता है ।

(4) पैनल धारा 32 के अनुसरण में महान्यायवादी को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा ।"

धारा 26 सुनवाई और जांच करते समय पैनल की शक्तियों के बारे में निर्देश करती है जो इस प्रकार हैं :—

"(1) जुडीशियल कन्डक्ट पैनल को अपने कृत्यों और कर्तव्यों के निर्वहन के प्रयोजन के लिए वहीं शक्तियां प्राप्त हैं और वह उनका प्रयोग कर सकता है जो कमीशन्स आफ इन्क्वारी ऐक्ट, 1908 की धारा 4 और 4-ख से 8 द्वारा जांच कमीशन को प्रदत्त की गई हैं ।

(2) कमीशन्स आफ इन्क्वारी ऐक्ट, 1908 की धारा 4-ख और 4-ख से 9 उन सभी व्यक्तियों को इस प्रकार लागू होगी जो इस धारा के अधीन किसी भी क्षमता में किसी सुनवाई या जांच से संबंधित हैं मानो ऐसी जांच उस अधिनियम के अधीन किसी कमीशन द्वारा की जा रही है ।

(3) पैनल नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसरण में कार्य करेगा ।"

धारा 27 में यह कहा गया है कि संबंधित न्यायाधीश सुनवाई के समय उपस्थित होने, सुनवाई करने और काउंसेल द्वारा प्रतिनिधित्व करने के लिए हकदार है । काउंसेल के ऐसे प्रतिनिधित्व करने पर उसका युक्तियुक्त खर्च कमिश्नर के कार्यालय द्वारा दिया जाएगा । धारा 28 के अधीन नियुक्त विशेष काउंसेल सुनवाई के समय उपस्थित होने और सुनवाई किए जाने का हकदार है । अन्य किसी व्यक्ति को वैयक्तिक रूप से उपस्थित होने या काउंसेल द्वारा उपस्थित होने के लिए अनुज्ञात किया जा सकता है ।

धारा 28 जांच के दौरान "विशेष काउंसेल" की नियुक्ति के बारे में उपबंध करती है और ऐसा काउंसेल न्यायाधीश के आचरण के संबंध में अभिकथन पेश करेगा और प्रक्रिया या विधि संबंधी प्रश्नों पर अपनी दलीलें देगा । विशेष काउंसेल निष्पक्ष रूप से और लोकहित में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करेगा ।

धारा 29 यह उपबंध करती है कि पैनल सार्वजनिक रूप से मामले की सुनवाई करेगा जब तक कि उसका यह मत न हो कि व्यक्ति के हित में और लोकहित में ऐसी सुनवाई प्राइवेट रूप से की जानी चाहिए ।

धारा 30 प्रकाशन पर निर्बंधन अधिरोपित करती है और यह अत्यंत महत्वपूर्ण है जो इस प्रकार है :–

"(1) यदि किसी जुडीशियल कन्डक्ट पैनल का यह मत है कि किसी व्यक्ति के (शिकायतकर्ता की गोपनीयता के लिए जिसकी कोई परिसीमा नहीं है) हित में और लोकहित में ऐसा करना उचित है तो पैनल निम्नलिखित में से कोई एक या अधिक आदेश पारित कर सकता है :–

(क) किसी रिपोर्ट को प्रकाशित करने या पैनल के समक्ष कार्यवाहियों के किसी भाग को चाहे वह सार्वजनिक तौर पर की गई हों या प्राइवेट रूप में, प्रकाशित करने से प्रतिषिद्ध करने वाला कोई आदेशः

(ख) किसी सुनवाई के समय पेश की गई किसी पुस्तक, कागज या दस्तावेज के किसी भाग को संपूर्णतः और भागतः प्रकाशन को प्रतिषिद्ध करने वाला कोई आदेशः

(ग) संबंधित न्यायाधीश या अन्य व्यक्ति के नाम या उसके कार्यों की विशिष्टियों के प्रकाशन को प्रतिषिद्ध करने वाला कोई आदेश ।

(2) उपधारा (1) के अधीन किया गया कोई ऐसा आदेश तब तक प्रवृत्त रहेगा –

(क) ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट समय तक; या

(ख) यदि आदेश में कोई समय विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है तो जब तक इसे उपधारा (3) या धारा 31 के अधीन प्रतिसंहृत न किया जाए ।

(3) कोई व्यक्ति किसी भी समय पैनल को किसी आदेश को जो उपधारा (1) के अधीन उसके द्वारा किया गया हो, संपूर्णतः या भागतः प्रतिसंहृत करने के लिए आवेदन कर सकता है और पैनल आवेदन को मंजूर या खारिज कर सकेगा जैसा कि पैनल उचित समझे ।

(4) यदि कोई व्यक्ति उपधारा (3) के अधीन किसी आदेश के लिए, पैनल द्वारा कार्य बन्द करने के कारण आवेदन करने से असमर्थ रहता है, तो ऐसा व्यक्ति ऐसे आदेश को जो पैनल द्वारा उपधारा (1) के अधीन किया गया है, संपूर्णतः या भागतः प्रतिसंहृत करने के लिए अपील न्यायालय को आवेदन कर सकता है ।

(5) किसी व्यक्ति द्वारा अपराध करना कहा जाएगा यदि वह पैनल द्वारा इस धारा के अधीन किए गए किसी आदेश के अतिक्रमण में कार्य करता या करती है ।

(6) कोई व्यक्ति जो उपधारा (5) के विरुद्ध कोई अपराध करता है, संक्षिप्ततः दोषसिद्धि के लिए दायी है –

(क) किसी व्यक्ति के मामले में 3,000 डालर से अनधिक जुर्माना के लिए :

(ख) किसी निगमित निकाय के मामले में 10,000 डालर के जुर्माने के लिए ।

धारा 31 पैनल द्वारा धारा 30 के अधीन प्रकाशन के संबंध में की गई सुनवाई या किए गए आदेशों के दौरान धारा 29 के अधीन किए गए आदेश के विरुद्ध अपील न्यायालय में अपील करने के लिए अनुज्ञात करती है ।

पैनल जैसा कि धारा 32 में उपबंध किया गया है, इस बारे में तथ्य के निष्कर्ष की अपनी रिपोर्ट महान्यायवादी के समक्ष प्रस्तुत करेगा कि क्या उसके द्वारा संलग्न किए गए कारणों से न्यायाधीश को उसके पद से हटाया जाए या नहीं ।

धारा 33 महान्यायवादी को रिपोर्ट की प्राप्ति पर न्यायाधीश को हटाने की कार्रवाई आरंभ करने के लिए विवेकाधिकार प्रदत्त करती है जो इस प्रकार है :–

"(1) यदि कोई जुडीशियल कन्डक्ट पैनल यह निष्कर्ष निकालता है कि किसी न्यायाधीश को हटाए जाने के संबंध में विचार न्यायोचित है तो महान्यायवादी स्वयं अपने आत्यंतिक विवेकाधिकार के आधार पर यह अवधारण करेगा कि क्या ऐसे न्यायाधीश को उसके पद से हटाने के लिए कार्रवाई आरंभ की जाए या नहीं ।

(2) किसी न्यायाधीश को उसके पद से तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक कि कन्डक्ट पैनल महान्यायवादी को यह रिपोर्ट नहीं देता है कि उसका यह मत है कि न्यायाधीश को हटाने जाने पर विचार करना न्यायोचित है ।

धारा 34 महान्यायवादी को उस स्थिति में कार्रवाई करने के लिए स्वतंत्र शक्ति प्रदत्त करती है जब कोई न्यायाधीश दो या दो से अधिक वर्षों के कारावास से दंडनीय किसी गंभीर अपराध का दोषी है ।

धारा 35 द्वारा आफिशियल इन्फोरमेशन एक्ट, 1982 को संशोधित किया गया है जिसमें यह कहा गया है कि "आफिशियल इन्फारमेशन" में ऐसा कोई साक्ष्य निवेदन या अन्य सूचना सम्मिलित नहीं है जो जुडीशियल कन्डक्ट कमिश्नर या जुडीशियल कन्डक्ट पैनल या न्यायिक शिकायतकर्ता के पर्यवेक्षक द्वारा दी गई हो या प्रदान की गई हो ।

इजराइल

इजराइल में भी कोर्ट आफ डिसिप्लीन केवल न्यायाधीश सम्मिलित हैं चाहे वे पद पर हों या सेवानिवृत्त हों । इजराइल में मूल विधि, अध्याय II न्यायपालिका के बारे में उपबंध करती है । धारा 7 में यह कहा गया है कि किसी न्यायाधीश की सेवा अवधि उसकी राज्य निष्ठा की घोषणा से आरंभ होगी और निम्न स्थितियों में समाप्त होगी :–

(1) पेंशन पर सेवानिवृत्ति; या

(2) उसके त्यागपत्र देने पर ; या

(3) ऐसे किसी पद पर निर्वाचित होने या नियुक्त होने पर या धारित करने पर जिससे कि नेसेट के लिए अभ्यर्थिता से विवर्जित हो जाए; या

(4) कमेटी के चेयरमैन या उच्चतम न्यायालय के प्रेसीडेन्ट द्वारा तैयार की गई न्यायाधीशों की चयन समिति के विनिश्चय पर जो न्यूनतम सात सदस्यों के बहुमत द्वारा पारित किया गया हो ; या

(5) कोर्ट आफ डिसिप्लीन के विनिश्चय पर ।

इजराइल के न्यायाधीशों को ऐसे कोर्ट आफ डिसिप्लीन के जिसमें उच्चतम न्यायालय के प्रेसीडेन्ट (न्यायमूर्ति) द्वारा नियुक्त न्यायाधीश सम्मिलित हैं, विनिश्चय के सिवाय पद से हटाया नहीं जा सकता ।

संविधान की धारा 13 जो अनुशासनिक कार्यवाहियों से संबंधित है, जो इस प्रकार है :–

"(13) (क) कोई न्यायाधीश कोर्ट आफ डिसिप्लीन की अधिकारिता के अध्यधीन होगा ।

(ख) कोई कोर्ट आफ डिसिप्लीन न्यायाधीशों और ऐसे सेवानिवृत्त न्यायाधीशों से बनेगा जो उच्चतम न्यायालय के प्रेसीडेन्ट द्वारा नियुक्त किए गए हों और पेंशन पर सेवानिवृत्त हुए हों ।

(ग) अनुशासनिक कार्यवाहियां संस्थित करने के लिए आधारों के बारे में उपबंध परिवाद फाइल करने की रीतियां, न्यायपीठ का संयोजन, कोर्ट आफ डिसिप्लीन की शक्तियां और अनुशासनिक अध्युपाय जो अधिरोपित करने के लिए प्राधिकृत किए जाएं, विधि द्वारा विहित किए जाएंगे । प्रक्रिया नियम विधि के अनुसार होंगे ।

धारा 14 न्यायाधीश के निलंबन के बारे में उपबंध करती है जो इस प्रकार है :–

"14. जहां किसी न्यायाधीश के विरुद्ध कोई शिकायत या सूचना फाइल की जाती है वहां उच्चतम न्यायालय का प्रेसीडेन्ट उसे ऐसी अवधि के लिए पद से निलंबित कर सकता है जैसी कि वह विहित करे ।

<u>जांबिया</u>

जांबिया में भी न्यायाधीशों के विरुद्ध अनुशासनिक अधिकारिता केवल न्यायाधीशों को प्रदत्त की गई है । जांबिया का संविधान, 1991, संविधान (संशोधन) अधिनियम, 1996 द्वारा यथा संशोधित के भाग VI में न्यायपालिका के संबंध में उपबंध किया गया है । धारा 91 न्यायालयों के वर्गीकरण अर्थात् जांबिया के उच्चतम न्यायालय, जांबिया के उच्च न्यायालय, इंडस्ट्रीयल रिलेशन्स कोर्ट, अधीनस्थ न्यायालयों और स्थानीय न्यायालय के संबंध में उपबंध करती है । अनुशासनिक प्रक्रिया, न्यायाधीशों की सेवा अवधि अनुच्छेद 98 में निर्दिष्ट की गई है । अनुच्छेद 98 (1) में यह कहा गया है कि ऐसा कोई व्यक्ति जो उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का पद धारित करता है, 65 वर्ष की आयु पूरी होने पर पद रिक्त करेगा । धारा 98 की उपधारा (2) में यह कहा गया है कि उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश पद के कृत्यों को पूरा करने में असमर्थता के आधार पर ही पद से हटाया जा सकता है चाहे ऐसी अशक्तता शारीरिक दुर्बलता या उसकी अक्षमता या कदाचार के कारण उत्पन्न हुई हो और उसे इस

अनुच्छेद के उपबंधों के अनुसरण के सिवाय इस प्रकार नहीं हटाया जाएगा । धारा 98(3) इस प्रकार है :–

"98(3) यदि राष्ट्रपति यह विचार करता है कि उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को हटाने के प्रश्न की जांच की जानी चाहिए तब –

(क) वह अधिकरण की नियुक्ति करेगा जिसका एक चेयरमैन होगा और इसके कम से कम दो ऐसे सदस्य होंगे जो उच्च न्यायिक पद धारित करता हो या करते हों ;

(ख) अधिकरण मामले में जांच करेगा और इसकी तथ्य संबंधी रिपोर्ट राष्ट्रपति को देगा और राष्ट्रपति को यह भी परामर्श देगा कि क्या इस अनुच्छेद के अधीन न्यायाधीश को उसकी असमर्थता या कदाचार के लिए पद से हटाया जाए ।"

इसके पश्चात् धारा 98(4) और (5) इस प्रकार हैं –

"(4) जहां कोई अधिकरण जिसकी नियुक्ति खंड (3) के अधीन की गई है, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के बारे में राष्ट्रपति को यह परामर्श देता है कि किसी न्यायाधीश को अशक्तता या अक्षमता या कदाचार के लिए पद से हटाया जाए तब राष्ट्रपति ऐसे न्यायाधीश को उसके पद से हटा देगा ;

(5) यदि उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को उसके पद से हटाने जाने का प्रश्न अधिकरण को खंड (3) के अधीन निर्दिष्ट किया गया है तब राष्ट्रपति न्यायाधीश को उसके पद के कृत्यों के निर्वहन से निलंबित कर सकेगा और राष्ट्रपति द्वारा किसी भी समय ऐसे किसी भी निलंबन को प्रतिसंहृत किया जा सकेगा और तब भी ऐसे निलंबन का प्रभाव समाप्त हो जाएगा यदि अधिकरण राष्ट्रपति को यह परामर्श देता है कि न्यायाधीश को उसके पद से हटा दिया जाए ।"

जांबिया के द जुडीशियल (कोड आफ कंडक्ट), 1999 की धारा 20 में यह कहा गया है कि एक शिकायत समिति होगी जिसमें ऐसे पांच सदस्य होंगे जो उच्च न्यायिक पद धारित करते हों या धारित करने के लिए अर्हित हों ।

अध्याय 14

बांग्लादेश, पाकिस्तान और मलेशिया में प्रक्रिया

बांग्लादेश

बांग्लादेश में न्यायिक परिषद् जो उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के विरुद्ध जांच करती है, केवल न्यायाधीशों से गठित होती है न कि अन्यों से । संविधान की धारा 96 उन जांचों की विषय-वस्तु से संबंधित है जो उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को लागू हैं । धारा 94 से यह स्पष्ट है और इसमें यह कहा गया है कि बांग्लादेश का एक उच्चतम न्यायालय होगा जिसमें अपील खंड (अर्थात् उच्चतम न्यायालय) और उच्च न्यायालय खंड सम्मिलित होगा । अनुच्छेद 94 के खंड 4 में यह कहा गया है कि संविधान के उपबंधों के अध्यधीन मुख्य न्यायमूर्ति और अन्य न्यायाधीश अपने कृत्यों के प्रयोग के लिए स्वतंत्र होंगे ।

बांग्लादेश संविधान की धारा 96 के अनुसार उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश 65 वर्ष तक की आयु प्राप्त करने तक अपना पद धारित करेगा । उसे अनुच्छेद 96 के उपखंड (3) से (8) के उपबंधों के अनुसरण के सिवाय पद से नहीं हटाया जाएगा । ये अनुच्छेद उच्च न्यायिक परिषद् (हाई जुडीशियल कौंसिल) के गठन के लिए उपबंध करते हैं जिसमें बांग्लादेश का मुख्य न्यायमूर्ति और उसके ठीक नीचे के दो ज्येष्ठ न्यायाधीश सम्मिलित होंगे परंतु यदि जांच ऐसे न्यायाधीश के विरुद्ध हो जो कौंसिल का सदस्य है तब उसके ऊपर के दो ज्येष्ठ न्यायाधीश सदस्य के रूप में कार्य करेंगे । कौंसिल न्यायाधीशों द्वारा अनुपालन की जाने वाली आचार संहिता विहित करेगी और किसी न्यायाधीश या ऐसे किसी अन्य कृत्यकारी के आचरण के बारे में भी जांच करेगी जो किसी न्यायाधीश को हटाने की समान रीति के सिवाय अपने पद से हटाए जाने योग्य नहीं होगा । उपखंड (5) यह उपबंध करता है कि यदि कौंसिल या किसी अन्य स्रोत से प्राप्त सूचना के आधार पर राष्ट्रपति को यह आशंका है कि कोई न्यायाधीश मानसिक या शारीरिक अक्षमता के कारण अपने कृत्यों को समुचित रूप से पूरा करने योग्य नहीं रहा है या ऐसा न्यायाधीश गंभीर अवचार का दोषी है तो राष्ट्रपति कौंसिल को मामले की जांच करने और अपनी निष्कर्ष संबंधी रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए निदेश कर सकता है । उप खंड (6) में यह कहा गया है कि यदि जांच के पश्चात् कौंसिल राष्ट्रपति को यह रिपोर्ट देती है कि उसकी राय में न्यायाधीश अपने पद से संबंधित कृत्यों को

समुचित रूप से पूरा करने के योग्य नहीं रहा है या गंभीर अवचार का दोषी है तो राष्ट्रपति न्यायाधीश को पद से हटा देगा । उपखंड (7) कौंसिल को ऐसी जांच के प्रयोजन के लिए प्रक्रिया विनियमित करने के लिए समर्थ बनाता है और प्रक्रिया को जारी करने और उसका निष्पादन करने के संबंध में उसे वही शक्ति प्राप्त है जो उच्चतम न्यायालय को है । उपखंड (8) किसी न्यायाधीश को राष्ट्रपति को संबोधित करते हुए पत्र द्वारा लिखित में त्यागपत्र देने के लिए अनुज्ञात करता है ।

धारा 96 इस प्रकार है:

"96. न्यायाधीशों की पदावधि

(1) इस अनुच्छेद के अन्य उपबंधों के अध्यधीन कोई न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक अपने पद पर बना रहेगा ।

(2) किसी न्यायाधीश को इस अनुच्छेद के निम्नलिखित उपबंधों के सिवाय उसके पद से नहीं हटाया जाएगा ।

(3) एक उच्चतम न्यायिक परिषद् होगी जिसे इस अनुच्छेद में कौंसिल कहा गया है जो बांग्लादेश के मुख्य न्यायमूर्ति और उससे ठीक नीचे के दो न्यायाधीशों द्वारा गठित होगी:

परन्तु यदि किसी समय कौंसिल ऐसे किसी न्यायाधीश की सक्षमता या आचरण के बारे में जांच करती है जो कौंसिल का सदस्य है या कौंसिल का सदस्य अनुपस्थित है या बीमारी या अन्य कारण से कार्य करने में असमर्थ है तो ऐसा न्यायाधीश जो उनमें से ठीक नीचे ज्येष्ठता रखता है जो कौंसिल के सदस्य हैं, ऐसे सदस्य के रूप में कार्य करेगा ।

(4) कौंसिल के निम्न कृत्य होंगे –

(क) न्यायाधीशों द्वारा अनुपाल किए जाने के लिए आचार

संहिता विहित करना; और

(ख) किसी न्यायाधीश या ऐसे किसी अन्य कृत्यकारी की क्षमता या आचरण की जांच करना जो ऐसे न्यायाधीशों की समान रीति के सिवाय पद से हटाए जाने योग्य नहीं है ।

(5) जहां कौंसिल से प्राप्त या अन्य किसी स्रोत से प्राप्त किसी सूचना पर राष्ट्रपति को यह आशंका करने का कारण है –

(क) शारीरिक या मानसिक अक्षमता के कारण अपने पद के कृत्यों को समुचित रूप से पूरा करने योग्य नहीं रहा है, या

(ख) गंभीर अवचार का दोषी है वहां राष्ट्रपति कौंसिल को मामले में जांच करने और अपनी निष्कर्ष संबंधी रिपोर्ट पेश करने के लिए निदेश दे सकेगा ।

(6) यदि जांच करने के पश्चात् कौंसिल राष्ट्रपति को यह रिपोर्ट प्रस्तुत करती है कि उसकी राय में न्यायाधीश अपने पदीय कृत्यों को समुचित रूप से पूरा करने योग्य नहीं रहा है या गंभीर अवचार का दोषी है तो राष्ट्रपति आदेश करके न्यायाधीश को उसके पद से हटा देगा ।

(7) इस अनुच्छेद के अधीन किसी जांच के प्रयोजन के लिए कौंसिल प्रक्रिया विनियमित करेगी और उसे प्रक्रिया जारी करने और निष्पादन करने के संबंध में वही शक्ति प्राप्त होगी जो उच्चतम् न्यायालय को है ।

(8) कोई न्यायाधीश राष्ट्रपति को संबोधित करते हुए अपने हस्तलेख द्वारा अपने पद से त्यागपत्र भी दे सकता है ।

यह उपदर्शित है कि बांग्लादेश में राष्ट्रपति को हाउस आफ पार्लियामेंट को समावेदन द्वारा हटाने की प्रक्रिया विद्यमान नहीं है और हटाने के लिए एकमात्र प्रक्रिया उस न्यायिक परिषद् की सिफारिश है जिसमें केवल न्यायाधीश हों ।

पाकिस्तान

पाकिस्तान के संविधान के अनुसार उच्चतम न्यायायलय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की असमर्थता या आचरण के बारे में जांच के लिए एक प्रक्रिया है और यह प्रक्रिया अनुच्छेद 209 में वर्णित है । यह महत्वपूर्ण है कि उच्चतम न्यायिक परिषद् जो ऐसी जांचें करती है, केवल न्यायाधीशों से गठित होती है । कौंसिल के समक्ष मूल प्रक्रिया का भी उल्लेख किया गया है । अनुच्छेद 209 से 211 इस प्रकार है :–

"209(1) पाकिस्तान की एक उच्च न्यायिक परिषद् होगी जिसे इस अध्याय में कौंसिल कहा गया है,

(2) कौंसिल में निम्नलिखित सम्मिलित होंगे –

(क) पाकिस्तान का मुख्य न्यायमूर्ति ;

(ख) उच्चतम न्यायालय के उपर्युक्त से ठीक नीचे के दो ज्येष्ठतम न्यायाधीश ; और

(ग) उच्च न्यायालयों के दो ज्येष्ठतम मुख्य न्यायमूर्ति

स्पष्टीकरण:– इस खंड के प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों की ज्येष्ठता मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में (अन्यथा कार्यकारी न्यायमूर्ति के रूप में) उनकी नियुक्ति की तारीख के निर्देश में अवधारित की जाएगी और यदि ऐसी नियुक्ति की तारीखें समान हैं तो ऐसी ज्येष्ठता उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के रूप में उनकी नियुक्ति की तारीख के निर्देश में अवधारित की जाएगी ।

(3) यदि किसी समय कौंसिल ऐसी किसी न्यायाधीश की क्षमता या आचरण के बारे में जांच करती है जो कौंसिल का सदस्य है या कौंसिल का ऐसे सदस्य अनुपस्थित है या बीमारी या अन्य किसी कारण से कार्य करने में असमर्थ है तब –

(क) यदि ऐसा सदस्य उच्चतम न्यायालय का न्यायमूर्ति है तो उच्चतम न्यायालय का ऐसा न्यायाधीश जो खंड 2 के पैरा (ख) में निर्दिष्ट न्यायाधीशों से ठीक नीचे ज्येष्ठता रखता हो, और

(ख) यदि ऐसा सदस्य किसी उच्च न्यायालय का न्यायमूर्ति है, दूसरे उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति जो शेष उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायामूर्तियों में ठीक नीचे ज्येष्ठता रखता हो, उसके स्थान पर कौंसिल के सदस्य के रूप में कार्य करेगा ।

(4) यदि कौंसिल द्वारा जांच किए गए किसी मामले में इसके सदस्यों के बीच राय भिन्नता है तो बहुमत की राय अभिभावी होगी और राष्ट्रपति को दी गई कौंसिल की रिपोर्ट में बहुमत के मत के निबंधनों में अभिव्यक्ति की जाएगी ।

(5) यदि (किसी स्रोत या कौंसिल) की सूचना पर राष्ट्रपति की यह राय है कि उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश

(क) शारिरीक या मानसिक अक्षमता के कारण अपने पदीय कर्तव्यों को समुचित रूप से

पूरा करने में असमर्थ है; या

(ख) अवचार का दोषी है तो राष्ट्रपति मामले में जांच करने के लिए कौंसिल को निदेश देगा या कौंसिल स्वप्रेरणा से मामले में जांच कर सकती है ।

(6) यदि कौंसिल मामले में जांच करने के पश्चात् राष्ट्रपति को यह रिपोर्ट देती है कि उसकी यह राय है –

(क) न्यायाधीश अपने पदीय कर्तव्यों को परा करने में असमर्थ है या आचरण का दोषी है, और

(ख) उसे पद से हटाया जाना चाहिए तो राष्ट्रपति न्यायाधीश को पद से हटा सकता है ।

(7) उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को इस अनुच्छेद द्वारा यथा उपबंधित के सिवाय पद से नहीं हटाया जाएगा ।

(8) कौंसिल उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा अनुपालन के लिए एक आचार संहिता जारी करेगी ।

210. (1) कौंसिल को किसी मामले में जांच करने के प्रयोजनार्थ वही शक्ति प्राप्त होगी जो उच्चतम न्यायालय को किसी व्यक्ति की हाजिरी सुनिश्चित करने के लिए या किसी दस्तावेज का पता लगाने या पेश कराने के लिए निदेश या आदेश जारी करने के लिए प्राप्त है; और ऐसा कोई निदेश या आदेश इस प्रकार प्रवर्तनीय होगा मानो यह उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी किया गया हो ।

(2) अनुच्छेद 294 के उपबंध कौंसिल को उसी प्रकार लागू होंगे जैसे कि ये उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय को लागू हैं ।

211. कौंसिल के समक्ष की कार्यवाहियां, राष्ट्रपति को इसकी रिपोर्ट और अनुच्छेद 209 के खंड (6) के अधीन न्यायाधीश को हटाना किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जाएगा ।

यह उल्लेखनीय है कि बांग्लादेश के समान पाकिस्तान का संविधान हाउस टू दि प्रेसीडेंड के समावेदन द्वारा हटाने के लिए उपबंध नहीं करता । हटाने के लिए एकमात्र प्रक्रिया न्यायिक परिषद् की सिफारिश है जिसमें केवल न्यायाधीश सम्मिलित हैं ।

मलेशिया

मलेशिया के न्यायाधीश अपने अवचार या अपने पद के कृत्यों के निर्वहन के लिए असमर्थता के लिए जवाबदेह (उत्तरदायी) हैं । उन्हे मलेशियन फेडरल संविधान के अनुच्छेद 125 द्वारा उपबंधित प्रक्रिया द्वारा हटाया जा सकता है । प्रधानमंत्री या मुख्य न्यायमूर्ति प्रधानमंत्री से परामर्श करने के पश्चात् राजा को यह अभ्यावेदन करेगा कि कोई विशिष्ट न्यायाधीश हटाया जाना चाहिए । न्यायाधीश के विरुद्ध अभ्यावेदन और शिकायतें सुनने के लिए एक अधिकरण का गठन किया जाएगा । अधिकरण में कम से कम ऐसे पांच व्यक्ति सम्मिलित होंगे जो फेडरल न्यायालय या अपील न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में पद धारित करता हो या करते हो और यदि राजा को ऐसा समीचीन प्रतीत होता है तो वह ऐसे व्यक्तियों की नियुक्त कर सकता है जो किसी अन्य कामनवैल्थ (राष्ट्रमंडल) में समानान्तर पद धारित करता हो या करते हों ।"

अतः अधिकरण के सभी सदस्य न्यायाधीश होंगे ।

अनुच्छेद 125 यह विहित करता है कि फेडरल न्यायालय, अपील न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश "कदाचार" के आधार पर पद से हटाए जा सकते हैं या यदि वे "शारीरिक या मानसिक दुर्बलता या अन्य किसी कारण से असमर्थता" के कारण "अपने पदीय कृत्यों का समुचित रूप से निर्वहन" नहीं कर सकते । इस प्रकार ऐसे न्यायाधीश को हटाने के लिए सांविधानिक मशीनरी में गुंजाइश है जो कदाचार करता है या असमर्थ हो जाता है । "किसी अन्य कारण" से न्यायिकतः निर्वहन करने की असमर्थता का उदार निर्वचन किया गया है । न्यायपालिका ने हाल ही में जवाबदेही के इस पहलू के पुनः प्रवर्तन के लिए न्यायाधीशों हेतु कोड आफ इथिक्स पुरःस्थापित किया है ।

मलेशिया में, समावेदन द्वारा हटाने के लिए प्रक्रिया संक्षिप्त है किन्तु जांच ऐसे अधिकरण द्वारा की जाती है जिसमें केवल न्यायाधीश सम्मिलित हों और ऐसा अधिकरण 'हटाने' के लिए सिफारिश करता है ।

मलेशिया में, किसी न्यायाधीश के आचरण की किसी राज्य की संसदीय सभा में चर्चा नहीं की जा सकती । यह आत्यंतिक है । इसकी संसद के किसी सदन में चर्चा नहीं की जा सकती जब तक कि किसी सदन के कम से कम एक चौथाई सदस्यों द्वारा अधिष्ठायी प्रस्ताव न लाया गया हो ।

फेडरल संविधान का अनुच्छेद 127 में इस प्रकार कहा गया है –

"किसी फेडरल न्यायालय, अपील न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के आचरण की संसद के किसी सदन में अधिष्ठायी प्रस्ताव के सिवाय चर्चा नहीं की जाएगी जिसकी सूचना ऐसे सदन के कुल सदस्यों की संख्या के एक चौथाई से अन्यून द्वारा दी गई हो और उसकी किसी राज्य की संसदीय सभा में चर्चा नहीं की जाएगी ।"

मलेशिया में यह कहा गया है कि न्यायाधीश गलत विनिश्चय करने के लिए जवाबदेह नहीं ठहराए जा सकते । न्यायाधीशों द्वारा सद्भावना से किए गए गलत विनिश्चयों के लिए कोई सिविल दायित्व या शास्तियां नहीं हैं । इस संबंध में कोर्ट आफ ज्युडीकेटर ऐक्ट की धारा 14(1) में इस प्रकार कहा गया है –

"कोई न्यायाधीश या अन्य व्यक्ति जो न्यायिकतः कार्य कर रहा हो, किए गए किसी कार्य के लिए या अपने न्यायिक कर्तव्य के निर्वहन में उसके द्वारा किए जाने वाले आदेश के लिए चाहे वह उसकी अधिकारिता की परिसीमाओं के भीतर हो या नहीं, किसी सिविल न्यायालय में वाद लाए जाने का दायी नहीं होगा और न ही उसके विरुद्ध खर्चों का कोई आदेश किया जाएगा बशर्ते कि उसे ऐसा आदेश करते समय यह सद्भाविक विश्वास हो कि उसे ऐसा करने या शिकायत किए गए कार्य के संबंध में आदेश करने की अधिकारिता है ।"

न्यायाधीशों को भयमुक्त रूप से विनिश्चय करने के लिए समर्थ बनाने हेतु यह संरक्षण आवश्यक है । यह संरक्षण केवल सिविल दायित्व के लिए है और न्यायाधीश इसके बावजूद देश की दांडिक विधि के अध्यधीन हैं । यह धारा किसी न्यायाधीश को अपने पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में न्यायालय से बाहर किए गए कार्य के लिए संरक्षण प्रदान नहीं करती । साइरस दास द्वारा संपादित और सेवानिवृत्त माननीय न्यायमूर्ति तान श्री दातक स्टीव शिम लिप कियोंग, चीफ जंज, सबाह एन्ड सरावक द्वारा क्लोजिंग एडरस जजेज एन्ड जुडीशियल एकाउंटेबिलिटी देखिए) ।

अध्याय-15

संयुक्त राज्य अमरीका में प्रक्रिया

फेडरल न्यायाधीश

(1939, 1980, 2002 के अधिनियम)

संयुक्त राज्य अमरीका - फेडरल न्यायालयों के न्यायाधीश

संयुक्त राज्य संविधान के अनुच्छेद III के अनुसार फेडरल न्यायाधीश "अपने पद अच्छे व्यवहार तक धारित करेंगे ।" फेडरल न्यायाधीश भी जैसाकि संयुक्त राज्यों के सिविल अधिकारियों के समान जवाबदेह हैं जैसा कि अनुच्छेद II में उपबंध है जिन्हें उनके पद से देशद्रोह, घूसखोरी तथा गंभीर अपराधों तथा उप-अपराधों की दोषसिद्धि के लिए दोषारोपण पर पद से हटाया जा सकता है । संविधान किसी फेडरल न्यायाधीश को उसके पद से हटाने के लिए केवल एक रीति अर्थात महाभियोग प्रक्रिया विनिर्दिष्ट करता है । यह हो सकता है कि प्रत्येक प्रकार के आचरण में महाभियोग आवश्यक न हो । सामन्त प्रभाव साथी न्यायाधीशों के आचरण पर हितकारी प्रभाव रखता था ।

1939 के कानून से पूर्व बहुत अधिक विधिक मामले नहीं थे किन्तु न्यायमूर्ति चेज का मामला जो महाभियोग की कार्यवाहियों के लिए सीनेट तक पहुंचा था, विफल हुआ था, जिसका बाद में विस्तार से उल्लेख किया जाएगा ।

1939 का अधिनियम:

ऐसे तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ (सर्किट) को स्थापित करने के लिए 1937 में एक विधेयक पेश किया गया था जो "कदाचार के आरोपों पर जिला न्यायाधीशों का विचारण करें जिसमें महाभियोग का आरोप सम्मिलित नहीं है या न्यायोचित नहीं माना गया है ।" हाउस आफ रिप्रिजेन्टेटिव्स में बोलते हुए अरकानसास से श्री किचन्स ने यह बहस की कि फेडरल न्यायाधीश की नियुक्ति करने वाला कोई व्यक्ति अच्छे व्यवहार तक अपना पद धारित करने के लिए सहमति प्रदान करता है किन्तु यदि वह ऐसा व्यवहार करता है जो 'अच्छा' नहीं माना जाता तो यह संविदा के भंग के बराबर होगा और उसे महाभियोग की प्रक्रिया के बिना हटाया जा सकता है ।

उन्होंने आगे यह बहस की:

"यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'अच्छे व्यवहार' .... के प्रश्न में 'देशद्रोह, घूसखोरी और अन्य गंभीर अपराध और उप-अपराध' शब्दों को सम्मिलित करना आशयित नहीं था । ये शब्द सम्मिलित नहीं किए गए हैं अपितु ये महाभियोग के कारणों से पृथक हैं ..... । 'अच्छे व्यवहार तक' पद महाभियोग न्यायोचित ठहराने वाले आरोपों की परिधि के अन्तर्गत नहीं आता । यह 'व्यवहार' खंड महाभियोग अनुच्छेद में नहीं हैं । इस खंड को सम्मिलित करने वालों ने इसे अनुच्छेद III से पृथक रखा और इसे अनुच्छेद II में महाभियोग के आधार के रूप में सम्मिलित किया । ऐसा नहीं किया जा सकता .... । ऐसे किसी मामले में आरोप जैसाकि ऊपर कहा गया है, देशद्रोह या घूसखोरी या गंभीर अपराध और उप-अपराधों के बराबर होंगे । यह भी स्पष्ट है कि कदाचार के लिए संविदा के भंग के आरोप और किसी महाभियोग कार्यवाही को उचित ठहराने वाले आरोप के बीच स्पष्ट सीमा रेखा है ।"

श्री किचन्स द्वारा बेहतर दलील दिए जाने पर भी उन्हें ऐसी विधि पेश करने के लिए कांग्रेस से पर्याप्त समर्थन नहीं मिल सका । महाभियोग ही फेडरल न्यायपीठ में बैठने वाले किसी न्यायाधीश को हटाने के लिए एकमात्र रीति है । इस बात पर भी बहस हुई कि क्या "अन्य गंभीर अपराधों और अन्य उप-अपराधों" के लिए दोषसिद्धि की आवश्यकता है । इसके अतिरिक्त उस अपराध की प्रकृति भी जिसके संबंध में न्यायाधीश को दोषसिद्ध किया गया है, पूर्ण रूप से उसी प्रकार महत्वपूर्ण हो सकती है मानो किसी न्यायाधीश को यातायात अतिक्रमण जैसे मामूली अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और यह ऐसा अपराध है जिसे दुर्भाग्यवश महाभियोग की अपेक्षा के लिए पर्याप्ततः बेहतर आधार समझा गया है । ऐसी परिस्थितियां भी हैं जहां कोई न्यायाधीश ऐसे आचरण में लिप्त हो जो उसकी प्रास्थिति के अन्तर्गत नहीं आता है किन्तु उसके पश्चात् भी कार्रवाई दांडिक नहीं हो सकती है । कांग्रेस में महाभियोग कार्यवाहियों के इतिहास को दृष्टिगत करने पर यह उपदर्शित होता है कि 15 मामलों में से जो सीनेट में विचारण प्रक्रम पर पहुंचे, 12 मामलों में फेडरल न्यायाधीश अन्तर्वलित थे । इनमें एक 1805 में जस्टिस चेज वाला मामला सम्मिलित था जो इस कारण अभियुक्त थे क्योंकि उनका आचरण निंदनीय था जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यह मामला महाभियोग के लिए पर्याप्त नहीं था । इस प्रकार ऐतिहासिक रूप से कुछ मामलों में संयुक्त

राज्य कांग्रेस ने अच्छे व्यवहार और गंभीर अपराध और उप-अपराध को संयुक्त रूप में लिए जाने की सार्वजनिक अपेक्षा पर विचार नहीं किया । नैसर्गिक रूप से यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि ऐसे व्यवहार पर किस प्रकार विचार किया जाए जो महाभियोग के लिए पर्याप्त नहीं था किन्तु जो अपराध नहीं था या महाभियोग संबंधी अपराध नहीं था । यह अवेक्षा की गई थी कि तथ्यतः महाभियोग न्यायपालिका के मुकाबले कार्यपालिका पर आरंभिक नियंत्रण की कार्यवाही के रूप में आशयित था । "यदि अच्छा व्यवहार गंभीर अपराध और उप-अपराध की अपेक्षा को पूरा नहीं करता तो 'अच्छा व्यवहार नहीं' का सांविधानिक प्रवर्ग ऐसे न्यायाधीशों को लागू होना चाहिए जो महाभियोग के अन्तर्गत नहीं आते । बोझिल महाभियोग प्रक्रिया गौण अपराधों के मामलों पर प्रभावी नहीं होगी ।

अंततः न्यायाधीशों की न्यायिक परिषदों ने 7 अगस्त, 1939 को अधिनियम, 53 स्टेट 1223 द्वारा अधिनियम 1953 पेश किया (शीर्षक 28 यू. एस. सी. 332) जिसका शीर्षक "एन एक्ट टू प्रोवाइड फार एडमिनिस्ट्रेशन आफ यू. एस. कोर्ट्स एंड फार अदर परपजिज था" अधिनियम का मुख्य प्रयोजन बजट संबंधी मामलों में न्यायिक विभाग को पूर्वतर अवलंबन से मुक्त करना था और फेडरल न्यायालयों को अपने सुधार के लिए प्रशासनिक मशीनरी प्रदान करना था जिसके द्वारा ऐसे न्यायालय स्वयं अपने काम की संवीक्षा करने में समर्थ हों और अपने न्याय प्रशासन में दक्षता और तत्परता से कार्य करें । इस प्रयोजन के लिए अधिनियम द्वारा संयुक्त राज्य न्यायालयों के प्रशासनिक कार्यालय स्थापित किए गए । अधिनियम द्वारा प्रत्येक न्यायिक सर्किट में दो न्यायिक निकाय भी स्थापित किए गए; न्यायिक परिषद् में सभी सक्रिय सर्किट न्यायाधीश सम्मिलित किए गए और न्यायिक कांफ्रेन्स में संयुक्त राज्य उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और सर्किट न्यायाधीश और विधिज्ञ वर्ग के भाग लेने वाले सदस्यों के साथ जिला न्यायाधीश सम्मिलित किए गए । कौंसिल के कार्य जिला प्रशानिक कार्यालयों की रिपोर्ट पर विचार करना और ऐसी कार्रवाई करना था जिसे वह आवश्यक समझे । न्यायिक कांफ्रेस का प्रयोजन प्रतिवर्ष न्यायालयों के क्रियाकलापों पर विचार करना और प्रशासन में सुधार की रीतियां और तरीकों के संबंध में परामर्श देना था ।

जब 1939 का अधिनियम पुरःस्थापित किया गया था तब बहस के दौरान कोलंबिया जिले के अपील न्यायालय के न्यायमूर्ति ग्रोनर ने जो सर्किट न्यायाधीशों की समिति के चेयरमैन थे, यह उपदर्शित किया कि 1939 के कानून से पूर्व सर्किट न्यायाधीशों को किसी जिला न्यायाधीश से

उसके कार्य में गति लाने और उसे चेतावनी देने या अन्य कोई कार्रवाई करने के लिए अपेक्षा करने का प्राधिकार नहीं था तथापि प्रस्तावित अधिनियम के अधीन प्रशासनिक कार्यालय ऐसी किसी चीज के बारे में न्यायिक परिषद् को ध्यान दिला सकता था जो न्यायिक प्रशासन में गलत थी । अधिनियम 1939 के अधीन न्यायिक परिषद् को जिला न्यायालयों के कार्य का सतत निरीक्षण करने का प्राधिकार दिया गया था । उस विधेयक द्वारा जो 1939 के अधिनियम से संबंधित था, सूचना एकत्र करना और ऐसी विधिक रीति उपबंधित करना अनुज्ञात किया गया था जिसके द्वारा यदि आवश्यक हो, न्यायालय स्वयं अपने कार्य की संवीक्षा कर सकते थे ।

इस प्रकार अधिनियम द्वारा ऐसी सर्किट न्यायिक परिषदें स्थापित की गई जिनके द्वारा अपील न्यायालय के न्यायाधीश संयुक्त राज्य न्यायालयों के नए स्थापित कार्यालयों को रिपोर्ट देने के मामले का पुनर्विलोकन कर सकते थे और न्यायाधीशों को ऐसे अनुदेश दे सकते थे जो न्यायालयों के कार्यों में तेजी लाने के लिए आवश्यक थे । इसके द्वारा वार्षिक सर्किट कान्फ्रेंसों की भी आज्ञा दी गई जिसके द्वारा सर्किट और जिला न्यायाधीश न्यायिक प्रशासन पर चर्चा करने के लिए बार के सदस्यों से मिल सकते थे । अधिनियम की धारा 306 में इस प्रकार उपबंध किया गया है :—

> "धारा 306. जिला न्यायालयों का कार्य प्रभावी रूप से और शीघ्रतापूर्वक पूरा किया जाएगा और प्रत्येक सर्किट के वरिष्ठ सर्किट न्यायाधीश का यह कर्तव्य होगा कि वह ऐसे समय और स्थान पर बुलाए जैसा कि वह अभिहित करे । किन्तु ऐसा कम से कम वर्ष में दो बार किया जाएगा और ऐसे सर्किट के सर्किट न्यायाधीशों की संयुक्त कौंसिल का जो इस प्रयोजन के लिए एतद्द्वारा कौंसिल अभिहित करे, सीनियर सर्किट न्यायाधीश पीठासीन अधिकारी होगा । वही न्यायाधीश हर चौथे माह निदेशक की रिपोर्टें जो धारा 304 के खंड (3) के उपबंधों के आधार पर फाइल किया जाना आवश्यक हो, कौंसिल के समक्ष प्रस्तुत करेगा और कौंसिल द्वारा उस पर ऐसी कार्रवाई की जाएगी जैसी कि आवश्यक हो । जिला न्यायाधीशों का यह कर्तव्य होगा कि वे अपने अपने न्यायालयों के प्रशासनिक कार्य के बारे में कौंसिल के निदेशों को तत्परता के साथ लागू करें ।

धारा 307 में यह कहा गया है कि कान्फ्रेंस सर्किट के भीतर न्यायिक प्रशासन में सुधार करने की रीतियों और उपायों के बारे में परामर्श दे सकती है ।

1939 के अधिनियम (28 यू. एस. सी. 332) की धारा 332 (जैसी कि यह चन्दरलर्स वाले मामले में 1970 में उद्धृत की गई है) इस प्रकार है :–

"धारा 332. न्यायिक परिषदें प्रत्येक सर्किट का मुख्य न्यायाधीश प्रत्येक वर्ष कम से कम दो बार नियमित सक्रिय सेवा में सर्किट के सर्किट न्यायाधीशों की कौंसिल का ऐसे स्थान पर जैसा कि वह अभिहित करे, आह्वान करेगा जिसका वह स्वयं अध्यक्ष होगा । प्रत्येक सर्किट न्यायाधीश जब तक कि उसे मुख्य न्यायाधीश द्वारा छूट न दी जाए, कौंसिल के प्रत्येक सत्र में उपस्थित रहेगा । कौंसिल को जुडीशियल कौंसिल आफ सर्किट कहा जाएगा । मुख्य न्यायाधीश कौंसिल के समक्ष संयुक्त राज्य न्यायालयों के प्रशासनिक कार्यालय के निदेशक की चौमाही रिपोर्टें प्रस्तुत करेगा । कौंसिल उन पर ऐसी कार्रवाई करेगी जैसी कि आवश्यक हो । न्यायिक परिषद् अपने सर्किट के भीतर न्यायालयों के प्रभावी और सुचारु प्रशासनिक क्रियाकलापों के लिए सभी आवश्यक आदेश करेगी । जिला न्यायाधीश तत्परता के साथ न्यायिक परिषद् के सभी आदेशों को प्रभावी करेंगे ।

यह स्पष्ट है कि सर्किटों की न्यायिक परिषदें स्व-सुधार के लिए 7 अगस्त, 1939 के अधिनियम (28 यू. एस. सी. 332) द्वारा स्थापित की गई थीं जिनके द्वारा ये न्यायालय स्वयं अपने कार्य की संवीक्षा करने और अपने न्यायिक प्रशासन में सक्षमता और तत्परता विकसित करने में समर्थ हों । विधेयक यह सुनिश्चित करने के लिए आशयित था कि 'न्यायालय अपने प्रशासन को ठीक रखें ।'

अधिनियम में ऐसे किसी गौण उपाय का अभिव्यक्ततः निर्देश नहीं किया गया कि न्यायिक परिषद् न्यायाधीशों के विरुद्ध क्या कार्रवाई करेगी । किन्तु न्यायालयों को दी गई साधारण शक्तियों में विभिन्न छोटे-छोटे उपाय करना विवक्षित है । वस्तुतः ऐसा चन्दलर वाले मामले में हुआ है ।

(1970) 1939 के अधिनियम के अधीन चन्दलर वाला मामला : असूचीबद्ध मामले :

(1970) 398 यू. एस. 74:

चन्दलर बनाम जुडीशियल कौंसिल वाले मामले में 1939 के अधिनियम के अधीन इस बाबत प्रश्न उद्भूत हुआ था कि क्या कौंसिल द्वारा अधिरोपित कोई गौण उपाय अर्थात् न्यायाधीश के समक्ष नए मामले सूचीबद्ध न करना और उसे "लंबित तथा भावी मामलों दोनों से वंचित करना"

सांविधानिक था । मुख्य न्यायमूर्ति बर्जर ने बहुमत की ओर से निर्णय देते हुए इस प्रश्न को विनिश्चित नहीं किया कि क्या 1939 का कानून जहां तक यह साधारणतया और विवक्षित रूप से गौण उपायों को अनुज्ञात करता है, यथा नए मामले आबंटित न करना, सांविधानिक था या नहीं । उन्होंने केवल यह कहते हुए हस्तक्षेप करने से इनकार किया कि यह विवाद्यकों को विनिश्चित करने के लिए यह एक ठीक मामला नहीं था ।

तथापि न्यायमूर्ति हारलन ने 1939 के कानून की पुष्टि करते हुए विस्तृत कारण देते हुए एक विस्तृत निर्णय लेखबद्ध किया जिसके अधीन न्यायिक परिषद् गौण उपाय अधिरोपित कर सकती थी । उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि 1939 के अधिनियम के अधीन प्रक्रिया अन्तर-न्यायिक अधीक्षण के लिए उपबंधित की गई है और पद से हटाने के सिवाय गौण उपाय संविधान द्वारा प्रतिषिद्ध नहीं हैं । उन्होंने यह अभिनिर्धारित किया कि कानून न्यायपालिका को स्वयं अपने क्रियाकलापों को ठीक करने के लिए समर्थ बनाता है और नए मामलों को सूचीबद्ध न करना 'हटाने' के बराबर नहीं है (न्यायमूर्ति डगलस और ब्लैक सहमत नहीं थे)

न्यायमूर्ति हारलन ने 1939 के अधिनियम के अधीन 7 अगस्त, 1939 से न्यायिक परिषदों के इतिहास का उल्लेख करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया कि न्यायिक परिषद् "न्यायिक" अधिकरण के रूप में कार्य करती है । उन्होंने कोलंबिया जिले के अपील न्यायालय (कोर्ट आफ अपील) के मुख्य न्यायमूर्ति गार्नर के मत को विस्तारपूर्वक उद्धृत किया जो सर्किट कमेटी के चेयरमैन थे और जिन्होंने उस विधेयक के प्रारूपण में भाग लिया था जो बाद में 1939 का अधिनियम बना । उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि न्यायिक परिषद् के संरचनाकर्ता मुख्य न्यायमूर्ति गार्नर ने कौंसिलों को दिए गए प्राधिकार को ध्यान में रखा जिसका न्यायाधीशों के स्वयं अपने कार्य की संवीक्षा करने की प्रक्रिया से निकट का संबंध था । न्यायमूर्ति गार्नर ने यह स्पष्ट किया कि विद्यमान विधि के अधीन (अर्थात् 1939 से पूर्व) सर्किट न्यायाधीशों को "किसी जिला न्यायाधीश से कार्य में गति लाने या उसे यह चेतावनी देने की कि वह अपने संपूर्ण और ऋजु भार को नहीं उठा रहा है क्योंकि उससे यह प्रत्याशित नहीं है कि वह ऐसे अन्य किसी मामले के संबंध में भार उठाए या कार्रवाई करे जोकि आलोचना का विषय नहीं है ..... जिसके लिए वह जिम्मेदार हो सकता है, अपेक्षा करने का प्राधिकार नहीं था ।" किसी न्यायिक परिषद् की कार्रवाई के प्रकार के बारे में जो

1939 के अधिनियम के अधीन करने के लिए प्रत्याशित हो सकती है, न्यायमूर्ति गार्नर ने यह कहा कि जहां किसी जिले में बकाया है वहां न्यायिक परिषद् यह सुनिश्चित करेगी कि क्या ऐसा विशिष्ट न्यायाधीश सौंपे गए कार्य को करने में पिछड़ा हुआ है या उसे क्या सहायता दी जाए जिससे कि कार्य अद्यतन किया जा सके ।" यदि यह पाया जाता है कि विशिष्ट न्यायाधीश "4 या 5 मास से बीमार है और किसी न्यायालय में बैठने में असमर्थ है या किसी भी कारण से कोई कार्य करने में असमर्थ है ... वहां उस स्थिति को ठीक करने के लिए तुरन्त कार्रवाई की जा सकती है ।" कौंसिल की चर्चा (विनिश्चय) 'अंतिम' होगा । यह प्रतीत होता है कि न्यायमूर्ति पारकर ने यह मत व्यक्त किया कि यदि कोई न्यायाधीश दो वर्ष तक निर्णय नहीं देता है तब कौंसिल उसके बारे में 1939 के अधिनियम के अधीन कार्रवाई कर सकती है ।

न्यायमूर्ति हारलन के अनुसार संक्षिप्ततः 1939 का अधिनियम विद्यमान विधि की कमी को पूरा करने के लिए प्रस्तावित किया गया था जिससे कि हटाने की सिफारिश किए बिना सुधारात्मक कार्रवाई की जा सके । उन्होंने इस प्रकार मत व्यक्त किया :

> "संसदीय इतिहास इस निष्कर्ष का समर्थन करता है कि न्यायिक परिषद् कम से कम जिला न्यायाधीशों को उनके पदीय कर्तव्यों के प्रयोग को विनियमित करने के लिए आदेश जारी करने में अनुच्छेद III के अधीन इस न्यायालय की अपीली अधिकारिता के प्रयोजनों के लिए न्यायिक अधिकरण के रूप में कार्य कर सकती है ..... । निदेशक के अध्ययनों से पता लगाई गई कोई कठिनाई "स्वयं न्यायालयों द्वारा ठीक" की जानी चाहिए ।"

न्यायमूर्ति हारलन द्वारा उपदर्शित हाउस (आंतरिक) रिपोर्ट से यह प्रकट होता है कि अनेक वक्ताओं ने यह कहा कि "स्वयं न्यायालयों द्वारा सुधारात्मक शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए ।" रिपोर्ट में अमरीकन ज्युडीकेटर सोसायटी द्वारा विधेयक के इस पृष्ठांकन को उद्धृत किया गया कि "ऐसी न्यायिक स्वतंत्रता को सुदृढ़ करने के लिए कोई रीति नहीं है जो न्यायिक पर्यवेक्षण के अधीन न्यायाधीशों को अपने कार्य को पूरा करने के लिए समर्थ बनाने वाली रीति के समान हो ।" यह एक न्यायिक शक्ति है "जो किसी न्यायिक निकाय को ही सौंपी जा सकती है ।"

न्यायमूर्ति हारलन ने यह मत व्यक्त किया – चूंकि संसदीय इतिहास यह प्रकट करता है कि कांग्रेस इस बात के लिए आशयित थी कि कौंसिलें जिला न्यायाधीशों का पर्यवेक्षण करने में न्यायिक

निकायों के रूप में कार्य करें इसलिए यह विनिश्चित करने की आवश्यकता नहीं है कि क्या किसी गैर-न्यायिक निकाय में इस प्राधिकार के रखे जाने से शक्तियों के सांविधानिक पृथक्करण के सिद्धांत का अतिक्रमण होगा जैसा कि मुख्य न्यायमूर्ति गार्नर द्वारा विश्वास किया जाना प्रतीत होता है । तर्क और साम्यानुमान से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह दायित्व ऐसी प्रकृति का है कि इसे अनुच्छेद III के अन्तर्गत रखा जा सकता है जो न्यायाधीशों के न्यायिक कृत्य के रूप में प्रयुक्त किए जाने के लिए है ।

यह स्पष्ट है कि न्यायमूर्ति की यह निश्चित राय थी कि किसी गैर-न्यायिक निकाय को ऐसा पर्यवेक्षण सौंपना शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत के प्रतिकूल होगा । तथ्यतः उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि 1939 के अधिनियम के अधीन सृजित निदेशक का प्रशासनिक कार्यालय बकाया इत्यादि के आंकड़े इकट्ठा करेगा और उसे जिला न्यायाधीशों कोई कोई निदेश जारी करने की शक्ति नहीं होगी । यह शक्ति केवल न्यायिक परिषद्ों में ही निहित है ।

उन्होंने इस प्रकार मत व्यक्त किया:

"इन कारणों के आधार पर मेरा यह निष्कर्ष है कि न्यायाधीश चन्दलर द्वारा आक्षेपित कार्रवाईयां उन विषयों को सारभूत रूप से प्रभावित करती हैं जो धारा 1651 (1) के अधीन हमारे प्राधिकार के भीतर असाधारण रिट के लिए इसके प्रवर्तन के लिए इस न्यायालय की अपीली अधिकारिता के अन्तर्गत आते हैं और यदि उसके आरोप साबित होते हैं तो ऐसी किसी रिट के जारी करने के लिए समुचित अवसर प्रदान करते हैं ।

इस मामले की वर्तमान स्थिति को देखते हुए मेरी राय में न्यायाधीश चन्दलर उस अनुतोष को पाने के हकदार नहीं हैं जिसकी उन्होंने ईप्सा की है । तारीख 13 दिसंबर, 1965 का आदेश जिसने इस न्यायालय को इस उपाय के लिए प्रेरित किया, तारीख 4 फरवरी, 1966 के आदेश द्वारा अधिक्रमित कर दिया गया है जिसके बारे में मेरा यह समाधान हो गया है कि वह पूर्णतः कौंसिल के प्राधिकार के भीतर है । मैं उस पश्चात्वर्ती आदेश से सहमत होने में पूर्णतया असमर्थ हूं चाहे वह न्यायाधीश चन्दलर को न्यायिक पद से "हटाने" के रूप में हो या वह अन्यथा जिला न्यायालय में न्यायिक कार्य सहित गति लाने का प्रयास हो । इस स्थिति को देखते हुए मुझे उस सांविधानिक दलील की कोई गुंजाइश प्रतीत नहीं होती जो भ्राता ब्लैक

और डगलस द्वारा प्रबलतः दी गई है ।"

न्यायमूर्ति हारलन ने आगे इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

"न्यायाधीश चन्दलर से संबंधित बातों और भ्राता ब्लैक और डगलस से मेरी असहमति को देखते हुए स्वतंत्र फेडरल न्यायपालिका के महत्व के संबंध में प्रबल प्रकथन मौजूद हैं । मैं इस बात से पूर्णतया सहमत हूं कि यह सिद्धांत हमारी सरकार की स्कीम में पूर्ण महत्व रखता है । तथापि मैं न्यायिक परिषदों का विधायी सजृन करने में और जिला न्यायालयों को उनके क्रियाकलापों को चलाने में प्रभावकारिता और शीघ्रता सुनिश्चित करने में उनके कार्य के पर्यवेक्षण के लिए उनको सशक्त बनाने के सिद्धांत पर बल नहीं दे सकता । तारीख 4 फरवरी का आदेश जो इस कानूनी प्राधिकार की पुष्टि करता है, फेडरल न्याय प्रशासन का निरीक्षण करने के लिए कौंसिल की जिम्मेदारी का समर्थित प्रयोग है ।"

तथापि न्यायमूर्ति डगलस और ब्लैक विसम्मत थे तथापि बहुमत की राय को दृष्टिगत करते हुए अपील खारिज की गई थी ।

1980 का अधिनियम

1939 के अधिनियम के स्थान पर जुडीशियल कौंसिल्स रिफार्म एंड जुडीशियल कंडक्ट एंड डिसेबिलिटी ऐक्ट, 1980 [शीर्षक 28 यू. एस. सी. 372 (ग)] लाया गया था । यह अधिनियम किसी फेडरल न्यायाधीश की अभिकथित असमर्थता या अवचार की प्रस्थापना के लिए सरल और स्पष्ट प्रक्रिया उपबंधित करने के लिए आशयित था । अधिनियम स्व-निर्धारण के सिद्धांत पर आधारित है । कांग्रेस ने "ऋजु और उचित प्रक्रिया" को विकसित करना चाहा जिसके द्वारा न्यायिक शाखा स्वयं अपने कार्य को ठीक प्रकार से रख सके [(एस. रैप. संख्या 362, 96वीं कांग्रेस, (प्रथम सेशन 2, 11 (1979)] सीनेट रिपोर्ट में यह कहा गया कि अधिनियम निम्न के लिए आशयित था –

"पद पर साशय अवचार, आदतन हस्तक्षेप और अन्य आचार जो ऐसे न्याय-प्रशासन के प्रतिकूल हों जो न्यायिक पद को कलंकित करते हों ।"

1980 के अधिनियम में धारा 28 यू. एस. सी. 372 (ग) (6) (ख) अन्तर्विष्ट है जिसमें यह कहा गया है कि न्यायिक परिषद् :

"सर्किट के भीतर न्यायालयों के क्रियाकलापों का प्रभावकारी और शीघ्रकारी प्रशासन सुनिश्चित करने के लिए कार्रवाई कर सकेगी जो उचित हो ।"

1980 का अधिनियम संयुक्त राज्य अमरीका के न्यायाधीशों को लागू नहीं होता । यह केवल फेडरल प्रणाली में जिला न्यायालयों के न्यायाधीशों और अपीली (सर्किट) न्यायालय के न्यायाधीशों या दिवालिया न्यायालयों के न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट को लागू होता है ।

सर्किट न्यायालय की न्यायिक परिषद् में (1) सर्किट के लिए अपील न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश, (2) सक्रिय सेवा में अपील न्यायालय के सात न्यायाधीश तक (जिन्हें ऐसे सभी न्यायाधीशों के बहुमत द्वारा ज्येष्ठता के आधार पर चुना जाएगा) और (3) सक्रिय सेवा में सर्किट के जिला न्यायाधीशों की समान संख्या (जिन्हें ज्येष्ठता द्वारा चुना जाएगा) सम्मिलित होगी ।

धारा 372 (ग) (1) "किसी व्यक्ति को जिसे फेडरल न्यायाधीश कहा गया है" और जो "न्यायालयों के क्रियाकलापों के प्रभावकारी और शीघ्रकारी प्रशासन के प्रतिकूल आचरण में लिप्त है या जिसके बारे में यह अभिकथित किया गया है कि ऐसा न्यायाधीश मानसिक या शारीरिक अशक्तता के कारण अपने सभी पदीय कर्तव्यों का निर्वहन करने में असमर्थ है, सर्किट के अपील न्यायालय जिसमें न्यायाधीश बैठता है, के लिपिक के पद द्वारा लिखित में शिकायत करने के लिए प्राधिकृत करती है ।

धारा 372 (ग) (3) (क) के अधीन कोई शिकायत सर्किट के मुख्य न्यायाधीश द्वारा खारिज की जा सकती है यदि वह तुच्छ है या वह "प्रत्यक्षतया विनिश्चय के गुण-दोष से या प्रक्रिया संबंधी नियमों से संबंधित है । धारा 372 (ग) (3) (ख) के अधीन मुख्य न्यायाधीश कार्यवाही को बन्द कर सकता है यदि वह यह पाता है कि सुधारात्मक कार्रवाई की गई है, या इस दौरान की घटनाओं से शिकायत विफल हो गई है । अन्यथा धारा 372 (ग) (4) (क) मुख्य न्यायाधीश को ऐसी विशेष समिति बुलाने के लिए निर्दिष्ट करती है जिसमें स्वयं मुख्य न्यायाधीश और सर्किट के समान सदस्य और जिला न्यायाधीश "शिकायत में उल्लिखित तथ्यों और अभिकथनों की जांच करने के लिए सम्मिलित हों ।"

धारा 372 (ग) (5) विशेष समिति को ऐसा व्यापक अन्वेषण करने के लिए सशक्त करती

और विशेष समिति अन्वेषण समाप्त होने के पश्चात् सर्किट की न्यायिक परिषद् के समक्ष "शीघ्र व्यापक लिखित रिपोर्ट फाइल करेगी" । धारा में यह कहा गया है कि रिपोर्ट में जांच का निष्कर्ष पेश किया जाएगा और विशेष जांच समितियां उचित और आवश्यक कार्रवाई के लिए सिफारिश करेंगी ।

विशेष समिति की रिपोर्ट प्राप्त होने पर न्यायिक समिति ऐसी अतिरिक्त जांच कर सकती है जिसे वह आवश्यक समझे । (धारा 372) (1) (6) (क) देखिए) धारा 372 (ग) (6) (ग) के अधीन यदि न्यायिक परिषद् यह अवधारित करती है कि किसी कार्रवाई की आवश्यकता नहीं है तो वह धारा 372 (1) (6) (ख) के अधीन परिवाद खारिज कर सकती है । अन्यथा वह सर्किट के भीतर शीघ्रकारी और प्रभावकारी प्रशासन सुनिश्चित करने के लिए ऐसी कार्रवाई कर सकती है जो वह उचित समझे ।

धारा 372 (ग) (ख) (iii) से (vii) के अधीन कौंसिल असमर्थता प्रमाणित कर सकती है अथवा निम्न कार्रवाई कर सकती है -

(i) न्यायाधीश से स्वेच्छया सेवानिवृत्ति लेने के लिए अनुरोध;

(ii) न्यायाधीश की परिनिन्दा या फटकार चाहे वह प्राइवेट रूप से हो या सार्वजनिक रूप से ;

(iii) यह आदेश कि न्यायाधीश को अन्य मामले न सौंपे जाएं किन्तु ऐसा केवल कुछ समय के लिए अस्थायी आधार पर किया जा सकता है; या

(iv) ऐसी किसी अन्य कार्रवाई का आदेश जैसा कि वह परिस्थितियों के अधीन उचित समझे ।'

'प्राइवेट रूप से' का अर्थ प्राइवेट संसूचना से है । शिकायतकर्ता का नाम और न्यायाधीश का नाम प्रकाशित नहीं किया जाएगा । किन्तु अवचार की प्रकृति और अधिरोपित उपाय की प्रकृति प्रकाशित की जा सकती है ।

'सार्वजनिक रूप से' शब्दों से ऐसी लोक घोषणा अभिप्रेत है जिसमें शिकायत की प्रकृति और अधिरोपित उपाय की प्रकृति सहित शिकायतकर्ता का नाम और न्यायाधीश का नाम निर्दिष्ट हो ।

विकल्पतः न्यायिक परिषद् धारा 373 (ग) (7) (क) के अधीन न्यायिक कांफ्रेस को अभिलेख के साथ शिकायत निर्दिष्ट कर सकती है अर्थात् जहां अभिकथन साबित हो जाएं वहां वह महाभियोग

द्वारा "हटाने" की अपेक्षा कर सकती है । न्यायिक कान्फ्रेंस ऐसे निर्देश की दशा में धारा 372(ग) (8) (क) के अधीन ऐसा अतिरिक्त अन्वेषण कर सकती है जैसी कि वह उचित समझे और उपचार के रूप में वही कार्रवाई कर सकती है जो न्यायिक परिषद् को उपलब्ध हैं ।

धारा 372 (ग) (6) (ख)(vii) (I) और 372 (ग) (8) (क) अभिव्यक्ततः न्यायिक परिषद् या कांफ्रेंस को "हटाने" का आदेश पारित करने से प्रतिषिद्ध करती है ।

धारा 372 (ग) (ख) (i) किसी न्यायिक समिति द्वारा यह अवधारित करने की दशा में कि अनुच्छेद III के अधीन आने वाला कोई न्यायाधीश "ऐसा आचरण करने में लिप्त है" जो महाभियोग के लिए एक या अधिक आधार गठित करता है, कौंसिल से यह सत्यापित करने की अपेक्षा करती है कि वह न्यायिक कांफ्रेंस का अवधारण करे ।

धारा 372 (ग) (8) (क) के अधीन यदि न्यायिक कांफ्रेंस न्यायिक परिषद् के अवधारण से सहमत है या स्वयं ऐसा अवधारण करती है तो वह अवधारण और अभिलेख हाउस आफ रिप्रजेन्टेटिव्स को भेजने का निदेश कर सकती है जो ऐसी कार्रवाई कर सकती है जैसी कि वह आवश्यक समझे ।

<u>नेशनल कमीशन आन जुडीशियल डिसिप्लीन एंड रिमूवल (1993)</u>

1990 में नेशनल कमीशन आन् जुडीशियल डिसिप्लीन एंड रिमूवल को 1980 के अधिनियम के कार्य की परीक्षा करने के लिए नियुक्त किया गया था । कमीशन ने अपना कार्य जनवरी, 1992 में आरंभ किया और विस्तृत परामर्श प्रक्रिया के पश्चात् एक विस्तृत रिपोर्ट (200 पृष्ठों की) पेश की । कमीशन ने 1980 के अधिनियम में परिवर्तन करने के लिए सिफारिशें कीं । इस आधार पर 1980 के अधिनियम के स्थान पर 2002 का अधिनियम लाया गया ।

द जुडीशियल इम्प्रूवमेन्ट्स एक्ट, 2002 (यू. एस. सी. 351 से 364)

2002 का यह अधिनियम नेशनल कमीशन आन् जुडीशियल डिसिप्लीन एंड रिमूवल (1993) की रिपोर्ट के परिणामस्वरूप अधिनियम 1980 के स्थान पर लाया गया । अधिनियम द्वारा न्यायिक परिषद् को निम्नलिखित प्राधिकार दिए गए –

"ऐसी कार्रवाई जो सर्किट के भीतर न्यायालयों की प्रशासनिक शाखाओं के प्रभावी और शीघ्रकारी प्रशासन को सुनिश्चित करे ।"

(2002 का अधिनियम भी अमरीकी उच्चतम न्यायालयों के न्यायाधीशों को लागू नहीं किया गया । यह केवल फेडरल प्रणाली में जिला न्यायाधीशों और अपीली सर्किट न्यायालयों के न्यायाधीशों को लागू किया गया) ।

धारा 354 (क) (1) (ग) में यह कहा गया है कि यदि न्यायिक परिषद् शिकायत खारिज नहीं करती है तो वह सर्किट के भीतर न्यायालयों की शाखाओं के प्रभावी और शीघ्रकारी प्रशासन को सुनिश्चित करने के लिए ऐसी कार्रवाई कर सकती है जो उचित हो । धारा 354 (क) (2) का शीर्षक "डिस्क्रीपशन आफ पासिबल एक्शन इफ कंप्लेन्ट इज नॉट डिसमिस्ड" दिया गया । इसमें निम्नलिखित उपबंध किया गया ;

(क) सामान्यतया – पैरा 9 (1) (ग) के अधीन जुडीशियल कौंसिल द्वारा कार्रवाई में निम्नलिखित सम्मिलित है –

(i) यह आदेश करना कि अस्थायी आधार पर कुछ समय के लिए उस न्यायाधीश को आगे मामले न सौंपे जाएं जिसके आचरण के बारे में शिकायत की गई है ।

(ii) प्राइवेट संसूचना प्रक्रिया द्वारा ऐसे न्यायाधीश की परिनिन्दा करना और फटकारना ; और

(iii) लोक घोषणा द्वारा ऐसे न्यायाधीश की परिनिन्दा करना या फटकारना ।"

(ख) अनुच्छेद III न्यायाधीशों के लिए : यदि ऐसे न्यायाधीश के आचरण के बारे में जिसे अच्छे व्यवहार के दौरान पद धारित करने के लिए नियुक्त किया गया है, शिकायत की गई है तो पैरा 1(ग) के अधीन न्यायिक परिषद् द्वारा निम्नलिखित कार्रवाई की जा सकती है –

i) धारा 372 (ख) के अधीन प्रक्रियाओं और मानकों के अनुसरण में न्यायाधीश की अशक्तता को प्रमाणित करना; और

ii) इस उपबंध के साथ कि इस शीर्षक की धारा 371 के अधीन सेवा अपेक्षाओं की अवधि लागू नहीं होगी, न्यायाधीश से स्वेच्छया सेवानिवृत्ति के लिए अनुरोध करना ।

(ग) मजिस्ट्रेट न्यायाधीशों के लिए ....."

जहां तक हटाने का संबंध है धारा 354(3) न्यायिक परिषद् को अनुच्छेद III न्यायाधीश को "हटाने" का आदेश करने के लिए अनुज्ञात नहीं करती किन्तु यह न्यायिक परिषद् को (जो उच्चतर संस्था है) धारा 354 (ख) (2) के अधीन अनुच्छेद III न्यायाधीश को हटाने के लिए निर्देश करने के लिए उपबंध करती है । यदि उसका यह मत है कि अच्छे व्यवहार के दौरान नियुक्त न्यायाधीश ऐसे आचरण में लिप्त है –

(क) जो संविधान के अनुच्छेद II के अधीन महाभियोग के लिए एक या अधिक आधार गठित करता है, या

(ख) जो न्यायहित में न्यायिक परिषद् द्वारा प्रस्ताव के लिए सुधार योग्य नहीं है ।

धारा 355 (ख) (1) उच्चतर निकाय द्वारा अर्थात् न्यायिक कांफ्रेंस द्वारा कार्रवाई के लिए उपबंध करती है "यदि महाभियोग आवश्यक है" जहां वह न्यायिक परिषद् के ऐसे आशय से सहमत है । तत्पश्चात् उसकी राय हाउस आफ रिप्रजेन्टेटिव्स को भेजी जाएगी और हाउस आफ रिप्रजेन्टेटिव्स ऐसी कार्रवाई करेगा जिसे वह आवश्यक समझे ।

धारा 355 (2) यह उपबंध करती है कि "महापराध दोषसिद्धि" के मामले में न्यायिक कांफ्रेंस बहुमत से यह पारित कर सकती है कि "हाउस आफ रिप्रजेन्टेटिव्स ऐसी कार्रवाई करे जो वह आवश्यक समझे ।"

2002 का अधिनियम विशेष समिति के न्यायाधीशों की प्रास्थिति में परिवर्तन, जहां न्यायाधीश प्रोन्नत होता है या मृत्यु हो जाती है या सेवा निवृत्त हो जाता है, के बारे में बताते हुए धारा 353 (ख) में विशेष उपबंध करती है । यह कहा गया है कि उपधारा (क) के अधीन विशेष समिति के लिए नियुक्त विशेष न्यायाधीश वरिष्ठ न्यायाधीश बनने के पश्चात् भी उस समिति में कार्य करने के लिए बना रह सकता है या यदि सर्किट का मुख्य न्यायाधीश धारा 45 की उपधारा (क) (3) या (ग) के अधीन मुख्य न्यायाधीश के रूप में अपनी अवधि पूरी कर लेता है । यदि किसी न्यायाधीश की जिसे समिति के लिए नियुक्त किया गया है, मृत्यु हो जाती है या धारा 371 (क) के अधीन से समिति में सेवा करते हुए पद से सेवानिवृत्त हो जाता है तो सर्किट का न्यायाधीश समिति के लिए, यथास्थिति, दूसरे सर्किट या जिला न्यायाधीश की नियुक्ति कर सकेगा ।"

वर्तमान में 2002 के अधिनियम के यही उपबंध प्रवृत्त हैं ।

अध्याय -16

संयुक्त राज्य फेडरल न्यायपालिका द्वारा विनिश्चित तीन महत्वपूर्ण विवाद्यक

अमरीकन फेडरल न्यायपालिका द्वारा तीन महत्वपूर्ण सांविधानिक विवाद्यक विनिश्चित किए गए हैं जो इस प्रकार हैं :-

(क) न्यायिक परिषद् द्वारा "गौण उपायों" के अधिरोपण के लिए संयुक्त राज्य फेडरल संविधान में संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं है । 1939 और 1980 के कानूनों के अनुसार आन्तरिक प्रक्रिया के भाग के रूप में न्यायिक शाखा द्वारा "गौण सुधारात्मक उपाय" किए जा सकते हैं । 1980 के अधिनियम के अधीन अधिकथित उक्त सिद्धांत समान रूप से 2002 के कानून को लागू होते हैं जो 1980 के कानून के स्थान पर लाया गया था ।

(ख) वह रीति जिसमें न्यायाधीश द्वारा मामला गुण-दोष के आधार पर विनिश्चित किया गया हो, महाभियोग कार्यवाही की विषय-वस्तु नहीं हो सकती । यह सिद्धांत 1805 में न्यायमूर्ति चेज के विरुद्ध महाभियोग कार्यवाहियों की विफलता से निकाला जा सकता है ।

(ग) जब एक बार सीनेट में महाभियोग सफल हो जाता है तो इसे संबंधित न्यायाधीश द्वारा संयुक्त राज्य उच्चतम न्यायालय के समक्ष आक्षेपित नहीं किया जा सकता । यह बात न्यायमूर्ति निक्सन के मामले में विनिश्चित की गई थी ।

अब हम क्रमानुसार इन तीनों पहलुओं पर विचार करेंगे ।

(क) <u>क्या न्यायिक परिषदों द्वारा फेडरल संविधान में संशोधन किए बिना "गौण उपाय" अधिरोपित किए जा सकते हैं ।</u> (अध्याय 20 भी देखिए)

अमरीकन फेडरल न्यायालयों ने अनेक निर्णयों में यह अभिनिर्धारित किया है कि 1980 का अधिनियम जिसके द्वारा न्यायिक परिषदें (क) "गौण उपायों" का अधिरोपण करने यथा सेवानिवृत्ति के लिए अनुरोध करने, मामलों की वापसी करने, लोक या प्राइवेट निन्दा करने इत्यादि या (ख) "अवचार" की जांच करने के लिए महाभियोग प्रस्तावित करने के लिए संयुक्त राज्यों की न्यायिक कान्फ्रेंस को सिफारिश करने के प्रयोजन के लिए गठित की गई हैं, संवैधानिक रूप से विधिमान्य हैं ।

उनका तर्क यह है कि यद्यपि गौण उपाय विनिर्दिष्ट रूप से फेडरल संविधान में विनिर्दिष्ट नहीं किए गए हैं तथापि इस प्रकार का स्पष्ट उपबंध आवश्यक नहीं है क्योंकि न्यायिक शाखा को आंतरिक सुधारात्मक प्रकृति के गौण उपाय अधिरोपित करने की साधारण या अन्तर्निहित शक्ति है । न्यायिक परिषद् इनमें से एक है । तथापि जहां न्यायिक परिषद् यह विचार करती है कि संबंधित मामले में महाभियोग द्वारा "हटाना" ही समुचित दंड है वहां वह "हटाने" का अंतिम आदेश पारित न करके उच्चतर निकाय अर्थात सीनेट में समावेदन द्वारा "हटाने" के प्रयोजन के लिए संयुक्त राज्यों की न्यायिक कांफ्रेंस को सिफारिश करेगी । न्यायिक परिषद् सीनेट को "हटाने" के लिए भी सिफारिश कर सकती है । यदि "कदाचार" साबित हो जाता है तो सीनेट द्वारा हटाने का आदेश पारित किया जा सकता है । चूंकि संविधान न्यायिक शाखा में अन्य किसी रीति द्वारा गौण उपायों के अधिरोपण को प्रतिषिद्ध नहीं करता इसलिए न्यायिक परिषद् द्वारा गौण उपायों के अधिरोपण के लिए 1980 के अधिनियम में विहित प्रक्रिया विधिमान्य है । जहां तक "हटाने" का संबंध है, महाभियोग के लिए सांविधानिक प्रक्रिया विद्यमान रहती है और सीनेट की शक्ति किसी साधारण विधि के द्वारा न्यायिक परिषद् या न्यायिक कांफ्रेस को अंतरित नहीं की जा सकती । जहां परिषद् या कांफ्रेंस को महाभियोग की रीति के सिवाय किसी फेडरल न्यायाधीश को हटाने के लिए सशक्त किया जाता है, केवल तभी सांविधानिक संशोधन आवश्यक होगा ।

यदि हम राज्य न्यायालयों के न्यायाधीशों के संबंध में अनुशासनिक प्रक्रिया पर विचार करें (जिस पर अगले अध्याय में विस्तार से विचार किया जाएगा) तो वर्तमान में यह उपदर्शित होगा कि किसी न्यायाधीश को "हटाने" के निदेश के लिए भी किसी राज्य न्यायिक कमीशन या राज्य उच्चतम न्यायालय को समर्थ बनाने के लिए विभिन्न राज्य संविधानों में संशोधन किए गए हैं और यह महाभियोग या समावेदन के अलावा "हटाने" की एक अतिरिक्त रीति है । विभिन्न राज्य संविधानों में अभी भी महाभियोग की संसदीय प्रक्रिया द्वारा तथा राज्य गवर्नर को राज्य सीनेट द्वारा समावेदन द्वारा राज्य न्यायाधीशों की "हटाने" के लिए प्रक्रिया विद्यमान रखी गई है । तथापि किसी न्यायाधीश को "हटाने" के लिए राज्य न्यायिक कमीशन या राज्य के उच्चतम न्यायालय को समर्थ बनाने वाली संविधान संशोधन करने की ऐसी प्रक्रिया असंवैधानिक होगी । इसी कारण से राज्य न्यायिक कमीशन या राज्य के उच्चतम न्यायालय

द्वारा "हटाने" के लिए प्रक्रिया राज्य संविधान में स्पष्टतया उपबंधित की गई है ।

तथापि हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि यद्यपि राज्य संविधान भी राज्य न्यायिक कमीशनों द्वारा किए जाने वाले गौण उपायों के लिए उपबंध करते हैं तथापि राज्य संविधानों में ऐसे किसी उपबंध की विद्यमानता का यह अर्थ नहीं हो सकता कि राज्य संविधानों में ऐसे उपबंध करने के कारण गौण उपायों का अधिरोपण संविधान के अधिकारातीत बन जाएगा । जैसा कि फेडरल अपील न्यायालयों द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि न्यायिक शाखा द्वारा गौण उपाय साधारण विधि द्वारा न्यायिक शाखा की साधारण या अन्तर्निहित शक्तियों के भीतर स्व-विनियमन के रूप में अधिरोपित किए जा सकते हैं और इसलिए सांविधानिक संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं है । तथ्यतः राज्य संविधान संशोधन भिन्न प्रयोजन के लिए हैं अर्थात् महाभियोग या समावेदन के अलावा हटाने की दूसरी रीति होना न कि गौण उपायों के अधिरोपण के कारण जो अन्यथा सांविधानिक मंजूरी के बिना शून्य हो जाएंगे ।

इन पहलुओं पर अत्यधिक महत्वपूर्ण होने के कारण अध्याय 20 में (अमरीकन फेडरल न्यायालय के निर्णयों सहित) विस्तार से विचार किया जाएगा । हम पूर्व में उल्लेख करने के कारण उन विधियों की जो न्यायिक परिषद् द्वारा गौण उपायों के अधिरोपण को अनुज्ञात करती हैं, विधिमान्यता की पुष्टि करते हुए अमरीकन फेडरल न्यायालयों के निर्णयों का निर्देश नहीं कर रहे हैं ।

(ख) महाभियोग का इस आधार पर आश्रय नहीं लिया जा सकता कि किसी न्यायाधीश द्वारा किसी विनिर्दिष्ट मामले में गुण-दोष के आधार पर दिया गया विनिश्चय त्रुटिपूर्ण है ।

न्यायमूर्ति सैमुअल चेज (1805)

संयुक्त राज्यों में अब यह सुस्थापित है कि महाभियोग कार्यवाहियां इस आधार पर आरंभ नहीं की जा सकतीं कि किसी न्यायाधीश द्वारा मामले के गुण दोष के आधार पर दिया गया विनिश्चय त्रुटिपूर्ण है । यह बात 1805 में न्यायमूर्ति चेज के संबंध में महाभियोग प्रक्रिया की विफलता से स्पष्ट है ।

न्यायमूर्ति सैमुअल चेज की नियुक्ति फेडरलिस्ट राष्ट्रपति जान एडम्स द्वारा संयुक्त राज्य उच्चतम न्यायालय के लिए की गई थी । उससे पूर्व वह मैरीलेण्ड जनरल कोर्ट का मुख्य

न्यायाधीश था । ऐसा प्रतीत होता है कि वह फेडरलिस्ट था और सशक्त केन्द्र सरकार में विश्वास रखता था । किन्तु उसके विनिश्चयों में व्यक्तियों के अधिकारों और सम्यक् प्रक्रिया द्वारा नागरिक के अधिकारों के संरक्षण की ओर झुकाव उपदर्शित होता था ।

थामस जेफरसन ने जिसे रिपब्लिकन्स द्वारा 1980 में शक्ति प्रदत्त की गई थी, न्यायमूर्ति सैमुअल चेज के विरुद्ध महाभियोग प्रस्ताव पेश किया था और संयुक्त राज्य सीनेट में विचारण मार्च, 1805 आरंभ हुआ था जो रिपब्लिकन्स के नियंत्रणाधीन थी । उस समय संयुक्त राज्यों के उपराष्ट्रपति एरन बर्र सीनेट के प्रधान थे । वह भी रिपब्लिकन थे । महाभियोग इस कारण विफल हुआ क्योंकि आरोप न्यायमूर्ति चेज द्वारा विनिश्चत मामलों के गुण दोष से संबंधित था । आरोपों की 8 मदें थीं और वे सभी उस रीति से संबंधित थीं जिस रीति में न्यायमूर्ति चेज ने देशद्रोह के एक मामले के विचारण के संबंध में अपनाई थी । मद I में यह आरोप अन्तर्विष्ट था कि न्यायमूर्ति चेज ने अपनी न्यायिक क्षमता में स्वयं ऐसी रीति में कार्य किया जो पूर्णतया मनमानी, दमनात्मक और अन्यायपूर्ण थी । आरोप तीन भागों में लगाए गए थे जिनमें यह कहा गया था कि उन्होंने विधि के एक प्रश्न पर अपनी राय प्रकट करने में गलती की थी; उन्होने असम्यक् रूप से अभियुक्त के काउंसेल को कतिपय कानूनों के उद्धरणों का निर्देश करने से रोक दिया था और उन्होने अभियुक्त को विधि के प्रश्न तथा तथ्यों पर न्यायालयों को संबोधित करने के उसके सांविधानिक विशेषाधिकार से विवर्जित किया था । आरोप की दूसरी मद कतिपय परिसाक्ष्य के विवर्जन, वर्जीनिया विधि का अनुसरण करने में विफलता, संपूर्ण न्यायिक कार्यवाहियों और न्यायाधीशों को संबोधित करने में अनियमितता से संबंधित थी । आरोपों पर मतदान हुआ था । आरोप 1, 16 से 18, आरोप 2, 10 से 24, आरोप 3, 4 और 8, 18(19) से 16 मतों से विफल हुआ और उसे अपेक्षित दो तिहाई समर्थन नहीं मिला, आरोप 5, 0 से 34, आरोप 6, 4 से 30 और आरोप 7, 10 से 24 मतों से विफल हुआ । ये सभी आरोप मामले में गुण-दोष से संबंधित थे । महाभियोग विफल हुआ । यदि न्यायमूर्ति चेज का महाभियोग सफल होता तो मुख्य न्यायमूर्ति जान मार्शल के महाभियोग की भी संभावना थी किन्तु महाभियोग की विफलता ने ऐसे किसी प्रस्ताव का अंत कर दिया ।

मामले के गुण-दोष के संबंध में महाभियोग न लाने का यह सिद्धांत 1980 के अधिनियम और बाद में 2002 के अधिनियम द्वारा प्रतिपादित हुआ ।

1980 के अधिनियम में जो यू. एस. 28 यू. एस. सी. धारा 372 (ग) (3) (क) में संहिताबद्ध हुआ, यह उपबंधित है कि मुख्य न्यायमूर्ति किसी शिकायत को खारिज कर सकेगा "यदि वह इसे प्रत्यक्षतया किसी विनिश्चय के गुण-दोष या प्रक्रिया-संबंधी नियम से संबंधित पाता है .....।" इसके पश्चात् डी. सी. सी. आई. आर. जज मिस्कन्डक्ट आर. (1) (ख) में कहा गया है "न्यायालयों के क्रियाकलापों के प्रभावकारी और शीघ्रकारी प्रशासन के प्रतिकूल आचरण में मामलों में गलत विनिश्चय करना यहां तक कि अत्यधिक गलत विनिश्चय करना सम्मिलित नहीं है..... ।"

जुडीशियल इम्प्रूवमेन्ट्स एक्ट, 2002 की धारा 352 (ख) (1) (क) (ii) में यह कहा गया है कि यदि शिकायत प्रत्यक्षतया विनिश्चय के गुण दोष या प्रक्रिया-संबंधी नियम से संबंधित है तो मुख्य न्यायमूर्ति परिवाद खारिज कर सकता है ।

उसके अतिरिक्त तारीख 1 जनवरी, 2005 को संयुक्त राज्य मुख्य न्यायमूर्ति विलियम रेहनक्वेस्ट ने फेडरल न्यायपालिका की वर्ष 2004 की वार्षिक रिपोर्ट जारी की । इस रिपोर्ट में सबसे बड़ा अध्याय "क्रिटीसिज्म आफ जजेज बेस्ड आन जुडीशियल एक्ट्स" के नाम से था । इस अध्याय में मुख्य न्यायमूर्ति ने यह उपदर्शित किया कि कांग्रेस का न्यायाधीशों को दोषारोपित करने और हटाने का प्राधिकार न्यायपीठ के विनिश्चयों तक विस्तारित नहीं होना चाहिए । उन्होंने यह उपदर्शित किया कि यह सिद्धांत 200 वर्षों पूर्व उस समय स्थापित हुआ था जब संयुक्त राज्य हाउस आफ रिप्रजेंटेटिव्स ने न्यायमूर्ति चेज पर महाभियोग चलाया था किन्तु सीनेट ने उसे पद से नहीं हटाया । उन्होंने यह उपदर्शित किया कि "सीनेट द्वारा उसे दोषसिद्ध करने से विफल रहना यह निर्णय प्रस्तुत करता है कि किसी न्यायाधीश को उसके न्यायिक कर्तव्यों के प्रयोग में आचरण के आधार पर हटाने के लिए महाभियोग को प्रयुक्त नहीं किया जाना चाहिए । न्यायमूर्ति चेज की दोषमुक्ति से बनी राजनीतिक नजीर उस तारीख में आज तक फेडरल न्यायाधीशों को हटाने के लिए महाभियोग के प्रयोग से विनियमित होती है : न्यायाधीशों के न्यायिक कार्य हटाने के आधार के रूप में प्रयुक्त नहीं किए जा सकते । अन्य कोई नियम लोकमत पर ध्यान दिए बिना ऋजुतापूर्वक विधि को लागू करने के प्रयास के बजाय न्यायिक स्वतंत्रता को समाप्त कर सकता है और न्यायाधीश को किसी ग्रुप में सम्मिलित

होने के लिए प्रेरित कर सकता है जो कांग्रेस को उन पर महाभियोग लाने और उन्हें दोषसिद्ध करने के लिए मत दिलाने में समर्थ हो सकता है ।

(ग) संयुक्त राज्य न्यायालय के समक्ष अपील महाभियोग द्वारा हटाने के विरुद्ध फाइल नहीं की जा सकती क्योंकि यह एक राजनैतिक प्रश्न है ।

संयुक्त राज्यों में सीनेट में महाभियोग द्वारा हटाने के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती । (निक्सन बनाम यू. एस. : (1993) 506 यू. एस. 224) । न्यायाधीश निक्सन को सीनेट द्वारा उसकी दोषसिद्धि का टिप्पण करने के पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा हटाया गया था और सीनेट ने भी उसे दोषसिद्ध किया था ।

भारत में हमारे उच्चतम न्यायालय ने न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी के मामले में यह विनिश्चय दिया कि न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 के अधीन नियुक्त न्यायाधीशों की समिति द्वारा प्रक्रिया न्यायिक न होकर आरंभिक प्रक्रिया है क्योंकि समिति केवल सिफारिश कर सकती है और समावेदन प्रक्रिया पूर्णतया राजनैतिक है और राष्ट्रपति द्वारा हटाने का अंतिम आदेश पारित करने के पश्चात् उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है । यह कहा गया था कि अमरीका में यह पूर्णतया एक राजनैतिक प्रश्न है और इसलिए वाद योग्य नहीं है । भारत में यह कानूनी न्यायिक प्रक्रिया है जो बाद में राजनैतिक प्रक्रिया बन जाती है और इसलिए हटाने का आदेश पारित करना वाद योग्य है ।

फेडरल जिला न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश निक्सन को फेडरल अपराध में दोषसिद्ध करते हुए कारावास का दंड दिया गया था । हाउस आफ रिप्रिजेन्टेटिव्स ने महाभियोग की प्रक्रिया का अनुसरण किया और उसें सीनेट में पेश किया । सीनेटरों जिन्होने निक्सन को दोषसिद्ध करने के लिए मत दिया, समिति की रिपोर्ट के पश्चात् पीठासीन अधिकारी ने न्यायाधीश निक्सन को हटाने का निर्णय दिया । न्यायाधीश ने इस आधार पर घोषणात्मक निर्णय के लिए और अपने वेतन के रोकने तथा विशेषाधिकारों के संबंध में जिला न्यायालय में वाद फाइल किया कि सीनेट रूल 11 जो सीनेट समिति को जांच के प्रत्यायोजन के लिए अनुज्ञात करता है, संविधान के अनुच्छेद I और III का अतिक्रमण करता है क्योंकि संविधान संपूर्ण सीनेट से महाभियोग पर विचार करने की अपेक्षा करता है ।

जिला न्यायालय ने जिसमें वाद फाइल किया गया था, यह निष्कर्ष निकाला कि विवाद वादयोग्य नहीं था क्योंकि इसमें राजनैतिक प्रश्न अन्तर्वलित था जो न्यायालयों द्वारा निर्णीत नहीं किया जा सकता । वाद की खारिजी की कोलंबिया सर्किट जिले के अपील न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई थी । संयुक्त राज्यों के उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए अपील खारिज कर दी कि न्यायाधीश निक्सन का यह दावा कि सीनेट रूल 11 संविधान के उपबंधों का अतिक्रमण करता है, वादयोग्य नहीं था । संविधान के खंड में प्रयुक्त "ट्राई" (विचारण) शब्द का उल्लेख होते हुए भी "सीनेट को सभी महाभियोगों में विचारण करने की पूर्ण शक्ति है ।" अतः उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह एक राजनैतिक मुद्दा था । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि मुद्दा राजनैतिक था, बेकर बनाम कार (1962) 369 यू. एस. 186 और पावेल बनाम मैक कोरमैक (1969) 395 यू. एस. 486 वाले दो पूर्वतर निर्णयों का निर्देश किया । (भारत के उच्चतम न्यायालय ने ये निर्णय न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी के मामलों में निर्दिष्ट किए हैं)।

तथापि जैसा कि अध्याय 6 में उल्लेख किया गया है, भारत के उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि राष्ट्रपति द्वारा पारित किया गया हटाने का अंतिम आदेश वाद योग्य है ।

संयुक्त राज्य फेडरल प्रणाली में यही तीन महत्वपूर्ण मुद्दे उद्भूत हुए हैं और ये मुद्दे वर्तमान विवेचन में सुसंगत हैं ।

अध्याय - 17

संयुक्त राज्य न्यायालयों, कैलीफोर्निया, इदाहो, कॉनक्टीकट, टैक्सास और विस्कोंसिन

अब हम संयुक्त राज्यों के कुछ राज्य न्यायालयों के न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया और उनके विरुद्ध अन्य गौण उपायों का आदेश करने से संबंधित प्रक्रिया का निर्देश करेंगे । हम प्रथमतः कैलीफोर्निया राज्य को लेते हैं ।

कैलीफोर्निया राज्य न्यायालय न्यायाधीश :

महाभियोग द्वारा न्यायाधीशों को हटाना :

कैलीफोर्निया संविधान की धारा 18 के अनुच्छेद 4 का खंड (क) महाभियोग की एकमात्र शक्ति के बारे में उपबंध करता है । महाभियोग सीनेट द्वारा लाया जाएगा । कोई व्यक्ति तब तक दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता जब तक कि जर्नल में दर्ज सीनेट के दो तिहाई सदस्य रोल काल वोट द्वारा सहमति न दें ।

अनुच्छेद 4 धारा 18 (ख) राज्य न्यायालयों के न्यायाधीशों पर पद पर अवचार के लिए महाभियोग के संबंध में निर्देश करती है । इसमें इस प्रकार कहा गया है :

> "18 (ख) – राज्यवार आधार पर निर्वाचित राज्य अधिकारियों, स्टेट बोर्ड आफ ईक्वालाइजेशन के सदस्यों, राज्य न्यायालयों के न्यायाधीशों पर पद पर अवचार के लिए महाभियोग लाया जा सकता है । निर्णय केवल पद से हटाने और राज्य के अधीन किसी पद पर निरर्हित होने तक सीमित हो सकता है तथापि दोषसिद्ध या दोषमुक्त व्यक्ति विधि के अनुसार आपराधिक दंड दायी रहेगा ।

संविधान में उपबंधित हटाने की दूसरी रीति

अनुच्छेद 6, धारा 18 : दूसरी रीति : जुडीशियल परफारमेन्स कमीशन :

संयुक्त राज्य अमरीका में कैलीफोर्निया ऐसा प्रथम राज्य है जिसने जुडीशियल परफारमेन्स पर कमीशन गठित किया । ऐसा वर्ष 1960 में हुआ । कमीशन के प्राधिकारी ने प्रथमतः कैलीफोर्निया संविधान के अनुच्छेद 6, धारा 8, 18, 18.1 और 18.5 का उल्लेख किया । कमीशन के कार्य में

विभिन्न परिवर्तन करते हुए 1966, 1976, 1988, 1994 और 1998 में राज्य संविधान में संशोधन किए गए । कमीशन उस सरकारी संहिता के अध्यधीन है जिसे कोड आफ सिविल प्रोसीज्योर कहा जाता है । धारा 68701 से 68755 इस विषय पर उपबंध करती है ।

कमीशन "गौण उपाय" अधिरोपित कर सकती है या किसी न्यायाधीश को सेवा-निवृत्त कर सकती है या सीधे हटाने का निदेश कर सकती है ।

अनुच्छेद 6, धारा 18 जुडीशियल परफारमैंस कमीशन की शक्तियों के बारे में उपबंध करती है जो इस प्रकार है –

धारा 18 (क). कोई न्यायाधीश वेतन प्राप्त करते हुए भी न्यायाधीश के रूप में कार्य करनें से निरर्हित है जहां उसके विरुद्ध निम्न लंबित है (1) न्यायाधीश संयुक्त राज्यों में कैलीफोर्निया या फेडरल विधि के अधीन महापराध के रूप में दंडनीय अपराध सें अभ्यारोपित है या उसके विरुद्ध सूचना है, या (2) किसी न्यायाधीश को हटाने या सेवानिवृत्त करने के लिए जुडीशियल परफारमैंस कमीशन द्वारा अवधारण के पुनर्विलोकन के लिए उच्चतम न्यायालय में याचिका लंबित है ।

(ख) जुडीशियल परफारमेंस कमीशन किसी न्यायाधीश को वेतन के नुकसान के बिना कमीशन द्वारा औपचारिक कार्यवाहियों की सूचना पर न्यायाधीश के रूप में कार्य करने से निरर्हित कर सकती है जहां न्यायाधीश पर न्यायिक अवचार या अशक्तता का आरोप है ।

(ग) जुडीशियल परफारमेंस कमीशन किसी न्यायाधीश को वेतन के बिना पद से निलंबित करेगी जहां संयुक्त राज्यों में न्यायाधीश दोष स्वीकार करता है या विरोध नहीं करता है या कैलीफोर्निया के अधीन महापराध के रूप में या फेडरल विधि के अधीन या अन्य किसी अपराध के अधीन जिसमें ऐसी विधि के अधीन नैतिक अधमता अन्तर्वलित हो, दंडनीय किसी अपराध का दोषी पाया जाता है । जहां दोषसिद्धि आरक्षित की जाती है, निलंबन समाप्त हो जाता है, और न्यायाधीश को निलंबन अवधि के लिए उसके द्वारा धारित न्यायिक पद के लिए वेतन संदत्त किया जाएगा । यदि न्यायाधीश को निलंबित किया जाता है और दोषसिद्धि अंतिम बनती है वहां जुडीशियल परफारमेंस कमीशन न्यायाधीश को पद से हटा देगी ।

(घ) उपखंड (च) में यथा उपबंधित के सिवाय जुडीशियल परफार्मेंस कमीशन (1) न्यायाधीश को ऐसी अशक्तता के कारण सेवानिवृत्त कर सके जो कार्यकरण में गंभीर रूप से बाधक हो, या (2) किसी न्यायाधीश या पूर्व न्यायाधीश की परिनिन्दा कर सके या किसी न्यायाधीश को ऐसे कार्य के लिए हटा सकेगी जो न्यायाधीश की चालू अवधि या पूर्व न्यायाधीश की पिछली अवधि के आरंभ से छह वर्ष पूर्व से अधिक का न हो और जिससे पद पर स्वैच्छिक अवचार गठित होता हो, न्यायाधीश के कर्तव्यों को पूरा करने में विफलता या असमर्थता से संबंधित हो, मादक पदार्थों या ओषधियों के प्रयोग में आदतन असंयम या न्यायिक प्रशासन के प्रतिकूल ऐसे आचरण से संबंधित हो जो न्यायिक पद को कलंकित करने वाला हो, या (3) ऐसे किसी न्यायाधीश या पूर्व न्यायाधीश को सार्वजनिक रूप से या प्राईवेट रूप से चेतावनी दी गई हो जो अनुचित कार्रवाई या ड्यूटी में लापरवाही का दोषी पाया गया है । कमीशन ऐसे किसी पूर्व न्यायाधीश को भी विवर्जित कर सकती है जिसकी कोई समनुदेशन प्राप्त करने; नियुक्ति प्राप्त करने या कैलीफोर्निया के किसी राज्य न्यायालय से कार्य निर्देश प्राप्त करने के संबंध में परिनिन्दा की गई हो । न्यायाधीश या पूर्व न्यायाधीश द्वारा याचिका फाइल करने पर उच्चतम न्यायालय अपने विवेक से कमीशन द्वारा सेवानिवृत्त करने, हटाने, परिनिन्दा करने, भर्त्सना करने या किसी न्यायाधीश अथवा पूर्व न्यायाधीश को उपखंड (ख) के अनुसरण में निरर्हित करने के अवधारण के विरुद्ध पुनर्विलोकन मंजूर कर सकता है । जहां उच्चतम न्यायालय कमीशन के अवधारण का पुनर्विलोकन करता है वहां वह अभिलेख का स्वतंत्र पुनर्विलोकन कर सकता है । यदि उच्चतम न्यायालय याचिका मंजूर करने के पश्चात् 120 दिन के भीतर कार्रवाई नहीं करता है तो कमीशन का विनिश्चय अंतिम होगा ।

(ङ) कमीशन द्वारा सेवानिवृत्त किया गया कोई न्यायाधीश स्वेच्छया सेवानिवृत्त समझा जाएगा । कमीशन द्वारा हटाया गया कोई न्यायाधीश समनुदेशन, नियुक्ति या कैलीफोर्निया के किसी राज्य न्यायालय से कार्य के निर्देश सहित न्यायिक पद के लिए अपात्र है और न्यायालय द्वारा आगे आदेश किए जाने तक इस राज्य में विधि में भाग लेने से निलंबित है । राज्य बार ऐसे किसी न्यायाधीश के विरुद्ध समुचित अनुशासनिक कार्रवाई आरंभ कर सकती है जिसे न्यायिक अनुशासनिक आरोपों के लंबन के दौरान पद से सेवानिवृत्त किया गया हो या उसने त्यागपत्र दिया हो ।

(च) जुडीशियल परफारमेंस कमीशन द्वारा किसी न्यायाधीश या पूर्व न्यायाधीश की भर्त्सना करने या परिनिन्दा करने या उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को हटाने या सेवानिवृत्त करने के अवधारण पर उसका ऐसे अधिकरण द्वारा पुनर्विलोकन किया जाएगा जिसमें लाट द्वारा चयनित अपील न्यायालय के 7 न्यायाधीश हों ।

(छ) उच्चतम न्यायालय के सिवाय किसी अन्य न्यायालय को किसी न्यायाधीश द्वारा कमीशन के विरुद्ध लाई गई किसी सिविल कार्रवाई या किसी प्रकार की अन्य विधिक कार्यवाही में अधिकारिता नहीं होगी । व्यादेशात्मक अनुतोष के लिए कोई अनुरोध या अन्य अनंतिम उपचार अनुतोष के लिए अनुरोध फाइल करने के 90 दिन के भीतर मंजूर किया जाएगा या इनकार किया जाएगा । इस धारा की समय अपेक्षाओं का पालन करने से विफलता कमीशन कार्यवाहियों की विधिमान्यता को प्रभावित नहीं करेगी ।

(ज) कमीशन के सदस्य, कमीश के कर्मचारी और कमीशन के परीक्षक और अन्वेषक अपने पदीय कर्तव्यों के दौरान किसी समय किए गए किसी आचरण के लिए वाद लाए जाने से पूर्णतया उन्मुक्त होंगे । किसी नियोजक द्वारा किसी व्यक्ति के विरुद्ध कमीशन के समक्ष सार्वजनिक या प्राइवेट रूप में किए गए कथनों के आधार पर फाइल कोई सिविल कार्रवाई ग्राह्य नहीं होगी ।

(झ) जुडीशियल परफारमेंस कमीशन इस धारा को क्रियान्वित करते हुए नियम बनाएगी किन्तु ये नियम निम्नलिखित तक ही परिसीमित नहीं होंगे –

(1) कमीशन न्यायाधीशों के अन्वेषण के लिए नियम बनाएगी । कमीशन शिकायतों को और कमीशन द्वारा किए गए अन्वेषणों की गोपनीयता के लिए उपबंध कर सकती है ।

(2) कमीशन न्यायाधीशों के विरुद्ध औपचारिक कार्यवाहियों के लिए नियम बनाएगी, जहां यह विश्वास करने का कारण है कि उपखंड (घ) के अर्थान्तर्गत कोई अशक्तता है या गलत कार्य किया गया है

(ञ) जहां कमीशन औपचारिक कार्यवाहियां संस्थित करती है वहां 28 फरवरी, 1995 के पश्चात् संस्थित सभी औपचारिक कार्यवाहियों के लिए आरोपों की सूचना, उत्तर और सभी पश्चात्वर्ती कागजात और कार्यवाहियां जनता के लिए खुली होंगी ।

(ट) कमीशन स्पष्टीकारक कथन ले सकती है ।

(ठ) कमीशन का बजट किसी अन्य राज्य अभिकरण या न्यायालय के बजट से पृथक होगा ।

(ड) उच्चतम न्यायालय न्यायाधीशों के आचरण के लिए चाहे वह न्यायपीठ में कार्य के समय का हो या अन्यथा, तथा उनके साथियों के आचरण में न्यायिक अभ्यर्थिता के लिए नियम बनाएगी । ऐसे नियम कोड आफ जुडीशियल इथिक्स कहे जाएंगे ।"

यह उल्लेखनीय है कि कोई न्यायाधीश जिसके विरुद्ध कोई दांडिक आरोप लंबित है या जिसके विरुद्ध ऐसी औपचारिक कार्यवाहियां लंबित है जिसके द्वारा न्यायाधीश को शास्तिक अवचार या अशक्तता से आरोपित किया गया है, अनुच्छेद 6 की इस धारा के अधीन निरर्हित है । कमीशन किसी न्यायाधीश को बिना वेतन के निलंबित करेगा यदि न्यायाधीश दोष स्वीकार करता है या विरोध नहीं करता है या नैतिक अधमता से संबंधित किसी अपराध का दोषी पाया जाता है । अन्य दंड जो कमीशन द्वारा अधिरोपित किए जा सकते हैं, इस प्रकार हैं – (i) अशक्तता के कारण सेवानिवृत्ति, (ii) परिनिन्दा, या (iii) न्यायाधीश की वर्तमान अवधि के प्रारंभ से छह वर्ष पूर्व न्यायाधीश की किसी कार्रवाई के संबंध में न्यायाधीश को हटाना या स्वैच्छिक अवचार या अपने कर्तव्यों के पालन में लगातार विफलता या असमर्थता, मादक पदार्थों या ओषधियों के सेवन में आदतन असंयम या न्यायिक प्रशासन के प्रतिकूल ऐसा आचरण जो न्यायिक पद को कलंकित करने वाला हो; (iv) भर्त्सना करना । कमीशन ऐसे किसी पूर्व न्यायाधीश को भी विवर्जित कर सकती है जिसकी समनुदेशन, नियुक्ति प्राप्त करने या कैलीफोर्निया राज्य के किसी न्यायालय से कार्य के निर्देश में परिनिन्दा की गई । कमीशन द्वारा अभिमुक्त कोई न्यायाधीश स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के अधीन समझा जाएगा । न्यायालय के अगले आदेशों तक उसे राज्य की विधि में भाग लेने से निलंबित किया जा सकेगा ।

कमीशन द्वारा दिए गए विनिश्चय के विरुद्ध ऐसे अधिकरण के समक्ष अपील की जा सकती है जिसमें सात न्यायाधीश सम्मिलित हों और ऐसे अपील न्यायालय के न्यायाधीशों का चयन लाट द्वारा किया गया हो । उच्चतम न्यायालय के सिवाय किसी न्यायालय को सिविल कार्रवाई करने या किसी न्यायाधीश द्वारा कमीशन के विरुद्ध लाई गई किसी प्रकार की अन्य विधिक कार्यवाही करने की अधिकारिता नहीं है । कमीशन के सदस्य सभी कार्यों के लिए वाद से वैयक्तिक रूप से अभियुक्त हैं ।

कमीशन आरोपों की सूचना देते हुए औपचारिक कार्यवाहियां जारी करेगी । उच्चतम न्यायालय कोड आफ जुडीशियल एथिक्स के लिए न्यायाधीशों के आचरण के लिए नियम बनाएगा ।

अनुच्छेद 6 में संशोधन को दृष्टिगत करते हुए जिसके द्वारा कमीशन को "हटाने" का आदेश पारित करने के लिए भी अनुज्ञात किया गया है, यह अनुच्छेद 4 के अन्तर्गत आने वाली महाभियोग की प्रक्रिया के अलावा हटाने की दूसरी रीति भी उपबंधित करता है । अब कमीशन को संविधान के अनुच्छेद 6 द्वारा अपील के अधिकार के अध्यधीन और अन्य उपायों के अध्यधीन जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, हटाने के आदेश पारित करने के लिए सशक्त कर दिया गया है ।

धारा 18.5 यह उपबंध करती है कि कमीशन राज्य के गवर्नर को किसी प्राइवेट भर्त्सना के पाठ्य के साथ, परामर्श पत्र या अन्य अन्य अनुशासनिक कार्रवाई को उपलब्ध करा सकती है । धारा 18.5 (घ) में यह कहा गया है कि इस धारा के अधीन दी गई प्रत्येक इत्तिला गोपनीय रहेगी और विशेषाधिकार होगी ।

अब हम कैलीफोर्निया में अनुच्छेद 6 के कुछ संशोधनों के इतिहास का उल्लेख करेंगे । ऐसा प्रतीत होता है कि 1966 में संविधान का संशोधन मंजूरी के रूप में लोक निन्दा में लाया गया जो पद से हटाने के अतिरिक्त अधिरोपित किया जा सका । 1976 में कमीशन आन जुडीशियल क्वालीफिकेशन्स को कमीशन आन जुडीशियल परफारमेंस के रूप में पुनः नाम दिया गया । प्राइवेट भर्त्सना को भी जोड़ा गया था । न्यायिक असंयम के लिए कार्रवाई के रूप में मादक पदार्थों और ओषधि का सेवन भी जोड़ा गया था । इसके अतिरिक्त "न्यायिक कर्तव्यों को पूरा करने में स्वैच्छिक और सतत् विफलता या असमर्थता" को न्यायाधीश के कर्तव्यों को पूरा करने में सतत् विफलता या असमर्थता" के रूप में परिवर्तित किया गया । 1988 के संशोधन ने कमीशन को न्यायाधीश के अनुरोध पर खुली सुनवाई करने के लिए प्राधिकार दिया या जहां आरोप नैतिक अधमता, भ्रष्टाचार या बेईमानी से संबंधित हों और जहां ऐसा करना लोक विश्वास बनाए रखने और न्याय हित में हो । लोक "निन्दा" को भी दूसरी मंजूर के रूप में जोड़ा गया । 1994 में संशोधन द्वारा ऐसे सभी मामलों में खुली सुनवाई की आज्ञा जोडी गई जिनमें औपचारिक आरोप अन्तर्वलित हों और उच्चतम न्यायालय के मुकाबले कमीशन को परिनिन्दा करने और हटाने का प्राधिकार प्रदत्त किया गया । इसके अतिरिक्त 1994 में "निन्दा" को हटा दिया गया (एचटीटीपी // सीजेपी.सी.जीओवी / मेनडेटिस्ट.एचटीए)

कैलीफोर्निया न्यायालयों की वार्षिक रिपोर्टों से अवचार के विभिन्न प्रकारों में से निम्लिखित प्रवर्ग भी प्रकट हुए –

अवमान का दुरुपयोग	भावभंगी/ निरर्हितता/ प्रकटीकरण और संबद्ध नातेदारी	**न्यायालय स्रोतों का दुरुपयोग**
प्रशासनिक अपकरण	एकपक्षीय संसूचनाएं	गैर-प्रभावी दुरुपयोग
मद्यसार या ओषधि संबंधी आपराधिक आचरण	सहयोग में विफलता/ विनियमितीकरण प्राधिकारियों के प्रति ऋजुता का अभाव	आपराधिक आचरण
पक्षपात/विशिष्ट वर्ग के प्रति पक्षपात का प्रकटीकरण (जो किसी विशिष्ट वर्ग के प्रति न हो)	अधिकार सुनिश्चित करने में विफलता	न्यायपीठ से बाहर पद का दुरुपयोग
लंबित मामले पर टीका-टिप्पणी	दान / ऋण / पक्षपात टिकिट फिक्सिंग	न्यायिक कर्तव्यो के अनुपालन में प्राधिकार का न्यायपीठ से बाहर दुरुपयोग
विनिश्चय संबंधी विलंब ट्रेडीनैस /ड्यूटी में अन्य लापरवाही	अनुचित कारबारी क्रियाकलाप	पूर्व-न्यायपीठ अवचार
	अनुचित राजनैतिक क्रियाकलाप	लैंगिक उत्पीड़न/ अनुचित कार्यस्थान
	विविध	लिंगीय टीका-टिप्पणी
	न्यायपीठ के बाहर आचरण	निद्राचार
		धनीय दुरुपयोग

इदाहो राज्य न्यायालय न्यायाधीश :

<u>महाभियोग : अनुच्छेद 5 (धारा 3)</u>

इदाहो संविधान के अनुच्छेद 5 की धारा 3 में सीनेट द्वारा महाभियोग लाने का उल्लेख किया गया है । निर्णय हटाने या धारित पद से निरर्हित करने के परे नहीं किया जाएगा । अनुच्छेद 5 की धारा 28 में यह उपबंधित है कि न्यायाधीशों और न्यायमूर्तियों की सेवा-निवृत्ति, अनुशासन और पद से हटाने के संबंध में नियम विधि द्वारा उपबंधित किए जाएंगे । इस प्रकार संविधान स्वतः "हटाने" के लिए विधि बनाने को अनुज्ञात करता है (अर्थात किसी अन्य रीति द्वारा)

महाभियोग के सिवाय हटाने के लिए विनिर्दिष्ट विधि संभव है जैसे कि इदाहो में विधि बनाई गई है । संविधान विधि द्वारा हटाने की अन्य रीति के लिए उपबंध करता है । उच्चतम न्यायालय को कार्रवाई की सिफारिश करने के लिए न्यायिक परिषद् के गठन के लिए विधि पारित की गई है जो अंतिम आदेश पारित करती है ।

अनुच्छेद 5, धारा 8: उच्चतम न्यायालय को गौण और मुख्य उपायों के लिए न्यायिक परिषद् की सिफारिशें –

इदाहो न्यायिक परिषद् अपील न्यायालय के न्यायाधीशों सहित न्यायाधीशों में अनुशासन के लिए गठित की गई है । कौंसिल लिखित शिकायत प्राप्त होने पर अन्वेषण कर सकती है और बेहतर कारण पाए जाने पर वह उच्चतम न्यायालय को अनुशासनिक कार्रवाई के लिए सिफारिश करेगी है । कारणों में पद पर स्वैच्छिक अवचार, कर्तव्यों के पालन में स्वैच्छिक और सतत् विफलता, आदतन असंयम और ऐसा प्रतिकूल आचरण सम्मिलित किया जा सकता है जो न्यायिक पद को कलंकित करने वाला हो या कोड आफ जुडीशियल कंडक्ट का अतिक्रमण करता हो । न्यायमूर्ति या न्यायाधीश को ऐसी अशक्तता के लिए सेवानिवृत्त भी किया जा सकता है जो न्यायिक कर्तव्यों के अनुपालन में गंभीर रूप से बाधक हो ।

उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुशासन और हटाने पर अंतिम विनिश्चय का उपबंध किया गया है । कौंसिल द्वारा किए गए सभी अन्वेषण कानून के अधीन गोपनीय रखे जाएंगे तथापि जब कौंसिल उच्चतम न्यायालय के समक्ष निष्कर्ष और सिफारिशें फाइल कर देती हैं तो ये सार्वजनिक बनते हैं और उच्चतम न्यायालय के लिपिक के पास उपलब्ध रहते हैं ।

इदाहो न्यायिक परिषद् के नियमों में यह उपबंध है कि न्यायिक परिषद् उच्चतम न्यायालय और विधानमंडल को 2 वर्ष से अनधिक के अन्तराल से रिपोर्ट पेश कर सकती है, गवर्नर को नियुक्ति के लिए न्यायाधीशों के नाम पेश कर सकती है और न्यायिक अधिकारियों को हटाने, अनुशासन संबंधी और सेवा निवृत्ति संबंधी सिफारिश भी पेश कर सकती है ।

ये कर्तव्य जनरल रूल्स आफ प्रोसीजर के नियम 2 में उल्लिखित हैं । न्यायाधीशों के हटाने, अनुशासन और सेवानिवृत्ति के विषय नियम 21 से आरंभ होते हैं । नियम 21 में परिभाषाएं दी गई हैं । नियम 22 कौंसिल को साक्षियों को सम्मन करने और परीक्षा करने तथा उनको हाजिरी के लिए बाध्य

करने के लिए शक्ति प्रदत्त करता है और विफलता पर उनकी संपत्ति उच्चतम न्यायालय या उसके किसी न्यायाधीश को आवेदन देकर कुर्क कराई जा सकती है जैसा कि अवमान के मामलों में किया जाता है । इसी नियम के अधीन यदि अभियुक्त न्यायाधीश व्यतिक्रम करता है तो अभिसाक्षियों और खोज की प्रक्रिया अपनाई जा सकती है और उसे सूचना दिए बिना उसका प्रयोग किया जा सकता है या साक्षियों के शपथपत्रों को साक्ष्य में प्रयुक्त किया जा सकता है । नियम 24 कौंसिल के समक्ष की गई गोपनीयता के बारे में उपबंध करता है । यह कहा गया है कि कौंसिल के समक्ष फाइल किए गए सभी कागजात और कार्यवाहियां गोपनीय होंगी जब तक कि कौंसिल द्वारा उच्चतम न्यायालय के समक्ष अभिलेख प्रस्तुत न कर दिए गए हों परन्तु यदि न्यायाधीश के विरुद्ध परिवादी, न्यायाधीश या पर-व्यक्तियों द्वारा किए गए अभिकथन सार्वजनिक रूप से किए गए हों तो न्यायिक परिषद् और/या न्यायाधीश किसी अन्वेषण की विद्यमानता, प्रकृति और प्रास्थिति पर टीका-टिप्पणी कर सकता है तथा न्यायिक परिषद् द्वारा की गई कार्रवाईयों के संबंध में मिथ्या या भ्रमित करने वाली सूचना सहित किसी मिथ्या या भ्रमित करने वाली सूचना को ठीक कर सकता है ।

नियम 25 अपमान संबंधी सामग्री के संबंध में गोपनीयता और विशेषाधिकार के लिए उपबंध करता है । इसमें यह कहा गया है कि कौंसिल के समक्ष फाइल किए गए कागज-पत्र या कौंसिल के समक्ष दिए गए परिसाक्ष्य विशेषाधिकार होंगे । कौंसिल द्वारा उच्चतम न्यायालय में फाइल किया गया अभिलेख सतत रूप से विशेषाधिकार बना रहेगा किन्तु इस प्रकार फाइल करने पर ये अपनी गोपनीय प्रकृति खो देगा । ऐसा लेख जो कौंसिल के समक्ष फाइल करने से पूर्व विशेषाधिकार था, इस प्रकार फाइल करने पर विशेषाधिकार की प्रकृति नहीं खोएगा ।

नियम 28 अनुशासन, हटाने या सेवा निवृत्ति के लिए तथा आरंभिक जांच और आरंभिक अन्वेषण के लिए आधार उपबंधित करता है । उपखंड (क) में यह कहा गया है कि कौंसिल सत्यापित कथन के प्राप्त होने पर जो यदि स्पष्टतया आधाररहित या तुच्छ हो और जिसमें ये तथ्य उपदर्शित करते हुए कि कोई न्यायाधीश अपने पद पर स्वैच्छिक अवचार का दोषी है, न्यायाधीश अपने कर्तव्यों के पालन में स्वैच्छिक और सतत रूप से असफल रहा है, आदतन असंयम है या उसका आचरण न्याय प्रशासन के प्रतिकूल है जो उसके न्यायिक पद को कलंकित करता है या कोड आफ जुडीशियल कंडक्ट का अतिक्रमण करता है या न्यायाधीश ऐसी अशक्तता से ग्रसित है जो न्यायाधीश के कर्तव्य पालन में बाधक है और जिसकी स्थायी प्रकृति बनने की संभावना है, ये अवधारित करने के लिए जांच या

अन्वेषण करेगी कि क्या औपचारिक कार्यवाहियां संस्थित की जाएं या सुनवाई की जाए । कौंसिल सत्यापित कथन प्राप्त किए बिना स्वप्रेरणा पर आरंभिक अन्वेषण कर सकती है ।

नियम 28 के खंड (क) का उपखंड (1) आरंभिक जांच के बारे में उपबंध करता है । इसमें यह कहा गया है कि कौंसिल या उसके प्रतिनिधि औपचारिक रूप से न्यायाधीश को अधिसूचित करने के पश्चात् यह अवधारित करने के लिए आरंभिक जांच करेगी/करेंगे कि क्या सत्यापित कथन में की गई शिकायत स्पष्टतया आधाररहित या तुच्छ है । कौंसिल या इसके प्रतिनिधि ऐसी आरंभिक जांच करने में ऐसी किसी सूचना को प्राप्त करके उस पर विचार कर सकते हैं जिसे वे महत्वपूर्ण समझें ।

नियम 28 के खंड (क) का उपखंड (2) आरंभिक अन्वेषण के बारे में उपबंध करता है । इसमें यह कहा गया है कि यदि कौंसिल यह निष्कर्ष निकालती है कि सत्यापित कथन में उल्लिखित शिकायत स्पष्टतः आधाररहित या तुच्छ नहीं है तो कौंसिल न्यायाधीश को अन्वेषण की लिखित सूचना देने के पश्चात् जिसमें आरोप की प्रकृति का उल्लेख किया जाएगा, आरंभिक अन्वेषण करेगी और ऐसे आरंभिक अन्वेषण के दौरान वह न्यायाधीश या न्यायाधीश के कौंसिल को न्यायाधीश की ओर से साक्ष्य के समय उपस्थित रहने के लिए युक्तियुक्त अवसर प्रदान करेगी । कौंसिल अन्वेषण करने में ऐसी किसी सूचना पर विचार कर सकती है जो आरंभिक जांच के दौरान प्राप्त हुई हो । यदि कौंसिल यह अवधारित करती है कि न्यायाधीश की शारीरिक या मानसिक स्वस्थता प्रश्नगत की गई है तो वह स्वतंत्र परीक्षकों द्वारा न्यायाधीश की शारीरिक या मानसिक परीक्षा करने का आदेश दे सकती है ।

नियम 28 के उपबंध (ख) में यह कहा गया है कि यदि आरंभिक अन्वेषण आगे कार्रवाई जारी रखने के लिए पर्याप्त कारण उपदर्शित नहीं करता तो कौंसिल अपने विवेक से न्यायाधीश, परिवादी और अन्य पक्षकारों को ऐसी अधिसूचना जारी करेगी ।

नियम 28 के उपखंड (ग) में यह कहा गया है कि यदि आरंभिक अन्वेषण आगे कार्रवाईयों करने के लिए पर्याप्त कारण उपदर्शित करता है तो कौंसिल –

(1) आगे कार्रवाई या मामले के पुनर्विलोकन को जारी रख सकती है ;

(2) कौंसिल अपने समक्ष न्यायाधीश की वैयक्तिक हाजिरी की अपेक्षा कर सकती है ;

(3) न्यायाधीश के आचरण की उपचार संबंधी प्रक्रिया की सिफारिश कर सकती है और उस बारे

में न्यायाधीश की मौन सहमति की अपेक्षा कर सकती है ;

(4) औपचारिक कार्रवाइयां संस्थित कर सकती है ; या

(5) ऐसी अन्य कार्रवाई या निदेश कर सकती है जिसके आधार पर कौंसिल यह अवधारित करे कि इससे ऐसे न्यायाधीश के ऐसे आचरण में समुचित रूप से कमी आएगी या ऐसा आचरण समाप्त हो जाएगा जो कौंसिल की अधिकारिता के भीतर किसी मामले में अन्तर्वलित हो ।

नियम 29 औपचारिक कार्यवाही के बारे में है । इसके खंड (क) में यह कहा गया है कि यदि कौंसिल आरंभिक अन्वेषण पूरा करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकालती हैं कि औपचारिक कार्यवाहियां संस्थित की जानी चाहिए तो कौंसिल अविलंब अभियुक्त न्यायाधीश को यह उपदर्शित करते हुए लिखित सूचना जारी करेगी कि न्यायाधीश के विरुद्ध आरोपों की जांच के लिए औपचारिक कार्यवाहियां संस्थित की गई हैं ।

नियम 29 के उपखंड (ख) में यह कहा गया है कि सूचना में न्यायाधीश के विरुद्ध आरोप साधारण और संक्षिप्त भाषा में विनिर्दिष्ट होंगे और ऐसे अभिकथित तथ्य विनिर्दिष्ट होंगे जिन पर ऐसे आरोप आधारित हैं और न्यायाधीश को विनिर्दिष्ट समय के भीतर आरोपों का लिखित उत्तर फाइल करने के उसके अधिकार के बारे में भी बताया जाएगा ।

नियम 30 न्यायाधीश के उत्तर के बारे में उपबंध करता है और नियम 31 कौंसिल के समक्ष सुनवाई के बारे में उपबंध करता है । कौंसिल हटाने, अनुशासन या सेवानिवृत्ति से संबंधित मामलों की सुनवाई कर सकता है और विशेष जानकारों को सुनवाई प्रत्यायुक्त कर सकती है ।

नियम 32 सुनवाई के बारे में उपबंध करता है जिसमें यह कहा गया है कि न्यायाधीश की उत्तर देने में विफलता या सुनवाई में उपस्थित होने में विफलता मात्र हटाने, अनुशासन या सेवानिवृत्ति के आधार गठित करने के लिए अभिकथित तथ्यों की सत्यता के साक्ष्य के रूप में नहीं ली जाएगी । न्यायाधीश की स्वयं अपनी परीक्षा के लिए पेश करने में विफलता या चिकित्सीय परीक्षा पेश करने में विफलता पर विचार किया जा सकता है जब तक कि यह प्रतीत न हो कि ऐसी विफलता न्यायाधीश के नियंत्रण के परे परिस्थितियों के कारण थी ।

नियम 33 न्यायाधीश के प्रक्रिया संबंधी अधिकारों के बारे में उपबंध करता है । इसके उपखंड (क) में यह कहा गया है कि किसी अभियुक्त न्यायाधीश को अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों में प्रतिरक्षा करने और प्रतिरक्षा का युक्तियुक्त अवसर प्राप्त करने का अधिकार है और वह काउंसेल द्वारा प्रतिनिधित्व कर सकता है और साक्षियों की परीक्षा और प्रतिपरीक्षा कर सकता है । न्यायाधीश को साक्षियों की परीक्षा करने या पुस्तकें, कागज-पत्र पेश कराने या साक्ष्य संबंधी सामग्री पेश कराने के लिए साक्षियों की हाजिरी के लिए समन जारी कराने का भी अधिकार है । यदि न्यायाधीश उन्मादी या असक्षम न्यायनिर्णीत किया जाता है तो कौंसिल वादार्थ संरक्षक नियुक्त करेगी जब तक कि न्यायाधीश का स्वयं का ऐसा कोई संरक्षक न हो जो उसका प्रतिनिधित्व करे ।

नियम 41 में यह कहा गया है कि यदि कौंसिल बेहतर कारण पाती है तो वह उच्चतम न्यायालय को अभियुक्त न्यायाधीश को हटाने, अनुशासन या सेवानिवृत्ति से संबंधित सिफारिश कर सकती है । धारा 44 में यह कहा गया है कि न्यायाधीश न्यायिक परिषद् के निष्कर्षों का जिसकी उच्चतम न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई हो, पुनर्विलोकन करने के लिए उच्चतम न्यायालय से अनुरोध कर सकता है ।

नियम 52 में यह कहा गया है कि किसी वैयक्तिक न्यायाधीश से संबंधित सभी न्यायिक परफारमेंस मूल्यांकन, अभिलेख, दस्तावेज और रिपोर्ट गोपनीय मानी जाएंगी और न्यायाधीश या न्यायिक परिषद् द्वारा किसी तीसरे पक्षकार को प्रकट नहीं की जाएंगी ।

कनेक्टीकट राज्य न्यायालय न्यायाधीश

हटाने की तीन रीतियां –

अनुच्छेद 5, धारा 2 हटाने की दो रीतियां उपबंधित करती है – महाभियोग और गवर्नर को समावेदन करके हटाना (धारा 2):

कनेक्टीकट के संविधान का अनुच्छेद 5 "न्यायिक विभाग" के बारे में उपबंध करता है और इसके छह भाग हैं । धारा 2 में यह कहा गया है कि न्यायाधीश आठ वर्ष की अवधि के लिए पद धारित करेंगे किन्तु उन्हें महाभियोग द्वारा हटाया जा सकता है । गवर्नर उन्हें साधारण सभा के प्रत्येक सदन के दो तिहाई सदस्यों के समावेदन पर भी हटाएगा । इस प्रकार दो प्रक्रियाएं हैं (i) महाभियोग द्वारा हटाना;

और (ii) गवर्नर को समावेदन करके हटाना ।

तीसरी रीति अनुच्छेद V धारा 7 : कौंसिल द्वारा गौर उपाय और उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रमुख उपाय

अनुच्छेद V की धारा 7 वर्ष 1976 में जोड़ी गई थी जिसके द्वारा हटाने की तीसरी रीति उपबंधित की गई है । धारा 7 उन न्यायालयों के न्यायाधीशों को छोड़कर जिनके न्यायाधीश निर्वाचित हैं, सभी न्यायाधीशों को लागू होती है । उन्हें उच्चतम न्यायालय द्वारा ऐसी रीति में जो विधि द्वारा विहित की जाएगी, हटाया या निलंबित किया जा सकता है । साधारण सभा एक न्यायिक पुनर्विलोकन कौंसिल स्थापित कर सकती है जो ऐसी रीति में जो विधि द्वारा विहित की जाएगी, ऐसे न्यायाधीश की परिनिन्दा कर सकती है या ऐसे किसी न्यायाधीश को ऐसी निश्चित अवधि के लिए निलंबित कर सकती है जो एक वर्ष से अधिक न हो । (अनुच्छेद V संशोधन द्वारा 24 नवंबर, 1976 से पुरःस्थापित किया गया)

अनुच्छेद IX की धारा 1 में यह कहा गया है कि हाउस आफ़ रिप्रजेन्टेटिव्स को महाभियोग की एकमात्र शक्ति होगी । धारा 2 में यह कहा गया है कि सभी महाभियोग सीनेट द्वारा विचारित किए जाएंगे । जब इस प्रयोजन के लिए बैठक होगी तो शपथ या प्रतिज्ञान लिया जाएगा । किसी भी व्यक्ति को उपस्थित सदस्यों के कम से कम दो तिहाई के बिना दोषसिद्ध नहीं किया जाएगा । जब गवर्नर महाभियोग लाएगा तो मुख्य न्यायमूर्ति अध्यक्षता करेगा ।

अनुच्छेद 9 की धारा 3 में यह कहा गया है कि गवर्नर और अन्य सभी कार्यपालक और न्यायिक अधिकारी महाभियोग के लिए जिम्मेदार होंगे; किन्तु ऐसे मामलों में निर्णय पद से हटाने और सम्मान के किसी पद को धारित करने से निरर्हिता, राज्य के अधीन विश्वास या लाभ का पद धारित करने के सिवाय नहीं किए जाएंगे । दोषसिद्ध पक्षकार कभी भी विधि के अनुसार अभ्यारोपण, विचारण और दंड का दायी या अध्यधीन नहीं होगा । धारा 4 देशद्रोह के संबंध में प्रक्रिया का उपबंध करती है ।

अनुच्छेद IX में सामान्य उपबंध अन्तर्विष्ट हैं और इसकी धारा 5 में यह कहा गया है कि निर्वचन या नियुक्ति द्वारा धारित करने वाले सभी अधिकारी अपने अपने कमीशनों या नियुक्तियों के अनुसार अपने कर्तव्यों को प्रयोग करते रहेंगे जब तक कि उनका पद समाप्त न कर दिया जाए या उनके उत्तराधिकारियों का चयन न किया जाए और संविधान के अनुसरण में या अधिनियमित विधियों के अनुसार स्पष्ट न किया जाए ।

अनुच्छेद V (धारा 7) को निर्देश्य कनैक्टीकट कानून :

संविधान द्वारा प्रदत्त उपरोक्त शक्तियों के अधीन, विधानमंडल द्वारा विधि बनाई गई ।

कनैक्टीकट कानून (41 सी. एस. 1) के अध्याय 872(क) में न्यायाधीशों के हटाए जाने, निलम्बन और परिनिन्दा का उपबंध है ।

धारा 51-51(छ) में निम्नलिखित रीति से कानून के उद्देश्य की घोषणा है । इसमें यह व्यक्त है कि साधारण सभा यदि यह पाती है कि राज्य में निष्पक्ष और प्रभावी न्याय-प्रशासन के लिए (1) न्यायपालिका की सतत् स्वतंत्रता अनिवार्य है, (2) न्यायपालिका की प्रतिष्ठा और गरिमा के लिए यह लोकहित में है, (3) पूर्वगामी प्रयोजनों के लिए न्यायिक अनुशासन के अनुरक्षण हेतु समुचित तंत्र और प्रक्रिया स्थापित करना वांछनीय है, और (4) मात्र अलोकप्रिय या गलत विनिश्चय करना न्यायिक अनुशासन या न्यायिक गरिमा की कमी का निष्कर्ष निकालने का आधार नहीं है ।

धारा 51 – 51(ज) में यह कथन है कि अध्याय वरिष्ठ न्यायालय, अपील न्यायालय के न्यायाधीशों, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों, प्रतिकर आयुक्तों और कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेटों को लागू होगा । धारा 51(झ) में हटाए जाने, निलम्बन और परिनिन्दा के आधारों का उपबंध है जिसमें अभिव्यक्ततः यह कथित है और साधारण सभा के प्रत्येक सदन के दो तिहाई सदस्यों के समावेदन पर हटाया जाना महाभियोग द्वारा हटाए जाने और राज्यपाल द्वारा हटाए जाने के अतिरिक्त होगा । खण्ड (क) में यह कथन है कि न्यायाधीश निम्नलिखित कारणों से परिनिन्दा, पद से निलम्बन या हटाए जाने का दायी है :

> "(1) निष्पक्ष और न्याय के प्रभावी प्रशासन का प्रतिकूल आचरण जो न्यायिक पद को बदनाम करता है, (2) धारा 51-39(क) या किसी न्यायिक नीति के सिद्धांत का जानबूझ कर अतिक्रमण, (3) न्यायाधीश के कर्तव्य पालन में जानबूझ कर और लगातार असफलता, (4) न्यायाधीश के कर्तव्यों का असावधानीपूर्ण या अक्षम पालन, (5) नैतिक अधमता वाले महापराध या उपापराध की अंतिम दोषसिद्धि, (6) अटर्नी-एट-ला के रूप में विवर्जन या निलम्बन (7) धारा 51-46(क) के अधीन वित्तीय कथन फाइल करने की जानबूझ कर असफलता या कपटपूर्ण वित्तीय कथन फाइल किया जाना या (8) ऐसा स्वभाव जो सुव्यवस्थित न्याय-प्रबंध पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है ।"

धारा 51 - 51(ञ) में उच्चतम न्यायालय द्वारा हटाए जाने या निलम्बन का उपबंध है । इसके उपखण्ड (क) में यह कथन है कि उच्चतम न्यायालय धारा 51-51(ट) के अधीन स्थापित न्यायिक पुनर्विलोकन परिषद् की सिफारिश पर या स्वप्रेरणा से किसी अवधि के लिए किसी न्यायाधीश या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट को हटा सकता है या निलम्बित कर सकता है । ऐसी सिफारिश की प्राप्ति पर या स्वप्रेरणा पर उच्चतम न्यायालय परिवाद के आचरण का अन्वेषण कराएगा और उस पर सुनवाई करेगा जब तक ऐसा अन्वेषण या सुनवाई न्यायिक पुनर्विलोकन परिषद् द्वारा न की गई हो । इसके उपखण्ड (ग) में यह कथन है कि सुनवाई तब तक सार्वजिनक नहीं की जाएगी जब तक अन्वेषणाधीन न्यायाधीश या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट द्वारा अनुरोध नहीं किया जाता । 51 - 51(झ) न्यायिक पुनर्विलोकन परिषद् को विनियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है ।

धारा 51 - 51(ठ) में परिषद् द्वारा न्यायाधीश, प्रतिकर आयुक्त या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट के आचरण का अन्वेषण करने का उपबंध है । धारा में प्रारम्भिक अन्वेषण के लिए प्रक्रिया के साथ नियमित जांच का भी उपबंध है ।

> "धारा 51-51(ठ). न्यायाधीश, प्रतिकर आयुक्त या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट के आचरण का अन्वेषण । (क) उपधारा (घ) में यथाउपबंध के सिवाय न्यायिक पुनर्विलोकन परिषद् धारा 51-51(झ) के अधीन अभिकथित आचरण के संबंध में उसके समक्ष लाए गए प्रत्येक लिखित परिवाद का अन्वेषण करेगा और किसी न्यायाधीश, प्रतिकर आयुक्त या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट का अन्वेषण आरम्भ कर सकता है यदि (1) परिषद् के पास यह विश्वास करने का कारण है कि धारा 51-धारा 51(झ) के अधीन आचरण हुआ है या (2) पूर्व परिवादों में ऐसा बर्ताव का पैट्रन उपदर्शित है जिससे यह युक्तियुक्त विश्वास होता है कि धारा 51-51(झ) के अधीन आचरण हुआ है । परिषद् अन्वेषण के ऐसे आरम्भ या ऐसे परिवाद की प्राप्ति के पश्चात् 5 दिन के पश्चात् रजिस्ट्रीकृत या प्रमाणित डाक द्वारा किसी न्यायाधीश, प्रतिकर आयुक्त या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट को अधिसूचित करेगा जो अन्वेषणाधीन है या जिसके विरुद्ध ऐसा परिवाद फाइल किया गया है । ऐसी नोटिस के साथ ऐसी किसी परिवाद की प्रति लगी होगी । परिषद् उसके पश्चात् पांच दिनों के अपश्चात् ऐसे परिवाद की स्वप्राप्ति की अधिसूचना परिवादी को भी देगी । यह उपधारित करने के लिए कि क्या धारा 51-51(झ) के अधीन उस आचरण का

संभाव्य हेतुक है या नहीं, का कोई अन्वेषण गोपनीय होगा और सूचना देने के प्रयोजन के लिए परिषद् द्वारा बुलाए गए किसी व्यक्ति की उसकी जानकारी इस विषय पर कि क्या संभाव्य हेतुक विद्यमान है, परिषद् के विनिश्चय के पूर्व तीसरे पक्षकार को ऐसे अन्वेषण की उसकी बात को प्रकट नहीं किया जाएगा जब तक प्रत्यर्थी यह अनुरोध नहीं करता है कि ऐसा अन्वेषण या प्रकटन खुला हो, बशर्ते किसी ऐसे अन्वेषण की स्वतंत्र रूप से ज्ञात या अभिप्राप्त सूचना गोपनीय नहीं होगी । न्यायाधीश, प्रतिकर आयुक्त या कुटुम्ब पोषक मजिस्ट्रेट को उपसंजात होने और सुने जाने तथा कोई सूचना देने का अधिकार होगा जो उसे धारा 51-51(झ) के अधीन आचरण का दोषी होने का विश्वास करने के संभाव्य हेतुक से छुटकारा दिलाता हो । न्यायाधीश, प्रतिकर आयुक्त या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट को विधिक काउन्सेल द्वारा निवेदन करने और साक्षियों की परीक्षा तथा प्रतिपरीक्षा करने का भी अधिकार होगा । इस उपधारा के अधीन अपना अन्वेषण करते समय परिषद् यह अनुरोध कर सकता है कि न्यायालय परिषद् को न्यायालय रिपोर्टर, सहायक न्यायालय रिपोर्टर या प्रबोधक द्वारा बनाई गई या तैयार की गई न्यायालय कार्यवाहियों का अभिलेख या प्रतिलिपि प्रस्तुत करे और न्यायालय ऐसे अनुरोध पर ऐसा अभिलेख या प्रतिलिपि प्रस्तुत करेगा ।

(ख) परिषद् ऐसे अन्वेषण की समाप्ति के पश्चात् तीन कारबार दिवस के अपश्चात् परिवादी, यदि कोई हो, और न्यायाधीश, प्रतिकर आयुक्त या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट को अधिसूचित करेगा कि अन्वेषण समाप्त हो गया है और उसका यह परिणाम है । यदि परिषद् यह पाता है कि धारा 51-51(झ) के अधीन आचरण हुआ है, लेकिन न्यायाधीश, प्रतिकर आयुक्त या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट ने ऐसी रीति से कार्य किया है जो अनौचित्य प्रतीत होता है या अननुकूल न्यायिक या प्रामाणिक पद्धति गठित करता है तो परिषद् न्यायिक या प्रामाणिक आचरण पद्धति में परिवर्तन की सिफारिश करते हुए न्यायाधीश, प्रतिकर आयुक्त या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट को भर्त्सना जारी करेगा । यदि भर्त्सना जारी की जाती है तो परिषद् परिवादी, यदि कोई हो, को सूचित करेगा कि भर्त्सना जारी की गई बशर्ते भर्त्सना परिवाद में अधिकथित अवचार का परिणाम हो और भर्त्सना का सार प्रकट नहीं किया जाएगा ।

(ग) यदि प्रारम्भिक अन्वेषण से यह उपदर्शित होता है कि अधिसंभाव्य हेतुक विद्यमान है कि

न्यायाधीश, प्रतिकर आयुक्त या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट धारा 51-51(झ) के अधीन अवचार का दोषी है तो परिषद् आचरण या परिवाद से संबंधित सुनवाई करेगा । इस उपधारा के अनुसरण में हुई सभी सुनवाई खुली होगी । ऐसी सुनवाई के समक्ष उपस्थित होने वाला न्यायाधीश, प्रतिकर आयुक्त या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट काउंसेल का, साक्ष्य प्रस्तुत करने का और साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने का हकदार होगा । परिषद् इस उपधारा के अनुसरण की सभी कार्यवाहियों का एक अभिलेख बनाएगा । परिषद् ऐसी सुनवाई की समाप्ति के पश्चात् तीस दिन के अपश्चात् अपने निष्कर्ष के साथ इसके कारण का ज्ञापन भी प्रकाशित कराएगा ।

(घ) धारा 51 - 51(झ) के अधीन अभिकथन वाले आचरण किसी न्यायाधीश, प्रतिकर आयुक्त या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट के विरुद्ध कोई परिवाद इसके सिवाय कि ऐसा कोई परिवाद अभिकथित हुए आचरण की तारीख से तीन वर्ष से अधिक के पश्चात् नहीं लाया जाए इस धारा के अधीन नहीं लाया जाएगा बल्कि हुए अभिकथित आचरण या पता चले या युक्तियुक्त सावधानी के प्रयोग से पता चलने की तारीख से एक वर्ष के भीतर हो सकता है ।

धारा 51- 51(ड). परिषद् का मत. निष्कर्षों की सूची बनाई जाए । (क) न्यायिक पुनर्विलोकन परिषद् उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के बहुमत पर इसके सिवाय कोई कार्रवाई कर सकेगा कि न्यायिक पुनर्विलोकन के बारह सदस्य किसी न्यायाधीश, प्रतिकर आयुक्त या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट की सार्वजनिक परिनिन्दा करने, किसी अवधि के लिए न्यायाधीश, प्रतिकर आयुक्त या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट को निलम्बित करने, इस सिफारिश के साथ उच्चतम न्यायालय को मामला निर्दिष्ट करने कि न्यायाधीश या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट को एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए निलम्बित किया जाए या इस सिफारिश के साथ उच्चतम न्यायालय को मामला निर्दिष्ट करने कि न्यायाधीश या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट को पद से हटाया जाए या इस सिफारिश के साथ राज्यपाल को कि प्रतिकर आयुक्त को पद से हटाया जाए कि कोई कार्रवाई के लिए कोरम गठित की जाए और ऐसे सात सदस्यों का सहमत होना अपेक्षित होगा ।

(ख) परिषद् अपने निष्कर्षों को लेखबद्ध करेगा और ऐसे सभी निष्कर्षों को एकत्रित और सूचीबद्ध किया जाएगा ।

धारा 51-51(ढ) परिषद् का प्राधिकार – (क) न्यायिक पुनर्विलोकन परिषद् धारा 51-51(ठ) की उपधारा (ग) के अनुसरण में सुनवाई के पश्चात् (1) न्यायाधीश, प्रतिकर आयुक्त या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट की सार्वजनिक परिनिन्दा कर सकेगा, (2) न्यायाधीश, प्रतिकर आयुक्त या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट को एक निश्चित अवधि जो एक वर्ष से ज्यादा न हो, के लिए निलम्बित कर सकेगा, (3) इस सिफारिश के साथ उच्चतम न्यायालय को मामला निर्दिष्ट कर सकेगा कि न्यायाधीश् या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट को एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए निलम्बित किया जाए, (4) इस सिफारिश के साथ उच्चतम न्यायालय को मामला निर्दिष्ट कर सकेगा कि न्यायाधीश या कुटुम्ब पोषण मजिस्ट्रेट को पद से हटाया जाए या इस सिफारिश के साथ राज्यपाल को कि प्रतिकर आयुक्त को पद से हटाया जाए या (5) न्यायाधीश, प्रतिकर आयुक्त या कुटुम्ब पोषणं मजिस्ट्रेट को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर सकेगा ।"

धारा 51 – 51(ण) साक्षियों को उच्चतम न्यायालय या न्यायिक पुनर्विलोकन परिषद् के समक्ष साक्ष्य देने को मजबूर करती है । धारा 51-51(त) में निलम्बन अवधि के दौरान वेतन के निलम्बन का उपबंध है । धारा 51-51(थ) में न्यायाधीशों की नियुक्ति या पुर्ननियुक्ति की बाबत परिषद् की सिफारिश का उपबंध है ।

धारा 51 – 51(द) में यह कथन है कि न्यायिक परिषद् के विनिश्चय से व्यथित कोई न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकेगा ।

संक्षेप में, यह देखने में आता है कि संविधान दो तरीके अर्थात् विधानमंडल के माध्यम से महाभियोग और समावेदन द्वारा राज्यपाल द्वारा हटाए जाने का उपबंध करता है । संविधान के अनुसार हटाए जाने के अन्य तरीके को विधि द्वारा विहित किया जा सकता है जैसा संशोधित अनुच्छेद 5, धारा 7 में वर्णित है । न्यायिक पुनिर्वलोकन परिषद् की सिफारिश पर विधि द्वारा यथाउपबंधित उच्चतम न्यायालय (न्यायाधीश) को हटा सकता है । विधि का अध्याय 872(क) न केवल अल्प दंड का उपबंध करता है बल्कि न्यायिक पुनर्विलोकन परिषद् की सिफारिश पर उच्चतम न्यायालय द्वारा हटाए जाने का भी उपबंध करता है ।

टैक्सास राज्य न्यायालय न्यायाधीश

संविधान के अनुच्छेद 15 में हटाए जाने के तीन तरीके दिए गए हैं ।

अनुच्छेद 15 में दो तरीके उपबंधित हैं ।

(क) अनुच्छेद 15 धारा 1,2 : महाभियोग :

संविधान के अनुच्छेद 15 धारा 1,2 में साधारणतः महाभियोग का उपबंध है । धारा 2 में यह कथन है कि राज्यपाल, उच्चतम न्यायालय, अपील न्यायालय के न्यायाधीश और जिला न्यायाधीश पर महाभियोग लगाया जा सकता है । यह प्रतिनिधि सदन द्वारा किया जाता है । (धारा 1)

(ख) अनुच्छेद 15 धारा 8 : सदन द्वारा समावेदन :

इसकी धारा 8 में विधानमंडल के प्रत्येक सदन के दो तिहाई सदस्यों के समावेदन पर राज्यपाल द्वारा न्यायाधीशों के हटाए जाने के लिए एक अन्य तरीके का उपबंध है । वह धारा इस प्रकार है –

"अनुच्छेद 15

धारा 8 – विधानमंडल के प्रत्येक सदन के दो-तिहाई सदस्यों के समावेदन पर राज्यपाल द्वारा न्यायाधीशों का हटाया जाना ।

उच्चतम न्यायालय, अपील न्यायालय और जिला न्यायालय के न्यायाधीशों को राज्यपाल द्वारा कर्तव्य की जानबूझ कर उपेक्षा, अक्षमता, आदतन मद्यासक्ति, कार्यालय में उत्पीड़न या अन्य युक्तियुक्त हेतुक के लिए जो महाभियोग का पर्याप्त आधार नहीं होगा विधानमंडल के प्रत्येक सदन के दो-तिहाई सदस्यों के समावेदन पर राज्यपाल द्वारा हटाया जाएगा ; बशर्ते कि हेतुक या हेतुकों जिसके लिए ऐसे हटाए जाने की अपेक्षा है, ऐसे समावेदन में विस्तार से कथित होगा और प्रत्येक सदन की पत्रिका में लिखा जाएगा ; और यह और भी है कि हेतुक या हेतुकों को इस प्रकार हटाए जाने के लिए आशयित न्यायाधीश को अधिसूचित किया जाएगा और उसे किसी सदन के समक्ष अपनी निजी प्रतिरक्षा में सुनवाई के लिए स्वीकार किया जाएगा और ऐसे सभी मामलों में मत हां और नहीं में लिया जाएगा और क्रमशः प्रत्येक सदन की पत्रिका में लिखा जाएगा ।"

(ग) अनुच्छेद 5, धारा 1क : उच्चतम न्यायालय द्वारा तीसरा तरीका :

टैक्सास संविधान का अनुच्छेद 5 (न्यायिक विभाग) धारा 1क न्यायमूर्तियों और न्यायाधीशों की

सेवानिवृत्ति, परिनिन्दा, हटाए जाने और प्रतिकर तथा न्यायिक आचरण और कार्यवाही पर राज्य आयोग के भी संबंध में है । इसमें बहुत विस्तार से उपबंध है जिसे हम अब निर्दिष्ट करेंगे ।

अनुच्छेद 5, धारा 1क, उपधरा (6) में अनुशासन और हटाए जाने की प्रक्रिया का उपबंध है । उपधारा (6) में यह कथन है कि न्यायाधीश को टैक्सास उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रख्यापित नियमों के जानबूझ कर या लगातार अतिक्रमण, पद के कर्तव्यों का पालन करने में अक्षमता, न्यायिक आचरण संहिता का जानबूझ कर अतिक्रमण या जानबूझ कर या सतत आचरण जो न्यायाधीशों के कर्तव्यों के उचित पालन के लिए खुलमखुल्ला असंगत है या जहां ऐसे आचरण से जनता में न्यायपालिका या न्यायिक प्रशासन के प्रति अविश्वास पैदा होता है, के लिए पद से हटाया जा सकता है । इसमें यह भी कथन है कि न्यायाधीश को महापराध या पदीय अवचार वाले उपापराध से आरोपित अपराध के लिए राज्य या फेडरल ग्रांड जूरी द्वारा अभ्यारोपित किए जाने पर पद से हटाए जाने के बदले अनुशासित या परिनिन्दित किया जा सकता है या तुरन्त वेतन सहित या वेतन के बिना निलम्बित किया जा सकता है । परिवाद फाइल करने पर आयोग संबद्ध न्यायाधीश को नोटिस दे देगा और आयोग उपस्थित होने और सुने जाने का भी अवसर प्रदान करेगा तथा वह न्यायाधीश को पद से निलम्बन के लिए उच्चतम न्यायालय को सिफारिश कर सकेगा । उच्चतम न्यायालय ऐसे अपीलों के अभिलेख और आयोग की सिफारिश पर विचार करने के पश्चात् आरोप के अंतिम निपटान किए जाने तक वेतन के साथ या वेतन के बिना पद से व्यक्ति को निलम्बित कर सकेगा ।

यह अनुच्छेद 5 की धारा 1क की उपधरा (6) के उप-खण्ड (क) में अंतर्विष्ट है ।

उप-खण्ड (ख) में यह कथन है कि उप-खण्ड (क) को निर्दिष्ट पद धारण करने वाला कोई व्यक्ति जो सेवानिवृत्त प्रसुविधाओं का पात्र है, स्वैच्छिक रूप से सेवानिवृत्ति ले सकता है और ऐसा कोई व्यक्ति जो इस प्रकार पात्र नहीं है, को अपने कर्तव्यों के पालन में गंभीर रूप से हस्तक्षेप करने वाले निर्योग्यता के लिए जो स्थायी प्रकृति का है या होने की संभावना है, पद से हटाया जा सकेगा । उपधारा (7) आयोग को प्रारम्भिक अन्वेषण करने या साक्षियों को उपस्थित होने और दस्तावेज़ पेश करने का आदेश देने की शक्ति प्रदान करती है

उपधारा (8) में यह कथन है कि आवश्यक समझे गए ऐसे अन्वेषण के पश्चात् आयोग

स्वविवेकानुसार प्राइवेट या पब्लिक भर्त्सना, चेतावनी, धिग्दंड या यह अपेक्षा कि व्यक्ति अतिरिक्त प्रशिक्षण या शिक्षा ग्रहण करे, जारी कर सकता है या यदि आयोग यह अवधारित करता है कि स्थिति के लिए ऐसी कार्रवाई करना आवश्यक है तो वह औपचारिक प्रक्रिया संस्थित कर सकता है और सार्वजनिक परिनिन्दा, किसी व्यक्ति को हटाए जाने या सेवानिवृत्ति से संबंधित उसके समक्ष औपचारिक सुनवाई का आदेश दे सकता है । उपधारा (8) में यह कथन है कि आयोग यथास्थिति, सार्वजनिक परिनिन्दा का आदेश या पुनर्विलोकन अधिकरण को हटाए जाने या सेवानिवृति की सिफारिश कर सकता है ।

उपधारा (9) में पुनर्विलोकन अधिकरण का उपबंध है जो सात न्यायाधीशों या अपील न्यायालय के न्यायाधीशों से मिलकर बनेगा जिनका चयन उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा काफी लोगों में से किया गया है । उक्त अधिकरण न्यायाधीश के हटाए जाने या सेवानिवृत्ति के लिए आयोग की सिफारिशों का पुनर्विलोकन करेगा ।

उपधारा (10) में यह उपबंध है कि आयोग के समक्ष फाइल किए गए सभी कागजात और प्रक्रियाएं गोपनीय होंगी जब तक विधि द्वारा अन्यथा उपबंधित न हों और आयोग के समक्ष कागजात फाइल करने और परिसाक्ष्य देने का विशेषाधिकार होगा जब तक विधि द्वारा उपबंधित न हो । तथापि आयोग अपनी किसी कारवाई के दौरान किसी समय सार्वजिनक कथन जारी कर सकता है जब आयोग के भीतर के स्रोत न्यायाधीश या आयोग से संबंधित बदनामी कारित करते हों और आयोग यह अवधारित करता है कि ऐसा कथन जारी करने से न्यायाधीश या लोक का सर्वोत्तम हित हो ।

उपधारा (11) में यह कथन है कि उच्चतम न्यायालय आयोग और पुनर्विलोकन अधिकरण तथ उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए नियम बनाएगा ।

उपधारा (13) में यह कथन है कि धारा 1क संविधान में अन्यत्र उपबंधित पद धारित करने वाले व्यक्ति की हटाए जाने का अनुकल्पी और संचयी तरीका है ।

इस प्रकार, टैक्सास संविधान में न्यायाधीशों के हटाए जाने के तीन तरीके, एक महाभियोग द्वारा (अनुच्छेद 15, धारा 1,2); दूसरा राज्यपाल को समावेदन द्वारा (अनुच्छेद 15, धारा 8) और तीसरा उच्चतम न्यायालय को सिफारिश कर आयोग द्वारा (अनुच्छेद 5, 1क) उपबंधित हैं ।

टैक्सास नियम :

हम आगे न्यायाधीशों के हटाए जाने या सेवानिवृत्ति के प्रक्रियागत नियमों का उल्लेख करेंगे । जैसा पहले कहा गया है, आयोग को गौण उपाय पारित करने के लिए प्राधिकृत किया गया है लेकिन यदि वह यह आवश्यक समझता है कि न्यायाधीश को हटाया या सेवानिवृत्त किया जाए तो वह मामला उच्चतम न्यायालय को निर्दिष्ट करेगा जो इसे पुनर्विलोकन अधिकरण को निर्दिष्ट करता है । हम अब उन नियमों को निर्दिष्ट करेंगे जिनका अनुसरण न्यायाधीशों के हटाए जाने या सेवानिवृत्ति के प्रयोजन के लिए किया जाता है ।

नियम 3 में प्रारम्भिक अन्वेषण का उपबंध है । यह सत्यापित कथन की प्राप्ति पर या स्वप्रेरणा से या अन्यथा पर आयोग द्वारा बनाया जाता है । इसका अभिप्राय यह पता लगाने के लिए है कि क्या अवचार या निर्योग्यता का अभिकथन निराधार या निरर्थक है । यदि यह ऐसा है तो आयोग प्रक्रिया को समाप्त कर देगा । नियम 4 के अधीन पूरे अन्वेषण के लिए प्रक्रिया उपदर्शित है । यदि प्रारम्भिक अन्वेषण से यह पता चलता है कि अधिकथन निराधार या निरर्थक नहीं हैं या यदि पर्याप्त हेतुक विद्यमान है कि पूरी जांच की अपेक्षा है कि क्या न्यायाधीश जानबूझ कर या सतत आचरण का दोषी है जो उसके कर्तव्यों के पालन के अस्पष्टतः असंगत है या न्यायपालिका या न्याय-प्रशासन पर लोगों को अविश्वास पैदा करता है या जहां निर्योग्यता उसके कर्तव्यों के पालन में गंभीर रूप से हस्तक्षेप करती है जो अस्थायी प्रकृति की है या होने की संभावना है तो आयोग पूरा अन्वेषण करेगा । इसके पश्चात् वह न्यायाधीश को सूचित करेगा और उससे जवाब मांगेगा । धारा 5 में नोटिस के जारी किए जाने, सफीना के तामीली या वापिसी का उपबंध है । धारा 6 आयोग को न्यायाधीश को अनौपचारिक रूप से उपस्थित होने का प्रस्ताव करने के समर्थ बनाता है और यह गोपनीय रखा जाता है ।

नियम 9 न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से विशेष पुनर्विलोकन न्यायालय, जो सुनवाई करेगा, की नियुक्त करने की मांग करने को समर्थ बनाता है । विशेष न्यायालय आयोग के आदेश को खारिज, पुष्ट या उपान्तरित कर सकेगा या औपचारिक कार्यवाही आरंभ करने का निदेश दे सकेगा ।

नियम 10 में आयोग द्वारा अन्वेषण पूरा किए जाने के पश्चात् औपचारिक कार्यवाहियों का

उपबंध है जहां वह यह समझता है कि औपचारिक कार्यवाहियां आवश्यक हैं । तब न्यायाधीश द्वारा उत्तर फाइल करने की और तब यह पता लगाने की सुनवाई करने की प्रक्रिया है कि क्या हटाए जाने या सेवानिवृत्ति के आधार हैं । सिविल मामलों के विचारण की तरह सभी विधिक साक्ष्य प्राप्त किया जाएगा । न्यायाधीश के प्रक्रियागत अधिकारों में साक्ष्य प्रस्तुत कर युक्तियुक्त अवसर का अधिकार, अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित होने का अधिकार और साक्षियों की परीक्षा और प्रतिपरीक्षा का अधिकार या मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करने या साक्षियों की उपस्थिति चाहने का अधिकार है । यदि न्यायाधीश को उन्मत्त या अक्षम अधिनिर्णीत किया जाता है तो वादार्थ संरक्षक नियुक्त किया जाएगा । आयोग एक या अन्य माध्यम से मत दे सकता है और पुनर्विलोकन अधिकरण को हटाए जाने या सेवानिवृत्ति की सिफारिश कर सकता है या आयोग मामले को खारिज कर सकता है या सार्वजनिक रूप से परिनिन्दा, धिग्दंड, चेतावनी या भर्त्सना का आदेश दे सकता है । पुनर्विलोकन अधिकरण के सात सदस्यों में से हटाए जाने या सेवानिवृत्ति की सिफारिश के लिए छह मत अपेक्षित हैं ।

नियम 13 के अधीन पुनर्विलोकन अधिकरण के आदेश के विरुद्ध टैक्सास के उच्चतम न्यायालय में अपील का उपबंध है ।

नियम 15 में महापराध या जहां उसे पदीय अवचार के उपापराध से आरोपित किया जाता है, के लिए राज्य या फेडरल ग्रॉड जूरी द्वारा अभ्यारोपण के मामले में न्यायाधीश के निलम्बन का उपबंध है ।

नियम 17 में आयोग के समक्ष फाइल सभी कागज़ातों और कार्यवाहियों की बाबत कार्यवाहियों की गोपनीयता और विशेषाधिकार का उपबंध है ।

टैक्सास ने कई कानूनों वाली पृथक् न्यायिक आचरण संहिता पारित की है ।

अतः यह देखने में आता है कि कनेक्टीकट की तरह टैक्सास में न्यायाधीशों के हटाए जाने के तीन तरीके हैं ।

विस्कोनसिन राज्य न्यायालयः

यहां भी संविधान में हटाए जाने के तीन तरीकों का उपबंध है ।

पहला तरीका: महाभियोग :

विस्कोनसिन संविधान के अनुच्छेद 7 में न्यायिक शाखा का उपबंध है जिसकी धारा 1 महाभियोग विचारण के बारे में है । उस धारा में यह कथन है कि महाभियोग का विचारण सीनेट में होगा। सीनेट की सभा को पद के भ्रष्ट आचारण या अपराध और उपापराध के लिए राज्य के सभी सिविल अधिकारियों पर महाभियोग करने की शक्ति होगी । इसमें यह कहा गया है कि महाभियोग निर्वाचित सभी सदस्यों के बहुमत से होगा । कोई भी न्यायिक अधिकारी अपने महाभियोग लगाए जाने के पश्चात् अपनी दोषमुक्ति तक अपने पद का प्रयोग नहीं करेगा । महाभियोग के विचारण के पूर्व न्यायालय के सदस्य साक्ष्य के अनुसार महाभियोग का सत्य और निष्पक्ष विचारण के लिए शपथ या प्रतिज्ञान लेंगे । किसी व्यक्ति को उपस्थित दो-तिहाई सदस्यों की सहमति के बिना दोषसिद्ध नहीं किया जाएगा । महाभियोग के मामलों में निर्णय पद से हटाए जाने या राज्य के अधीन सम्मान, लाभ या न्यास के किसी पद को धारित करने के लिए निर्रहित करने के अलावा विस्तारित नहीं होगा । लेकिन महाभियोगित पक्षकार विधि के अनुसार अभ्यारोपण, विचारण और दण्ड का दायी होगा ।

दूसरा तरीका : समावेदन :

अनुच्छेद 7 की धारा 13 में संबोधन द्वारा (अप्रैल, 1974 और अप्रैल, 1979 में यथा संशोधित) न्यायमूर्तियों और न्यायाधीशों के हटाए जाने का उपबंध है । इसमें यह कहा गया है कि किसी न्यायमूर्ति या न्यायाधीश को विधानमंडल के दोनों सदनों के समावेदन द्वारा पद से हटाया जा सकेगा यदि प्रत्येक सदन के निर्वाचित सभी सदस्यों के दो-तिहाई सदस्य इससे सहमत हैं लेकिन इस धारा के आधार पर कोई भी व्यक्ति तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक परिवादग्रस्त न्यायमूर्ति या न्यायाधीश को समावेदन के आधार के रूप में आरोपों की प्रति तामील नहीं की जाती है और उसे सुने जाने का अवसर होगा । हटाए जाने के प्रश्न पर हां और नहीं पत्रिका में लिखा जाएगा ।

तीसरा तरीका: विस्कोनसिन का संविधान उच्चतम न्यायालय द्वारा हटाए जाने समेत सभी प्रकार के उपायों की अनुज्ञा देता है ;

अप्रैल, 1997 से यथा सम्मिलित संविधान के अनुच्छेद 7 की धारा 11 में यह कथन है कि प्रत्येक न्यायमूर्ति या न्यायाधीश विधि द्वारा विधानमंडल द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसरण में उच्चतम न्यायालय द्वारा हेतुक या निर्योग्यता के लिए धिग्दंड, परिनिन्दा, निलम्बन, हटाया जाने के अध्यधीन

होगा । ऐसे किसी न्यायमूर्ति या न्यायाधीश जिसे हेतुक के लिए हटाया गया है, पुनर्नियुक्ति या अस्थायी सेवा का पात्र होगा । यह धारा इस अनुच्छेद की धारा 1 और 13 और अनुच्छेद 13 की धारा 12 में उपबंधित हटाए जाने के तरीकों का अनुकल्पी और संचयी है । (अनुच्छेद 13 की धारा 12 न्यायाधीशों के संबंध में नहीं है क्योंकि यह निर्वाचित अधिकारियों को वापस बुलाने के बारे में है।)

विस्कोनसिन विधानमंडल ने उच्चतम न्यायालय के स्वतंत्र अधिकरण के रूप में न्यायिक आयोग सृजित करने के लिए 1979 में विधि बनाई । कानूनी प्रक्रिया विस्कोनसिन कानूनों की धारा 757.81 से 757.99 पर पाई जाती है । आयोग ने नियम बनाए, आंतरिक नीतियों और प्रक्रियाओं के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत अपनाए ।

कानूनों की धारा 757.83 में न्यायिक आयोग के गठन का उपबंध है । धारा 757.85 में अन्वेषण (न्यायाधीश को नोटिस देने के साथ) और अभियोजन का उपबंध है जैसा ट्रिनीडाड और टोबेगो (रीज़ बनाम क्रेन, 1994 (1) आल इग्लैंड रिपोर्टर 833) से न्यायाधीश के मामले में पहले ही निर्दिष्ट प्रिवी कौंसिल के निर्णय में कहा गया है । उक्त धारा में अन्वेषण के प्रक्रम पर भी न्यायाधीश को अवसर देने का उपबंध है । यह इस प्रकार है:-

"757.85 अन्वेषण;अभियोजन.

(1) (क) आयोग किसी न्यायाधीश या सर्किट या अनुपूरक न्यायालय कमिश्नर के किसी संभाव्य अवचार या स्थायी निर्योग्यता का अन्वेषण करेगा । संविधान के अनुच्छेद 7, धारा 11 के अधीन, अवचार हेतुक दर्शित करता है । पैरा (ख) में यथाउपबंधित के सिवाय न्यायाधीश, सर्किट या अनुपूरक न्यायालय कमिश्नर, लिपिक, न्यायालय रिपोर्टर, न्यायालय कर्मचारी और अटर्नी इस धारा के अधीन अन्वेषण के संबंध में सूचना, दस्तावेज़ और अन्य सामग्री के लिए आयोग के अनुरोध का पालन करेंगे ।

(ख) ऐसा न्यायाधीश या सर्किट या अनुपूरक न्यायालय कमिश्नर जो अन्वेषणाधीन है,भाग (क) के अधीन अनुरोध प्रक्रिया के अध्यधीन नहीं है बल्कि उप(2) के अधीन सपीना प्रक्रिया के अध्यधीन है ।

(2) आयोग साक्षियों की उपस्थिति और परिसाक्ष्य के लिए विवश करने और इस धारा के अधीन अन्वेषण के संबंध में सपीना में नामनिर्दिष्ट पुस्तकों, कागज़ातों, दस्तावेज़ों या अमूर्त वस्तुओं के पेश करने के लिए सपीना जारी कर सकेगा ।

(3) आयोग किसी न्यायाधीश या सर्किट या अनुपूरक न्यायालय कमिश्नर को अधिसूचित कर सकेगा कि आयोग न्यायाधीश या सर्किट या अनुपूरक न्यायालय कमिश्नर के संभाव्य अवचार या अस्थायी निर्योग्यता का अन्वेषण कर रहा है । संभाव्य हेतुक का निष्कर्ष निकालने के पूर्व आयोग परिवाद या अर्जी के सार की अधिसूचना न्यायाधीश या सर्किट या अनुपूरक न्यायालय कमिश्नर को देगा और न्यायाधीश या सर्किट या अनुपूरक न्यायालय कमिश्नर को जवाब देने का अवसर प्रदान करेगा । यदि न्यायाधीश या सर्किट या अनुपूरक न्यायालय कमिश्नर जवाब देता है तो आयोग संभाव्य हेतुक निकालने के पूर्व जवाब पर विचार करेगा ।

(4) आयोग ऐसे न्यायाधीश या सर्किट या अनुपूरक न्यायालय कमिश्नर से जो स्थायी निर्योग्यता के लिए अन्वेषणाधीन है कि आयोग द्वारा व्यवस्थित चिकित्सा परीक्षा के समक्ष प्रस्तुत हो अपेक्षा करेगा ।

(5) आयोग संभाव्य हेतुक का निष्कर्ष निकाल कर कि न्यायाधीश या सर्किट या अनुपूरक न्यायालय कमिश्नर अवचार में लगा है या अवचार कर रहा है, उच्चतम न्यायालय में औपचारिक परिवाद फाइल करेगा । इस संभाव्य हेतुक के निष्कर्ष पर कि न्यायाधीश या सर्किट या अनुपूरक न्यायालय कमिश्नर स्थायी निर्योग्य है, आयोग उच्चतम न्यायालय में अर्जी फाइल करेगा । यदि आयोग धारा 757.87(1) के अधीन जूरी का अनुरोध करता है तो अनुरोध के साथ औपचारिक परिवाद या अर्जी लगी होनी चाहिए ।

(6) आयोग किसी अवचार या स्थायी निर्योग्यता के किसी मामले में अभियोजन चलाएगा जिसमें वह औपचारिक परिवाद या अर्जी फाइल करता है ।

(7) यावत्साध्य सिविल कार्रवाईयों को लागू प्रक्रियाएं परिवाद या अर्जी फाइल करने के पश्चात् धारा 757.81 से 757.99 के अधीन कार्रवाइयों को लागू होंगी ।"

धारा 757.89 में यह कथन है कि परिवाद या अर्जी के अभिकथन "साक्ष्य जो स्पष्ट, समाधानप्रद और विश्वासोपादक है ", द्वारा युक्तियुक्त निश्चितता के मानक के अनुसार साबित किया जाना चाहिए । यदि सुनवाई पैनल द्वारा की जाती है तो पैनल तथ्य का निष्कर्ष, विधि का नतीजा निकालेगा और अवचार या समुचित कार्रवाई या स्थायी निर्योग्यता के लिए समुचित अनुशासन के संबंध में सिफारिश करता है और उच्चतम न्यायालय के पास सिफारिश करते हुए निष्कर्ष और नतीजा फाइल करेगा ।

धारा 757.99(1) में यह कथन है कि उच्चतम न्यायालय तथ्य के निष्कर्ष, विधि के नतीजे और धारा 757.89 के अधीन सिफारिशों का पुनर्विलोकन करेगा और स्थायी निर्योग्यता के मामलों में समुचित कार्रवाई करने और अवचार के मामलों में समुचित अनुशासन अवधारित करेगा । उच्चतम न्यायालय ने सिविल मामलों को लागू उच्चतम न्यायालय के नियम इस धारा की पुनर्विलोकन कार्यवाहियों को लागू होंगे ।

धारा 757.93 कार्यवाहियों की गोपनीयता के संबंध में है । इसकी उपधारा (1) के उपखण्ड (क) में यह कथन है कि आयोग द्वारा अर्जी या औपचारिक परिवाद फाइल करने के पूर्व अवचार या स्थायी निर्योग्यता से संबंधित धारा 757.81 से 757.99 के अधीन सभी कार्यवाहियां तब तक गोपनीय हैं जब तक न्यायाधीश या सर्किट आयोग को लेखबद्ध रूप में गोपनीयता के अधिकार का अधित्यजन नहीं करता है । ऐसा कोई अधित्यजन उपखण्ड (ख) के अधीन सूचना देने वाले किसी व्यक्ति की गोपनीयता या पहचान को प्रभावित नहीं करता है ।

धारा 757.93 की उपधारा (1) के उपखंड (ख) में यह कथन है कि ऐसा कोई व्यक्ति जो आयोग को संभाव्य कदाचार या स्थायी निर्योग्यता से संबंधित सूचना देता है, अनुरोध कर सकता है कि आयोग उच्चतम न्यायालय के समक्ष अर्जी या औपचारिक परिवाद फाइल करने के पूर्व न्यायाधीश या सर्किट को उसकी पहचान नहीं बताएगा ।

धारा 757.93 की उपधारा (2) में यह कथन है कि यदि औपचारिक परिवाद या अर्जी फाइल करने के पूर्व संभाव्य अवचार या स्थायी निर्योग्यता के अन्वेषण की जानकारी जनता को हो जाती है तो आयोग पूर्व निर्णय के बिना न्यायाधीश या सर्किट को निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार को स्पष्ट करने के लिए और यह कहते हुए कि न्यायाधीश या सर्किट अभिकथनों का खण्डन करता है और

यह कहने के लिए कि अन्वेषण पूरा हो गया है, आनुशासनिक कार्यवाहियों के प्रक्रियागत पहलुओं के संबंध में अन्वेषण के लम्बित होने की पुष्टि करने के लिए कथन जारी कर सकता है कि सार्वजिनक गलत सूचना को सही करने के लिए कोई संभाव्य हेतुक नहीं पाया गया है ।

धारा 757.94 विशेषाधिकार और उन्मुक्ति के संबंध में है । उपधारा (1) में यह कथन है कि आयोग या इसके कर्मचारी या पैनल के समक्ष न्यायिक अवचार या स्थायी निर्योग्यता अभिकथित करने वाला परिवाद या संसूचना तथा धारा 757 के अधीन अन्वेषण में किया गया परिसाक्ष्य विशेषाधिकारगत है । आयोग या पैनल के सदस्य धारा 757.81 से 757.99 के अधीन अपने पदीय कर्तव्यों के अनुक्रम में किए गए किसी आचरण के लिए लोक दायित्व से उन्मुक्त होंगे ।

धारा 757.95 में उच्चतम न्यायालय द्वारा अस्थायी निलम्बन का उपबंध है । इसमें यह कथन है कि उच्चतम न्यायालय आयोग द्वारा औपचारिक परिवाद या अर्जी के फाइल किए जाने का अनुसरण करते हुए किसी न्यायाधीश या सर्किट को कार्यवाहियों के औपचारिक अवधारण के लम्बित रहने तक किसी न्यायाधीश या सर्किट की शक्तियों का प्रयोग करने से मना कर सकता है ।

अतः यह देखने में आता है कि विस्कोनसिन ने दोहरी-प्रणाली का उपबंध है । अन्वेषणात्मक कृत्य न्यायिक आयोग के समक्ष होते हैं जो यह अवधारित करता है कि क्या यह निष्कर्ष निकालने का संभाव्य हेतुक है कि अवचार या निर्योग्यता है । यदि अवचार या निर्योग्यता का प्रथमदृष्टया सबूत है तो आयोग विस्कोनसिन उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश के विरुद्ध परिवाद आरंभ करता है जिस प्रयोजन के लिए तथ्य और विधि के मुद्दों को विनिश्चित करने के लिए उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों में से न्यायाधीशों का एक पैनल गठित किया जाएगा और पैनल उच्चतम न्यायालय को अपनी सिफारिशें करता है जो अन्तिम आदेश पारित करने के लिए इसका पुनर्विलोकन करता है । अन्वेषण के प्रक्रम समेत सभी प्रक्रमों पर न्यायाधीश का प्रतिनिधित्व कोई काउन्सेल करता है । कभी-कभी मामला पैनल को निर्दिष्ट करने के पूर्व आयोग जिसने परिवाद का अन्वेषण किया है, आरंभ में अन्वेषण से उद्भूत विनिर्दिष्ट बात पर चर्चा करने के लिए न्यायाधीश को आमंत्रित भी कर सकता है ।

आयोग न्यायिक अवचार या न्यायिक नीति संहिता के प्रश्नों पर औपचारिक सलाहकारी राय नहीं देता है । ऐसी राय न्यायिक आचार सलाहकारी समिति द्वारा दी जाती है जैसा उच्चतम न्यायालय नियम के परिशिष्ट अध्याय 60 में वर्णित है ।

अध्याय 18

भारत का उच्चतम न्यायालय : न्यायिक जीवन के मूल्यों का पुर्नकथन और आंतरिक प्रक्रिया (1997)

इस अध्याय में हम (क) न्यायिक जीवन के मूल्यों के पुर्नकथन और (ख) 1997 में पारित न्यायपालिका के भीतर आंतरिक प्रक्रिया विषय पर भारत के उच्चतम न्यायालय के दो महत्वपूर्ण संकल्पों की चर्चा करेंगे ।

(क) न्यायिक जीवन के मूल्यों का पुर्नकथन

" संकल्प

भारत के उच्चतम न्यायालय के पूर्ण न्यायालय बैठक में 7 मई, 1997 को निम्नलिखित दो संकल्प स्वीकार किए गए ।

यह संकल्प किया गया कि आंतरिक प्रक्रिया भारत के माननीय मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा ऐसे न्यायाधीशों के विरुद्ध उपर्युक्त उपचारात्मक कार्रवाई करने के लिए बनाई जानी चाहिए जो अपने लोप या कार्य द्वारा "न्यायिक जीवन के मूल्यों का पुर्नकथन" में उपदर्शित मानकों समेत न्यायिक जीवन के सार्वभौमिक स्वीकार्य मूल्यों को नहीं अपनाते ।

यह भी संकल्प किया गया कि प्रत्येक न्यायाधीश को पद ग्रहण करने के युक्तियुक्त समय के भीतर और पीठासीन न्यायाधीश के मामले में इस संकल्प के स्वीकार किए जाने के युक्तियुक्त समय के भीतर भू-संपदा या विनिवेश के रूप में अपनी सभी आस्तियों (अपने निजी नाम में या अपने पति/पत्नी के नाम में या उस पर आश्रित किसी व्यक्ति द्वारा धारित) की घोषणा करनी चाहिए और इसके पश्चात् जब तक कि किसी सारवान प्रकृति का कोई अर्जन किया जाता है तो इसे युक्तियुक्त समय के भीतर प्रकट किया जाएगा । इस प्रकार की गई घोषणा अभिलेख के प्रयोजन के लिए घोषणा के समरूप होनी चाहिए । यथास्थिति, न्यायाधीश या मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा की गई घोषणा गोपनीय रखी जाएगी ।

सितम्बर 18-19, 1992 को नई दिल्ली में हुए मुख्य न्यायमूर्तियों के सम्मेलन में पारित संकल्प द्वारा यह संकल्प किया गया था कि न्यायाधीशों द्वारा उनकी पदावधि के दौरान अपनाए जाने वाले

न्यायिक जीवन के उच्च मूल्यों को प्रतिबिम्बित करने वाले पूर्व विद्यमान और सर्व स्वीकार्य मानकों, मार्गदर्शक सिद्धांतों और कन्वेंशनों को पुनः कहना वांछनीय है;

और उस संकल्प द्वारा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से आगे यह अनुरोध किया गया कि अपने सहयोगियों के साथ चर्चा के लिए उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों को परिचालानार्थ प्रारूप पुनः कथन तैयार करने की समिति गठित करें जिसे सम्यक् रूप से 21.11.1993 को परिचालित किया गया;

और अपने सहयोगियों से चर्चा के पश्चात् उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों से सुझाव प्राप्त हो गए हैं;

और मुख्य न्यायमूर्तियों के सम्मेलन 1992 में पारित संकल्प के अनुसरण में नियुक्त समिति द्वारा तैयार की गई न्यायिक जीवन के मूल्यों के पुर्नस्थापन के प्रारूप को ध्यान देने और 1993 में मुख्य न्यायमूर्तियों के सम्मलेन के समक्ष रखने के पश्चात् "न्यायिक जीवन के मूल्यों का पुर्नकथन" को अंतिम रूप देने के लिए 7 अप्रैल, 1997 को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति ने एक समिति पुनः गठित की;

और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा गठित ऐसी समिति ने ऐसे प्रारूप जो विभिन्न उच्च न्यायालयों को परिचालित किया गया था, से प्राप्त मतों पर विचार करने के पश्चात् पुनःकथन प्रारूप तैयार किया ।

अतः, अब प्रारूप पर उच्च न्यायालयों के मतों पर विचार करने पर स्वतंत्र, ठोस और सम्मानीय न्यायपालिका के लिए आवश्यक, न्याय के निष्पक्ष प्रशासन में अनिवार्य न्यायाधीशों द्वारा अपनाए जाने हेतु मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में "न्यायिक जीवन के मूल्यों के पुर्नकथन" नामक पूर्वविद्यमान और सर्वस्वीकार्य मानकों, मार्गदर्शक सिद्धातों और कंवेंशनों के पुर्नकथन को जिसे फिर से प्रारूपित किया गया पर भारत के उच्चतम न्यायालय की पूर्ण न्यायालय बैठक में 7 मई, 1997 को विचार किया गया और सम्यक् अनुपालन के लिए स्वीकार किया गया ।

न्यायिक जीवन के मूल्यों का पुर्नकथन

(1) न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि यह भी दिखाई पड़ना चाहिए कि न्याय किया

गया है । उच्च न्यायपालिका के सदस्यों का व्यवहार और आचरण न्यायपालिका की निष्पक्षता में लोगों की आस्था को पुष्ट बनाने वाला होना चाहिए । तद्नुसार उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को ऐसे किसी कार्य, चाहे पदीय या व्यक्तिगत हैसियत में हो जो इस अवधारणा की विश्वसनीयता को खोता हो, से बचना चाहिए ।

(2) किसी न्यायाधीश को किसी क्लब, सोसायटी या अन्य संगम के किसी पद का निर्वाचन नहीं लड़ना चाहिए; इसके अतिरिक्त वह विधि से जुड़े किसी सोसायटी या संगम के सिवाय ऐसा निर्वाचित पद नहीं धारित करेगा ।

(3) विधिज्ञ वर्ग के सदस्य, विशेषकर जो उसी न्यायालय में प्रैक्टिस कर रहे हैं, के गहरे संबंध से बचना चाहिए ।

(4) न्यायाधीश को अपने अव्यवहित कुटुम्ब के किसी सदस्य जैसे पति-पत्नी, पुत्र, पुत्री, दामाद या बहू या कोई अन्य निकट-संबंधी, यदि वह विधिज्ञ वर्ग का सदस्य है, अपने समक्ष उपस्थित होने या अपने साथ किसी मामले में किसी रीति से सहबद्ध होने की भी अनुज्ञा नहीं देनी चाहिए ।

(5) उसके कुटुम्ब के किसी सदस्य जो विधिज्ञ वर्ग का सदस्य है, को उस आवास जिसमें न्यायाधीश वस्तुतः रहता है या वृत्तिक कार्य के लिए अन्य प्रसुविधाओं का उपयोग करने की अनुज्ञा नहीं दी जानी चाहिए ।

(6) न्यायाधीश को अपने पद की गरिमा के अनुकूल अलग रहने की आदत डालनी चाहिए ।

(7) न्यायाधीश ऐसे मामले की सुनवाई या विनिश्चय नहीं करेगा जिससे उसके कुटुम्ब का कोई सदस्य, निकट संबंधी या मित्र जुड़ा हो ।

(8) न्यायाधीश सार्वजनिक बहस या राजनीतिक विषयों पर सार्वजनिक रूप से अपना मत व्यक्त करने या ऐसे मामलों पर जो लम्बित हैं या न्यायिक अवधारण के लिए उद्भूत होने वाले हैं,भाग नहीं लेगा ।

(9) न्यायाधीश से अपना निर्णय स्वयं सुनाने की प्रत्याशा है । वह मीडिया को साक्षात्कार नहीं देगा ।

(10) न्यायाधीश अपने कुटुम्ब, निकट संबंधी या मित्र के सिवाए भेंट या उपहार स्वीकार नहीं करेगा ।

(11) कोई न्यायाधीश कंपनी की ऐसे मामले की सुनवाई या विनिश्चय नहीं करेगा जिसमें उसका शेयर है जब तक उसने अपना हित प्रकट न कर दिया हो और मामले में उसकी सुनवाई और विनिश्चय करने की कोई आपत्ति न उठाई गई हो ।

(12) कोई न्यायाधीश शेयर, स्टाक या ऐसी ही चीज़ों में सट्टेबाज़ी नहीं करेगा ।

(13) किसी न्यायाधीश को स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति के सहयोग से व्यापार या कारबार में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष नहीं लगाना चाहिए । (विधिक शोध ग्रंथ का प्रकाशन या शौक की प्रकृति के किसी क्रियाकलाप का अर्थ व्यापार या कारबार नहीं लगाया जाएगा) ।

(14) किसी न्यायाधीश को किसी प्रयोजन के लिए कोई निधि उगाहने के लिए स्वयं को संक्रिय रूप से सहबद्ध करते हुए अभिदाय की मांग, स्वीकार या अन्यथा नहीं करनी चाहिए ।

(15) किसी न्यायाधीश को अपने पद से सहबद्ध लाभ या विशेषाधिकार के रूप में किसी वित्तीय फायदे की मांग नहीं करनी चाहिए जब तक यह स्पष्टतः उपलब्ध न हो । इस बाबत किसी संदेह का निवारण और स्पष्टीकरण मुख्य न्यायमूर्ति के माध्यम से किया जाए ।

(16) प्रत्येक न्यायाधीश को हमेशा सतर्क रहना चाहिए कि जनता की निगाहें उस पर लगी हैं और उसे ऐसा कोई कार्य या लोप नहीं करना चाहिए जो ऐसा उच्च पद जो वह धारण करता है और सार्वजनिक निष्ठा जो उस पद से जुड़ी हो, के अशोभनीय हो ।

ये केवल "न्यायिक जीवन के मूल्यों के पुर्नकथन हैं" और ये व्यापक नहीं हैं बल्कि मात्र निदर्शी हैं जिसकी प्रत्याशा किसी न्यायाधीश से की जाती है ।"

विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि प्रस्तावित विधि के अनुसार कानूनी आचार संहिता के प्रकाशन तक, उच्चतम न्यायालय द्वारा 7 मई, 1997 को अनुमोदित उक्त "न्यायिक जीवन के मूल्यों का पुर्नकथन" अनुसरणीय आचार संहिता होगी, जिसका भंग 'कदाचार' की कोटि का होगा । हमारे

द्वारा इसे अध्याय 20 में दोहराया गया है ।

(ख) अनुशासन और न्यायाधीशों का हटाया जाना

"आंतरिक प्रक्रिया

इस समिति का गठन ऐसे न्यायाधीशों के विरुद्ध प्रयुक्त उपचारात्मक कार्रवाई करने के लिए आंतरिक प्रक्रिया बनानी की दृष्टि से किया गया है जो अपने कार्य या लोप द्वारा न्यायिक जीवन के मूल्यों के पुर्नकथन में शामिल मानकों समेत न्यायिक जीवन के सार्वभौमिक स्वीकार्य मूल्यों को नहीं अपनाते ।

प्रायः न्यायाधीश के विरुद्ध उसके न्यायिक कृत्यों के निर्वहन से संबंधित अभिकथनों वाली परिवादें प्राप्त होती हैं । कभी-कभी न्यायालय के बाहर न्यायाधीश के आचरण और व्यवहार के संबंध में परिवादें प्राप्त होती हैं । साधारणतः परिवादें ऐसी कार्यवाहियों के पक्षकार द्वारा की जाती हैं जो न्यायाधीश द्वारा पारित प्रतिकूल आदेश से असंतुष्ट महसूस करता है या ऐसे व्यक्ति द्वारा जो न्यायाधीश के विरुद्ध व्यक्तिगत वैमनस्य रखता है । ऐसी अधिकांश परिवादें गलत ओर निरर्थक होती हैं । लेकिन ऐसी परिवादें भी हो सकती हैं जिन्हें निराधार नहीं माना जा सकता है और जिन पर गहरी जांच की आवश्यकता हो सकती है । ऐसी परिवाद जिससे किसी न्यायाधीश की स्वतंत्रता या प्रतिष्ठा पर आंच आती है, का उस उच्च न्यायपालिका की साख पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है जिसका न्यायाधीश माननीय सदस्य है । आंतरिक प्रक्रिया का अंगीकरण संस्था के भीतर समुचित स्तर पर न्यायाधीश के विरुद्ध परिवाद पर विचार किया जाना संभव बनाएगा । ऐसी प्रक्रिया दोहरा प्रयोजन पूरा करेगी । पहला, किसी न्यायाधीश के विरुद्ध अभिकथनों की जांच समकक्ष व्यक्तियों द्वारा की जाएगी न कि बाहरी अभिकरण द्वारा और इसके द्वारा न्यायपालिका की स्वतंत्रता बनी रहेगी । दूसरा, यह जानकारी कि न्यायाधीश के विरुद्ध परिवादों की परीक्षा के लिए एक तंत्र है, लोगों की न्यायिक प्रक्रिया की स्वतंत्रता और निष्पक्षता में आस्था कायम रहेगी । समिति का दृष्टिकोण इस परिप्रेक्ष्य में उसे समनुदेशित कार्य के प्रति इस प्रकार रहा ।

उच्च न्यायालय न्यायाधीश

उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश की परिवाद या तो उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति या सीधे भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा प्राप्त की जाती है । कभी-कभी ऐसी परिवाद भारत

के राष्ट्रपति को की जाती है । ऐसी परिवादें जो भारत के राष्ट्रपति को प्राप्त होती हैं, मोटे तौर पर भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को अग्रेषित की जाती हैं । समिति ऐसी परिवादों पर विचार करने के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया के अपनाए जाने का सुझाव देती है :–

(1) जहां परिवाद उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के विरुद्ध उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को प्राप्त होती है, वह इसकी परीक्षा करेगा । यदि वह यह पाता है कि यह निरर्थक है या प्रत्यक्षतः न्यायिक मामले में सारवान् विनिश्चय के गुणागुण से संबंधित है या अवचार या अनौचित्य के किसी गंभीर परिवाद से अन्तर्ग्रस्त नहीं है तो वह परिवाद फाइल करेगा और तदनुसार भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को सूचित करेगा । यदि वह यह पाता है कि परिवाद अवचार या अनौचित्य के गंभीर प्रकृति से ग्रस्त है तो वह संबद्ध न्यायाधीश से उत्तर की मांग करेगा । यदि संबद्ध न्यायाधीश के उत्तर के आलोक में परिवाद के अभिकथनों पर विचार करने पर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति का समाधान हो जाता है कि आगे किसी कार्रवाई की आवश्यकता नहीं है तो वह परिवाद फाइल करेगा और तदनुसार भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को सूचित करेगा । यदि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की यह राय है कि परिवाद के अभिकथनों पर गहरी जांच की आवश्यकता है तो वह अपनी टिप्पणी के साथ परिवाद और संबद्ध न्यायाधीश का उत्तर भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को अग्रेषित करेगा ।

(2) जब परिवाद सीधे भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को प्राप्त होती है या भारत के राष्ट्रपति द्वारा उसे अग्रेषित की जाती है तो भारत का मुख्य न्यायमूर्ति इसकी परीक्षा करेगा । यदि वह यह पाता है कि यह निरर्थक है या प्रत्यक्षतः न्यायिक मामले में सारवान् विनिश्चय के गुणागुण से संबंधित है या अवचार या अनौचित्य के किसी गंभीर परिवाद से अन्तर्ग्रस्त नहीं है तो वह इसे फाइल करेगा । तब भारत का मुख्य न्यायमूर्ति संबद्ध उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को उसकी टिप्पणी के लिए परिवाद भेजेगा । भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से परिवाद प्राप्त होने पर संबद्ध उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति संबद्ध न्यायाधीश के उत्तर की मांग करेगा । यदि संबद्ध न्यायाधीश के उत्तर के आलोक में परिवाद के अभिकथनों का विचार करने पर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति का समाधान हो जाता है कि आगे किसी कार्रवाई की आवश्यकता नहीं है या यदि उसकी

यह राय है कि परिवाद के अभिकथनों पर गहरी जांच की आवश्यकता है तो वह संबद्ध न्यायाधीश के उत्तर के कथन और अपनी टिप्पणी के साथ परिवाद भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को वापस कर देगा ।

(3) संबद्ध न्यायाधीश के उत्तर और उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की टिप्पणी के आलोक में परिवाद पर विचार करने के पश्चात् भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की यदि यह राय है कि परिवाद के अभिकथनों पर गहरी जांच की आवश्यकता है तो वह उस उच्च न्यायालय के अलावा जिसका न्यायाधीश सदस्य है, अन्य उच्च न्यायालयों के दो मुख्य न्यायमूर्तियों और एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश से मिलकर बनी तीन सदस्यों की समिति गठित करेगा । उक्त समिति परिवाद के अभिकथनों की जांच करेगी । जांच तथ्य पता करने वाली जांच की प्रकृति की होगी जिसमें संबद्ध न्यायाधीश उपस्थित होने और अपनी बात कहने का हकदार होगा । [लेकिन यह साक्षियों की परीक्षा और प्रतिपरीक्षा और अधिवक्ताओं द्वारा प्रतिनिधित्व वाली औपचारिक न्यायिक जांच नहीं होगी] ।

(4) जांच करने के लिए समिति नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों से संगत अपनी निजी प्रक्रिया बनाएगी ।

(5) ऐसी जांच के पश्चात् समिति अपना निष्कर्ष निकालेगी और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को रिपोर्ट देगी कि (क) परिवाद के अभिकथनों में कोई सार नहीं है, या (ख) परिवाद के अभिकथनों में पर्याप्त सार है और प्रकट अवचार इतना गंभीर है कि न्यायाधीश को हटाने के लिए कार्यवाही आरंभ करने की आवश्यकता है, या (ग) परिवाद के अभिकथनों में सार है लेकिन प्रकट अवचार इतनी गंभीर प्रकृति का नहीं है कि न्यायाधीश के हटाए जाने के लिए कार्यवाही आरंभ करने की आवश्यकता हो ।

समिति रिपोर्ट की प्रति संबद्ध न्यायाधीश को भी देगी ।

(6) यदि जहां समिति यह निष्कर्ष निकालती है कि परिवाद के अभिकथनों में कोई सार नहीं है वहां परिवाद भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा फाइल किया जाएगा ।

(7) यदि समिति यह निष्कर्ष निकालती है कि परिवाद के अभिकथनों में सार है और अभिकथनों से प्रकट अवचार ऐसा है कि न्यायाधीश के हटाए जाने के लिए कार्यवाही

आरंभ करने की आवश्यकता है तो भारत का मुख्य न्यायमूर्ति निम्नलिखित अनुक्रम अपनाएगा :–

(i) संबद्ध न्यायाधीश को अपना पद त्याग करने या स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने की सलाह दी जाए ।

(ii) यदि न्यायाधीश पद त्याग करने या स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेने से अपनी अनिच्छा दर्शाता है तो भारत का मुख्य न्यायमूर्ति संबद्ध उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को संबद्ध न्यायाधीश को कोई न्यायिक कार्य आवंटित न करने की सलाह देगा और भारत के राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री को सूचित किया जाएगा कि ऐसा इसलिए किया गया है क्योंकि न्यायाधीश के विरुद्ध अभिकथन को समिति ने इतना गंभीर पाया है कि हटाए जाने के लिए कार्यवाही आरंभ करने की अपेक्षा है और समिति की रिपोर्ट की प्रति संलग्न की जाए ।

(ङ) यदि समिति इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि अभिकथनों में सार है लेकिन प्रकट अवचार इतना गंभीर नहीं है कि न्यायाधीश के हटाए जाने के लिए कार्यवाही आरंभ करने की आवश्यकता हो तो भारत का मुख्य न्यायमूर्ति संबद्ध न्यायाधीश को बुलाएगा और तद्नुसार उसे सलाह देगा और यह भी निदेश देगा कि समिति की रिपोर्ट अभिलेख पर रखी जाए ।

उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति

उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के विरुद्ध परिवाद सामान्यतः भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या भारत के राष्ट्रपति को किया जाता है जो इसे भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को अग्रेषित करता है । ऐसे परिवाद के प्राप्त होने पर भारत का मुख्य न्यायमूर्ति इसकी परीक्षा करेगा और यदि वह यह पाता है कि या तो यह निरर्थक है या प्रत्यक्षतः न्यायिक मामले में सारवान् विनिश्चय के गुणागुण से संबंधित है या अवचार या अनौचित्य के किसी गंभीर परिवाद से अन्तर्ग्रस्त नहीं है तो वह किसी अतिरिक्त कार्रवाई के बिना परिवाद फाइल करेगा । यदि भारत का मुख्य न्यायमूर्ति यह पाता है कि परिवाद अवचार या अनौचित्य के गंभीर प्रकृति से ग्रस्त है तो वह परिवाद के अभिकथनों के बारे में संबद्ध मुख्य न्यायमूर्ति से जवाब मांगेगा । यदि संबद्ध मुख्य न्यायमूर्ति के जवाब के आलोक में अभिकथनों पर विचार करने पर भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का यह समाधान हो जाता है कि किसी अतिरिक्त

कार्रवाई की आवश्यकता नहीं है तो वह परिवाद फाइल करेगा । तथापि, यदि उसकी यह राय है कि परिवाद के अभिकथनों पर गहन जांच की आवश्यकता है तो वह उच्चतम न्यायालय के एक न्यायाधीश और अन्य उच्च न्यायालयों के दो मुख्य न्यायमूर्तियों से मिलकर बनी तीन सदस्यों की समिति गठित करेगा । समिति उसी पैटर्न पर जांच करेगा जैसा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के विरुद्ध परिवाद की जांच करने के लिए गठित समिति करती है और भारत का मुख्य न्यायमूर्ति समिति के निष्कर्षों के आलोक में आगे कार्रवाई उसी तरह करेगा।

उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश

यदि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के विरुद्ध परिवाद प्राप्त होता है या यदि ऐसा परिवाद भारत के राष्ट्रपति द्वारा उसे अग्रेषित किया जाता है तो भारत का मुख्य न्यायमूर्ति पहले इसकी परीक्षा करेगा और यदि वह यह पाता है कि या तो यह निरर्थक है या प्रत्यक्षतः न्यायिक मामले में सारवान् विनिश्चय के गुणागुण से संबंधित है या अवचार या अनौचित्य के किसी गंभीर परिवाद से अन्तर्ग्रस्त नहीं है तो वह किसी अतिरिक्त कार्रवाई के बिना परिवाद फाइल करेगा । यदि वह यह पाता है कि परिवाद अवचार या अनौचित्य की गंभीर प्रकृति से ग्रस्त है तो वह संबद्ध न्यायाधीश से उसका जवाब मांगेगा । यदि संबद्ध न्यायाधीश के जवाब के आलोक में अभिकथनों पर विचार करने पर भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का यह समाधान हो जाता है कि किसी अतिरिक्त कार्रवाई की आवश्यकता नहीं है तो वह परिवाद फाइल करेगा । तथापि, यदि उसकी यह राय है कि मामले में गहन जांच की आवश्यकता है तो वह उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों से मिलकर बनी एक समिति गठित करेगा । उक्त समिति उसी पेटर्न पर जांच करेगी जैसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के विरुद्ध परिवाद की जांच करने के लिए गठित समिति करती है और समिति के निष्कर्षों के आलोक में उसी तरह भारत का मुख्य न्यायमूर्ति अतिरिक्त कार्रवाई करेगा ।

समिति यह महसूस करती है कि यहां सुझाई आंतरिक प्रक्रिया कुछ हद तक यह आशंका को कम करेगा कि उच्चतर न्यायपालिका के सदस्य अपने आचरण के लिए जवाबदेह नहीं हैं । वहीं, यह उच्चतर न्यायपालिका के सदस्यों के लिए द्वेषपूर्ण कथन थोपे जाने या गलत या निरर्थक परिवादों द्वारा दूषित किए जाने के सुरक्षोपाय के रूप में भी कार्य करेगा । समिति तत्परता से यह आशा करती है कि आंतरिक प्रक्रिया अपनाए जाने का अवसर बहुत कम उद्भूत हो ।"

अध्याय 19

भारत का उच्चतम न्यायालय :

न्यायमूर्ति ए. एम. भट्टाचार्जी वाले मामले में आंतरिक प्रक्रिया

न्यायिक शाखा के भीतर आंतरिक प्रक्रिया के प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय ने सी. रामचन्द्रन अय्यर बनाम न्यायमूर्ति ए. एम. भट्टाचार्जी [1996] 4 उम. नि. प. 10= (1995) 5 एस. सी.सी. 457 वाले मामले में प्रक्रिया अधिकथित की है । हम इस मामले में अधिकथित सिद्धांतों को निर्दिष्ट करते हैं ।

वर्ष 1994-95 में मुम्बई उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति ए. एम. भट्टाचार्जी के विरुद्ध कतिपय अभिकथन किए गए । अभिकथन न्यायाधीश द्वारा लिखित लेकिन भारत के बाहर प्रकाशित कुछ पुस्तकों की बाबत कतिपय प्रकाशकों द्वारा अभिकथित रूप से संदत्त धन के बारे में था । न्यायाधीश के विरुद्ध अभिकथनों की प्रकृति के बारे में विचार करना आवश्यक नहीं है लेकिन यह कहना पर्याप्त है कि मुम्बई के विभिन्न विधिज्ञ संगमों ने न्यायाधीश के पद त्याग की मांग की । उन लोगों ने न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 के अधीन कार्रवाई करने की भी ईप्सा की । प्रैक्टिस कर रहे अधिवक्ता ने लोकहित मुकदमा के रूप में न्यायाधीश के विरुद्ध जांच या उसके पद त्याग की मांग करते हुए संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय में रिट याचिका फाइल की ।

उच्चतम न्यायालय ने मामला ग्रहण किया और विभिन्न पक्षकारों को नोटिस देने के पश्चात् उसने आंतरिक प्रक्रिया से संबंधित विभिन्न सिद्धांत विशेषकर कि क्या किया जाए यदि न्यायाधीश का आचरण ऐसा नहीं हो कि राष्ट्रपति को संसद के सदनों द्वारा समावेदन द्वारा हटाए जाने की अपेक्षा हो, अधिकथित किए ।

उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 124(4) के 'कदाचार' शब्द की व्याप्ति और अर्थ पर विचार किया और यह मत व्यक्त किया कि 'कदाचार' शब्द की परिभाषा जानबूझकर नहीं की गई है । यह एक अस्पष्ट और व्यापक शब्द है और इसके क्षेत्र के अन्तर्गत उत्तम आचरण के प्रतिकूल आचरण के विभिन्न पहलू आते हैं । न्यायालय ने 'कदाचार' शब्द के अर्थ को निर्दिष्ट किया और वृत्तिक अवचार

के मामलों में इसका अर्थ लगाया जैसे फर्स्ट ग्रेड प्लीडर वाले मामले में (ए. आई. आर. 1921 मद्रास 422) में मद्रास उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ विनिश्चय और मध्यस्थों के 'कदाचार' के संबंध में है । उसने इस आशय के कृष्णा स्वामी बनाम भारत संघ 1992 (4) ए. सी. सी. 605 के पूर्व निर्णय से उद्धरण दिया कि उच्चतर न्यायालय का प्रत्येक कार्य या आचरण अथवा निर्णय की गलती या उपेक्षापूर्ण कार्य परस्पर कदाचार की कोटि में नहीं आते हैं । न्यायिक पद का जानबूझकर दुरुपयोग, पद का जानबूझकर अवचार, भ्रष्टाचार, निष्ठा की कमी या कोई दूसरा अपराध जिसमें नैतिक अधमता अन्तर्वलित हो, कदाचार होगा । न्यायाधीश द्वारा न्यायिक कर्तव्यों के करने में लगातार असफलता अथवा जानबूझकर, उस पद का दुरुपयोग, विद्वेषपूर्ण कदाचार होगा । कदाचार न्यायाधीश द्वारा अपने न्यायिक पद के निष्पादन में अथवा उससे परे उसके आचरण में भी हो सकता है । प्रशासनिक कार्रवाईयों और लोपों में आपराधिक मनःस्थिति का होना जरूरी है ।

उच्चतम न्यायालय ने न्यायिक स्वतंत्रता, न्यायिक व्यष्टिवाद से संबंधित विभिन्न सिद्धांतों पर विचार किया । उसने कहा कि अनुच्छेद 124(4) और (5) के अधीन समावेदन द्वारा हटाए जाने की प्रक्रिया कष्टकर है और यह कि कुछ मामलों में जहां आचरण ऐसा हो कि हटाए जाने की आवश्यकता न हो, कुछ अन्य तंत्र विकसित किए जाने चाहिए ।

इस निमित्त उच्चतम न्यायालय के विचार पैरा 15 (पृष्ठ 471) में इस प्रकार हैं –

"15. संविधान निर्माताओं ने जानबूझकर किसी न्यायाधीश को उसके पद से केवल सिद्ध कदाचार अथवा असमर्थता के लिए हटाए जाने के एक तरीके के रूप में महाभियोग की जटिल प्रक्रिया अपनाई थी जिससे यह विवक्षित है कि महाभियोग की प्रक्रिया किसी न्यायाधीश के मामूली से गलत बरताव के लिए उपलब्ध नहीं है । इससे इस बात को पुनः बल मिलता है कि न्यायाधीश की स्वतंत्रता विधि शासन को कायम रखने और उसे मजबूती प्रदान करने तथा विकसित करने के लिए अति महत्वपूर्ण है । संसद् कभी-कभी केवल सिद्ध कदाचार या असमर्थता के आधर पर जो अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत गठित एक समिति द्वारा लेखबद्ध किए जाएं संविधान के अनुच्छेद 124(4) और (5),अधिनियम और तद्धीन बनाए गए नियमों में अधिकथित तरीके से राष्ट्रपति को संबोधित करके एक अत्यंत कड़े उपाय के रूप में राजनीतक प्रक्रिया द्वारा संविधान के अन्तर्गत विरचित महाभियोग का आश्रय लेती है ।"

उच्चतम न्यायालय ने ऐसे बर्ताव के सुधार के लिए तंत्र की आवश्यकता को दोहराया जिसमें राष्ट्रपति को समावेदन द्वारा हटाए जाने की आवश्यकता नहीं होती । पुनः पैरा 25-26 में इस प्रकार मत व्यक्त किया गया है –

" 25. तथापि, पदावधि की प्रत्याभूति और संविधान द्वारा उसका संरक्षण भ्रष्टाचार या घोर कदाचार को संरक्षण प्रदान नहीं करेंगे । फिर भी किसी न्यायिक अधिकारी द्वारा अपने कर्तव्यों के पालन में की गई प्रत्येक कार्रवाई या लोप, जो आवश्यक रूप से एक अच्छा आचरण नहीं है, महाभियोग का आरोप लगाए जाने के लिए कदाचार नहीं हो सकता, किन्तु इसका घातक प्रभाव व्यापक होगा और न्यायाधीश की निष्ठा और निष्पक्षता पर हानिकर प्रभाव डाल सकता है । अच्छे आचरण के साथ-साथ प्रत्येक प्रकार का कदाचार एक संवैधानिक पुनरुक्ति के रूप में महाभियोग के लिए सहायक नहीं होगा अपितु ऐसा कदाचार जो अच्छा आचरण नहीं है, अनुचित आचरण होगा जो किसी न्यायाधीश से आशयित स्तर के अनुरूप नहीं है । महाभियोग की प्रक्रिया को धमकी स्वयमेव किसी न्यायाधीश को अवचार का शिकार बना सकती है किन्तु मामूली अपराधों या किसी न्यायाधीश के अनुचित आचरण के लिए महाभियोग की प्रक्रिया का प्रयोग करना अपमानजनक होगा । एक न्यायाधीश का गलत व्यवहार संपूर्ण न्यायपालिका के सम्मान पर गंभीर प्रभाव डालता है । चूंकि न्यायपालिका की इमारत पूर्ण रूप से लोक विश्वास और सम्मान पर आधारित है, किसी हठीले न्यायाधीश का व्यवहार, संविधान द्वारा निर्मित संपूर्ण न्यायिक संरचना को ध्वस्त कर देगा ।

26. अतएव किसी न्यायाधीश के अनुचित आचरण अथवा अनुचित व्यवहार से न्यायिक प्रक्रिया की प्रभावोत्पादकता में या संस्था की गरिमा के प्रति लोक विश्वास या हठीले न्यायाधीश द्वारा धारित न्यायिक पद के प्रति उस विश्वसनीयता के ह्रास के निवारण के लिए सुधार करना जरूरी है । जब न्यायाधीश को ऐसे आचरण के लिए महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा हटाया तो नहीं जा सकता है किन्तु इससे सामान्य जनता में चारों ओर असंतोष की भावना व्याप्त है तो प्रश्न यह उठता है कि इस असंतोष की बाबत कौन कार्रवाई और इसे न्यायाधीश के संबंध में कौन निर्णय करेगा अथवा कौन उसे ऐसी बातों को दोहराने से मना करेगा अथवा उसे सम्मानपूर्वक पद त्याग की सलाह को देगा ? समुचित प्राधिकारी कौन होगा ? कौन इस

निमित्त मुख्य परिवाहक होगा ? गलत आचरण अथवा महाभियोग लगाए जाने योग्य कदाचार के बीच के अंतर को न्यायिक प्रक्रिया की प्रभावोत्पादकता में लोक विश्वास के ह्रास को समाप्त करके भरे जाने की जरूरत है । क्या उस न्यायालय का बार वर्तमान गिरे हुए स्तर को सुधारने के प्रयास में कोई भूमिका निभाता है या किसी न्यायाधीश को न्यायाधीश के पद से त्यागपत्र देने के लिए संकल्प द्वारा या सामूहिक कार्रवाई करके मांग करने का हकदार है? इन प्रश्नों के उत्तर में सांविधानिक विधि के महत्वपूर्ण और व्यावहारिक दृष्टिकोण से संबंधित प्रश्नों का उत्तर निहित है ।"

उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि न्यायाधीश (जांच) अधिनयम, 1968 के उपबंधों के सिवाय अनुच्छेद 130, 124(4) और 124(5) में संविधान में उपदर्शित समावेदन की प्रक्रिया आवश्यक विवक्षा द्वारा उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में अपने कर्तव्यों के निर्वहन में न्यायाधीश के आचरण की "चर्चा" के लिए कोई अन्य "मंच" या प्लेटफार्म उपलब्ध नहीं है । विधिज्ञ परिषद् या प्रैक्टिस कर रहे अधिवक्ताओं का समूह सार्वजिनक रूप से मुद्दे पर चर्चा नहीं कर सकता । तथापि, पैराग्राफ 34 में यह मत व्यक्त किया गया है कि बार एसोसिएशन के प्राधिकारी न्यायाधीश से उसके चैम्बर में मिल सकते हैं और उसे सुसंगत सामग्री सहित जो उसके पास है स्थिति से अवगत करा सकते हैं कि न्यायाधीश स्वयं का सुधार करे । यदि उससे कोई परिणाम नहीं निकलता है तो वह संबद्ध उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से मिल सकते हैं । (यदि उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति का व्यवहार प्रश्नगत है तो वे भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से मिल सकते हैं) ।

उच्चतम न्यायालय ने सुझाव दिया कि ऐसे बर्ताव जिस पर राष्ट्रपति को संसद के सदनों के समावेदन द्वारा हटाए जाने की आवश्यकता नहीं होती पर विचार करने का तंत्र न्यायिक शाखा के भीतर स्व-विनियमन है । उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया (पैरा 35 पृ. 479) –

"यहां इस बात पर जोर देना महत्वपूर्ण है कि महाभियोग से एक कठोर उपचार अभिप्रेत है और इसका गंभीर मामलों में उपयोग किए जाने की जरूरत है । किन्तु इस बात को सुनिश्चित करने के लिए कुछ अन्य साधन विद्यमान होने चाहिए कि न्यायाधीश उस न्यास का दुरुपयोग न करें जो समाज उनमें रखता है । हमें यह प्रतीत होता है कि न्यायपालिका द्वारा

स्व-विनियमन एकमात्र ऐसा तरीका है जिसका प्रयास किया जा सकता है और अपनाया जा सकता है ।"

उच्चतम न्यायालय ने तब सुझाव दिया कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का पद न्यायपालिका के प्रधान के रूप में एक अद्‌भुत पद है । न्यायालय ने "चिलिंग ज्युडिशियल इंडिपैंडेंस" में यू. एस. कोर्ट आफ अपील्स फॉर द सेकन्ड सर्किट के मुख्य न्यायाधीश इरविंग आर. कौफमैन (येल लॉ जर्नल (वाल्यूम 88) 1978-79 पृष्ठ 681 के एक लेख को निर्दिष्ट किया जिसमें यह कहा गया था कि पियर्स (अभिजात वर्ग) द्वारा दबाव का गलती करने वाले न्यायाधीश पर सुधारात्मक प्रभाव होगा और न्यायिक पद्धति अनुशासन कार्यवाहियों की अपेक्षा पियर्स (अभिजात वर्ग) के दबाव द्वारा ज्यादा बेहतर तरीके से चल सकती है

उच्चतम न्यायालय ने "रेगुलेटिंग ज्युडिशियल मिस-कंडक्ट एण्ड डिवाइनिंग गुड बिहेवियर फार फेड्रल जजेस" विषय पर हैरी टी. एडवर्ड्स, कोलम्बिया सर्किट जिले के यू. एस. कोर्ट्स ऑफ अपील के मुख्य न्यायाधीश (मिचिगन ला रिव्यू) जिल्द 87 पृष्ठ 765 (1989) द्वारा एक अन्य लेख का भी उल्लेख किया जिसमें "स्व-विनियमन" के इस पहलू पर बल दिया गया था । न्यायाधीश एडवर्ड ने कहा :

"मुझे यह विश्वास है कि फेड्रल न्यायाधीश उस आचार या अभित्रास के संबंध में जो न्यायालय के कार्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है और जो महाभियोग चलाए जाने योग्य कदाचार के स्तर का नहीं है । मेरा यह निवेदन है कि न्यायिक स्वतंत्रता का आदर उस समय पूरा नहीं होगा जब तक न्यायाधीश स्वयं अपने पियरो द्वारा मानिटर या विनियमित किए जाते हैं । न्यायिक स्व-विनियमन की यह सीमित पद्धति जब तक कि हटाए जाने की शक्ति कांग्रेस के पास रहती है, किसी सांविधानिक समस्या का सामना नहीं करती । 'मेरा यह तर्क है कि न्यायपालिका को स्व-विनयमन पद्धति के माध्यम से कदाचार को मानिटर करना चाहिए ।'"

इस प्रकार यह इंगित करते हुए कि ऐसे मामलों में जहां उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के बर्ताव के लिए राष्ट्रपति को संसद के सदनों के समावेदन द्वारा हटाए जाने की अपेक्षा नहीं होती है, आंतरिक प्रक्रिया के माध्यम से न्यायपालिका के भीतर "स्व-विनियमन" समुचित है । उच्चतम न्यायालय ने प्रक्रिया का उल्लेख इस प्रकार किया –

अध्याय – 20

अध्याय 2 में निर्दिष्ट बिन्दुओं पर चर्चा, विचार और सिफारिशें

ऐसे विभिन्न मुद्दों का अध्याय 2 में उल्लेख किया गया है जिन पर न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 2005 के प्रस्तावित प्रारूपण के संबंध में चर्चा और सिफारशों की आवश्यकता है । हम इस अध्याय में एक के बाद एक पर चर्चा करेंगे और अपना मत और सिफारिश देंगे ।

(1) क्या न्यायिक स्वतंत्रता आत्यंतिक है और न्यायाधीश जवाबदेह नहीं हैं ?

इस प्रश्न पर विस्तार से अध्याय 3 में विचार किया गया है । यह इंगित किया गया है कि संविधान सर्वोच्च है और प्रत्येक तीन शाखाओं के पास संविधान के अधीन आबंटित अपनी-अपनी शक्तियां हैं । इनमें से कोई शाखा दूसरी शाखा पर सर्वोच्चता का दावा नहीं कर सकती । यह सिद्धांत कि संविधान सर्वोच्च है, प्रोफेसर डायसी द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत है और आज इंगलैंड में भी स्वीकार्य नहीं है जहां इस सिद्धांत का उद्भव हुआ । इंगलैंड के हाल ही के निर्णयों में और कनाडा के न्यायाधीश आइकोब्यूकी ने यह स्पष्ट कहा है कि संविधान चाहे लिखित हो या परम्परागत, सर्वोच्च है और प्रत्येक तीनों शाखाओं को सद्भाव से कार्य करना चाहिए । हमारे उच्चतम न्यायालय ने भी विशेष निर्देश संख्या 1, सन् 1964 केशव सिंह वाला मामला (1965) 1 एस. सी. आर. 413 और पीपल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टी बनाम भारत संघ ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 2363 वाले मामले में भी यह कहा है । जैसा संविधान में उपदर्शित है, प्रत्येक शाखा एक दूसरे के लिए नियंत्रण का कार्य करती हैं और वस्तुतः संविधान का मुख्य प्रयोजन नियंत्रण और संतुलन बनाए रखना है । मात्र इस कारण कि उच्चतम न्यायालय संसदीय और कार्यपालिक कार्रवाई पर न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करता है, न्यायालय अन्य शाखाओं पर सर्वोच्चता का दावा नहीं कर सकते । पुनः न्यायिक पुनर्विलोकन संविधान का आधारभूत लक्षण है । संविधान और विधि के उपबंधों द्वारा, पूर्व निर्णय द्वारा, परम्परा और पारम्परिक न्यायिक मूल्य या न्यायिक नीति द्वारा न्यायाधीशों की अपनी शक्तियां और कृत्य सीमित हैं । इसके अतिरिक्त ऐसी रीति से विवक्षित निर्बन्धन हैं जैसा लोग उनके बारे में समझते हैं या उनसे स्वयं बर्ताव या आचरण करने की प्रत्याशा करते हैं ।

वरिष्ठ न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों को जो कदाचार के दोषी हैं, अनुशासित करने के लिए

"40.सभी पूर्वोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह विचारित मत है कि जहां परिवाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश से संबंधित हो, उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को सत्यापन किए जाने के पश्चात् और यदि आवश्यक हो तो अपने स्वतंत्र स्रोत से गुप्त जांच करने के पश्चात् न्यायाधीश के विरुद्ध बार एसोसिएशन द्वारा उसके पदधारियों के माध्यम से किए गए आरोपण की सत्यता की बाबत अपना समाधान करना चाहिए और जहां आवश्यक समझे वहां भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से उसके समक्ष सभी जानकारी प्रस्तुत करके परामर्श करना चाहिए । जहां भारत के मुख्य न्यायमूर्ति उस परेशानी से बचने के लिए और मामले को आगे बढ़ाने में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया में ऋजुता लाने के लिए मामले पर विचार कर रहे हैं वहां बार को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को उस मामले पर समुचित रूप से विचार करने के समर्थ बनाने के लिए सभी आगे की कार्रवाइयों को निलम्बित रखना चाहिए । यह आवश्यक है क्योंकि कोई कार्रवाई जो वह करेगा उसे न केवल न्यायोचित होना चाहिए अपितु सभी सम्बद्ध व्यक्तियों को न्यायोचित होने वाला प्रतीत भी होना चाहिए अर्थात् यह प्रतीत होना चाहिए कि ऐसा किसी के दबाव के अन्तर्गत नहीं किया गया है । भारत के मुख्य न्यायमूर्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से जानकारी प्राप्त होने पर न्यायाधीश के आचरण से संबंधित औचित्य और सत्यता की बाबत समाधान हो जाने के पश्चात् ऐसी सलाह या तो प्रत्यक्ष रूप से देंगे अथवा ऐसी कार्यवाही आरंभ करेंगे जो वह दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों के अन्तर्गत आवश्यक समझें । यदि परिस्थितयां अनुज्ञात करती हैं तो कार्रवाई आरंभ करने से पूर्व उस न्यायाधीश को विश्वास में लेना हितकर होगा । भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा किए गए विनिश्चय पर यह मामला यहीं समाप्त हो जाना चाहिए । यह प्रक्रिया न केवल किसी न्यायाधीश के ऐसे आचरण को जिससे न्यायालयों में लोक विश्वास का ह्रास होता है और विधिशासन की उपयोगिता बनाए रखने में तथा न्यायपालिका के सम्मान को बाधा पहुंचती है आरंभ में ही सुधारने में न केवल सहायक होगी अपितु बार एसोसिएशन के पदधारियों तथा सभी सम्बद्ध व्यक्तियों के विरुद्ध सामूहिक अपमान के विरुद्ध अवमान कार्यवाहियों की अनावश्यक परेशानी से भी बचा जा सकेगा । न्यायपालिका की स्वतंत्रता और लोक न्याय की धारा शुद्ध और निष्कलंक बनी रहेगी । बार एसोसिएशन न्यायपालिका का एक उपयोगी अंग बनी रहेगी और किसी विशेष न्यायाधीश के सम्मान के ह्रास के मामले को बार एसोसिएशन उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष ले जा सकेगा और एक युक्तियुक्त अवधि तक उस पर की गई कार्रवाई के लिए उसके उत्तर की प्रतीक्षा कर सकेगा । "

संविधान के अनुच्छेद 124(4) का स्पष्ट उपबंध है जो कदाचार के अन्वेषण और सबूत के पश्चात् संसद के सदस्यों से अपेक्षित संख्या द्वारा संसद के प्रत्येक सदन में लाए जाने पर न्यायाधीश के हटाए जाने का संकल्प और इसके पश्चात् हटाए जाने के लिए समावेदन यदि कदाचार साबित होता है, के संकल्प का उपबंध है । न्यायाधीश (जांच) अधिनियम और उसके अधीन 1969 के नियम में यह उपबंध है कि अन्वेषण और सबूत का प्रयोग दो न्यायाधीशों या न्यायविदों की तीन सदस्यीय जांच समिति द्वारा किया जाएगा जिसे प्रति निर्देश यथास्थिति सदन के अध्यक्ष/सभापति द्वारा किया जाएगा ।

सभी प्रकार के कदाचारों से निपटना अपर्याप्त और कष्टकर महसूस किया गया इसलिए वर्ष 1997 में भारत के उच्चतम न्यायालय ने उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के सभी न्यायाधीशों के द्वारा अपनाए जाने के लिए **'न्यायिक जीवन के मूल्यों का पुनर्कथन'** विरचित किया । 'पुनर्कथन' शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया था क्योंकि ये मूल्य पहले ही, कुछ लिखित, कुछ अलिखित और कुछ परम्परा या कंवेंशन के रूप में शताब्दियों से अनुसरित, विद्यमान थे । क्योंकि वे नए सृजित या उपजाए गए नहीं थे, इसलिए उच्चतम न्यायालय ने उन्हें 'न्यायिक जीवन के मूल्यों का पुनर्कथन' कहा । एक और कारण यह था कि न्यायालय ने नए पदधारी न्यायाधीशों या नवनियुक्त न्यायाधीशों को सूचित करने की आवश्यकता महसूस की कि एक ऐसी आचार संहिता है जिनका उनसे पालन करने की प्रत्याशा है । संभवतः इन मूल्यों की न्यायिक शाखा को आचरण के स्तर में गिरावट को रोकने की आवश्यकता के रूप में बताने की आवश्यकता महसूस की गई ।

कदाचार या 'विसामान्य बर्ताव' से निपटने के लिए 'न्यायिक जीवन के मूल्यों के पुनर्कथन के साथ-साथ' 'आंतरिक प्रक्रिया' जारी की गई । इसमें उपबंधित तंत्र न्यायिक शाखा के भीतर 'पियर्स' (समकक्ष व्यक्तियों) द्वारा ऐसे कदाचार या विसामान्य बर्ताव को सुधारने के लिए है जो प्रक्रिया कई देशों में प्रचलित है । आचार संहिता या न्यायिक जीवन के मूल्यों के किसी भंग पर पियर्स सुधार कर सकता है ।

2005 के वर्तमान विधेयक के अधीन उपरोक्त समावेदन की प्रक्रिया को प्रतिधारित किया गया है और आरोपों का अन्वेषण और सबूत राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् के पांच न्यायाधीशों द्वारा किया जाएगा

जिन्हें प्रस्ताव पर यथास्थिति सदन के अध्यक्ष/सभापति द्वारा निर्दिष्ट किया जाए । यदि ऐसे निर्देश पर न्यायिक परिषद् यह निष्कर्ष निकालती है कि कदाचार का आरोप साबित हो गया है तो वह अपनी रिपोर्ट के साथ अपनी सिफारिश अध्यक्ष/सभापति को भेजेगी जिस पर सदन अनुच्छेद 124(4) के अधीन कार्रवाई करेगी ।

2005 के विधेयक के अधीन शिकायत द्वारा अब एक अतिरिक्त प्रक्रिया विहित की गई है । कोई व्यक्ति शिकायत कर सकता है । पांच न्यायाधीशों की किसी राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् द्वारा इसकी संवीक्षा और सत्यापन किया जाएगा और यदि यह आगे कार्रवाई करने की विनिश्चय करती है तो यह आरोप विरचित करेगी और नियमित अन्वेषण करेगी । यदि यह इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि आरोप जो साबित हो गए हैं, के आधार पर संबद्ध न्यायाधीश का हटाया जाना अपेक्षित है तो यह अपनी रिपोर्ट संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखे जाने के लिए राष्ट्रपति को भेजेगी । इसके पश्चात् समावेदन द्वारा हटाए जाने के मामले जैसी वही प्रक्रिया अपनाई जाएगी ।

संविधान और विधि की पृष्ठभूमि और पूर्व अध्यायों में निर्दिष्ट न्यायिक जवाबदेही के सिद्धांतों के आधार पर विधि आयोग के मतानुसार 2005 के वर्तमान विधेयक के ज्ञापक लक्षणों को न्यायिक शाखा की स्वतंत्रता पर अतिक्रमण नहीं कहा जा सकता । यह प्रतीत होता है कि 2005 का विधेयक एक अतिरिक्त प्रक्रिया का उपबंध करता है जो अंततः कुछ मामलों में समावेदन द्वारा हटाए जाने की ओर ले जाता है । 2005 के विधेयक के उपबंध कुल मिलाकर न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के कथन से संगत हैं । विधेयक के प्रस्ताव भी कुछ गौण परिवर्तनों के साथ 1997 में उच्चतम न्यायालय के पूर्ण न्यायालय द्वारा पहले ही अनुमोदित न्यायिक जीवन के मूल्यों के पुनर्कथन और आंतरिक प्रक्रिया को कानूनी मान्यता देने को सुकर बनाता है । अतः इस विधेयक को कार्यपालिका या विधानमंडल द्वारा न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर अतिक्रमण के प्रयास के रूप में व्यक्त किया जाना सही नहीं होगा ।

जैसा अध्याय 3 में कहा गया है, न्यायिक स्वतंत्रता आत्यंतिक नहीं है और न्यायिक जवाबदेही न्यायिक स्वतंत्रता के साथ है और इसे हाथ से हाथ मिलाकर चलना चाहिए ।

इस रिपोर्ट में विधि आयोग यह भी सिफारिश कर रहा है कि नया कानून कदाचार के दोषी पाए गए किसी न्यायाधीश के विरुद्ध जिन्हें हटाए जाने की अपेक्षा नहीं है, न्यायिक परिषद् द्वारा कतिपय एक या अन्य 'गौण उपायों' के अधिरोपण का उपबंध करता है । ऐसे गौण उपायों के

अन्तर्गत परामर्श, चेतावनी, पद त्याग का अनुरोध, कार्य का वापस लेना, पब्लिक या प्राइवेट परिनिन्दा या भर्त्सना आदि होंगे । हटाए जाने के सिवाए ऐसे गौण उपाय कई देशों में प्रचलित हैं । कानून द्वारा गौण उपायों के लिए ऐसे उपबंधों का शामिल किया जाना यू. एस. ए. के फेडरल न्यायालयों द्वारा कायम रखा गया है यद्यपि यू. एस. फेडरल संविधान में इसके लिए कोई अभिव्यक्त उपबंध नहीं है । जैसा कि पहले अध्यायों में पहले ही उल्लेख किया गया है, यू. के., कनाडा और जर्मनी और प्रायः यू. एस. के सभी राज्यों में इसी प्रकार के उपबंध हैं । हमने केलीफोर्निया, इदाहो, कनैक्टीकट, टेक्सास आदि के संविधान और कानूनों में पाए गए उन कुछ उपबंधों को भी निर्दिष्ट किया है । यह इस सिद्धांत पर है कि न्यायपालिका अपने निजी घर को सुव्यवस्थित रखे । इसे कार्यपालिका या विधानमंडल द्वारा अतिक्रमण के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए जहां तक अनुशासनिक नियंत्रण न्यायिक शाखा के भीतर 'पियर्स' में निहित है । इस पहलू को नीचे न्यायिक पूर्वनिर्णय के प्रति निर्देश से स्पष्ट किया जाएगा ।

2005 के विधेयक की धारा 21 जो ऐसे न्यायाधीश जिनके विरुद्ध अन्वेषण और जांच लम्बित है, को न्यायिक कार्य समनुदेशित किए जाने से रोकने का उपबंध करती है, के संबंध में यह प्रश्न उठता है कि क्या न्यायाधीश की सूची से मामलों का हटाया जाना या जांच कार्यवाहियों का लंबित निलम्बन अनुज्ञेय है । इस अध्याय में इस प्रश्न पर भी विस्तार से चर्चा की जाएगी ।

विधि आयोग यह दोहराता है कि न्यायिक स्वतंत्रता आत्यंतिक नहीं है, न्यायिक स्वतंत्रता और जवाबदेही एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और यह कि न्यायिक कार्य के समनुदेशन को रोकने समेत 'गौण उपाय' अधिरोपित करने के लिए न्यायिक परिषद् को समर्थ बनाने हेतु हमारी सिफारिशों के साथ 2005 के विधेयक के वर्तमान प्रस्ताव सांविधानिक हैं । इन्हें कार्यपालिका या विधानमंडल द्वारा न्यायिक स्वतंत्रता पर अतिक्रमण के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए ।

(2) <u>न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी से संबंधित मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित संवैधानिक विधि के क्या सिद्धांत हैं?</u>

अध्याय 6 में भारत के उच्चतम न्यायालय के चार निर्णयों और न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी के मामले की पृष्ठभूमिगत तथ्यों पर पूरी चर्चा की और इस अध्याय में हम उन मामलों में अधिकथित विधि के सिद्धांतों का संक्षेप में उल्लेख करते हैं ।

(i) आरंभतः, भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति ने उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों

(न्यायमूर्ति बी. सी. रे, के. जे. शेट्टी और एम. एन. वेंकटचलैया) की समिति तथ्यों पर विचार करने और यह पता लगाने के लिए बनाई कि क्या न्यायाधीश के विरुद्ध कोई प्रथमदृष्टया मामला बनता है जिससे अन्वेषण कार्यवाही लम्बित रहने तक न्यायाधीश को उसके न्यायिक कृत्य का प्रयोग न करने की अपेक्षा हो । समिति ने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायाधीश को तब तक अपने न्यायिक कृत्यों के प्रयोग से रोकने की अपेक्षा नहीं हो सकती जब तक समुचित प्राधिकारी यह निष्कर्ष नहीं निकालता कि न्यायाधीश के आचरण में नैतिक अधमता है और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का यह समाधान हो गया है कि ऐसा निष्कर्ष युक्तियुक्त है ।

(ii) इसके पश्चात् उच्चतम न्यायालय के चार निर्णय अर्थात् न्यायिक जवाबदेही पर संप समिति बनाम भारत संघ, 1991 (4) एस. सी. सी. 699; सरोजिनी रामास्वामी (श्रीमती) बनाम भारत संघ 1992(4) एस. सी. सी. 506; कृष्णास्वामी बनाम भारत संघ 1992 (4) एस. सी. सी. 605 और लिली थामस बनाम अध्यक्ष, लोक सभा 1993 (4) एस. सी. सी. 234 थे । हमने अध्याय 6 में विस्तार से इन निर्णयों का उल्लेख किया है ।

संवैधानिक विधि के निम्नलिखित सिद्धांत उपरोक्त निर्णयों में अधिकथित थेः

(1) न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 की धारा 3(1) में निर्दिष्ट प्रस्ताव संसद के सदस्यों के समूह द्वारा परिवाद की ही प्रकृति का है और यह संसदीय प्रक्रिया का भाग नहीं है । वह प्रक्रम जिस पर प्रस्ताव आरंभ किया जाता है, अध्यक्ष/सभापति द्वारा स्वीकार किया जाता है और जब जांच समिति अभिकथनों की जांच करती है और यह पाती है कि कदाचार के अभिकथन साबित हो गए हैं, ये सभी संसदीय प्रक्रिया के भाग नहीं हैं । संसदीय प्रक्रिया राजनैतिक प्रक्रिया है । जांच समिति के समक्ष जांच न्यायिक प्रक्रिया है । संसदीय प्रक्रिया संसद के सदन को अपनी रिपोर्ट जांच समिति द्वारा प्रस्तुत करने के पश्चात् ही आरंभ होती है कि कदाचार या असमर्थता का मामला न्यायाधीश पर साबित होता है । अध्यक्ष द्वारा प्रस्ताव एक बार स्वीकार किए जाने के पश्चात् लोक सभा के विघटन पर व्यपगत नहीं होता ।

(2) चूंकि सदन को समिति द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने तक की प्रक्रिया संसदीय प्रक्रिया का भाग नहीं है इसलिए न्यायाधीश के आचरण पर चर्चा जब प्रस्ताव आरंभ किया जाता है या स्वीकार किया जाता है और जांच समिति के समक्ष चर्चा या इसकी रिपोर्ट संविधान के

अनुच्छेद 121 का उल्लघंन नहीं करता जो संसद में "उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के अपने कर्तव्यों के निर्वहन में किए गए आचरण के विषय में इसमें इसके पश्चात् उपबंधित रीति से उस न्यायाधीश को हटाने की प्रार्थना करने वाले समावेदन को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करने प्रस्ताव के सिवाय" की चर्चा पर प्रतिषेध करता है ।

(3) अनुच्छेद 121 न्यायाधीश के आचरण के बारे में चर्चा के वर्जन को उठाता है यदि एक बार रिपोर्ट जांच समिति द्वारा सदन को प्रस्तुत हो जाती है और उस प्रक्रम पर पहली बार संसदीय प्रक्रिया के दौरान न्यायाधीश के आचरण पर चर्चा करना अनुज्ञेय है । वस्तुतः उस प्रक्रम पर न्यायाधीश को जांच समिति की रिपोर्ट की प्रति देना और न्यायाधीश को निष्कर्षों को पूरा करने का अवसर देना आवश्यक है । न्यायाधीश किसी पूर्व प्रक्रम पर रिपोर्ट की प्रति पाने का हकदार नहीं है ।

(4) 'साबित कदाचार या असमर्थता' शब्द यह उपदर्शित करते हैं कि कदाचार या असमर्थता को आरंभतः संसद के बाहर किसी मंच के समक्ष साबित होना चाहिए । 1968 अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन नियुक्त जांच समिति का अभिप्राय कदाचार या असमर्थता के 'सबूत' पर विचार करना है और जैसा कि वह प्रक्रिया उक्त कथनानुसार संसदीय प्रक्रिया के बाहर होती है, यह संसद के बाहर सिद्ध किए जाने वाले सबूत की अपेक्षा को पूरा करता है । इस प्रकार रिपोर्ट के प्रस्तुतीकरण और इसके पश्चात् की प्रक्रिया न्यायिक और संसदीय प्रक्रिया का मिश्रण है ।

(5) अनुच्छेद 124(5) द्वारा यथापरिकल्पित हटाए जाने की प्रक्रिया विहित करने के प्रयोजन के लिए विधि का पारित किया जाना संसद में कोई प्रस्ताव आरंभ करने के लिए पूर्ववर्ती शर्त है । इस प्रकार, अनुच्छेद 124(5) विधि पारित किए जाने के लिए समर्थ बनाने हेतु मात्र एक उपबंध नहीं है । जब तक ऐसी विधि पारित नहीं की जाती है, अनुच्छेद 124(4) के अधीन कोई प्रस्ताव आरंभ नहीं किया जा सकता है ।

(6) धारा 3(1) के अधीन नियुक्त न्यायाधीशों की समिति न्यायिक कृत्यों का पालन करती है ।

वस्तुतः, भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 200(2)के परन्तुक के अधीन किसी न्यायाधीश को प्रिवी कौंसिल की अनुशासनिक समिति के विनिश्चय के सिवाय नहीं हटाया जा सकता । उस समय जहां तक ब्रिटिश उपनिवेशों का संबंध था, प्रिवी कौंसिल सर्वोच्च न्यायिक निकाय था ।

(7) 1968 अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन प्रस्ताव के ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर अध्यक्ष या सभापति 1968 अधिनियम की धारा 3(1) में यथाउपबंधित ऐसे व्यक्तियों के परामर्श करने के पश्चात् विनिश्चय कर सकता है जैसा वह ठीक समझे । सर्वोत्तम व्यक्तियों में से भारत का मुख्य न्यायमूर्ति ऐसा व्यक्ति है जिससे वह परामर्श कर सकता है । भारत का मुख्य न्यायमूर्ति न्यायपालिका के प्रधान के रूप में आवश्यक सलाह दे सकता है ।

(8) एक बार जब प्रस्ताव स्वीकार हो जाता है और धारा 3(2) के अधीन समिति को निर्देश किया जाता है तो प्रस्ताव अस्थगित रखा जाता है और यह जांच समिति रिपोर्ट पर ऐसा निष्कर्ष किए जाने पर ही सक्रिय होता है कि न्यायाधीश कदाचार का दोषी है या यदि वह असमर्थ हो गया है ।

(9) 1968 अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियम तथ्यों के अवधारण के लिए न्यायिक प्रक्रिया का उपबंध करते हैं और भारत के संविधान के अनुच्छेद 118 के अधीन संसद के सदन द्वारा बनाए गए नियम, यदि कोई हों, का अधिक्रमण करता है । समितियों की नियुक्ति के लिए अनुच्छेद 118 के अधीन बनाए गए नियमों में अधिकथित प्रक्रिया संसदीय प्रक्रिया का भाग है लेकिन चूंकि वे नियम 1968 अधिनियम और उस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों का अधिक्रमण करते हैं, इसलिए न्यायिक और संसदीय प्रक्रिया जांच समिति द्वारा सदन को 'साबित कदाचार या असमर्थता' की रिपोर्ट की प्रस्तुति के पश्चात् ही आरंभ होती है । इसके पश्चात् ऐसा प्रस्ताव जो आस्थगित रखा गया है, सक्रिय हो जाता है और संसदीय प्रक्रिया आरंभ होती है ।

(10) 1968 अधिनियम की धारा 3 के अधीन प्रस्ताव की नोटिस प्राप्त होने पर ही जहां अध्यक्ष/सभापति यह राय बनाता है कि अन्वेषण के लिए प्रथमदृष्टया मामला बनता है तो वह यथाविहित जांच समिति गठित करेगा ।

(11) (क) अधनियम की धारा 3(1) के अधीन प्रस्ताव ग्रहण करने के प्रक्रम पर और समिति

को अभिकथन निर्दिष्ट करने के पूर्व न्यायाधीश साधिकार अवसर पाने का हकदार नहीं है । अध्यक्ष या सभापति न्यायाधीश को अवसर देने के लिए स्वतंत्र है यदि वह महसूस करता है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में ऐसा अवसर देना समुचित है ।

(ख) समिति के समक्ष जांच के दौरान न्यायाधीश साक्षियों की प्रतिपरीक्षा और अपनी ओर से साक्षियों की परीक्षा कराने का भी हकदार है ।

(12) एक बार यदि जांच समिति अपनी रिपोर्ट में यह अभिनिर्धारित करती है कि 'कदाचार या असमर्थता' साबित नहीं हुआ है तो मामला वहीं समाप्त हो जाता है और अध्यक्ष/सभापति उसके पश्चात् प्रस्ताव पर आगे कार्यवाही नहीं कर सकता । ऐसा अनुच्छेद 121 के कारण है क्योंकि ऐसे न्यायाधीश के आचरण के बारे में संसद में चर्चा नहीं हो सकती है यदि कदाचार या असमर्थता संसद के बाहर साबित नहीं हुआ हो ।

(13) लेकिन जहां जांच समिति यह अभिनिर्धारित करती है कि 'कदाचार या असमर्थता' साबित होता है, वहां संसद उस अधिमत द्वारा आबद्ध नहीं है और मामले पर विचार किया जा सकता है तथा भिन्न निष्कर्ष, अर्थात् कि 'कदाचार या असमर्थता' साबित नहीं हुआ है, निकाला जा सकता है ।

(14) संसद को उस साक्ष्य के प्रमाणक मूल्य पर विचार करने का हक है, जिसका अवलम्ब समिति ने लिया है ।

(15) 1968 अधिनियम की धारा 3(1), उस अधिनियम के अधीन बनाए गए 1969 के नियमों के अनुसार गठित समिति के तीन सदस्यों में से यदि दो सदस्य यह अभिनिर्धारित करते हैं कि आरोप साबित नहीं हुए हैं और एक सदस्य यह अभिनिर्धारित करता है कि आरोप साबित हुए हैं तो विसम्मत टिप्पण सदन को अग्रेषित करना आवश्यक नहीं होगा । लेकिन, जब दो सदस्य अभिनिर्धारित करते हैं कि आरोप साबित हो गए हैं और एक सदस्य विसम्मति प्रकट करता है और अभिनिर्धारित करता है कि आरोप साबित नहीं हुए हैं तो विसम्मत को भी सदन को अग्रेषित किया जाना चाहिए ।

(16) सम्बद्ध न्यायाधीश प्रस्ताव ग्रहण करने से या समिति को निर्देश भेजने से अध्यक्ष/सभापति को रोकने के व्यादेश की मांग या अभ्यारोपण नहीं कर सकता है न ही न्यायाधीश समिति के

समक्ष कार्यवाहियों या सदन को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने पर रोक अभिप्राप्त कर सकता है ।

(17) न्यायाधीश सदनों द्वारा समावेदन के पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा पारित 'हटाए जाने' के अंतिम आदेश को ही चुनौती दे सकता है क्योंकि समिति के समक्ष कार्यवाहियां राष्ट्रपति द्वारा ऐसा आदेश पारित किए जाने तक 'अपरिपक्व' हैं । जांच समिति संविधान के अनुच्छेद 136 के प्रयोजनों के लिए 'अधिकरण' नहीं है क्योंकि यह केवल अनुशंसात्मक निकाय है ।

(18) जांच समिति की रिपोर्ट की प्रति रिपोर्ट दिए जाने के तत्काल पश्चात् न्यायाधीश को नहीं दी जा सकती । न्यायाधीश अध्यक्ष/सभापति को रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् ही रिपोर्ट की प्रति पाने का हकदार है ।

(19) प्रस्ताव लंबित रहने और समिति के समक्ष जांच या हटाए जाने के अंतिम आदेश पारित किए जाने के पूर्व न्यायाधीश को 1968 अधिनियम के उपबंधों के आलोक में पद से 'निलंबित' नहीं किया जा सकता और कोई न्यायालय न्यायाधीश को न्यायिक कृत्यों को करने से नहीं रोक सकता है । न ही कोई कार्य वापस लिया जा सकता है ।

(20) न्यायाधीश को पद से हटाए जाने या सेवानिवृत्ति तक उसके वेतन या भत्तों को प्रतिधारित नहीं किया जा सकता है चाहे उसके विरुद्ध जांच क्यों न लंबित हो ।

(21) न्यायाधीश समिति द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् संसद में बहस के दौरान सुने जाने का हकदार है और वह काउंसेल यदि वह ऐसा चाहता है द्वारा अपना निवेदन करने का भी अधिकार रखता है ।

(22) यह केवल उस मामले में है जब न्यायाधीश की सुनवाई के पश्चात् रिपोर्ट स्वीकार की जाती है और हटाए जाने का प्रस्ताव पारित होता है कि कदाचार या असमर्थता "साबित समझा गया" है ।

(23) संसद में, यदि अपेक्षित सदस्य यह स्वीकार करते हैं कि कदाचार या असमर्थता साबित हो गया है तो संसद को राष्ट्रपति को न्यायाधीश के हटाए जाने की सिफारिश करने वाले संकल्प को पारित करते समय कोई कारण बताने की आवश्यकता नहीं है ।

(24) राष्ट्रपति द्वारा हटाए जाने का आदेश पारित किए जाने के पश्चात् ऐसा न्यायाधीश जिसे हटाया गया है यह कि क्या न्यायाधीश को पर्याप्त अवसर दिया गया था या क्या कार्यवाहियों में कोई अवैधता थी जैसे सीमित आधारों पर उच्चतम न्यायालय में आवेदन कर सकता है । संसद के समक्ष कार्यवाहियों का प्रविषय व्यापक है और ऐसी कोई परिसीमा नहीं है और यह एक ऐसा कार्य है कि न्यायाधीश को संसद को रिपोर्ट प्रस्तुत करने के पूर्व भी न्यायालय में आवेदन करने की अनुज्ञा क्यों न दी जाए ।

न्यायिक स्वतंत्रता और न्यायिक जवाबदेही दोनों की अवधारणाओं के संतुलन के लिए भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा उक्त स्थिर सिद्धांतों पर विचार करने की आवश्यकता है ।

(3) न्यायमूर्ति सावंत समिति की रिपोर्ट से कौन-कौन से मुद्दे उत्पन्न होते हैं :

हमने अध्याय 6 में इस रिपोर्ट का उल्लेख किया है । न्यायमूर्ति सावंत समिति ने यह कहा:

"(1)(i) संविधान के अनुच्छेद 124 (4) और अन्य सुसंगत उपबंधों के संदर्भ में उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को लागू "कदाचार" शब्द का अभिप्राय ऐसे न्यायाधीश की ओर से ऐसा आचरण या आचरण का अनुक्रम है जिससे न्यायपालिका को असम्मान या बदनामी होती है जिससे निष्ठा और विश्वास जो लोगों का न्यायपालिका के प्रति है, हिलता है । यह आपराधिक कृत्यों या विधि द्वारा प्रतिषिद्ध कृत्यों तक सीमित नहीं है । यह न्यायिक पद से जुड़े कार्यों तक सीमित नहीं है । यह न्यायाधीश के पब्लिक या प्राइवेट सभी क्रियाकलापों तक विस्तृत है ।"

(ii) कार्य या लोप जानबूझकर किया जाना चाहिए । जानबूझकर लक्षण आपराधिक लापरवाही, उपेक्षा, नियमों या स्थापित आचार-संहिता की अवज्ञा से होना चाहिए । चाहे एकल कार्य जानबूझकर न किया गया हो, कार्यों की आवलि से दुराग्रह का निष्कर्ष निकलता हो ।

(iii) धन संबंधी इनाम किसी कार्य या लोप को 'कदाचार' से कम नहीं ठहराएगा यदि व्यक्ति साशय स्पष्टतः असुधारात्मक प्रकृति का गंभीर और घोर दोष कारित करता है और पता चलने पर क्षतिपूर्ति देने का प्रस्ताव करता है ।

(iv) 'कदाचार' आचरण तक सीमित नहीं है क्योंकि यह माना जाता है कि न्यायाधीश

वर्तमान न्यायिक पद धारित करता है । यह न्यायिक पद धारित करने के पूर्व कार्यों या लोपों तक विस्तारित हो सकता है यदि ऐसे कार्य या लोप उसे वर्तमान न्यायिक पद धारित करने के अयोग्य बनाते हैं ।

(2) समिति के अनुच्छेद 124(4) के साथ पठित 1968 अधिनियम के अधीन कार्यवाहियां अधिनियम में प्रयुक्त 'आरोप' 'दोषी' और 'दोषी नहीं', 'न्यायाधीश का अभिवाक्' शब्द के कारण 'अर्ध-आपराधिक' हैं । वस्तुतः, 1870 से प्रिवी कौंसिल जो उपनिवेशों में उच्च न्यायालय न्यायाधीशों के विरुद्ध जांच कराने के लिए प्राधिकारी था, न्यायाधीशों के हटाए जाने के संबंध में ज्ञापन जारी किया जिसमें यह उल्लेख किया कि हटाए जाने की कार्यवाही 'अर्ध-आपराधिक' है ।

(3) सबूत का स्तर युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत है न कि अधिसंभाव्यताओं के आधार पर । 'कदाचार' को न्यायाधीश (जांच) अधिनियम के अधीन गठित जांच समिति द्वारा तदनुसार साबित ठहराया जाना चाहिए ।

(4) ऐसा न्यायाधीश जिसके विरुद्ध जांच की जा रही है, जांच प्राधिकारी से सहयोग करने के संवैधानिक बाध्यताधीन है न कि ऐसी जांच में बाधा उत्पन्न करने के लिए चालबाज़ी करना जिसमें विधिमान्यतः उसके विरुद्ध विधिमान्यतः प्रतिकूल निष्कर्ष निकलता हो ।

(IV) <u>क्या केवल न्यायाधीशों से मिलकर बनी राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् स्थापित करने के लिए 2005 के विधेयक में प्रस्तावित उपबंध न्यायिक जवाबदेही की अवधारणा से संगत है?</u>

1968 अधिनियम में दो न्यायाधीशों और एक न्यायविद् की समिति की परिकल्पना है जबकि 2005 के प्रस्तावित विधेयक में केवल न्यायाधीशों से मिलकर बने राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् की परिकल्पना है । 1968 अधिनियम का यह उपबंध है कि उस अधिनियम की धारा 3(1) के अधीन समिति <u>तीन</u> सदस्यों से मिलकर बनेगीः

(क) एक सदस्य भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों में से चुना जाएगा ;

(ख) एक सदस्य उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों में से चुना जाएगा ;

(ग) एक सदस्य ऐसा व्यक्ति होगा जो यथास्थिति अध्यक्ष या सभापति की राय में विख्यात

न्यायविद् हो ।

प्रस्तावित विधेयक के अधीन न्यायिक परिषद् निम्न से मिलकर बनेगा:

(क) भारत का मुख्य न्यायमूर्ति, अध्यक्ष ;

(ख) भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा नामनिर्दिष्ट उच्चतम न्यायालय के दो वरिष्ठतम न्यायाधीश - सदस्य ;

(ग) भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा नामनिर्दिष्ट उच्च न्यायालयों के दो वरिष्ठतम न्यायमूर्ति - सदस्य ।

हमारे मतानुसार 2005 के विधेयक का यह प्रस्ताव अन्तरराष्ट्रीय परम्पराओं और कंवेंशनों से संगत है और पियर पुनर्विलोकन के उपबंध वाले अन्य देशों के समान उपबंधों द्वारा समर्थित है जहां तक अनुशासनिक कार्रवाई का संबंध है, नीचे कहा गया है ।

आरंभ में हम वरिष्ठ न्यायालयों के न्यायाधीशों के विरुद्ध नुशासनिक जांच के विषय में पियर पुनर्विलकोन से संबंधित अन्तरराष्ट्रीय परम्पराओं और कंवेंशनों को निर्दिष्ट करते हैं ।

(1) सिरकुसा सिद्धांत (मई 25-29, 1981) के रूप में ज्ञात न्यायपालिका की परम्परा के लिए अधिकथित सिद्धांतों के अनुसार 'अनुशासन' की बाबत अनुच्छेद 13 और 14 में यह इस प्रकार कहा गया है:

"अनुच्छेद 13 : न्यायाधीशों से संबंधित कोई अनुशासनिक कार्यवाही न्यायपालिका के सदस्यों से मिलकर बने या चयनित न्यायालय या बोर्ड के समक्ष की जानी चाहिए ।

अनुच्छेद 14 : सभी अनुशासनिक कार्रवाई विधि द्वारा प्रख्यापित न्यायिक आचरण के मानक या न्यायालय के स्थापित नियमों पर आधारित होना चाहिए ।"

(2) 'पार्लियामेंटरी सुप्रीमेसी, ज्यूडिशियल इंडीपेंडेन्सस -- टुवर्डस ए कामनवैल्थ माडल' पर 1998 कामनवैल्थ के लिए लातिमर मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुसार, पैरा 6(1)(i) में यह कहा गया है कि अनुशासनिक कार्रवाई स्वतंत्र न्यायिक अधिकरण द्वारा की जानी चाहिए । इसके उप-पैरा (ii) में आगे यह कहा गया है कि "सभी मामलों में प्रक्रिया न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा की जानी चाहिए ।"

(3) न्यायपालिका की स्वतंत्रता के सिद्धांत, 1995 के बीजिंग कथन के अनुसार सिद्धांत 24 में यह कहा गया है कि जहां संसदीय प्रक्रिया या लोगों के मत द्वारा न्यायाधीश के हटाए जाने की प्रक्रिया लागू नहीं होती वहां न्यायाधीशों के हटाए जाने की प्रक्रिया न्यायपालिका के नियंत्रण के अधीन होनी चाहिए ।

कई देशों में केवल न्यायधीशों से मिलकर बना आयोग या न्यायिक परिषद् है:

(1) यूनाइटेड किंगडम ने हाल ही में 'संवैधानिक सुधार अधिनियम, 2005' पारित किया । भाग 4 के अध्याय 3 में 'अनुशासन' का उपबंध है । धारा 108 में 'हटाए जाने' और औपचारिक सलाह या अनुशासिनक प्रयोजनों के लिए औपचारिक चेतावनी या धिग्दंड का उपबंध है (लेकिन यह धारा ऐसा निर्बन्धन नहीं लगाती जो अनौपचारिक रूपसे वह कर सकती है या अन्य प्रयोजनों के लिए या जहां कोई सलाह या चेतावनी विशिष्ट पदधारक को नहीं दी गई है) । धारा 108 के अधीन लार्ड चान्सलर की सहमति से ये आदेश पारित करने की शक्तियां लार्ड मुख्य न्यायमूर्ति में निहित हैं । लेकिन यदि यह हटाए जाने का मामला है तो केवल लार्ड चान्सलर ही आदेश पारित कर सकता है ।

जहां तक लार्ड मुख्य न्यायमूर्ति का संबंध है, धारा 119 के अधीन वह 'न्यायिक पद धारक' को अपने कृत्यों का प्रत्यायोजन कर सकता है । न्यायिक पद धारक की परिभाषा के अन्तर्गत मास्टर ऑफ रोल्स, प्रेज़ीडेन्ट ऑफ क्वींस बैंच डिवीज़न, प्रेसिडेंट ऑफ फैमिली डिवीज़न, उच्च न्यायालय का चांसलर, अपील का लार्ड मुख्य न्यायमूर्ति और उच्च न्यायालय का अवर न्यायाधीश शामिल हैं । ये उन व्यक्तियों के नाम हैं जिन्हें लार्ड मुख्य न्यायमूर्ति जांच प्रत्यायोजित कर सकता है ।

इस प्रकार यू. के. में अनुशासनिक प्रक्रिया पूर्णतः न्यायपालिका के नियंत्रण में है ।

(2) कनाडा:

कनाडा में न्यायाधीश अधिनियम, 1985 की धारा 59(1) निम्नलिखित से मिलकर न्यायिक परिषद् के गठन का उपबंध करती है:

(क) कनाडा का मुख्य न्यायमूर्ति (अध्यक्ष),

(ख)म ुख्य न्यायमूर्ति और कोई वरिष्ठ सहयुक्त मुख्य न्यायमूर्ति तथा प्रत्येक वरिष्ठ न्यायालय या शाखा या उसके खण्ड का सहयुक्त मुख्य न्यायमूर्ति,

(ग) अधिनियम की धारा 22(3) की परिभाषा के अनुसार यूकान के उच्चतम न्यायालय, नोर्थ्

वैस्ट राज्यक्षेत्र के उच्चतम न्यायालय और नूनावत कोर्ट ऑफ जस्टिस के वरिष्ठ न्यायाधीश, और

(घ) कनाडा के कोर्ट मार्शल अपील न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति ।

इस प्रकार, कनाडा में न्यायिक परिषद् के सभी सदस्य न्यायाधीश हैं ।

आस्ट्रेलियाः

(क) न्यू साउथ वेल्सः न्यायिक अधिकारी अधिनियम, 1986 के अधीन शिकायतें न्यायिक आयोग के आचार खण्ड को निर्दिष्ट की जाती हैं । धारा 22 के अधीन आचार खण्ड ऐसे 3 व्यक्तियों से मिलकर बनेगी जिसमें सभी न्यायिक अधिकारी हैं जिनमें से एक सेवानिवृत्त न्यायिक अधिकारी हो सकता है ।

न्यायिक अधिकारी को धारा 3(क) में न्यायाधीश या उच्चतम न्यायालय का सहयुक्त न्यायाधीश या जिला न्यायालय का न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट आदि के रूप में परिभाषित किया गया है ।

इस प्रकार अनुशासनिक समिति के सदस्य न्यायाधीश हैं ।

(ख)विक्टोरियाः संविधान और अन्य विधियों का संशोधन किया गया है और हाल ही में न्यायालय विधान (न्यायिक आचरण) अधिनियम, 2005 पारित किया गया है ।

धारा 87 क क क में धारा 87 क क ग के अधीन 'न्यायिक पैनल' गठित किए जाने का उपबंध है ।

धारा 87 क क ग में यह कथन है कि 'न्यायिक पैनल' महाधिवक्ता द्वारा नियुक्त सात सदस्यों से मिलकर बनेगा । कोई व्यक्ति तभी नियुक्त होने का हकदार है यदि वह 'अर्हक पद' धारित करता है लेकिन जब तक इसमें से कोई एक धारित न करता हो ।

'अर्हक पद' को

(क) आस्ट्रेलिया के फेडरल कोर्ट का न्यायाधीश,

(ख) वेस्टर्न आस्ट्रेलिया के फैमिली कोर्ट का न्यायाधीश,

(ग) विक्टोरिया के सिवाय राज्य के उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश,

(घ) आस्ट्रेलिया राजधानी राज्यक्षेत्र या उत्तरी राज्यक्षेत्र के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, के पद के रूप में परिभाषित किया गया है ।

इस प्रकार, पेनल के सभी सदस्य न्यायाधीश हैं ।

जर्मनी:

संविधान के अनुच्छेद 97(2) के अनुसार न्यायाधीशों को 'न्यायिक' विनिश्चय के प्राधिकार के अधीन ही बर्खास्त, निलम्बित या स्थानान्तरित या उनकी अवधि की समाप्तिपूर्व सेवानिवृत्त किया जा सकता है ।

अनुच्छेद 98 के अधीन संविधान में यह व्यक्ति है कि फेडरल न्यायाधीश को फेडरल संवैधानिक न्यायालय द्वारा ही स्थानान्तरित, सेवानिवृत्त सूची में सम्मिलित या बर्खास्त किया जा सकता है ।

जर्मन न्यायपालिका अधिनियम, 1972 की धारा 50 में यह कथन है कि न्यायाधीश परिषद् में फेडरल कोर्ट ऑफ जस्टिस और पेटेंट कोर्ट के पांच न्यायाधीश तथा कोर्ट ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, फेडरल फाइनेन्स कोर्ट और फेडरल लेबर कोर्ट तथा फेडरल सोशल कोर्ट के तीन न्यायाधीश सदस्य होंगे । तीन न्यायाधीशों से मिलकर बनी न्यायाधीश परिषद् भी मिलिट्री सेवा न्यायालयों के न्यायाधीशों के विरुद्ध कार्रवाई के लिए स्थापित की जाएगी ।

इस प्रकार, इस परिषद् के सभी सदस्य न्यायाधीश हैं ।

हांग-कांग:

हांग-कांग संविधान के अनुच्छेद 89 के अधीन खण्ड (1) में यह कहा गया है 'हटाए जाने' का अन्वेषण न्यायाधीशों द्वारा ही किया जाएगा । न्यायाधीशों के अधिकरण की नियुक्ति अंतिम अपील न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा की जाएगी और इसमें तीन स्थानीय न्यायाधीशों से कम सदस्य नहीं होंगे । खण्ड (2) में यह कथन है कि हांग कांग विशेष प्रशासनिक क्षेत्र के अंतिम अपील न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति का अन्वेषण मुख्य कार्यपालक द्वारा नियुक्त अधिकरण द्वारा किया जाएगा जिसमें पांच स्थानीय न्यायाधीशों से कम न्यायाधीश नहीं होंगे ।

इस प्रकार, अधिकरण केवल न्यायाधीशों से मिलकर बनता है ।

मलेशिया:

मलेशियन फेडरल संविधान के अनुच्छेद 125 के अधीन न्यायाधीशों के विरुद्ध परिवादों पर अन्वेषण करने के लिए अधिकरण ऐसे पांच व्यक्तियों से मिलकर बनेगा जो फेडरल न्यायालय या

अपील न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में पदधारक रह चुके हैं या पद धारण कर रहे हैं या जहां समीचीन हो, कामनवेल्थ के किसी अन्य भाग के समतुल्य पदधारक हैं ।

इस प्रकार, अधिकरण के सभी सदस्य न्यायाधीश हैं ।

पाकिस्तानः

पाकिस्तान संविधान के अनुच्छेद 209 के अधीन उच्चतम न्यायिक परिषद् जो न्यायाधीशों का अन्वेषण करता है, निम्नलिखित से मिलकर बनेगाः

(क) पाकिस्तान का मुख्य न्यायमूर्ति,

(ख) उच्चतम न्यायालय के दो वरिष्ठतम न्यायाधीश, और

(ग) उच्च न्यायालयों के दो वरिष्ठतम मुख्य न्यायमूर्ति ।

इस प्रकार, न्यायिक परिषद् के सभी सदस्य न्यायाधीश हैं ।

स्वीडनः

स्वीडन संविधान के अनुच्छेद 8 के अधीन अध्याय 12 में कार्यवाहियां स्वीडिश उच्चतम न्यायालय के समक्ष ओमबडसमैन या जस्टिस चांसलर की शिकायत पर की जाएगी ।

बंगलादेशः

बंगलादेश संविधान के अनुच्छेद 96 के अधीन यह कहा गया है कि ऐसी उच्चतम न्याय परिषद् जो अनुशासन पर विचार करती है, निम्नलिखित से मिलकर बनेगी

(क) बंगलादेश का मुख्य न्यायमूर्ति और

(ख) दो वरिष्ठतम न्यायाधीश

इस प्रकार, न्यायिक परिषद् के सभी सदस्य न्यायाधीश हैं ।

इस्राईलः

इस्राईल में अध्याय 2 धारा 7(5) में भूल विधि अनुशासन न्यायालय के संबंध में है और उस अध्याय की धारा 13 में यह कथन है कि अनुशासन न्यायालय उच्चतम न्यायालय के अध्यक्ष द्वारा नियुक्त आसीन या सेवानिवृत्त न्यायाधीशों से मिलकर बनेगा । अनुशासन न्यायालय के सभी सदस्य न्यायाधीश हैं ।

जाम्बिया:

जाम्बिया में, 1996 में यथासंशोधित 1991 के संविधान के अनुच्छेद 98(3) में यह उपबंध है कि अध्यक्ष एक अधिकरण गठित करेगा जो सभापति और दो अन्यून सदस्यों जो उच्च न्यायिक पद धारण कर चुके हैं या कर रहे हैं, से मिलकर बनेगा ।

इस प्रकार, अधिकरण के सभी सदस्य न्यायाधीश हैं ।

जाम्बिया के न्यायिक (आचार संहिता) अधिनियम,1999 की धारा 20 में यह कथन है कि एक परिवाद समिति होगी जो ऐसे पांच सदस्यों से मिलकर बनेगी जो उच्च न्यायिक पद धारण कर रहे हैं या धारण करने के योग्य हों ।

इस प्रकार, परिवाद समिति के सभी सदस्य न्यायाधीश हैं ।

यू. एस. ए. :

यू. एस. ए. की फेडरल व्यवस्था में 1939, 1980 और 2002 के सुसंगत अधिनियम हैं जिसके अधीन सर्किट के न्यायिक परिषदों का गठन प्रत्येक सर्किट के लिए किया जाता है जिसमें केवल सर्किट के न्यायाधीश होते हैं । यह परिषद् 'गौण उपाय' अधिरोपित कर सकता है । लेकिन यदि यह 'हटाया जाना' समुचित समझता है तो यह यूनाइटेड स्टेट्स के उस जुडिशियल कांफ्रेंस को मामला निर्दिष्ट करता है जो यू. एस. उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति, सर्किट अपील न्यायालय और जिला न्यायालयों के न्यायाधीशों मिलकर बनता है ।

हमने पहले विस्तार से 1939, 1980 और 2002 के तीनों अधिनियमों का उल्लेख किया है ।

इस प्रकार, यू.एस.ए.की फेडरल व्यवस्था में सर्किट के न्यायिक परिषद् और जुडिशियल कांफ्रेंस के सभी सदस्य न्यायाधीश हैं ।

मात्र पियर पुनर्विलोकन ही स्वतंत्रता के संवैधानिक मानक को पूरा करता है:

लोकतंत्र और विधि के नियम को बनाए रखने के लिए न्यायिक शाखा की स्वतंत्रता काफी महत्वपूर्ण है । स्वतंत्रता के अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वतंत्रता और संस्थागत स्वतंत्रता सम्मिलित है । न्यायिक स्वतंत्रता या न्यायिक जवाबदेही से संबद्ध सिद्धांतों की पूरी चर्चा किए बिना जिसका उल्लेख हम अध्याय 3 और इस अध्याय में कर चुके हैं, अब हम पियर पुनर्विलोकन और इसके महत्व के प्रश्न पर ही चर्चा करेंगे ।

भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 220(2)(ख) में यह उपबंधित था कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के विरुद्ध अन्वेषण प्रिवी कौंसिल द्वारा किया जाएगा और यह हिज या हर मजेस्टी को हटाए जाने की सिफारिश कर सकता था । 1948 में यह शक्ति फेडरल न्यायालय को अंतरित हो गई जो भारत के गवर्नर जनरल को समरूप सिफारिश कर सकता था । इस प्रकार भारत के संविधान के प्रवृत्त होने के पूर्व वरिष्ठ न्यायालयों के न्यायाधीशों के विरुद्ध अभिकथनों की जांच पूर्णतः न्यायपालिका के हाथों में थी ।

यह उल्लेखनीय है कि संसद ने 1968 अधिनियम का अधिनियमन किया जिसमें दो न्यायाधीशों और एक न्यायविद् से मिलकर एक समिति की और इस विधेयक का वर्तमान प्रस्ताव कमोबेश इसी दिशा में है ।

हमारे उच्चतम न्यायालय ने सी. के. रविचन्द्रन अय्यर बनाम **ए. एम. भट्टाचार्जी**, 1995(5) एस. सी. सी. 457, वाले मामले में 'पियर पुनर्विलोकन' के महत्व पर विचार किया । उच्चतम न्यायालय ने कई नज़ीरों को निर्दिष्ट किया कि क्यों न्यायिक स्वतंत्रता को बनाए रखने तथा न्यायाधीशों को न्यायिकतः जवाबदेह बनाने के सर्वोत्तम हित में पियर पुनर्विलोकन पर विचार न किया जाए । जैसा ऊपर इंगित किया गया है, यह अन्तरराष्ट्रीय परम्पराओं से भी संगत है । वस्तुतः उच्चतम न्यायालय ने श्री इर्विंग आर. काफमैन (1978-79) जिल्द 88 येल ला रिव्यू पृष्ठ 681 के मतों और कोलम्बिया जिले के यू. एस. पील न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति हेनरी टी. एडवर्ड (1989) जिल्द 87 मिचिगन ला रिव्यू 765 के मतों को निर्दिष्ट किया कि क्यों मात्र पियर पुनर्विलोकन ही "न्यायाधीशों की स्वतंत्रता के लिए अच्छा और संगत होगा ।" जस्टिस पाल कासग्रोव बनाम अटर्नी जनरल आनटेरियो 2005 फेडरल कोर्ट 1454 वाले मामले में केनेडियन फेडरल कोर्ट के न्यायमूर्ति मैडम मैक्टाविश ने कहा कि यह "संस्थागत फिल्टर" की एक किस्म है । केनेडियन न्यायालय ने यह भी कहा कि न्यायाधीशों के पास अन्य समकक्ष न्यायाधीशों के आचरण के पुनर्विलोकन की आवश्यक दक्षता है ।

यू. एस. ए. में 1939 अधिनियम की उद्देशिका (28 यू. एस. सी. 332) में यह कहा गया है कि न्यायिक परिषदों की स्थापना स्व-सुधार के लिए की गई थी जिसके द्वारा वे न्यायालय अपने निजी कार्य की संवीक्षा करने और अपने न्याय-प्रशासन में दक्षता और तत्परता विकसित करने में समर्थ होंगे ।

चेन्डलर (1970) 398 यू. एस. 74 वाले मामले में न्यायमूर्ति हर्लन ने कहा कि 1939 अधिनियम में आंतःन्यायिक पर्यवेक्षण का उपबंध है और यह कि कानून "अपनी निजी व्यवस्था को ठीक करने के लिए" समर्थ बनाता है । उन्होंने कोलम्बिया जिले के अपील न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति गोनर के अभिभाषण से उद्धरण दिया कि यह न्यायाधीशों द्वारा स्वयं अपने पर अंकुश रखने की प्रक्रिया थी । जैसा कि स्वयं कांग्रेस यह चाहती थी कि न्यायिक परिषद् जिला न्यायाधीशों का पर्यवेक्षण करने में न्यायिक निकाय के रूप में कार्य करे, इसलिए यह विनिश्चित करना आवश्यक नहीं था कि क्या इस प्राधिकार का स्थापन शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का अतिक्रमण करता है । ऐसा प्रश्न तभी उठेगा यदि पर्यवेक्षण प्राधिकार गैर-न्यायिक निकाय को सौंपा गया हो ।

यह एक निर्णायक पहलू है । जब तक न्यायपालिका का पर्यवेक्षण पूर्णतः न्यायिक निकाय द्वारा नियंत्रणाधीन नहीं स्वीकार किया जाता है तब तक यह न्यायमूर्ति ग्रोनर (जैसा न्यायमूर्ति हर्लन द्वारा उद्धृत हैं) के अनुसार शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन करता है । वस्तुतः न्यायमूर्ति डगलस और न्यायमूर्ति ब्लैक न्यायपालिका के भीतर इस आंतरिक पर्यवेक्षण से सहमत नहीं हैं जिसके लिए उनकी यह दलील है कि महाभियोग की संसदीय प्रक्रिया चाहे कितनी भी कठिन और सदियों से असफल क्यों न रही हो, बनी रहनी चाहिए । हमारे अनुसार वह मत एक परम मत है । दूसरी ओर, हम न्यायमूर्ति ग्रोनर के मतों से सहमत हैं कि ऐसे निकाय में पर्यवेक्षण निहित करना जो गैर-न्यायिक सदस्यों से मिलकर बना हो, न्यायपालिका की स्वतंत्रता और शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का अतिलंघन करेगा ।

विधि आयोग का यह मत है कि 2005 के विधेयक की धारा 3(1) जो केवल न्यायाधीशों से मिलकर राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् की स्थापना का उपबंध करती है, संवैधानिक रूप से विधिमान्य है और न्यायिक स्वतंत्रता, न्यायिक जवाबदेही और शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत की अवधारणा से संगत है ।

(5) क्या भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को 'परिवाद' पर जांच से अपवर्जित किया जाए?

2005 के विधेयक में अध्याय 2 की धारा 5, 7 और 8 और अध्याय 5 की धारा 16 परिवाद प्रक्रिया को लागू होती हे । अध्याय 3 की धारा 9 और 10 और अध्याय 6 की धारा 17 निर्देश प्रक्रिया को लागू होती है । अध्याय 2 की धारा 3,4 और 6, अध्याय 4 की धारा 11, अध्याय 5 की धारा 12 से 15, अध्याय 6 की धारा 18, अध्याय 7 की धारा 19 से 21 सऔर अध्याय 8 की धारा 22 से 29 परिवाद और निर्देश प्रक्रिया दोनों को लागू होती है ।

धारा 2(घ) में 'न्यायाधीश' की परिभाषा निम्नलिखित रूप में दी गई है :-

'धारा 2(घ) : 'न्यायाधीश' से उच्चतम न्यायालय का या किसी उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति भी है' ।

विधेयक में यथा-अंतर्विष्ट यह परिभाषा शिकायत प्रक्रिया तथा निर्देश प्रक्रिया को लागू होती है ।

हमारे विचार से, 2005 के विधेयक की धारा 2(घ) में धारा 5 के अधीन शिकायत प्रक्रिया के प्रयोजनार्थ भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को 'न्यायाधीश' की परिभाषा से ठीक ही अपवर्जित किया गया है हालांकि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को धारा 3(2) के परन्तुक के आधार पर धारा 9 के अधीन निर्देश प्रक्रिया के प्रयोजनार्थ सम्मिलित किया गया है ।

इस संबंध में उचित कारण हैं कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को इसमें क्यों नहीं सम्मिलित किया जाना चाहिए ।

न्यायिक परिषद् के समक्ष शिकायत प्रस्तुत करने की रीति और संसद् सदस्यों द्वारा न्यायिक परिषद् को निर्देश करने की ईप्सा करते हुए अध्यक्ष/सभापति के समक्ष सदन में प्रस्ताव पेश करने की रीति के बीच पर्याप्त अंतर है ।

भारत के उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश को, जिसमें भारत के मुख्य न्यायमूर्ति भी आते हैं, 'हटाने' के प्रयोजनार्थ कोई प्रस्ताव संसद् सदस्यों की विहित संख्या द्वारा संसद् के किसी सदन में अवश्य पेश किया जाना चाहिए । इसके पश्चात् मामला अध्यक्ष या सभापति के समक्ष जो कि सांविधानिक कृत्यकारी है, पेश किया जाता है । दूसरी ओर, 'शिकायत' किसी भी व्यक्ति द्वारा की जा सकती है, चाहे वह कोई साधारण मुकदमेबाज हो या कोई वकील या कोई अन्य व्यक्ति और उसे उत्तरदायी संसद् सदस्यों के समूह द्वारा पेश किए जाने वाले प्रस्ताव के समान नहीं माना जा सकता ।

इसके अतिरिक्त, यदि कोई भी व्यक्ति 'शिकायत' फाइल कर सकता है तो भारत का मुख्य न्यायमूर्ति, जो कि समस्त न्यायपालिका का प्रशासनिक मुखिया है, अनैतिक शिकायतों से भेद्य हो जाता है । यह न्यायपालिका कि लिए शुभ नहीं होगा, जिसमें जनता का उच्च विश्वास है । उच्चतम न्यायालय ने उच्चतम न्यायालय अभिलेख-अधिवक्ता एसोसिएशन बनाम भारत संघ (1993) 4 एस.

सी. सी. 441, वाले मामले में यह मत व्यक्त किया कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को संविधान के अधीन 'केन्द्रीय' हैसियत प्रदान की गई है । वीरास्वामी बनाम भारत संघ : (1991) 3 एस. सी. सी. 655, वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के पद की श्रेष्ठता और महत्ता के प्रति निर्देश किया । न्यायिक जवाबदेही पर उप-समिति बनाम भारत संघ; (1991) 4 एस. सी. सी. 699, वाले मामले में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को प्रदान की गई श्रेष्ठता के संबंध में पुनः जोर दिया गया । सी. के. रविचन्द्रन अय्यर बनाम न्यायमूर्ति ए. एम. भट्टाचार्जी : (1995) 5 एस. सी. सी. 457, वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को देश की न्यायपालिका के मुखिया के रूप में निर्दिष्ट किया .....। भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, न्यायाधीशों में अग्रणी होते हैं ।"(इस दृष्टिकोण की हाल ही में की गई पुनरावृत्ति के लिए भारत संघ बनाम काली दास बतीश (2006) 1 स्केल 190, पृष्ठ 196, पैरा 14 देखिए)

विधि आयोग की यह राय है कि विधेयक में यह सही आधार लिया गया है कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को, उचित कारणों से "शिकायत प्रक्रिया" के अध्यधीन नहीं लाया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त, इस निमित्त किया गया उपबंध न तो विभेदात्मक है और न ही मनमाना चूंकि न्यायपालिका के प्रशासनिक मुखिया के रूप में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की स्थिति विशेष है और वह वैसी नहीं है जैसी कि उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों या उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों की स्थिति है ।

निस्संदेह, परिभाषा के पठन मात्र से ही यह दर्शित होता है कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को प्रस्तावित 'शिकायत' प्रक्रिया में शामिल नहीं किया गया है । तथापि, 'से उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश अभिप्रेत है' शब्दों से यह दलील उद्भूत हो सकती है कि भारत का मुख्य न्यायमूर्ति भी उच्चतम न्यायालय का एक न्यायाधीश होने के कारण इस परिभाषा के भीतर आता है ।

विधि आयोग अत्यंत सावधानी बरतते हुए यह सिफारिश करता है कि 2005 के विधेयक की धारा 2(घ) में "उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश" शब्दों के पश्चात् "भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न" शब्द अंतःस्थापित किए जाएं ।

(ख) स्पष्टतः, धारा 9, 10 और 17 के अधीन निर्देश प्रक्रिया के प्रयोजनार्थ 'न्यायाधीश' शब्द की परिभाषा के अंतर्गत भारत का मुख्य न्यायमूर्ति भी आना चाहिए । जैसा कि ऊपर कथन किया

गया है, प्रस्तावित विधेयक में कुछ ऐसी धाराएं हैं जो दोनों प्रक्रियाओं को लागू होती हैं, अर्थात् धारा 3, 4, 6, 11, 12 से 15, 18, 19 से 21 और 22 से 29.

अतः हम यह सिफारिश करते हैं कि धारा 2(घ) निम्नलिखित परिभाषा द्वारा प्रतिस्थापित की जाए :

"(घ) 'न्यायाधीश' से उच्चतम न्यायालय का या किसी उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश अभिप्रेत है, और इसके अंतर्गत निर्देश प्रक्रिया के प्रयोजनों के लिए किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति और भारत का मुख्य न्यायमूर्ति भी सम्मिलित होगा किन्तु शिकायत प्रक्रिया के प्रयोजनों के लिए भारत का मुख्य न्यायमूर्ति सम्मिलित नहीं होगा ;

हम यह भी सिफारिश करते हैं कि 'शिकायत प्रक्रिया' और 'निर्देश प्रक्रिया' शब्दों की निम्नलिखित रूप में एक पृथक परिभाषा होनी चाहिए :

"शिकायत प्रक्रिया" से ऐसी प्रक्रिया अभिप्रेत है जो धारा 5 के अधीन परिषद् को शिकायत के तौर पर आरंभ की जाती है ;

"निर्देश प्रक्रिया" से ऐसी प्रक्रिया अभिप्रेत है जो हटाने के लिए प्रस्ताव के रूप में आरंभ की जाती है जिसे अध्यक्ष या सभापति द्वारा परिषद् को निर्देशित किया जाता है ।

(VI) जब उच्चतम न्यायालय का कोई ऐसा न्यायाधीश, जिसके विरुद्ध शिकायत फाइल की गई है और वह लंबित है, अन्वेषण के लंबित रहने के दौरान भारत का मुख्य न्यायमूर्ति बन जाता है, तब क्या होना चाहिए । इससे संबंधित प्रश्न उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के बारे में भी उद्भूत होता है ।

ऐसी स्थितियों की कल्पना की जा सकती है जिनमें उच्चतम न्यायालय के किसी आसीन न्यायाधीश के विरुद्ध शिकायत लंबित है और वह न्यायाधीश भारत का मुख्य न्यायमूर्ति बन जाता है । अथवा, इसी प्रकार, जब किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के विरुद्ध शिकायत लंबित है और उसे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में पदोन्नत किया जाता है । ऐसी शिकायतों को, स्पष्ट रूप से न्यायाधीश की पदोन्नति के कारण निष्फल नहीं होने दिया जा सकता । अतः 2005 के विधेयक में इन आकस्मिकताओं से निपटने के लिए उपबंध अवश्य होने चाहिएं ताकि उस कारण

अन्वेषण या जांच को रोका न जाए ।

ऐसी दशा में, जब उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश की, शिकायत के पश्चात् या दोनों सदनों में से किसी सदन में प्रस्ताव पेश किए जाने के पश्चात् भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में पदोन्नति हो जाती है और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में उसकी पदोन्नति से पूर्व निर्देश कर दिया जाता है तो उसे न्यायिक परिषद् का सदस्य नहीं होना चाहिए ।

हम यह सिफारिश करते हैं कि धारा 3(2) में निम्नलिखित प्रभाव का द्वितीय परन्तुक अंतःस्थापित किया जाना चाहिए :

"परन्तु यह और कि जहां किसी व्यक्ति द्वारा उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के विरुद्ध उसकी भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में पदोन्नति से पूर्व कोई शिकायत की जाती है या अध्यक्ष या सभापति द्वारा कोई निर्देश किया जाता है वहां वह परिषद् का सदस्य नहीं होगा और राष्ट्रपति, उच्चतम न्यायालय के अगले ज्येष्ठतम न्यायाधीश को अध्यक्ष के रूप में और ज्येष्ठता में अगले उच्चतम न्यायालय के एक अन्य न्यायाधीश को भी परिषद् के एक सदस्य के रूप में नामनिर्दिष्ट करेंगे ।"

विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि 2005 के विधेयक में इस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए कि उसमें यह उपबंध हो कि यदि उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश के विरुद्ध कोई शिकायत फाइल की गई है तो उसे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में पदोन्नत किए जाने के पश्चात् भी जारी रखा जा सके ।

2005 के विधेयक की धारा 5 में, धारा 5 की उपधारा (1) के नीचे इस आशय का एक स्पष्टीकरण जोड़ना होगा । इसी प्रकार का स्पष्टीकरण धारा 5 की उपधारा (1) के नीचे जोड़ा जाना चाहिए, जिसमें उच्चतम न्यायालय में पदोन्नत किए गए उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश या मुख्य न्यायमूर्ति के विरुद्ध उस अवधि के दौरान, जब वह उच्च न्यायालय का न्यायाधीश था, किए गए कदाचार के कृत्यों की बाबत जांच जारी रखने या आरंभ करने का उपबंध हो ।

(VII) क्या 'शिकायत' प्रक्रिया के अधीन न्यायिक परिषद् के समक्ष आने वाले मामलों में समावेदन द्वारा किसी न्यायाधीश को 'हटाने' का उपचार पर्याप्त है और क्या अन्य 'गौण उपाय' जैसे : सलाह देना, चेतावनियां देना, सुधारात्मक कदम, सेवानिवृत्ति के लिए प्रार्थना, न्यायाधीश की

सूची में से मामलों की वापसी, परिनिंदा या भर्त्सना (सार्वजनिक या प्राइवेट), 2005 के विधेयक में सम्मिलित किए जाने चाहिएं ?

2005 के विधेयक में शिकायत के रूप में एक अतिरिक्त प्रक्रिया का उपबंध है और उसमें यह उपबंधित है कि यदि न्यायिक परिषद् यह निष्कर्ष निकालती है कि कदाचार के आरोप साबित हो गए हैं तो वह केवल 'हटाने' की सिफारिश कर सकती है ।

भारत के विधि आयोग का यह मत है कि 2005 के विधेयक को इस प्रकार संशोधित करने की आवश्यकता है जिससे कि उसके अंतर्गत शिकायत प्रक्रिया के मामले में अधिरोपित किए जाने वाले 'गौण उपाय' लाए जाएं । हम विस्तृत कारणों द्वारा इस दृष्टिकोण को अपनाने के आधार स्पष्ट करना चाहते हैं ।

हमने 'न्यायिक स्वतंत्रता और न्यायिक जवाबदेही' के प्रश्न पर विचार करते हुए, अध्याय 3 में पहले ही यह इंगित कर दिया है कि यू. के. में राज्य के प्रधान, जैसे राष्ट्रपति या गर्वनर जनरल या हर मेजेस्टी को समावेदन करके 'हटाने' की प्रक्रिया व्यवहार्यतः विरले ही सफल रही है । इंग्लैंड में 1805 के बाद कोई महाभियोग नहीं हुआ है । यूनाइटेड स्टेट्स में भी, महाभियोग विरले ही सफल रहा है । हमारे देश में, स्वतंत्रता के पश्चात् एकमात्र अवसर, अर्थात् न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी के मामले में, सफल नहीं हुआ ।

कोलम्बिया डिस्ट्रिक्ट की यू. एस. कोर्ट आफ अपील के सर्किट न्यायाधीश हैरी टी. एडवर्ड ने 'रेग्युलेटिंग जुडिशियल मिस्कंडक्ट एंड डिवाइनिंग 'गुड बिहेवियर' फार फेडरल जजेज़' (1989) 87 मिचीगन एल. आर. 765 नामक लेख में यह कथन किया :-

> ".....रचयिताओं ने न्यायपालिका को संसदीय राजनीति के विरुद्ध अतिरिक्त संरक्षण प्रदान करने के लिए जानबूझकर हटाने संबंधी जटिल प्रक्रिया बनाई जिसमें हाउस आफ रिप्रेस्टेटिव्स द्वारा महाभियोग चलाना और सीनेट के दो-तीहाई बहुमत द्वारा दोषसिद्ध किए जाने पर हटाया जाना है । सीनेट को अधिनिर्णायक के रूप में चुना गया था ..... ।"

वास्तव में, अनेक न्यायविदों ने यह कहा है कि समावेदन द्वारा महाभियोग चलाना या हटाना अब अप्रचलित हो गया है । इसका कारण ढूंढना मुश्किल नहीं है । समावेदन द्वारा महाभियोग या

हटाने के संबंध में संसद् में कार्यवाही एक राजनीतिक प्रश्न है । विधानमंडल के समक्ष तभी समावेदन किया जा सकता है जब विहित संख्या में विधायक प्रस्ताव पेश करते हैं । उसे सदन के पीठासीन अधिकारी द्वारा ग्रहण किया जाना आवश्यक है । जब सबूत हो, तब भी न्यायाधीश को या तो व्यक्तिगत रूप से या काउंसेल के माध्यम से अपनी प्रतिरक्षा करने का अवसर दिए जाने के पश्चात् विधानमंडल में मतदान कराया जाता है । सांसद मतदान करने के लिए बाध्य नहीं होते, वे अनुपस्थित भी रह सकते हैं, जैसा कि न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी के मामले में हुआ है । संसद को, हटाने का निदेश देने या कार्यवाहियां वापस लेने का निदेश देने संबंधी विनिश्चय करने के लिए कारण देना आवश्यक नहीं है । अतः, समावेदन प्रक्रिया के सफल होने के मार्ग में अनेक कठिनाइयां है ।

आस्ट्रेलिया में न्यायमूर्ति मरफी के विरुद्ध कार्यवाहियों का इतिहास भी एक और स्थापित उदाहरण है । न्यायाधीश, उच्च न्यायालय में पदोन्नति से पूर्व लेबर पार्टी का सदस्य और राज्य में एक अटर्नी जनरल था । लेबर पार्टी उस समय सत्ता में थी और वह कोई कार्रवाई करने की इच्छुक नहीं थी । किन्तु, चूंकि लेबर पार्टी का सीनेट में बहुमत नहीं था इसलिए सीनेट ने जांच के लिए एक समिति नियुक्त की । प्रथम सीनेट समिति ने न्यायाधीश को दोषमुक्त कर दिया । इसके पश्चात् सीनेट ने भिन्न आरोप के आधार पर दूसरी समिति नियुक्त की । इसी बीच, उसके विरुद्ध दांडिक कार्यवाहियां आरंभ की गई और अंततः एक नई विधि के अधीन एक विशेष आयोग नियुक्त किया गया । इसके बाद, उस विधि को निरसित करने की ईप्सा की गई । इन लंबी कार्यवाहियों में, न्यायाधीश ने भाग नहीं लिया और वे मामला न्यायालयों में ले गए, उसके बाद वे कैंसर के रोगी हो गए और फिर उनकी मृत्यु हो गई ।

जटिल प्रक्रिया होना एक पहलू है । दूसरा अति महत्वपूर्ण पहलू यह है कि सभी प्रकार के 'कदाचार' के लिए हटाए जाने की अपेक्षा नहीं की जा सकती । हो सकता है कोई न्यायाधीश अपने कार्य में ढीला या बातूनी या निर्णय-लेखन में तत्पर न हो या गाली-गलोज की भाषा का प्रयोग करता हो । ऐसे अन्य प्रकार के आचरण भी हो सकते हैं, जिनमें रिश्वत लेने या नैतिक अधमता वाले अपराध अंतर्वलित न हों । इन सभी मामलों में, हो सकता है कि न्यायाधीश के जीवनवृत्त की समग्र रूपरेखा और अपनी कमियों को दूर करने की उसकी इच्छा को ध्यान में रखते हुए उसे पद से

'हटाने' का निदेश देना आवश्यक हो । कतिपय कमियों को उचित सलाह द्वारा दूर किया जा सकता है, और कतिपय अन्य कमियों को 'पद से हटाने' की बजाय 'गौण उपायों' द्वारा सुधारा जा सकता है ।

एक अन्य पहलू यह है कि किसी न्यायाधीश को ऐसे 'विचलित आचरण' के लिए, जिसमें न तो रिश्वत लेना और न ही नैतिक अधमता वाला अपराध अंतर्वलित हो, 'हटाने' संबंधी प्रस्ताव इस कारण संसद् के सदनों में असफल हो सकता है कि सासंद् यह महसूस करें कि साबित अवचार की गंभीरता की तुलना में 'हटाने' संबंधी दंड अननुपाती है ।

न्यायाधीश जे. क्लिफोर्ड वैलेस ने, वर्ष 1986 में न्यायिक अनुशासन के संबंध में सीनेट के समक्ष हुई सुनवाई में यह सुझाव दिया कि सभी अपराध इतने गंभीर नहीं समझे जाते कि उनसे पद का स्वतः समपहरण आदिष्ट हो । कुछ प्रकार के कदाचार किसी ऐसे न्यायाधीश को पूर्णतः निरर्हित करने की अपेक्षा नहीं करते जो अन्यथा सक्षम हो । कोलम्बिया डिस्ट्रिक्ट की यू. एस. कोर्ट आफ अपील्स के सर्किट न्यायाधीश हैरी टी. एडवर्ड ने (1987) खंड 87 मिच. एल. आर. 765 पृष्ठ 775 पर यह कहा :-

> "अतः, तर्कणा के 'विवृत्ति' खंड की एक संभाव्य विवक्षा यह है कि यदि कांग्रेस गलत आचरण के कारण महाभियोग न चलाने का विकल्प करती है तो कदाचार करने वाले किसी न्यायाधीश को हटाने के लिए महाभियोग का अनुकल्प अवश्य विद्यमान होना चाहिए ।"

आर. बर्गर ने यह कथन किया है कि 'महाभियोग एक अनन्य उपचार नहीं है' (इम्पीचमैंट : दि कांस्टिट्यूशनल प्राबल्म 122-80 (1973). सभी महाभियोज्य आचरण अच्छे नहीं होते और सभी दांडिक आचरण भी अच्छे नहीं होते किन्तु सभी 'अच्छे नहीं' आचरण दांडिक नहीं होते और न ही महाभियोज्य होते हैं । यदि 'महाभियोज्य' आचरण और 'अच्छे नहीं' आचरण के बीच विवृत्ति हो तो 'अच्छा नहीं' आचरण विनियमित होना चाहिए और उसे गौण उपायों द्वारा ही विनियमित किया जा सकता है ।

आस्ट्रेलिया के मुख्य न्यायमूर्ति ग्लीसन ने यह कथन किया कि :

> "कठिन मामले ऐसे हो सकते हैं जिनमें शिकायत से, भले ही वह साबित कर दी जाए,

पद से हटाया जाना न्यायोचित नहीं होगा । शिकायतकर्ता द्वारा यह अनुमान लगाने की संभावना है कि कोई अन्य अनुशास्ति भी अवश्य उपलब्ध होगी । (पब्लिक कान्फीडेंस इन द जुडिशियरी, (2002) 76 आस्ट्रे. ला. जर्नल 558, पृष्ठ 563)"

न्यू साउथ वेल्स के मुख्य न्यायमूर्ति जे. जे. स्पाइजेलमैन ने अप्रैल, 2003 में पांचवे विश्वव्यापी कामन ला न्यायपालिका कांफ्रेंस (वर्ल्डवाइड कामन ला जुडिशियरी कान्फ्रेंस) में यह कहा कि न्यू साउथ वेल्स की अनुशासन संबंधी अनुशास्तियों का, जिसमें हटाए जाने से भिन्न किसी अनुशास्ति का उपबंध नहीं है, पुनर्विलोकन करना अपेक्षित है क्योंकि विधि में गौण अनुशास्तियों के संबंध में उपबंध के अभाव से विधि 'प्रभावहीन' बन गई है ।

सी. रविचन्द्रन अय्यर बनाम न्यायमूर्ति ए. एम. भट्टाचार्जी (1995) 5 एस. सी. सी. 457, वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने (पृष्ठ 471 पर) यह मत व्यक्त किया :-

"संसद्, राजनीतिक प्रक्रिया द्वारा संविधान के अधीन परिकल्पित महाभियोग की प्रक्रिया का अंतिम उपाय के रूप में बहुत कम अवलंब लेती है.....।"

भारत के उच्चतम न्यायालय ने, उपर्युक्त मामले में, 'गौण उपाय' अधिरोपित करके न्यायाधीशों के पथभ्रष्ट आचरण को सुधारने की आवश्यकता के प्रति निर्देश किया और जेफरी एन. बर और थॉमस ई. विलगिंग को उद्धृत किया, जिन्होंने यह निष्कर्ष निकाला था कि अनेक मुख्य न्यायाधीश अधिनियम (1980 का यू. एस. अधिनियम) को उपचारी विधान के रूप में देखते हैं, जो कि न्यायाधीशों को दंडित न करने बल्कि पथभ्रष्ट आचरण में सुधार लाने के लिए परिकल्पित है और उसमें अधिनियम की प्रमुख विशेषता के रूप में सुधारात्मक कार्यवाही के लिए उपबंध किए गए हैं ।"

उच्चतम न्यायालय ने आगे यह कहा कि यूनाइटेड स्टेट्स में वर्ष 1980 से 1992 के बीच 2388 शिकायतें फाइल की गई थीं । उनमें से 95 प्रतिशत खारिज हो गईं । 1.7 प्रतिशत शिकायतों का अंत या तो सेवा से पदच्युति या धिग्दंड जैसी सुधारात्मक कार्यवाही में हुआ । दो सार्वजनिक धिग्दंड और एक प्राइवेट धिग्दंड किए गए । दो मामले न्यायिक परिषदों द्वारा यह प्रमाणित करते हुए न्यायिक कांफ्रेंस को रिपोर्ट किए गए कि महाभियोग के लिए आधार विद्यमान हो सकते हैं । न्यायालय ने (पृष्ठ 475 पर) यह भी मताभिव्यक्ति की :-

"न्यायिक प्रक्रिया की दक्षता में लोक विश्वास की कमी को दूर करने के लिए कदाचार और महाभियोज्य आचरण के बीच विवृत्ति को भरने की आवश्यकता है ।"

उच्चतम न्यायालय ने चेंडलर बनाम जुडिशियल कौंसिल : (1970) 398 यू. एस. 74 वाले मामले के प्रति निर्देश किया जिसमें जब न्यायिक समिति ने न्यायाधीश की सूची में से लंबित और भावी मामलों को वापस लेने के संबंध में 'गौण उपाय' अधिरोपित किए गए तब यूनाइटेड स्टेट्स की सुप्रीम कोर्ट ने उसे मान्य ठहराया ।

राष्ट्रीय संविधान पुनर्विलोकन आयोग (नेशनल कमीशन फॉर रिव्यू ऑफ दि कान्स्टिट्यूशन) (2001) ने भी कतिपय विचलित आचरणों को प्रगणित किया और यह सिफारिश की कि गौण उपाय अधिरोपित करने के लिए उपबंध करने की आवश्यकता है चूंकि हटाए जाने की प्रक्रिया जटिल थी और अधिकांश मामलों में उपयुक्त नहीं हो सकती ।

राष्ट्रीय संविधान कार्यकरण पुनर्विलोकन आयोग (नेशनल कमीशन टू रिव्यू दि वर्किंग ऑफ दि कान्स्टिट्यूशन) की रिपोर्ट के खंड 1, अध्याय 7 के पैरा 7.38 में यह सुझाव दिया गया था कि समिति का गठन भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और दो ज्येष्ठतम न्यायाधीशों से होना चाहिए और उसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के विचलित आचरण की परीक्षा करने की शक्ति होनी चाहिए और जहां आचरण, पद से हटाए जाने की सिफारिश करने की अपेक्षा न करता हो वहां समिति इस बाबत चेतावनी दे सकेगी या निदेश जारी कर सकेगी कि उस न्यायाधीश को कोई न्यायिक कार्य आबंटित न किया जाए या न्यायाधीश को किसी अन्य उच्च न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया जाए । उसने यह भी सिफारिश की कि समुचित मामलों में, यथास्थिति, उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति या भारत का मुख्य न्यायमूर्ति, जांच समिति द्वारा न्यायाधीश के विरुद्ध निष्कर्ष लेखबद्ध करने के पश्चात् न्यायिक कार्य वापस ले सकेगा ।

राष्ट्रीय आयोग ने परामर्श दस्तावेज, खंड 2, पुस्तक I, के पैरा 14.4 और 14.5 में विचलित आचरण के ऐसे विभिन्न प्रकारों के प्रति निर्देश किया, जिनकी बाबत केवल गौण उपाय उचित नहीं होंगे ।

संविधान के अनुच्छेद 124(4) में उस दशा में 'हटाने' के लिए उपबंध हैं यदि न्यायाधीश का 'कदाचार' साबित हो जाता है । किन्तु 'कदाचार' सदैव गंभीर प्रकृति का नहीं हो सकता जिसमें पद

से हटाना अपेक्षित हो । ऐसा 'कदाचार' या 'विचलित आचरण' हो सकता है जिसमें केवल सुधार किया जाना आवश्यक हो न कि पद से हटाया जाना । कुछ देशों के संविधानों में विनिर्दिष्ट रूप से यह कथन किया गया है कि न्यायाधीश 'सदाचार' के दौरान ही पद धारित करते हैं । यद्यपि हमारे संविधान में ऐसा स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है, तथापि हमारे विचार से न्यायाधीश जो शपथ लेते हैं उसमें यह स्पष्ट है कि वे हमें अपने 'सदाचार' का आश्वासन देते हैं । अतः जब 'सदाचार' से विचलन किया जाता है या ऐसा दुर्व्यवहार किया जाता है जो 'कदाचार' की कोटि में नहीं आता और उसके कारण पद से हटाना आवश्यक नहीं होता, तब विधि द्वारा उसके सुधार के लिए आंतरिक प्रक्रिया के संबंध में उपबंध करना अपेक्षित होता है और ऐसा संविधान द्वारा भी प्रतिषिद्ध नहीं है ।

अन्य देशों, जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, आदि में के कानूनों में गौण उपायों का उपबंध किया गया है

ऐतिहासिक रूप से, न्यायाधीश पर गौण उपाय अधिरोपित करने संबंधी प्रस्थापनाएं संयुक्त राज्य अमेरिका की फेडरल प्रणाली में वर्ष 1939 में उस समय आरंभ की गई जब तारीख 7 अगस्त, 1939 से टाइटल 28 यू. एस. सी. 332 के अधीन विधि पारित की गई थी । उस अधिनियम में, वस्तुतः 'गौण उपाय' अधिरोपित करने के लिए स्पष्ट रूप से विनिर्दिष्ट उपबंध नहीं किए गए थे बल्कि उसमें इस आशय की केवल धारा 306 अंतर्विष्ट थी कि 'जुडिशियल कौंसिल' ऐसी कार्रवाई कर सकेगी, 'जो वह आवश्यक समझे' । इसी प्रकार, उस अधिनियम की धारा 332 में भी यह कहा गया था कि परिषद् ऐसी कार्रवाई कर सकेगी, 'जो वह आवश्यक समझे' । न्यायिक समिति ने, धारा 306 और 332 के अधीन साधारण शक्ति का प्रयोग करते हुए, मामलों के निपटारे में गति लाने के लिए और न्यायाधीशों की दक्षता में सुधार लाने के लिए अनेक 'गौण उपाय' अधिरोपित किए । वास्तव में, अधिनियम के लम्बे शीर्षक में यह कहा गया कि अधिनियम –

> "स्व-सुधार के लिए आशयित है जिसके द्वारा वे न्यायालय अपने स्वयं के कार्य की संवीक्षा करने और दक्षता विकसित करने तथा अपने न्याय प्रशासन में तत्परता लाने में समर्थ होंगे" ।

1939 के कानून द्वारा प्रदत्त शक्तियों से साधारणतः एक प्रकार का आंतर-शाखा स्व-विनियमन उपदर्शित होता है और न्यायिक परिषद् ने उन उपबंधों का उपयोग 'गौण उपाय' अधिरोपित करने के लिए किया ।

1939 के अधिनियम को 1980 के अधिनियम (अधिनियम 28 यू. एस. सी. 372) द्वारा प्रतिस्थापित किया गया । इसे न्यायिक परिषद् सुधार और न्यायिक आचरण और निर्योग्यता अधिनियम (जुडिशियल कौंसिल्स एंड जुडिशियल कंडक्ट एंड डिसेब्लिटी ऐक्ट), 1980 कहा गया । इसके द्वारा उन 'गौण उपायों' को सूचीबद्ध करके, जो कि न्यायिक परिषद् द्वारा अधिरोपित किए जा सकते थे इस विषय पर आगे विचार किया गया । तथापि, अधिनियम में यह कथन था कि यदि न्यायिक परिषद् यह महसूस करती है कि उस आचरण के आधार पर 'पद से हटाना' आवश्यक है तो उसे दस्तावेज जुडिशियल कान्फ्रेंस ऑफ यूनाइटेड स्टेट्स को अग्रेषित करने चाहिएं । न्यायिक सम्मेलन (जुडिशियल कान्फ्रेंस) एक उच्चतर निकाय है और केवल वही निकाय महाभियोग द्वारा हटाने की सिफारिश सीनेट को कर सकता है ।

यूनाइटेड स्टेट्स का 1980 ऐक्ट स्व- विनियमन के सिद्धांत पर आधारित था । कांग्रेस ने इस संबंध में 'ऋजु और उचित प्रक्रिया' तैयार करने की ईप्सा की जिसके द्वारा न्यायिक शाखा स्वयं को सुव्यवस्थित रख सके (एस. रिप. सं. 362. 96वां कांग्रेस, प्रथम सेशन 2, I टी.11 (1979) । 'सुव्यवस्थित' रखने संबंधी न्यायिक परिषद् की शक्ति के अंतर्गत 'गौण उपाय' अपनाने की शक्ति भी आएगी ।

1980 का अधिनियम "कार्यालय में जानबूझकर अवचार, आदतन हस्तक्षेप और न्याय प्रशासन पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले ऐसे अन्य आचरण से, जिनके कारण न्यायिक पद की बदनामी होती है," प्रभावी रूप से निपटने के लिए आशयित था । धारा 372 (1) (6) (ख) न्यायिक परिषद् से यह अपेक्षा करती थी कि वह "ऐसी कार्रवाई करे, जो सर्किट में न्यायालयों के प्रभावी और शीघ्र कार्यकरण प्रशासन को सुनिश्चित करने के लिए अनुज्ञात हो" । धारा 372 (ग) (ख) (iii) से (vii) में यह उपबंध है कि परिषद् ऐसे आदेश कर सकेगी, जिनमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं :-

(1) न्यायाधीश से स्वेच्छया सेवानिवृत्त होने का अनुरोध ; या

(2) न्यायाधीश की प्राइवेट रूप से या सार्वजनिक तौर पर परिनिन्दा या धिग्दंड ; या

(3) यह आदेश कि न्यायाधीश को और मामले नहीं सौंपे जाएं किन्तु ऐसा केवल "अस्थायी आधार पर कुछ समय के लिए" होगा ; या

(4) ऐसी कोई अन्य कार्रवाई, जो वह परिस्थितियों के अनुसार उपयुक्त समझे ।

यदि परिषद् यह महसूस करती है कि 'पद से हटाना' आवश्यक है तो वह धारा 372 (ग) (7) (क) के अधीन मामला न्यायिक कांफ्रेंस को निर्देशित कर सकेगी । 1980 के अधिनियम की धारा 372 (ग) (6) (ख) (vii) (I) और 372 (ग) (8) (क) द्वारा न्यायिक परिषद् या न्यायिक कांफ्रेंस को 'हटाने' का आदेश पारित करने से स्पष्ट रूप से प्रतिषिद्ध किया गया है ।

शिकायतकर्ता, धारा 372 (ग) (1) के अनुसार यह अभिकथन कर सकेगा कि 'कोई परिसंघीय न्यायाधीश ऐसे आचरण में संलिप्त है जो न्यायालयों के प्रभावी और शीघ्र कार्यकरण प्रशासन पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला है' या यह कि 'न्यायाधीश मानसिक या शारीरिक निर्योग्यता के कारण अपने पद से संबंधित सभी कर्तव्यों का निर्वहन करने में असमर्थ है' । यदि शिकायत तुच्छ है या उसका किसी विनिश्चय या प्रक्रियात्मक निर्णय के गुणागुण से सीधा संबंध है तो उसे उस सर्किट के मुख्य न्यायाधीश द्वारा धारा 372 (ग)(3)(क) के अधीन संक्षिप्ततः खारिज किया जा सकता है । अन्य मामलों में, मुख्य न्यायाधीश, जैसा कि ऊपर कथन किया गया है, 'गौण उपाय' अधिरोपित करके 'सुधारात्मक कार्रवाई' कर सकेगा और गंभीर मामलों में, न्यायिक परिषद् मामला न्यायिक कांफ्रेंस को इस बात पर विचार करने के लिए निर्दिष्ट करेगी कि वह सीनेट को 'हटाने' संबंधी सिफारिश करे ।

2002 के यू. एस. अधिनियम में भी, जिसने 1980 के अधिनियम का स्थान लिया, न्यायिक परिषद् द्वारा अधिरोपित किए जाने वाले समरूप 'गौण उपायों' के लिए अभिव्यक्ततः उपबंध किया गया है ।

2005 के यू. के. अधिनियम की धारा 108(3) के अधीन माननीय मुख्य न्यायमूर्ति गौण उपाय अधिरोपित कर सकेंगे जिसमें कि औपचारिक सलाह, या औपचारिक चेतावनी या औपचारिक धिग्दंड या न्यायिक पद से न्यायाधीश को निलंबित करना भी है ।

इसके अतिरिक्त, यू. एस. के विभिन्न राज्यों में हम यह पाते हैं कि राज्य न्यायाधीशों के विरुद्ध न्यायिक परिषदों द्वारा ऐसे 'गौण उपाय' अधिरोपित करना कानूनी रूप से अनुज्ञेय है । जर्मनी और कनाडा के प्राविन्सों में, कानून 'गौण उपाय' अधिरोपित करने की अनुज्ञा देते हैं ।

तदनुसार, विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि 2005 के विधेयक में, न्यायिक परिषद् को शिकायत प्रक्रिया में 'गौण उपाय' अधिरोपित करने में समर्थ बनाने के लिए एक विशेष उपबंध अंतःस्थापित किया जाए । शिकायत प्रक्रिया के मामले में राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् द्वारा निम्नलिखित गौण उपाय अधिरोपित करने के संबंध में उपबंध करके 2005 के विधेयक में इस निमित्त हुए लोप को सुधारने की आवश्यकता है, अर्थात् :

(1) सलाह देना ;

(2) चेतावनियां देना ;

(3) सीमित समय के लिए लंबित और भावी न्यायिक कार्य वापस लेना ;

(4) यह अनुरोध करना कि न्यायाधीश स्वेच्छया सेवानिवृत्त हो जाए ;

(5) सार्वजनिक या प्राइवेट परिनिन्दा या भर्त्सना ।

हम यह स्पष्ट कर दें कि यूनाइटेड स्टेट्स में 'सार्वजनिक परिनिन्दा या भर्त्सना' से यह अभिप्रेत है कि संबंधित शिकायतकर्ता और न्यायाधीश के नाम मीडिया में प्रकाशित किए जाते हैं और उन्हें इंटरनेट पर डाल दिया जाता है । 'प्राइवेट परिनिन्दा या भर्त्सना' वह होती है जिसमें शिकायतकर्ता और न्यायाधीश के नाम प्रकट नहीं किए जाते किन्तु मीडिया और इंटरनेट द्वारा जनता को यह जानकारी दी जाती है कि विशिष्ट न्यायालय के किसी न्यायाधीश के विरुद्ध शिकायत फाइल किए जाने पर प्राइवेट परिनिन्दा या भर्त्सना जारी की गई थी । हम इस निमित्त किसी पृथक परिभाषा की सिफारिश नहीं करते किन्तु हमारा यह मत है कि 'सार्वजनिक या प्राइवेट' शब्दों को उसी रीति में समझा जाए जैसा कि ऊपर कथन किया गया है ।

(VIII) संसद् द्वारा ऐसी विधि की सांविधानिक विधिमान्यता जिसमें न्यायिक परिषद् द्वारा 'गौण उपाय' अधिरोपित करने का उपबंध हो

इस विवाद्यक का प्रमुख महत्व है । साधारणतः, यह मूल प्रश्न उठाया जाता है कि जब संविधान के अनुच्छेद 124(4) में (अनुच्छेद 124(5) और 217 के साथ पठित) सदनों द्वारा राष्ट्रपति को समावेदन करके हटाने का उपबंध किया गया है किन्तु उसमें अभिव्यक्त रूप से कोई 'गौण उपाय' अधिरोपित करने की अनुज्ञा नहीं दी गई है, तब अनुच्छेद 124(5) के अधीन बनाई गई किसी

विधि में गौण उपाय अधिरोपित करने के लिए उपबंध संविधान के अधिकारातीत होगा अथवा नहीं ? अथवा क्या ऐसे उपबंध को, संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 11-क के साथ पठित अनुच्छेद 246 के प्रति निर्देश से न्यायोचित ठहराया जा सकता है, जो कि 'न्याय प्रशासन' विषय से संबंधित है ।

इस प्रश्न पर यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका में अनेक मामलों में सविस्तार विचार किया गया है, जहां संविधान में केवल महाभियोग के लिए उपबंध है । फिर भी, वहां पर न्यायालयों ने 1939 के कानून के उपबंधों की विधिमान्यता को, जिसके द्वारा गौण उपाय के अधिरोपण को विवक्षित रूप से अनुज्ञात किया गया है और 1980 तथा 2002 के कानून की विधिमान्यता को, जिसके द्वारा 'गौण उपाय' के अधिरोपण को अभिव्यक्त रूप से अनुज्ञात किया है, कायम रखा है ।

अब हम इन निर्णयों के प्रति निर्देश करेंगे ।

(1) न्यायाधीश चेंडलर का मामला : न्यायपालिका के भीतर स्व-विनियमन विधिमान्य है :

चेंडलर बनाम जुडिशियल कौंसिल (1970) 398 यू. एस. 74. वाले मामले में, न्यायिक परिषद् ने 1939 के अधिनियम के अधीन कार्यवाही करते हुए यह आदेश किया कि न्यायाधीश चेंडलर की सूची में से लंबित और भावी मामलों को हटा दिया जाए । इस कार्रवाई को यूनाइटेड स्टेट्स की सुप्रीम कोर्ट ने कायम रखा । उस मामले में न्यायमूर्ति हरलान का पृथक् निर्णय काफी जानकारी देने वाला है और उसमें 'गौण उपायों' के अधिरोपण को कायम रखने के संबंध में कारण दिए गए हैं । तर्क यह दिया गया है कि न्यायपालिका के लिए स्व-विनियमन करना, आंतर-न्यायपालिका या आंतरिक प्रणाली तैयार करना अनुज्ञेय था और इन्हें संविधान द्वारा प्रतिषिद्ध नहीं किया गया है । न्यायपालिका को स्वयं को सुव्यवस्थित करने की साधारण शक्तियां प्राप्त है । ऐसी किसी साधारण या अंतर्निहित शक्ति की बाबत, जो किसी न्यायिक परिषद् में विद्यमान होती है, किसी साधारण विधि में, सांविधानिक संशोधन की आवश्यकता के बिना 'गौण उपायों' के लिए अभिव्यक्ततः उपबंध किए जा सकते हैं । ऐसी विधि से संविधान का अतिक्रमण नहीं होता ।

इस संबंध में, चेंडलर वाले मामले में न्यायमूर्ति हरलान के निर्णय में से कतिपय अवतरणों के प्रति निर्देश करना आवश्यक है जिनमें स्व-विनियमन के मामले में न्यायिक परिषद् की, जो

न्यायपालिका के सदस्यों से गठित होती है, उन अंतर्निहित शक्तियों के सिद्धांत पर जोर दिया गया है, जो 1939 के अधिनियम से एकत्र की जा सकती हैं। न्यायमूर्ति हरलान ने मुख्य न्यायमूर्ति ग्रोनर की, जिन्होंने 1939 के अधिनियम के बाद हुई संसदीय बहस में भाग लिया था, निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों को निर्दिष्ट किया :-

"न्याय प्रशासन में जो भी त्रुटि हो और वह किसी भी स्रोत से उद्भूत हो, न्यायिक परिषद् के ध्यान में इसलिए लाई जाती है कि उसे स्वयं न्यायालयों द्वारा सुधारा जा सकता है"।

न्यायमूर्ति हरलान ने यह मताभिव्यक्ति की :

"न्यायिक परिषद्, प्राधिकार की उस विवृत्ति को, जो तत्समय की व्यवस्था (अर्थात् 1939 से पूर्व) के अधीन विद्यमान थी, पूरा करेगी और उसके पश्चात् एक ऐसी पद्धति का, जो कि संसदीय रूप में विधिमान्य एक वैध पद्धति हो, उपबंध करेगी जिसके द्वारा यदि और जब आवश्यक हो, न्यायालय अपनी व्यवस्था में सुधार कर सके।" प्रशासनिक कार्यालय के निदेशक द्वारा, आंकड़ों के आधार पर उठाई गई समस्याओं का स्वयं न्यायालयों द्वारा निराकरण किया जाना था।"

न्यायमूर्ति हरलान ने यह कहा कि कांग्रेस और समितियों के समक्ष सुनवाई में "इस तथ्य की बाबत कई निर्देश किए गए थे कि सुधारात्मक शक्ति का प्रयोग स्वयं न्यायालय द्वारा किया जाएगा।" उसने अमेरिकन जुडिकेचर सोसायटी के प्रत्युत्तर को भी उद्धृत किया, जिसमें यह कहा गया : "न्यायाधीशों को न्यायिक पर्यवेक्षण के अधीन अपना कार्य करने में समर्थ बनाने के समान न्यायिक स्वतंत्रता की घेराबंदी करने का और कोई तरीका नहीं है।" इन सभी बातों से यह उपदर्शित होता है कि ऐसी शक्ति 'केवल किसी न्यायिक निकाय' को दी जानी थी।

इसके बाद, न्यायमूर्ति हरलान ने एक बहुत महत्वपूर्ण मताभिव्यक्ति की। "चूंकि संसदीय इतिहास से यह दर्शित होता है कि कांग्रेस का आशय परिषदों को जिला न्यायाधीशों के पर्यवेक्षण में न्यायिक निकायों के रूप में कार्य करना है इसलिए यह विनिश्चय करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि किसी न्यायिकेत्तर निकाय को प्राधिकार प्रदान करने से, जैसा कि मुख्य न्यायमूर्ति ग्रोनर का

विश्वास था, शक्तियों के सांविधानिक पृथक्करण का अतिक्रमण होगा ।"

इस प्रकार, 1939 के अधिनियम पर विचार करते हुए वर्ष 1970 में, न्यायमूर्ति हरलान ने एक मामले में यह इंगित किया कि 1939 के अधिनियम का आधार, जैसा कि कांग्रेस में हुई बहस से प्रकट होता है, यह था कि न्यायपालिका का 'आंतरिक स्व-विनियमन वैध और विधिमान्य था और उसका अनुमान उसकी इन साधारण शक्तियों से लगाया जा सकता है कि न्यायिक प्रशासन की दक्षता में सुधार लाया जाए ।

(2) हास्टिंग्स बनाम जुडिशियल काफ्रेंस आफ यू. एस. : (1987) 829 एफ. सेकेंड 91 (यू. एस. कोर्ट ऑफ अपील्स)

यह मामला, कांग्रेस को यह सिफारिश करने और प्रमाणित करने के लिए न्यायिक कांफ्रेंस की विधिमान्यता या प्राधिकार के संबंध में था कि यह मामला न्यायाधीश को 'हटाने' के लिए उपयुक्त मामला है । न्यायाधीश हास्टिंग्स द्वारा इस शक्ति को इस रूप में चुनौती दी गई कि यह कांग्रेस द्वारा शक्तियों के असांविधानिक प्रत्यायोजन की कोटि में आती थी और इस चुनौती को कोलम्बिया डिस्ट्रिक्ट के यूनाइटेड स्टेट्स कोर्ट आफ अपील्स ने तारीख 15 सितम्बर, 1987 के निर्णय द्वारा नामंजर कर दिया था । न्यायिक परिषद् द्वारा न्यायिक कांफ्रेंस को की गई हटाने संबंधी सिफारिश को भी कायम रखा गया ।

न्यायाधीश एलसी हास्टिंगंस, जो कि फ्लोरिडा की यू. एस. डिस्ट्रिक्ट कोर्ट के न्यायाधीश थे, आरंभ में रिश्वत लेने के लिए एक आपराधिक मामले में आरोपित किए गए थे किन्तु उन्हें दोषमुक्त कर दिया गया था (देखिए यू. एस. बनाम हास्टिंग्स (1982) 681 सेकेंड 70) । तत्पश्चात्, उसके सह-कर्मियों के समावेदन पर उसके विरुद्ध रिश्वत और शपथ-भंग की 17 मदों के संबंध में कांग्रेस में महाभियोग कार्यवाहियां आरंभ की गई थीं । न्यायाधीश हास्टिंग्स को न्यायिक कांफ्रेंस की सिफारिश के आधार पर दोषसिद्ध किया गया, उन पर महाभियोग चलाया गया और उन्हें पद से हटा दिया गया । किन्तु न्यायिक कांफ्रेंस द्वारा मामले पर कार्यवाही आरंभ करने से पूर्व उसने इस आधार पर इन कार्यवाहियों को चुनौती दी कि न्यायिक परिषद् और न्यायिक कांफ्रेंस को जांच प्रत्यायोजित करना अनुज्ञेय नहीं था । कोर्ट ऑफ अपील्स ने इस चुनौती को अस्वीकार कर दिया ।

यह मत व्यक्त किया गया कि यदि न्यायिक परिषद् को यह प्रमाणित करने था कि महाभियोग आवश्यक है तो वह शक्तियों के असांविधानिक प्रत्यायोजन का प्रयोग नहीं कर रही थी बल्कि उसका प्रमाणित करना कांग्रेस के लिए मात्र औपचारिकता होगी और यह कि न्यायिक कांफ्रेंस द्वारा हटाने के लिए केवल सिफारिश की जा सकती थी, इसलिए, "किसी महाभियोग के सभी पहलुओं पर अब भी कांग्रेस का संपूर्ण नियंत्रण था ।"

इसके अतिरिक्त, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायिक परिषद् में निहित अन्वेषणात्मक और न्यायनिर्णायक कृत्यों का समुच्चय अविधिमान्य नहीं था और विथरो बनाम लार्किन (1975) 421 यू. एस. 35 वाले मामले का अवलंब लेते हुए सम्यक् प्रक्रिया पर आधारित तर्क को अस्वीकार कर दिया ।

(3) न्यायिक परिषद् की अन्वेषण समिति द्वारा अन्वेषणाधीन शिकायतों के मामले में :- (1980) 783 एस. सेकेंड 1488.

ग्यारहवें सर्किट ने यह अभिनिर्धारित किया कि अन्य न्यायाधीशों को अनुशासित करने संबंधी न्यायाधीशों की आंतर-न्यायालय या आंतरिक प्रक्रिया असांविधानिक नहीं थी । उसमें यह कहा गया कि न्यायिक पद्धति ने स्वयं को सांविधानिक सीमाओं के भीतर लैस करने का कार्य किया है । उसने यह अभिनिर्धारित किया कि जांच न्यायिक सहकर्मियों को ही सौंपी गई थी, क्योंकि न्यायाधीश की स्वतंत्रता को अधिक सम्मान दिया जाता है ।

उसने न्यायिक परिषद् के न्यायाधीशों की न्यायिक अनुशासन के संबंध में कार्यवाही करने संबंधी विशेष विशेषज्ञता के प्रति निर्देश किया,

> "इस तथ्य से, जिसमें (अधिनियम के अधीन) अन्वेषण और की जाने वाली कार्रवाई का अवधारण संपूर्णतः न्यायिक सहकर्मियों पर निर्भर करने की बात कही गई है, यह संभाव्य बनाता है कि जिस न्यायाधीश के विरुद्ध शिकायत की गई है, उसकी अधिकारपूर्ण स्वाधीनता को, विशेषकर विनिश्चय करने के क्षेत्र में, अधिकतम सम्मान दिया जाएगा । अन्य न्यायाधीशों से भी अपने स्वयं के अनुभव के कारण यह प्रत्याशा की जाती है कि वे अपनी वृत्ति से जुड़ी विशेष मांगों को समझें और चूंकि प्रत्येक न्यायाधीश स्वयं विनिश्चय करने वाला होता है,

इसलिए इन अन्य न्यायाधीशों से यह प्रत्याशा की जाती है कि वे ऐसी अनुशास्तियां लागू करने से विरत रहें जो उस न्यायाधीश की, जिसके विरुद्ध अन्वेषण किया जा रहा है, अपने बोध के अनुसार मामलों का विनिश्चय करने की स्वतंत्रता में कमी लाए क्योंकि ऐसी अनुशास्तियां पूर्व-न्याय हो सकती हैं और उनका प्रयोग न्यायाधीश के विरुद्ध किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त, न्यायाधीश, निश्चित रूप से कोई ऐसी कार्रवाई करने के भी अनिच्छुक होंगे जिससे न्यायालयों की स्वतंत्रता और उसके स्वतंत्र कार्यकरण पर रोक लग जाएगी ।" (1507-08)

ग्यारहवें सर्किट ने यह मत व्यक्त किया कि केवल महाभियोग पर्याप्त नहीं था । अन्य उपाय भी आवश्यक थे और वे असांविधानिक नहीं थे । न्यायालय ने कार्यपालिका के कर्मचारियों के संबंध में यह कहा :-

"फिर भी, महाभियोग संबंधी उपबंधों के बारे में यह नहीं माना जा सकता कि वे कार्यपालिक शाखा पदाधिकारियों द्वारा किए गए अवचार के लिए दंडित करने का एकमात्र सांविधानिक रूप से अनुज्ञेय माध्यम प्रस्तुत करते हैं । जिन अन्य न्यायालयों ने इस मुद्दे पर विचार किया, उन्होंने भी इसी प्रकार यह निष्कर्ष निकाला कि संविधान के महाभियोग संबंधी उपबंध अधिनियमों के अनुशासन-संबंधी उपबंधों को प्रत्यक्षतः असांविधानिक नहीं बनाते हैं" (1506-07). यही सिद्धांत न्यायपालिका के भीतर आंतरिक विनियमन को लागू होगा ।

(4) जान एच. मैकब्राइडे बनाम कमेटी टू रिव्यू सर्किट कौंसिल कंडक्ट एंड डिसेबिलिटी आर्डर्स आफ दि जुडिशियल कान्फ्रेंस आफ यू. एस. : (2001) 264 एफ. थर्ड 52 (21 सितंबर, 2001) (बाद में यूनाइटेड स्टेट्स की सुप्रीम कोर्ट ने तारीख 7 अक्तूबर, 2002 को उत्प्रेषण मंजूर करने से इनकार कर दिया) ।

न्यायाधीश मैकब्राइडे, जो कि एक फेडरल डिस्ट्रिक्ट न्यायाधीश थे, के विरुद्ध 1980 के अधिनियम के अधीन अन्वेषण किया गया । इस मामले में शिकायत एक अटर्नी द्वारा की गई थी और उसका संबंध वकीलों और मुकदमेबाजों के साथ "गाली गलोज वाला व्यवहार" करने से था । न्यायिक् परिषद् की अन्वेषण समिति ने यह पाया कि उसका आचरण भयावह प्रकृति का है और उसने मनोवैज्ञानिकों से परामर्श करने के पश्चात् यह सिफारिश की कि यदि वह त्यागपत्र न दे तो उसके विरुद्ध निम्नलिखित कार्रवाई की जानी चाहिए :-

(i) सार्वजनिक धिग्दंड (इसे पांचवे सर्किट की वैबसाइट पर डाल दिया जाए) ;

(ii) न्यायाधीश को एक वर्ष तक कोई नया मामला न सौंपा जाए ;

(iii) उसे तीन वर्ष की अवधि तक ऐसे मामलों की अध्यक्षता करने के लिए अनुज्ञात न किया जाए जिनमें वे 23 नामित वकील अंतर्वलित हों, जिन्होंने अन्वेषण में भाग लिया या जिन्हें संभाव्य साक्षियों के रूप में सूचीबद्ध किया गया है ।

अन्वेषण समिति ने जो घटनाक्रम पाया उसका संबंध न्यायाधीश द्वारा उन वकीलों की सत्यनिष्ठा को प्रश्नगत करने, जो उसके समक्ष उपस्थित होते हैं और अनुभव किए गए उल्लंघनों के संबंध में प्रतिक्रिया व्यक्त करने और अनुचित अनुशास्तियां अधिरोपित करने की प्रवृत्ति से है । उसने नियंत्रित करने की अभिभूत आवश्यकता महसूस की और अपने साथी न्यायाधीशों के प्रति असम्मान दर्शाया । समिति ने यह निष्कर्ष निकाला कि उसके आचरण का विधिक समुदाय पर निष्क्रिय प्रभाव पड़ा है जिससे वकीलों को अपने मुवक्किलों का उचित प्रतिनिधित्व करने से रोका गया और न्याय प्रशासन का ह्रास हुआ ।

न्यायिक परिषद् ने अन्वेषण समिति की इन सिफारिशों को अनुमोदित किया और उपर्युक्त निदेश जारी किए ।

न्यायाधीश ने जिला न्यायालय में एक सिविल वाद फाइल किया जिसके द्वारा सम्यक् प्रक्रिया के उल्लंघन, शक्तियों के पृथक्करण, इत्यादि के आधार पर इन सिफारिशों को चुनौती दी गई । यह वाद खारिज कर दिया गया (देखिए 83 एफ. सप्ली. सेकेंड 135). तथापि न्यायालय ने 1980 के अधिनियम की धारा 372 (ग) (14) अभिखंडित कर दी जो कि गोपनीयता के संबंध में थी, जहां तक उससे न्यायाधीश के प्रथम संशोधन अधिकारों पर अभिकथित रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था ।

जिस समय कोलम्बिया सर्किट डिस्ट्रिक्ट की कोर्ट ऑफ अपील्स के समक्ष अपील फाइल की गई, तब तक न्यायिक समिति के आदेश में उल्लिखित एक वर्ष और तीन वर्ष की अवधियां समाप्त हो चुकी थीं । तथापि, अपील्स कोर्ट ने यह अनुभव किया कि उस सार्वजनिक धिग्दंड के कारण, जो अब भी इंटरनेट पर विद्यमान हैं, अपील पर अभी भी विचार किया जा सकता है । न्यायालय की ओर से निर्णय सुनाते हुए न्यायाधीश विलियम्स ने (न्यायाधीश टटेल ने भागतः विसम्मति प्रकट की) यह

मत व्यक्त किया कि कानून द्वारा आंतर-न्यायपालिका पर्यवेक्षण सांविधानिक रूप से विधिमान्य है । न्यायालय ने इस दलील को नामंजूर कर दिया कि महाभियोग द्वारा हटाने से भिन्न उपाय अधिपोरित करना संविधान के अधीन अनुज्ञेय नहीं है । उसने जिला न्यायाधीश के अन्य निष्कर्षों को बातिल कर दिया और इस संबंध में कोई विनिश्चय नहीं किया कि क्या लंबे समय तक मामलों की सुनवाई करने से निरर्हित करना हटाने की कोटि में आएगा ।

न्यायाधीश की ओर से यह दलील दी गई कि कम अनुशास्तियां अधिरोपित करने से न्यायिक स्वतंत्रता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और इस तथ्य से कि संविधान द्वारा महाभियोग शक्ति कांग्रेस में निहित की गई थी, न्यायाधीशों को अनुशासित करने की अन्य सभी पद्धतियां निवारित हो गईं । सिद्धांत के आधार पर उसने यह तर्क दिया कि इस कार्य से शक्तियों के पृथक्करण का उल्लंघन हुआ है ।

न्यायाधीश मैकब्राइडे ने यह कथन करने के लिए नार्दर्न पाइपलाइन कंस्ट्रक्शन कंपनी बनाम मैराथन पाइपलाइन कंपनी (182) 453 यू. एस. 50 का अवलंब लिया कि सांविधानिक प्रत्याभूतियों में विधानमंडल और कार्यपालिका से पृथक्करण का उपबंध था और न्यायपालिका के भीतर कोई पर्यवेक्षण नहीं हो सकता था । इस दलील को नामंजूर करते हुए, न्यायाधीश विल्लियम्स ने इस प्रकार कथन किया :-

> "कम अनुशास्तियां सामान्य है, जैसा कि न्यायालय ने चेंडलर वाले मामले के पृष्ठ 85 पर इस प्रकार उल्लेख किया : 'कई न्यायालयों के ..... अनौपचारिक, अप्रकाशित नियम होते हैं जिनमें ..... यह उपबंध होता है कि जब किसी न्यायाधीश के पास प्रस्तुत करने के लिए निश्चित संख्या में मामले हों तो तब उसे और मामले तब तक नहीं सौंपे जाएंगे जब तक कि उसके 'बकाया' मामलों पर राय और आदेश जारी नहीं कर दिए जाते । ये युक्तिसंगत, उचित और आवश्यक नियम हैं और इन्हें प्रवर्तित कराने की आवश्यकता के संबंध में युक्तियुक्त रूप से सन्देह नहीं किया जा सकता ।'
>
> "चूंकि न्यायाधीश मैकब्राइडे की इस आंतरिक उपधारणा के लिए कोई आधार नहीं है कि न्यायिक स्वतंत्रता के लिए ऐसी गौण अनुशास्तियों से आत्यंतिक स्वाधीनता अपेक्षित है, इसलिए उसके दोनों दावे तुरंत असफल होते हैं ।"

इसके पश्चात् कोर्ट आफ अपील ने इस तर्क के प्रति निर्देश किया कि संविधान में केवल महाभियोग का उल्लेख है और अन्य उपायों को विवक्षित रूप से अपवर्जित किया गया है । न्यायालय ने यह कहा :-

"किन्तु महाभियोग और अनुशासन के बीच इसी अंतर के संबंध में प्रलाप करने का न्यायाधीश मैकब्राइडे का प्रयास भी सफल नहीं होता । संविधान में महाभियोग संबंधी निर्णयों को 'पद से हटाने' और 'पद धारित करने की निरर्हता' (अनुच्छेद 1, धारा 3, खंड 7) तक सीमित किया गया है । इसमें, साधारणतः अनुशासित करने का कोई उल्लेख नहीं है ।"

इसके बाद, न्यायालय ने एक बहुत महत्वपूर्ण मताभिव्यक्ति की :

"उच्चतम न्यायालय ने हाल ही में यह मत व्यक्त किया कि उसने यह प्रतिपादना स्वीकार की कि 'जब कोई कानून किसी कार्य का विशेष रीति द्वारा करना सीमित करता है तो उसके अंतर्गत किसी अन्य रीति का नकारात्मक पक्ष भी आता है' (क्रिस्टेनसेन बनाम हैरीस काउंटी (2000) 529 यू. एस. 570. पृष्ठ 583) । किन्तु इस उक्ति का लागू होना 'किए जाने वाले कार्य' पर निर्भर करता है । इसमें महाभियोग द्वारा जो कार्य किया जाना है वह हटाया जाना और निरर्हित करना है न कि किसी प्रकार का अनुशासन ।"

दूसरे शब्दों में, संविधान में महाभियोग और निरर्हताओं के लिए एक विशेष पद्धति अनुज्ञात की गई थी किन्तु इसमें न्यायाधीशों को किसी भिन्न रीति से अनुशासित करना प्रतिषिद्ध नहीं था ।

न्यायलय ने यह इंगित किया कि संविधान द्वारा दांडिक अभियोजन को बनाए रखा गया और प्रवारित नहीं किया गया (अनुच्छेद 1, धारा 3, खंड 7) और कम से कम तीन सर्किटों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि महाभियोग के पश्चात् अभियोजन चलाया जा सकता है । न्यायालय ने यह इंगित किया कि न्यायमूर्ति डगलस और न्यायमूर्ति ब्लैक ने चेंडलर वाले मामले में भी इस स्थिति को स्वीकार किया ।

इसके बाद, न्यायाधीश मैकब्राइडे ने फेडरलिस्ट (सं. 79) में हैमिल्टन के इस कथन का अवलंब लिया कि महाभियोग "इस विषय पर एकमात्र उपबंध है, जो किसी न्यायिक स्वरूप की आवश्यक स्वतंत्रता से संगत है और वही एकमात्र ऐसा उपबंध है जो हम अपने न्यायाधीशों की बाबत अपने

संविधान में पाते हैं ।"

न्यायालय ने इस दलील को नामंजूर कर दिया और इस प्रकार मत व्यक्त किया :-

"किन्तु, भले ही हम यह मान लें कि इस टिप्पणी में न केवल हटाया जाना और निरर्हता बल्कि अनुशासन के अन्य प्रकार भी अंतर्निहित हैं तो भी ऐसी संभावना प्रतीत नहीं होती कि उसका उद्देश्य आंतर-शाखा अवरोध लगाना था । ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायिक स्वतंत्रता के प्रति हेमिल्टन की चिन्ता व्यापक रूप से दो अन्य शाखाओं से व्याप्त धमकी के संबंध में थी ।"

न्यायालय ने निक्सन बनाम यू. एस. (1993) 506 यू. एस. 224, वाले मामले के प्रति निर्देश करने के पश्चात् यह कहा कि महाभियोग एक अपवाद है । यह एकमात्र नियंत्रण था जो कि विधानमंडल द्वारा न्यायिक शाखा पर अधिरोपित किया जा सकता था और विधानमंडल द्वारा अन्य कोई नियंत्रण अनुज्ञेय नहीं था । किन्तु आंतरिक नियंत्रण या आंतर-न्यायपालिका नियंत्रण अनुज्ञेय थे । न्यायालय ने यह कहा :

"हमारी सांविधानिक पद्धति में, महाभियोग, **विधानमंडल द्वारा** न्यायिक शाखा पर **एकमात्र** नियंत्रण के रूप में परिकल्पित था"।

"हेमिल्टन की न्यायिक स्वतंत्रता के प्रति चिन्ता दो अन्य शाखाओं से व्याप्त धमकी के संबंध में प्रतीत होती है और उसने (हेमिल्टन ने) न्यायपालिका को 'सबसे कम खतरनाक शाखा' के रूप में चित्रित किया (फेडरलिस्ट सं. 78, पृष्ठ 522). इस प्रकार, हेमिल्टन को इस रूप में समझना स्वाभाविक प्रतीत होता है कि वे न्यायाधीशों के कार्यकाल और अक्षुण्ण प्रतिकर और उन्हें संरक्षण प्रदान करने से इनकार करने वाले सीमित साधनों की गारंटी को न्यायपालिका को अन्य शाखाओं से स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के रूप में मानते थे .....। वास्तव में, न्यायपालिका को अन्य शाखाओं से संरक्षित करने संबंधी हेमिल्टन की चिन्ता से आंतरिक अनुशासनिक शक्तियों का संकेत मिलता है । किसी एक न्यायाधीश की उद्दंडता और आतंक से नागरिक द्वारा न्यायिक शाखा का न्यायोचित अवमान हो सकता है । न्यायपालिका, ऐसे अवमान के अवसरों को सीमित करने में समर्थ होकर ही समुन्नत हो सकती है" । [ग्यारहवें सर्किट की न्यायिक परिषद् की कतिपय शिकायतों में (1986) 783 एफ. सेकेंड

1488 (1507-08) देखिए]

न्यायालय नें माइयर्स बनाम यू. एस. (1926) 272 यू. एस. 52 वाले मामले के प्रति निर्देश किया, जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने सरकारी सेवकों की बाबत यह अभिनिर्धारित किया कि इस विषय पर महाभियोग लेख आत्यंतिक नहीं है । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि "संविधान में सरकारी सेवकों और न्यायाधीशों के बीच कोई अंतर नहीं किया गया है ।"

न्यायालय के अनुसार, कांग्रेस ने 1980 का अधिनियम न्यायपालिका द्वारा अपने सदस्यों के आंतर-शाखा नियंत्रण प्रयासों को समर्थ बनाने मात्र के लिए अधिनियमित किया था ।

न्यायालय ने यह कहा :

> "न्यायपालिका को, व्यष्टिक न्यायाधीशों की भोगासक्ति को नियंत्रित करने संबंधी आंतर-शाखा प्रयासों से फायदा दिए जाने के कारण हमें कांग्रेस की उन संरचनात्मक सीमाओं के संबंध में, जो ऐसे प्रयासों के लिए समर्थ बनाती हैं, तर्क करने का कोई आधार प्रतीत नहीं होता ।"

इससे पूर्व उसने यह कहा :

> " ..... हमें संविधान में ऐसी कोई बात दिखाई नहीं देती जिससे कि हमारे लिए व्यष्टिक अनुच्छेद III न्यायाधीश को आत्यंतिक सम्राट के रूप में मानना अपेक्षित हो, जिसे अपील, परमादेश और ऐसी ही रिटों, आपसधिक विधि या स्वयं महाभियोग के जोखिम से ही अवरुद्ध किया जा सकता है । हमें न्यायाधीश मेकब्राइडे के सहज सांविधानिक दावों को अवश्य नामंजूर कर देना चाहिए ।"

यह अभिनिर्धारित करने के पश्चात् कि न्यायिक परिषद् द्वारा अधिनिर्णीत अन्य दंडों के संबंध में क्रमशः एक वर्ष और तीन वर्ष की अवधियां पहले ही अपील के सुनवाई के लिए प्रस्तुत किए जाने से पूर्व समाप्त हो चुकी हैं, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अपील विवादस्पद नहीं हुई थी और अपीलार्थी धिग्दंड के दंड की शुद्धता के संबंध में बहस कर सकता था ।

उसने यह कहा :

"संक्षेप में, महाभियोग की शक्ति के विवक्षित प्रत्याख्यान का दावा हटाने या निरर्हता के संबंध में सही है । किन्तु यह धिग्दंड की अनुशास्ति के लिए बिल्कुल सही है जिसका हटाने या निरर्हित करने से कोई संबंध नहीं है बल्कि यह केवल ऐसी अनुशास्ति है जो अविवाद्य रहती है । इस प्रकार न्यायाधीश मैकब्राइडे का पाठालोचन असफल होता है । न्यायपालिका को, व्यष्टिक न्यायाधीशों की भोगासक्ति को नियंत्रित करने संबंधी आंतर-शाखा प्रयासों से फायदा दिए जाने के कारण हमें कांग्रेस की उन संरचनात्मक सीमाओं के संबंध में, जो ऐसे प्रयासों के लिए समर्थ बनाती है, तर्क करने का कोई आधार प्रतीत नहीं होता" ।

उसने एक वर्ष और तीन वर्षों के दंड के गुणागुण पर भी विचार किया और तथ्यों के आधार पर उसे बातिल कर दिया । तथापि उसने धिग्दंड की अभिपुष्टि की ।

हम यह भी कहना चाहेंगे कि यूनाइटेड स्टेट्स में नेशनल कमीशन आन जुडिशियल डिसिप्लिन एंड रिमूवल (1993) की रिपोर्ट में, जो कि 1980 के अधिनियम के प्रवर्तन का पुनर्विलोकन करने के लिए नियुक्त किया गया कमीशन था (यह रिपोर्ट 210 पृष्ठों में है), उसने पृष्ठ 83 पर (जुडिशियल डिसिप्लिन पर अध्याय V) निम्न प्रकार कथन किया :-

"..... 1980 के अधिनियम में ..... महाभियोग प्रक्रिया के अनुपूरक के रूप में न्यायपालिका के भीतर एक औपचारिक प्रणाली का उपबंध करने की ईप्सा की गई है" ।

मैकब्राइडे वाले मामले में दिए गए उपर्युक्त निर्णय और 1993 की रिपोर्ट से स्पष्टतः यह स्थापित होता है कि इस तथ्य के होते हुए भी कि यूनाइटेड स्टेट्स के संविधान में केवल महाभियोग के लिए उपबंध अंतर्विष्ट थे, फिर भी यूनाइटेड स्टेट्स के न्यायालयों ने उन विधियों को भी कायम रखा जिनके अधीन 'गौण उपाय' अधिरोपित किए जा सकते थे । यह आवश्यक नहीं था कि संविधान में 'गौण उपाय' अधिरोपित करने के लिए कतिपय उपबंध होने चाहिएं । न्यायपालिका ने, स्वयं को सुव्यवस्थित रखने की शक्ति के भागरूप, विधानमंडल द्वारा बनाई गई साधारण विधि के अधीन 'गौण उपाय' अधिरोपित किए ।

कनाडा (फेडरल)

(i) कनाडा में, सुप्रीम कोर्ट ने मेकैगल बनाम हिकमैन : 1989 (2) एस. सी. आर. 796 (पृष्ठ 811-

812 पर) , न्यायमूर्ति ला फारेस्ट ने स्पष्ट रूप से यह मत व्यक्त किया कि संविधान अधिनियम, 1867 की धारा 99(1), जिसमें केवल सदनों के समावेदन द्वारा हटाने का उपबंध किया गया है, संसद् को अन्य प्रणालियों का उपबंध करने वाली विधि बनाने से प्रवारित नहीं करती :

> "ऐसे न्यायिक कृत्यों के अनुपालन से संबंधित जांचों या शिकायतों के संबंध में कार्यवाही करने के लिए, जो कि या तो पर्याप्त रूप से इतनी गंभीर नहीं हैं कि उनसे हटाए जाने की कार्यवाहियां अपेक्षित हो, या जो आचरण को प्रवारित कर सकते हैं या सहायता दे सकते हैं किंतु ऐसी कार्यवाहियों के उचित कार्यकरण में अड़चन पैदा नहीं कर सकतीं या प्रभावी रूप से उनके प्रतिस्थापन की कोटि में आती हैं ।"

(ii) जस्टिस पाल कास्ग्रोव बनाम अटर्नी जनरल आफ ओन्टारियों 2005 एफ. सी. 1454 वाले मामले में न्यायमूर्ति मैडम मेक्टाविश ने यह मत व्यक्त किया कि कनाडियन जुडिशियल कौंन्सिल 'संस्थागत निस्पंदक' के रूप में कार्य करती है । इसकी उपविधियों मे दी गई प्रक्रिया और शिकायत प्रक्रिया, न्यायिक जवाबदेही की आवश्यकता का पुनर्निर्माण करने वाले सावधानीपूर्वक अंशशोधित प्रयासों को द्योतित करती है ताकि न्यायपालिका की स्वतंत्रता को परिरक्षित रखा जा सके । इस प्रक्रिया में, न्यायिक पूर्व-छानबीन प्रक्रिया के रूप में एक 'संस्थागत निस्पंदक' भी है, जो कि न्यायपालिका और बाहरी प्रभावी शाखाओं के बीच समुचित संबंध बनाए रखता है । शिकायतों पर आंतरिक रूप से विचार किया जाता है और उन्हें जांच के लिए तब निर्दिष्ट किया जाता है जब कनाडियन जुडिशियल कौंसिल स्वयं यह अवधारित करती है कि शिकायत पर्याप्त रूप से गंभीर है और वह पर्याप्त रूप से इतनी श्लाघ्य है जो न्यायाधीश को पद से हटाने की संभावित अपेक्षा करती है" न्यायमूर्ति स्ट्रेयर द्वारा ग्रेटन बनाम कनाडियन जुडिशियल काउन्सिल : 1994 (2) एफ. सी. 769 वाले माले में स्वीकृत प्रारंभिक छानबीन प्रक्रम द्वारा अश्लाघ्य शिकायतों के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण संरक्षण प्रदान किया गया है ।

ऐसी विधि बनाने की, जिसमें न्यायिक परिषद् द्वारा गौण उपाय अधिरोपित करने का उपबंध हो, हमारी संसद् की विधायी सक्षमता के बारे में प्रश्न उद्भूत होता है । प्रश्न यह होगा कि क्या यह शक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 124(5) में पाई जा सकती है । प्रश्न यह है कि क्या गौण उपाय अधिरोपित करने के लिए समर्थ बनाने वाली विधि को अनुच्छेद 124(5) के भीतर लाया जा

सकता है, जो निम्न प्रकार है :

"(5) संसद् खंड (4) के अधीन किसी समावेदन के रखे जाने की तथा न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता के अन्वेषण और साबित करने की प्रक्रिया का विधि द्वारा विनियमन कर सकेगी ।"

अनुच्छेद 124(5) का दूसरा भाग खंड (4) में यथा-निर्दिष्ट किसी न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता के अन्वेषण और साबित करने के संबंध में है । यदि इस दूसरे भाग को कोई समावेदन प्रस्तुत करने की प्रक्रिया से अनिवार्य रूप से संसक्त उपबंध न मानकर एक स्वतंत्र उपबंध माना जा सकता है तो यह अभिनिर्धारित करने में कोई कठिनाई नहीं है कि यह भाग न्यायिक परिषद् द्वारा गौण उपाय अधिरोपित करने से संबंधित विधि अधिनियमित करने की पर्याप्त शक्ति प्रदान करता है । हमारी राय में, 'अन्वेषण' शब्द के पश्चात् 'और' शब्द को विकल्पात्मक पढ़ा जाना चाहिए और इस प्रकार पढ़ने से अनुच्छेद 124(5) का दूसरा भाग ऐसी विधि बनाने की अभिव्यक्त रूप से अनुज्ञा देता है जिसमें न्यायिक परिषद् को गौण उपाय अधिरोपित करने के लिए प्राधिकृत किया गया हो । जैसा कि पहले कथन किया गया है, दोनों सदनों में से किसी सदन में समावेदन करने से संबंधित अनुच्छेद 124(4) का प्रथम भाग संसदीय प्रक्रिया का भाग नहीं है और उसे कानून द्वारा विनियमित किया जा सकता है और उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी के मामलों में यही अभिनिर्धारित किया गया है । वस्तुतः, इसी प्रकार कदाचार या असमर्थता के बारे में संसद् से बाहर जांच अनुच्छेद 124(5) के अधीन बनाई गई किसी विधि द्वारा उपबंधित है । उसी न्यायिक परिषद् को, अनुच्छेद 124(5) के पश्चात्वर्ती भाग के आधार पर किसी शिकायत प्रक्रिया में गौण उपाय अधिरोपित करने के लिए विधि द्वारा प्राधिकृत किया जा सकता है ।

विधि आयोग का यह मत है कि यूनाइटेड स्टेट्स और कनाडा के न्यायालयों के निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय में, न्यायपालिका के भीतर तब तक आंतर-शाखा पर्यवेक्षण को मान्यता दी जा सकती है और संसद् द्वारा न्यायपालिका के फायदे के लिए उपबंध किए जा सकते हैं जब तक कि आंतर-शाखा पर्यवेक्षण, समावेदन द्वारा हटाने तक विस्तारित नहीं होता क्योंकि यह अनुशास्ति अनन्यतः संसद् के कार्यक्षेत्र के भीतर है । ऐसे अन्य सभी गौण उपायों को, जो संसद् कानून द्वारा न्यायपालिका को अनुज्ञात करे, संविधान के अधिकारातीत नहीं समझा जा सकता है ।

संसद् द्वारा राष्ट्रपति को समावेदन करने संबंधी सांविधानिक उपबंध, जो कि अंतर्शाखा नियंत्रण को संज्ञापित करता है, आंतरिक या आंतर-शाखा नियंत्रण से सुभिन्न है । समावेदन प्रक्रिया, न्यायाधीशों के आचरण पर कार्यपालिक या संसदीय हस्तक्षेप की परिसीमा मात्र है । इसका तात्पर्य न्यायाधीशों को अन्तर्शाखा या आंतरिक प्रणाली द्वारा अनुशासित करने संबंधी बाहरी सीमाएं विहित करना कभी नहीं था ।

प्रस्तुत विधेयक में, न्यायिक परिषद् को, न्यायाधीशों के उन कृत्यों या लोपों के लिए, जो समावेदन द्वारा हटाने की अपेक्षा नहीं करते, गौण उपाय अधिरोपित करने के लिए अनुज्ञात करके न्यायपालिका की स्वयं को सुव्यवस्थित करने संबंधी अंतर्निहित शक्ति को संसद् द्वारा विधिमान्य रूप से मान्यता दी जा सकती है । संसद् न्यायिक परिषद् को गौण उपाय अधिरोपित करने के लिए समर्थ बनाने वाली विधि का उपबंध करके केवल न्यायपालिका को अपने सदस्यों पर आंतर-शाखा नियंत्रण रखने में सुकर बनाएगी ।

मान लीजिए, अनुच्छेद 124(5), जो अनुच्छेद 124(4) के प्रयोजनार्थ विधि बनाने के लिए अनुज्ञात करता है, लागू नहीं होता, तो भी न्यायिक परिषद् के स्तर पर गौण उपाय अधिरोपित करने संबंधी उपबंध संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 11-क के साथ पठित अनुच्छेद 246 के प्रति निर्देश से, जो 'न्याय-प्रशासन' विषय के संबंध में है, न्यायोचित ठहराया जा सकता है । 'न्याय प्रशासन' का विषय इतना व्यापक है कि उसके अंतर्गत उच्चतम न्यायालयों के न्यायाधीशों के लिए आंतरिक अनुशासनिक प्रक्रिया भी आ जाती है । मुम्बई राज्य बनाम नरोतमदास जेठाबाई [1951] एस. सी. आर. 51, वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट, 1935 की राज्य सूची में 'न्याय प्रशासन' शब्दों का निर्वचन करते हुए न्यायमूर्ति महाजन (जैसे कि वे तब थे) के माध्यम से यह कहा : (पृष्ठ 83-84 पर) "मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि सूची 2 की मद द्वारा प्रान्तीय विधानमंडल को प्रदत्त विधायी शक्तियां, ऐसी भाषा का प्रयोग करके, जिसका व्यापकतम आयाम है, प्रदत्त की गई है (न्याय प्रशासन और सभी न्यायालयों का गठन और संगठन) । इस बात से इनकार नहीं किया गया था कि जिस वाक्यांश का प्रयोग किया गया था उसके क्षेत्र के भीतर न्याय प्रशासन के प्रयोजनार्थ स्थापित न्यायालयों की अधिकारिता और शक्ति की बाबत विधायी शक्ति भी आएगी । इसके अतिरिक्त, ऐसा प्रतीत होता है कि ये शब्द प्रान्तीय विधानमंडल

को प्रान्त के भीतर न्याय प्रशासन से जुड़ी समस्त मशीनरी को विनियमित करने और उसकी व्यवस्था करने संबंधी अधिकार प्रदत्त करने के लिए पर्याप्त है ।" यही दृष्टिकोण, उच्चतम न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा जमशेद एन. गुजदर बनाम महाराष्ट्र राज्य (2005) 2 एस. सी. सी. 591, वाले मामले में दिए गए हाल ही के निर्णय में भी अपनाया गया था, जिसमें न्यायमूर्ति शिवराज पाटिल ने, न्यायपीठ की ओर से निर्णय सुनाते हुए यह मत व्यक्त किया :-

> "उच्च न्यायालयों की साधारण अधिकारिता के संबंध में 'न्याय-प्रशासन' शीर्षक के अधीन प्रविष्टि 11-क में विचार किया गया है, जिसका व्यापक अर्थ है और उसके अंतर्गत सिविल तथा दांडिक न्याय प्रशासन आता है । 'न्याय प्रशासन' अभिव्यक्ति का प्रयोग किसी विशेषता या परिसीमन के बिना किया गया है और वह इतनी व्यापक है कि उसके अंतर्गत उच्चतम न्यायालय से भिन्न सभी न्यायालयों की 'शक्तियां' और 'अधिकारिता' आती है । प्रविष्टि 11-क में 'न्याय प्रशासन' शब्दों के पश्चात् अर्धविराम चिह्न (;) का अपना महत्व और अर्थ है ..... । संविधान के निर्वचन का यह स्वीकृत सिद्धांत है कि शक्ति प्रदान करने में, शक्तियों का प्रयोग करने के लिए आवश्यक सब कुछ सम्मिलित है ।"

हमने पहले ही यह इंगित कर दिया है कि यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका में 1939 के अधिनियम में गौण उपायों के अधिरोपण के लिए कोई विनिर्दिष्ट उपबंध नहीं था और टाइटल 28 यू. एस. सी. 332 की धारा 307 और धारा 332 में 'न्यायालयों के कामकाज का प्रशासन' का निर्देश मात्र था और न्यायमूर्ति हरलान द्वारा चैंडलर 398 यू. स. 74 वाले मामले में उक्त शब्दों का निर्वचन गौण उपायों को समर्थकारी बनाने, जैसे मामलों को सूचीबद्ध न करने के रूप में किया गया ।

उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि प्रविष्टि 11-क में 'न्याय प्रशासन' शब्दों के अंतर्गत वह सब कुछ आ सकता है जो कि शीघ्र, प्रभावी और दक्ष न्यायिक प्रशासन के लिए आवश्यक और आनुषंगिक है और वे संसद् को राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् का गठन करने और उसे गौण उपाय अधिरोपित करने के लिए सशक्त करने संबंधी विधि बनाने के लिए अनुज्ञात करेंगे ।

हमारे विचार से, अन्यथा भी, प्रश्न यह नहीं है क्या संविधान में ऐसा कोई स्पष्ट उपबंध है जो गौण उपाय अधिरोपित करने की शक्ति प्रदान करता हो बल्कि प्रश्न यह है कि क्या संविधान में ऐसा कोई उपबंध है जो न्यायपालिका की शक्ति को छीनता या निर्बंधित करता है या न्यायपालिका

को गौण उपाय अधिरोपित करने से प्रतिषिद्ध करता है । इसका उत्तर यह है कि हमारे संविधान में ऐसा कोई प्रतिषेध नहीं है । वास्तव में, जब संसद् स्वयं इस शक्ति को मान्यता प्रदान करना चाहती है जो न्यायपालिका के पास पहले से है, तब इस शक्ति को प्रदान करने की विधिमान्यता को प्रश्नगत करने की आवश्यकता नहीं है । यूनाइटेड स्टेट्स में मैकब्राइडे वाले मामले में क्रिस्टेनसेन बनाम हैरीस काउंटी (2000) 529 यू. एस. 570 (583) वाले मामले को उद्धृत करते हुए बिल्कुल यही मताभिव्यक्ति की गई थी कि "जब कोई कानून किसी बात को किसी विशेष रीति द्वारा किए जाने के लिए सीमित करता है तब उसके अंतर्गत किसी अन्य रीति का नकारात्मक पक्ष भी शामिल होता है ।"

विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि 2005 के विधेयक को उपयुक्त रूप से उपांतरित किया जाए जिससे कि उसमें स्वयं न्यायिक परिषद् द्वारा अधिरोपित किए जाने वाले 'गौण उपायों' के लिए उपबंध हों । ऐसी विधि अनुच्छेद 124(5) के पश्चात्वर्ती भाग के अधीन बनाई जा सकती है और किसी भी दशा में भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 11-क के साथ पठित अनुच्छेद 246 के अधीन, जो कि 'न्याय प्रशासन' विषय के संबंध में है, बनाई जा सकती है । ऐसा उपबंध पुरःस्थापित करना, जिसमें न्यायिक परिषद् द्वारा 'गौण उपाय' अधिरोपित करने की अनुज्ञा दी गई हो, विधिमान्य होगा और वह असांविधानिक नहीं होगा ।

(IX) क्या न्यायिक परिषद् अनुच्छेद 124 के अधीन समावेदन द्वारा हटाने संबंधी प्रस्ताव के अनुसरण में अध्यक्ष/सभापति द्वारा 'निर्देश' किए जाने की दशा में यह रिपोर्ट करने के लिए बाध्य है कि वे आरोप, जो हटाने की अपेक्षा करते हैं, साबित हो गए हैं या साबित नहीं हुए हैं या क्या यदि ऐसे आरोप हटाने की अपेक्षा नहीं करते तो वह स्वयं गौण उपाय अधिरोपित कर सकेगी या क्या वह संसद् को यह सिफारिश कर सकेगी कि यह ऐसा उपयुक्त मामला है जिसमें गौण उपाय अधिरोपित करने की अपेक्षा है ?

हमने ऊपर पहले ही यह उल्लेख कर दिया है कि शिकायत प्रक्रिया की दशा में न्यायिक परिषद् वहां स्वयं गौण उपाय अधिरोपित करने के लिए स्वतंत्र है जहां उसकी राय में आरोप हटाने की अपेक्षा नहीं करते और यह कि उस संबंध में विधि वैध रूप से बनाई जा सकती है ।

किन्तु प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या अध्यक्ष/सभापति द्वारा किए गए निर्देश के अनुसरण में आरंभ

की गई निर्देश प्रक्रिया में, जहां आरोप हटाने की अपेक्षा नहीं करते, न्यायिक परिषद् स्वयं गौण उपाय अधिरोपित कर सकेगी या संसद् को गौण उपायों की सिफारिश कर सकेगी ।

अनुच्छेद 217 के साथ पठित अनुच्छेद 124(4) के अधीन, संसद् सदस्यों को केवल हटाने संबंधी प्रस्ताव लाने के लिए अनुज्ञात किया गया है । वास्तव में, यही एकमात्र उपबंध है जिसमें न्यायाधीशों को अनुशासित करने के मामले में संसद् को अधिकार प्रदान किया गया है । अभिकथन इतने गंभीर होने चाहिएं कि उनके कारण हटाना अपेक्षित हो । चूंकि अनुच्छेद 124(4) के अधीन गौण उपाय अधिरोपित करने के लिए कोई प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता, इसलिए न्यायिक परिषद् के लिए अध्यक्ष या सभापति द्वारा किए गए निर्देश पर विचार करते समय, समावेदन द्वारा हटाने संबंधी किसी प्रस्ताव में अप्रत्यक्ष रूप से वही कार्य करना अननुज्ञेय है । तथापि, उस समय स्थिति भिन्न होगी यदि न्यायिक परिषद् के समक्ष निर्देश के अतिरिक्त, निर्देश गठित करने वाले तथ्यों के आधार पर ही शिकायत की जाती है । ऐसी दशा में, न्यायिक परिषद् शिकायत प्रक्रिया का भी अनुसरण करेगी ।

इसके अतिरिक्त, उच्चतम न्यायालय ने न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी के मामलों में यह इंगित किया है कि यदि कदाचार साबित नहीं हुआ था तो संसद् प्रस्ताव पर विचार नहीं कर सकती थी चूंकि ऐसा कदाचार संसद् के बाहर अवश्य साबित होना चाहिए । उच्चतम न्यायालय ने आगे यह कहा कि प्रस्ताव पर केवल तभी विचार किया जा सकता है जब कदाचार साबित हो जाता है । हमारे मतानुसार, जब तक न्यायिक परिषद् इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचती कि साबित कदाचार से हटाया जाना अपेक्षित होता है, तब तक संसद् हटाने संबंधी प्रस्ताव पर विचार नहीं कर सकती । चूंकि हटाने संबंधी प्रस्ताव ही एकमात्र ऐसी स्थिति है जिसमें संसद् को किसी न्यायाधीश को हटाने के संबंध में विचार करने की अधिकारिता प्रदान की गई है, इसलिए संसद् के लिए गौण उपाय अधिरोपित करने पर विचार करना अननुज्ञेय है । हमारी सांविधानिक स्कीम के अधीन ऐसा अनुज्ञेय नहीं है और इसे संपूर्णतः शिकायत प्रक्रिया में न्यायिक परिषद् द्वारा विचार करने के लिए छोड़ देना चाहिए ।

विधि आयोग का यह मत है कि न्यायिक परिषद् के लिए संसद् के दोनों सदनों में से किसी सदन के अध्यक्ष/सभापति द्वारा निर्देश करने पर गौण उपाय अधिरोपित करने की सिफारिश करना

अनुज्ञेय नहीं है । तथापि, यदि न्यायिक परिषद् के समक्ष इसके साथ-साथ किसी निर्देश के अतिरिक्त उन्हीं तथ्यों के आधार पर कोई शिकायत की जाती है तो न्यायिक परिषद् ऐसी शिकायत का निपटारा करते समय स्वयं ऐसे गौण उपाय अधिरोपित कर सकती है । तथापि, वह सदन को निर्देश वापस करते समय सदन द्वारा कोई गौण उपाय पारित किए जाने की सिफारिश नहीं कर सकती ।

(X) यह दलील देने के लिए कि 'गौण उपाय' अधिरोपित करने के लिए संविधान में संशोधन करना आवश्यक है, कैलिफोर्निया और अन्य राज्यों के सांविधानिक संशोधनों पर आधारित तर्क की मान्यता:

हमने पहले ही यह कथन कर दिया है कि गौण उपाय अधिरोपित करने के लिए संविधान में संशोधन करना आवश्यक नहीं है और वस्तुतः यूनाइटेड स्टेट्स के न्यायालयों ने यह विनिश्चित किया है कि संविधान में संशोधन किए बिना गौण उपाय अधिरोपित किए जा सकते हैं ।

प्रश्न यह उद्भूत होता है कि हालांकि गौण उपाय अधिरोपित करने के लिए यूनाइटेड स्टेट्स के फेडरल संविधान में संशोधन नहीं किया गया था तो यूनाइटेड स्टेट्स के राज्यों ने अपने राज्य संविधानों में संशोधन क्यों किए थे ?

(क) यह सही है कि कैलिफोर्निया और यूनाइटेड स्टेट्स के अधिकांश राज्यों में राज्य के न्यायाधीशों को महाभियोग या समावेदन द्वारा हटाने से भिन्न रीति में "अनुशासित" करने के लिए सांविधानिक उपबंधों में नए उपबंध शामिल करते समय राज्य संविधानों में संशोधन किए गए थे ।

यह अवश्य ही उल्लेख किया जाना चाहिए कि ऐसा इसलिए था क्योंकि राज्य संविधानों में पुरःस्थापित किए गए नए उपबंध 'हटाने' से संबंधित सिफारिश के संबंध में थे किन्तु इनमें किसी राज्य न्यायिक आयोग द्वारा या राज्य उच्चतम न्यायालयों द्वारा 'हटाने' की अतिरिक्त पद्धति दी गई थी जो कि राज्य संविधानों में यथा-अंतर्विष्ट महाभियोग द्वारा या समावेदन द्वारा हटाने संबंधी उपबंध के अतिरिक्त है । चूंकि राज्य, महाभियोग या समावेदन द्वारा 'हटाने' से भिन्न हटाने की अतिरिक्त पद्धति के संबंध में उपबंध करना चाहते थे इसलिए राज्य संविधानों में संशोधन करने पड़े । दूसरी ओर, फेडरल संविधान में संशोधन नहीं करना पड़ा क्योंकि फेडरल न्यायाधीशों को केवल महाभियोग द्वारा हटाया जा सकता था और न्यायिक परिषद् या न्यायिक कांफ्रेंस को हटाने संबंधी कोई अंतिम

आदेश पारित करने के लिए समर्थ नहीं बनाया गया था । फेडरल प्रणाली में, 1980 के अधिनियम और 2002 के अधिनियम के अनुसार, न्यायिक परिषद् और न्यायिक कांफ्रेंस केवल हटाने के लिए सिफारिश कर सकता था । तथापि, जैसा कि ऊपर कथन किया गया है, राज्यों में स्थिति भिन्न है । राज्य न्यायिक आयोग सीधे ही हटाने का आदेश करने के लिए सशक्त थे । ऐसा राज्य संविधानों में संशोधन किए बिना नहीं किया जा सकता था और इसीलिए न्यायिक आयोगों या राज्य उच्चतम न्यायालयों को हटाने संबंधी आदेश पारित करने के लिए अनुज्ञात करने वाले संशोधन किए गए थे ।

निस्संदेह, राज्य सांविधानिक संशोधनों द्वारा राज्य न्यायिक आयोगों या राज्य उच्चतम न्यायालय द्वारा हटाने की प्रक्रिया के साथ-साथ गौण उपाय भी पुरःस्थापित किए गए । किन्तु हमारे विचार से, ऐसा आनुषंगिक रूप से न्यायिक परिषद् या राज्य उच्चतम न्यायालय द्वारा 'हटाने' की एक अतिरिक्त सांविधानिक प्रक्रिया के बारे में उपबंध करते समय किया गया था न कि इस कारण कि गौण उपाय अधिरोपित करने के लिए कोई सांविधानिक संशोधन करना आवश्यक था । जैसा कि पहले कथन किया गया है, न्यायपालिका के भीतर आंतरिक प्रक्रिया विधिपूर्ण है और संविधान में कोई संशोधन किए बिना उसमें 'गौण उपायों' के लिए उपबंध किया जा सकता है । चेंडलर से मैकब्राइडे वाले मामलों में दिए गए यू. एस. फेडरल न्यायालय के निर्णयों में ऐसी स्थिति को स्वीकार किया गया है ।

विधि आयोग का यह मत है कि यदि संसद् द्वारा न्यायिक परिषद् को आंतरिक प्रणाली के भागरूप 'गौण उपाय' अधिरोपित करने में समर्थ बनाने के लिए कोई विधि बनाई जाती है तो हमारे देश में संविधान में कोई संशोधन करना आवश्यक नहीं है ।

(XI) इस तर्क की मान्यता कि न्यायिक परिषद् के समक्ष 'शिकायत' प्रक्रिया अधिकारातीत है क्योंकि अभिकथन सदन में प्रस्ताव पेश करके नहीं लगाए गए हैं :

यह दलील दी जा सकती है कि चूंकि हम अनुच्छेद 124(4) द्वारा यथा-अनुध्यात किसी समावेदन के लिए प्रस्ताव लाने की बजाय यह प्रस्थापित कर रहे हैं कि न्यायिक परिषद् वहां न्यायाधीश को हटाने के लिए संसद् को सिफारिश कर सकती है जहां साबित कदाचार इसकी अपेक्षा करे, इसलिए अनुच्छेद 124(4) में संशोधन करना आवश्यक है ।

हमारे विचार से अनुच्छेद 124(4) को संशोधित करना आवश्यक नहीं है । इसका कारण यह है कि हमारे उच्चतम न्यायालय ने न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी के मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि प्रारंभिक प्रस्ताव और अध्यक्ष/सभापति द्वारा समिति को निर्देश संसदीय प्रक्रिया का भाग नहीं है बल्कि यह न्यायिक प्रक्रिया का एक भाग है । संसद् द्वारा अनुच्छेद 124(5) के अधीन न्यायिक परिषद् के लिए विधिमान्य रूप से ऐसी विधि बनाई जा सकती है कि वह संसद् को समावेदन द्वारा हटाने के संबंध में सिफारिश कर सके । उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि ऐसी विधि बनाना हटाने संबंधी प्रक्रिया की पूर्व-शर्त है चूंकि कदाचार या असमर्थता को संसद् से बाहर किसी निकाय द्वारा साबित किया जाना चाहिए । जब तक किसी बाहरी निकाय द्वारा इस प्रकार साबित करने के लिए प्रक्रिया विहित नहीं की जाती तब तक अनुच्छेद 124(4) लागू नहीं किया जा सकता।

दूसरा कारण यह है कि, जैसा कि यू. एस. अपील्स कोर्ट द्वारा हास्टिंग्स(1987) वाले मामले में इंगित किया गया है, न्यायाधीशों की समिति (न्यायिक परिषद्) द्वारा सिफारिश करना "मात्र औपचारिकता" है ।

कनाडा में ग्रेटन बनाम कनाडियन कौंसिल 1994(2) एफ. सी. 769 वाले मामले में न्यायमूर्ति स्ट्रेयर के समक्ष यह दलील दी गई थी कि संसद् का तात्पर्य कनाडियन न्यायिक परिषद् और उसकी समितियों को अविधिपूर्ण रूप से ऐसा प्राधिकार प्रदान करना था जो संविधान अधिनियम, 1867 की धारा 99(1) द्वारा केवल संसद् में निहित था । दूसरे शब्दों में, यह पद्धति न्यायाधीश अधिनियम, 1985 की धारा 63 के अधीन न्यायिक परिषद् को शिकायत के रूप में अन्वेषण करने और मंत्री को दी जाने वाली अपनी रिपोर्ट में किसी न्यायाधीश को हटाने की सिफारिश करने में समर्थ बनाती है । ऐसी विधि बनाना संविधान की धारा 99(1) द्वारा अनुज्ञात था किन्तु यह दलील दी गई कि यह संसद् द्वारा अपनी शक्तियों का त्याग करने की कोटि में आता था क्योंकि संसद् सदनों द्वारा गवर्नर-जनरल को समावेदन करने किसी न्यायाधीश को हटा सकती थी । न्यायमूर्ति स्ट्रेयर ने हॉज बनाम रेग (1883-84) 9 ए.(117 पी. सी.) वाले मामले में प्रिवी कौंसिल के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए इस दलील को नामंजूर कर दिया । उसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि कोई सार्वभौम संसद् विधिसम्मत रूप से ऐसे कृत्यों को प्रत्यायोजित कर सकती है । हटाने संबंधी संसद् की शक्ति न्यायनिर्णायक शक्ति नहीं थी जिसे प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता था । भले ही वह न्यायिक

थी, तो भी, जैसा कि हॉज बनाम रेग वाले मामले में कथन किया गया है, संसद् अपने सार्वभौम कृत्यों का प्रयोग करते हुए ऐसे कृत्यों को प्रत्यायोजित कर सकती थी । कनाडा की संसद् सार्वभौम थी न कि ब्रिटिश संसद् की मात्र प्रतिनिधि थी ।

विधि आयोग का यह मत है कि न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 और 2005 के प्रस्तावित विधेयक में निर्देश प्रक्रिया के अतिरिक्त शिकायत प्रक्रिया द्वारा न्यायिक परिषद् को अन्वेषण/जांच करने में समर्थ बनाने वाली प्रक्रिया अनुच्छेद 124(4) में अंतर्विष्ट संसदीय प्रक्रिया का उल्लंघन नहीं है और यह अननुज्ञेय प्रत्यायोजन की कोटि में नहीं आता है और विधिमान्य है ।

(XII) क्या उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश के विरुद्ध जांच के मामले में किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति न्यायिक परिषद का भाग हो सकता है ?

2005 के प्रारूप विधेयक की धारा 3(1) में यह उपबंध है कि सभी जांचों की बाबत, चाहे वे उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के विरुद्ध हों, न्यायिक परिषद् एक स्थायी निकाय होगा, जिसमें भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, उच्चतम न्यायालय के दो ज्येष्ठतम न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के दो ज्येष्ठतम मुख्य न्यायमूर्ति सम्मिलित होंगे ।

यह पहले ही कथन किया गया है कि कोई न्यायिक समिति, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के विरुद्ध न्यायिक परिषद् के समक्ष की गई किसी 'शिकायत' में लगाए गए अभिकथनों का अन्वेषण नहीं कर सकती किन्तु परिषद्, 2005 के विधेयक की धारा 9(2) के अधीन अध्यक्ष या सभापति द्वारा निर्देश करने पर भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों का अन्वेषण कर सकती है ।

किन्तु, अब भी प्रश्न यह है कि क्या उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश के विरुद्ध किसी 'शिकायत' के अन्वेषण में यह उचित है कि उच्च न्यायालय के दो ज्येष्ठतम मुख्य न्यायमूर्ति न्यायिक परिषद् के सदस्य होने चाहिएं ?

1968 के अधिनियम के विपरीत, जहां समिति तदर्थ प्रकृति की होती थी और तब गठित की जाती थी जब कभी अध्यक्ष/सभापति द्वारा कोई निर्देश किया जाता था, 2005 के वर्तमान विधेयक में स्थायी निकाय अनुध्यात है जो समय-समय पर 'शिकायत' प्राप्त कर सकता है या जिसे

अध्यक्ष/सभापति द्वारा निर्देश किया जा सकता है ।

हमारे विचार से, उच्च न्यायालय के दो मुख्य न्यायमूर्तियों के लिए उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश के विरुद्ध अभिकथनों के संबंध में निर्णय करना पर्याप्त रूप से उलझन में डालने वाला काम होगा । इस संबंध में अनेक कारण हो सकते हैं कि किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश के विरुद्ध जांच न करना चाहे ।

विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि जब न्यायिक परिषद् उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश के विरुद्ध (शिकायत प्रक्रिया या निर्देश प्रक्रिया में) या भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के विरुद्ध(किसी निर्देश प्रक्रिया में) लगाए गए अभिकथनों का अन्वेषण करती है तो उसमें उच्च न्यायालयों के दो ज्येष्ठतम मुख्य न्यायमूर्ति सम्मिलित नहीं होने चाहिएं । ऐसी दशा में, न्यायिक परिषद् का गठन भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और उच्चतम न्यायालय के चार ज्येष्ठतम न्यायाधीशों से मिलकर होना चाहिए ।

2005 के विधेयक के उपबंधों को इस आकस्मिकता के संबंध में उपबंध करने हेतु उपयुक्त रूप से संशोधित करना होगा ।

(XIII) क्या 2005 के विधेयक में इनकारी उपबंध अंतःस्थापित करने की आवश्यकता है ?

2005 के विधेयक की धारा 3(2) में परिकल्पित स्थितियों के अतिरिक्त, जहां अगला ज्येष्ठतम न्यायाधीश न्यायिक परिषद् में आता है वहां ऐसी स्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं जब न्यायिक परिषद् के पांच सदस्यों में से एक सदस्य के पास अपने संबंध में इनकार करने का वास्तविक कारण हो । उदाहरणार्थ, ऐसा न्यायाधीश, जिसके विरुद्ध शिकायत की जाती है या कोई निर्देश किया जाता है, उसका सदस्य-न्यायाधीश से निकट संबंध हो या उसी राज्य का होने के कारण विधिज्ञ-वर्ग में उसका कनिष्ठ रहा हो या कई वर्षों से उसका घनिष्ठ मित्र रहा हो ।

विधि आयोग का यह मत है कि चूंकि पांच न्यायाधीशों की न्यायिक परिषद् को सामूहिक रूप से विनिश्चय करने होते हैं, इसलिए जहां उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश या किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति स्वयं इनकार करता है वहां प्रक्रिया यह है कि खाली स्थान ज्येष्ठता में अगले व्यक्ति द्वारा भरा जाना चाहिए । 2005 के विधेयक में ही समुचित संशोधन करके इस निमित्त कोई उपबंध करना आवश्यक है । हमारे विचार से, नियमों में ऐसे इनकारी उपबंध को

छोड़ना वांछनीय नहीं है ।

(XIV) क्या अन्वेषण प्रक्रिया आरोपों के पश्चात् की जानी चाहिए और आरोपों के विरचित किए जाने के पश्चात् ही जांच आरंभ होनी चाहिए ? क्या अन्वेषक न्यायाधीश न्यायिक परिषद् के न्यायाधीशों से, जो जांच का संचालन करते हैं, भिन्न होने चाहिए ? क्या अन्वेषक न्यायाधीश को सदैव अपने स्तर पर शिकायत का अंतिम रूप से निपटारा किए बिना अपने निष्कर्ष न्यायिक परिषद् को रिपोर्ट करने चाहिएं ?

1968 के अधिनियम तथा 2005 के प्रस्तावित विधेयक में 'अभिकथन', 'अभिकथनों के बारे में प्रारंभिक अन्वेषण', 'आरोपों का विरचित किया जाना' और 'आरोपों के बारे में जांच' के बीच सुज्ञात विभेद को ऐसे विभिन्न कदमों के रूप में नहीं रखा गया, जिनके परिणामस्वरूप उसी क्रम में हटाना भी आ सकता है ।

अतः हम इस विभेद के संबंध में कुछ विस्तार से विचार-विमर्श करेंगे ।

हम यह पाते हैं कि अनेक देशों में परिषद् द्वारा या परिषद् द्वारा आरोप विरचित किए जाने के पश्चात् एक पृथक् अन्वेषण समिति द्वारा अन्वेषण के लिए एक पृथक् उपबंध है । 1968 के अधिनियम में नियमित जांच से पूर्व किसी अन्वेषण के प्रति निर्देश नहीं किया गया है । वस्तुतः, न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी के मामले में उसके काउन्सेल श्री कपिल सिब्बल ने सदन के समक्ष एक गंभीर आक्षेप उठाया था कि न्यायमूर्ति सांवत समिति ने 'आरोप' विरचित करने से पूर्व किन्हीं तथ्यों के बारे में 'अन्वेषण' नहीं किया और समिति ने सीधे ही अभिकथनों के आधार पर आरोप विरचित किए और यह कि अन्वेषण आरोप विरचित करने से पूर्व किया जाना चाहिए । ऐसा इसलिए है क्योंकि अन्वेषण के दौरान यह प्रकाश में आ सकता है कि अभिकथनों के लिए कोई तात्थिक आधार नहीं है और उन्हें वापस भी लिया जा सकेगा । किन्तु कुछ सदस्यों द्वारा इसका विरोध किया गया और उन्होंने यह उल्लेख किया कि 1968 के अधिनियम की धारा 3(1) में आरोप विरचित किए जाने के पश्चात् अन्वेषण कराने का उपबंध है । 1968 के अधिनियम में 'जांच' शब्द के स्थान पर 'अन्वेषण' शब्द का प्रयोग करने के कारण यह भ्रम उत्पन्न हुआ । हमारी राय में, (i) अभिकथन (ii) अन्वेषण (iii) आरोप विरचित करना और (iv) आरोपों के बारे में जांच करने के विभिन्न प्रक्रमों का स्पष्ट स्पष्टीकरण अपेक्षित है ।

यहां पर यह उल्लेखनीय है कि सामान्यतः आरोप केवल तभी विरचित किए जाते हैं जब अभिकथनों के बारे में अन्वेषण से यह दर्शित होता है कि नियमित जांच आरंभ करने से पूर्व विरचित किए जाने वाले आरोपों के लिए प्रथमदृष्टया सामग्री है । यह पहलू इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि जब किसी न्यायाधीश के विरुद्ध, यह अन्वेषण किए बिना कि क्या तथ्यों के आधार पर कोई प्रथमदृष्टया मामला बनता है, आरोप विरचित किए जाते हैं तो उस न्यायाधीश की प्रतिष्ठा पर आंच आती है और एक बार जब नुकसान हो जाता है तो उसके लिए अपनी छवि को सुधारना कठिन हो जाता है ।

तथापि, यह अवेक्षा की जा सकती है कि संविधान के अनुच्छेद 124(5) में 'अन्वेषण और साबित' शब्दों का प्रयोग किया गया है । 1968 के अधिनियम का शीर्षक न्यायाधीश (जांच) अधिनियम था । इसके अतिरिक्त, चूंकि सावंत समिति ने यह कहा कि ये कार्यवाहियां अर्ध-आपराधिक हैं, इसलिए हमारी राय में, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की शैली के अनुरूप तीन पृथक् प्रक्रमों को उपदर्शित करने के लिए प्रयुक्त सामान्य नाम-पद्धति 'अन्वेषण', 'आरोप विरचित करना' और 'जांच' को उसी क्रम में लिया जाना चाहिए ।

2005 के विधेयक की धारा 7 के पार्श्व टिप्पण में 'प्रारंभिक छानबीन' का उल्लेख है जबकि उपधारा (1) में शिकायत में अभिकथनों पर 'विचार और सत्यापन' का उल्लेख है ।

2005 के विधेयक में उपर्युक्त अस्पष्ट शब्दों वाले उपबंधों को देखते हुए प्रश्न यह है कि 2005 के विधेयक में किस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए जिससे कि जहां तक शिकायत प्रक्रिया का संबंध है, अभिकथनों, अन्वेषण, आरोपों और जांच के बीच आवश्यक विभेद किया जा सके ।

तथापि, 2005 के विधेयक की धारा 10 में यह उपदर्शित है कि अध्यक्ष/सभापति की ओर से निर्देश के मामले में, धारा 7 में (गलती से धारा 6 के रूप में मुद्रित) किसी बात के होते हुए भी, आरोप सीधे ही विरचित किए जाएंगे, अर्थात्, 'प्रारंभिक जांच' की कोई आवश्यकता नहीं है ।

हमारी राय में, संविधान के अनुच्छेद 124(5) में प्रयुक्त 'अन्वेषण' शब्द से 'प्रारंभिक अन्वेषण' का संकेत मिलता है जबकि 'साबित' शब्द से नियमित जांच के पश्चात् साबित उपदर्शित होता है । संविधान में ही दो प्रक्रम प्रकियाओं की कल्पना की गई है । किन्तु 2005 के विधेयक की धारा 7 के

पार्श्व शीर्ष में 'प्रारंभिक छानबीन' शब्दों का प्रयोग किया गया है और धारा 7 की उपधारा (1) में 'विचार करने के पश्चात्' और 'सत्यापन' शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

जहां तक किसी शिकायत में 'तुच्छ और तंग करने वाले' अभिकथनों का संबंध है, पार्श्व टिप्पण में 'प्रारंभिक छानबीन' और धारा के मुख्य पाठ में 'विचार करते हुए' और 'सत्यापन' शब्द पर्याप्त होंगे । इस बात का अवधारण सामान्यतः स्वयं शिकायत के पठन से किया जा सकता है कि क्या अभिकथन 'तुच्छ या तंग करने वाले' हैं । तथापि, इस बात का अवधारण करने के लिए कि क्या कोई शिकायत 'सद्भावपूर्वक नहीं की गई है' [धारा 7(1) के खंड (क)] या क्या नियमित जांच अनुध्यात करने के लिए पर्याप्त आधार विद्यमान हैं अथवा नहीं, न्यायिक परिषद् को जांच के पश्चात् 'अन्वेषण' करने के लिए सशक्त करना आवश्यक है । ऐसा अन्वेषण, छानबीन या सत्यापन से कुछ अधिक है किन्तु इसके साथ-साथ यह कोई पूर्णरूपेण जांच नहीं है ।

धारा 2 से धारा 8 में, जो शिकायत प्रक्रिया के संबंध में हैं, कुछ परिवर्तन करना आवश्यक हैं, कुछ परिवर्तन धारा 10 में निर्देश प्रक्रिया में आवश्यक हैं कुछ अन्य परिवर्तन जांच की साधारण प्रक्रिया (जिसे 2005 के विधेयक में 'अन्वेषण' का नाम दिया गया है) अर्थात्, धारा 12, 16, 17, 19, 22, 24, 25, 26 और 27 में भी आवश्यक हैं ।

विधि आयोग, 2005 के विधेयक में निम्नलिखित संशोधनों की सिफारिश करता है:–

(i) धारा 2 में 'अन्वेषण' और 'जांच' की निम्नलिखित परिभाषाएं अंतःस्थापित की जाएं : अन्वेषण से प्रारंभिक अन्वेषण अभिप्रेत है 'जांच' से 'साबित करने के लिए जांच' अभिप्रेत है ।

(ii) धारा 3(1) में, 'अन्वेषण करने' शब्दों के स्थान पर 'अन्वेषण और जांच करने' शब्द रखे जाएं; धारा 3(2) में, 'अन्वेषण करने' शब्दों के स्थान पर 'अन्वेषण या जांच करने' शब्द रखे जाएं ; धारा 3(3) में 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'अन्वेषण और जांच' शब्द रखे जाएं ।

(iii) धारा 6 में, 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर मुख्य धारा और उसके पार्श्व शीर्ष में 'अन्वेषण और जांच' शब्द रखे जाएं ।

(iv) धारा 7 में, पार्श्व शीर्ष इस प्रकार पढ़ा जाना चाहिए "शिकायतों का सत्यापन और प्रारंभिक अन्वेषण"; धारा 7(1) के मुख्य भाग में 'सत्यापन' शब्द के स्थान पर 'सत्यापन या जहां आवश्यक

हो ऐसा प्रारंभिक अन्वेषण जैसा वह उपयुक्त समझे' शब्द रखे जाएं; धारा 7(1)(ख) के मुख्य भाग में 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'जांच' शब्द रखा जाए; धारा 7(2) के मुख्य भाग में 'सत्यापन' शब्द के स्थान पर 'सत्यापन या जहां आवश्यक हो, ऐसा प्रारंभिक अन्वेषण जैसा वह उपयुक्त समझे' शब्द रखे जाएं ।

(v) धारा का पार्श्व शीर्ष सही है, जहां उसमें 'जांच' का उल्लेख है । किन्तु धारा 8(1) को निम्नलिखित रूप में पुनर्रचित किया जाना है:

"8(1): यदि परिषद् किसी शिकायत की बाबत धारा 7 के अधीन सत्यापन और प्रारंभिक अन्वेषण के पश्चात्, कोई जांच कराने की प्रस्थापना करती है तो वह न्यायाधीश के विरुद्ध ऐसे निश्चित आरोप विरचित करेगी जिनके आधार पर जांच की जानी प्रस्थापित है ।"

(vi) धारा 10 में 'धारा 6' के स्थान पर 'धारा 7' रखे और 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'जांच' शब्द रखा जाए ।

(vii) जहां तक अध्याय 5 का संबंध है, उसका शीर्षक 'जांच के लिए प्रक्रिया' होना चाहिए ।

(viii) धारा 12, 12(2) और 12(2) के परन्तुक और धारा 13 में 'अन्वेषण' और 'अन्वेषण करने' शब्दों के स्थान पर क्रमशः 'जांच' और 'जांच करने' शब्द रखे जाएं ।

(ix) धारा 15(1) और 15(2) में 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'प्रारंभिक अन्वेषण या जांच' शब्द रखे जाएं ।

(x) अध्याय 6 का शीर्षक 'जांच की समाप्ति के पश्चात् प्रक्रिया' होना चाहिए ।

(xi) धारा 16(1), धारा 17(1) में 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'जांच' शब्द रखा जाए । (धारा 16 के संबंध में कुछ और संशोधन हैं जिनके बारे में इसमें इसके पश्चात् पृथक् रूप से चर्चा की जाएगी)

(xii) धारा 19(1) में 'या कोई अन्वेषण करने' शब्दों के स्थान पर 'या कोई प्रारंभिक अन्वेषण या जांच करने' शब्द रखे जाएंगे ।

(xiii) धारा 21 में 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'प्रारंभिक अन्वेषण और जांच' शब्द रखे जाएं ।

(xiv) हम यह प्रस्थापित कर रहे हैं कि संपूर्ण धारा 22, जिसमें उपधारा (1) से (3) सम्मिलित हैं, धारा 7 में उपधारा (3) से (5) के रूप में स्थानांतरित कर दी जाए और धारा 7 की उपधारा (3) के(जैसा कि अब प्रस्थापना की गई है) मुख्य भाग में 'अन्वेषक समिति गठित करने वाली' शब्दों को रखा जा सकता है किन्तु 'मामले का अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए' शब्दों को 'प्रारंभिक अन्वेषण के प्रयोजन के लिए और इस बात का पता लगाने के लिए कि क्या मामले के संबंध में जांच करने के लिए निश्चित आरोप विरचित करना आवश्यक है' शब्दों के रूप में उपांतरित करना होगा । वर्तमान प्रस्थापना में, जैसा कि ऊपर कथन किया गया है, धारा 7(4) अंतःस्थापित करने के लिए 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'प्रारंभिक अन्वेषण' शब्द रखे जाएं । [जहां तक धारा 7 के पार्श्व शीर्ष का संबंध है, हमने पहले ही उपर्युक्त उपपैरा (iv) में परिवर्तन का सुझाव दिया है]

(xv) धारा 23 में 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'प्रारंभिक अन्वेषण और जांच' शब्द रखे जाएं ।

(xvi) धारा 24 में, पार्श्व शीर्ष में, 'परिषद् द्वारा किए गए अन्वेषण' शब्दों के स्थान पर 'परिषद् द्वारा किए गए अन्वेषण और जांच' शब्द रखे जाएं । धारा 24 के मुख्य भाग में 'किसी अन्वेषण' शब्दों के स्थान पर 'किसी प्रारंभिक अन्वेषण या जांच' शब्द रखे जाएं ।

(xvii) धारा 25 में, धारा के पार्श्व शीर्ष और मुख्य धारा में 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'शिकायत, प्रारंभिक अन्वेषण और जांच' शब्द रखे जाएं ।

(xviii) धारा 26 में, 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'प्रारंभिक अन्वेषण या जांच' शब्द रखे जाएं ।

(xix) धारा 27 में पार्श्व शीर्ष और मुख्य धारा में 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'प्रारंभिक अन्वेषण और जांच' शब्द रखे जाएं ।

(XV) <u>क्या राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् स्वयं प्रारंभिक अन्वेषण कर सकती है, आरोप विरचित कर सकती है और इसके पश्चात् जांच कर सकती है ?</u>

(क) निस्संदेह, अनेक देशों में उस प्रक्रिया से, जिसके प्रति हमने निर्देश किया है, यह दर्शित होता है कि न्यायिक परिषद् या आयोग अन्वेषण न्यायाधीशों की किसी छोटी समिति को प्रत्यायोजित करता है । वस्तुतः, 2005 के प्रारूप विधेयक की धारा 22(जिसे हमने धारा 7 में स्थानांतरित करने का सुझाव दिया है) में यह प्रस्थापित है कि ऐसी समिति परिषद् द्वारा गठित की जाए । यह अनुज्ञेय

है ।

हास्टिंग्स बनाम जुडिशियल कांफ्रेंस ऑफ यू. एस. (1987) 829 एफ. सेकेंड 91, वाले मामले में कोलम्बिया सर्किट डिस्ट्रिक्ट के लिए यूनाइटेड स्टेट्स कोर्ट ऑफ अपील्स के समक्ष यह मुद्दा उठाया गया था और कोर्ट ऑफ अपील्स ने तारीख 15 सितम्बर, 1987 के अपने निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया कि "अन्वेषण और न्यायनिर्णयन संबंधी कृत्यों का मेल" न्यायिक परिषद् में निहित होता है, "अंतर्निहित रूप से अननुज्ञेय नहीं" है ।

विधि आयोग का यह मत है कि 2005 के विधेयक की धारा 22, जो स्वयं न्यायिक परिषद् को अन्वेषण करने या अन्वेषण करने के लिए उसके सदस्यों से मिलकर बनने वाली समिति नियुक्त करने के लिए अनुज्ञात करती है, सांविधानिक रूप से विधिमान्य है ।

(ख) तथापि धारा 22 की भाषा में परिवर्तन करने की आवश्यकता है । जैसी कि यह धारा अब है, इसका निर्वचन इस प्रकार किया जा सकता है मानो परिषद् के सदस्यों को अन्वेषण के लिए एक अन्य समिति नियुक्त करनी होगी । जबकि अन्वेषण समिति न्यायिक परिषद् द्वारा गठित की जाएगी।

इसलिए विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि धारा 22 के निम्नलिखित शब्दों "वह अपने एक या अधिक सदस्यों को नामनिर्दिष्ट कर सकेगी, जो मामले का अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए एक अन्वेषक समिति का गठन करेंगे" के स्थान पर "वह मामले में अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए अपने एक या अधिक सदस्यों से मिलकर बनने वाली एक अन्वेषक समिति गठित कर सकेगी" शब्द रखे जाएंगे ।

(XVI) क्या न्यायाधीश को शिकायत के आधार पर न्यायिक परिषद् के समक्ष प्रारंभिक 'अन्वेषण' के प्रक्रम पर तथ्यों को स्पष्ट करने का एक अवसर दिया जाना चाहिए हालांकि, आरोप विरचित किए जाने की दशा में उसे न्यायिक समिति के समक्ष एक पूर्णरूपेण अवसर मिलेगा (या हटाए जाने के लिए सिफारिश की दशा में, उसे सदनों के समक्ष एक और अवसर भी मिलेगा)?

वास्तव में, 2005 के विधेयक की धारा 7(2) में यह उपबंध है कि परिषद्, धारा 7(1) के अधीन शिकायतों के सत्यापन के प्रक्रम पर "यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझे, संबंधित न्यायाधीश की

टिप्पणियों की मांग कर सकेगी ।"

इस प्रश्न पर प्रमुख नजीर रीस बनाम क्रेन 1994 (1) आॅल इंग्लैंड रिपोर्ट्स 833, वाले मामले में प्रिवी कौंसिल का निर्णय है, जिसमें लार्ड स्लाइन ने, प्रिवी कौंसिल की ओर से निर्णय सुनाते हुए, प्रशासनिक विधि और न्यायिक स्वतंत्रता के मूल सिद्धांतों के प्रति निर्देश करते हुए इस पहलू पर विस्तारपूर्वक चर्चा की ।

उस मामले में लार्ड स्लाइन ने यह कहा कि, सामान्यतः जिस व्यक्ति के विरुद्ध अन्वेषण किया जा रहा है उसे प्रारंभिक कार्यवाहियों या कार्यवाहियां प्रारंभ करते समय अवसर प्रदान किए जाने का कोई अधिकार नहीं है और यह अधिकार प्रायः पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर उद्भूत होता है जब उसे शिकायत के बारे में जानने का अधिकार होता है । उसने कहा कि यह भी सही है कि नैसर्गिक न्याय सामान्यतः यह अपेक्षा नहीं करता कि किसी व्यक्ति को उसके विरुद्ध की गई शिकायत के बारे में बताया जाए और प्रश्नगत विशेष प्रक्रम पर उनका उत्तर देने का अवसर दिया जाए । न्यायालयों द्वारा यह सिद्धांत अपनाने का कारण यह था कि अन्वेषण पूर्णतः प्रारंभिक था, यह कि बाद में इन शिकायतों पर विचार करने का पर्याप्त रूप से पूरा अवसर प्राप्त होगा और कभी-कभी वह ऐसी अत्यावश्कता का विषय हो सकता है कि नोटिस को प्रवारित किया जाए । लार्ड स्लाइन ने आगे यह कहा कि तथापि कुछ मामले ऐसे हैं जिनमें न्यायाधीश को अन्वेषण के प्रक्रम पर अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना होता है । उसने यह कहा-

> "किन्तु, न्यायालय की राय में, इस प्रभाव का कोई आत्यांतिक नियम नहीं है, भले ही ऐसा नियम हो, तो भी प्रक्रिया के अधीन आरोपों का उत्तर बाद में देने का अवसर होता है । जैसा कि डी स्मिथ कृत जुडिशियल रिव्यू ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव एक्शन (चतुर्थ संस्करण, 1980 पृ. 199) में कहा गया है: जहां कोई कृत्य या प्रस्ताव उन उपायों की श्रृंखला में केवल प्रथम कदम होता है जिसका अंत एक ऐसे विनिश्चय से होता है जो किसी व्यक्ति के हितों के प्रतिकूल हो, वहां न्यायालय साधारणतः, उस व्यक्ति के इस निवेदन को स्वीकार करने से इनकार कर देगा कि वह इस प्रारंभिक कृत्य के विरोध में सुने जाने का हकदार है, विशेषकर तब यदि वह पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर सुने जाने का हकदार हो ।"

किन्तु उसने यह कथन किया कि इस साधारण प्रक्रिया पर विचार करते हुए, न्यायालय कठोर

नियमों से आबद्ध नहीं होना चाहिए । उसे मामले की सभी परिस्थितियों पर ध्यान रखना होगा । इसके बाद उसने कहा:

"स्पष्टतः, प्रस्तुत मामले में, प्रत्यर्थी को पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर अधिकरण के समक्ष और न्यायिक समिति के समक्ष शिकायत का उत्तर देने का अवसर प्राप्त हुआ होगा । यह साधारण प्रक्रिया के पक्ष में एक संकेत है किन्तु यह निश्चायक नहीं है । धारा 137, जिसमें तीन-टियर वाली प्रक्रिया स्थापित की गई है, प्रत्येक प्रक्रम पर अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया के बारे में मौन है और निर्वचन के तौर पर उसका अर्थान्वयन इस रूप में नहीं किया जाना है कि उससे अनिवार्य रूप से प्रथम प्रक्रम पर सूचित किए जाने और सुने जाने का अधिकार अपवर्जित है । इसके विपरीत, अन्य कारकों के अभाव में प्रक्रियाओं के संबंध में उसका मौन होना यह उपदर्शित करता है या कम से कम यह संभाव्यता खुली छोड़ता है कि ऐसी परिस्थितियां हो सकती हैं जिनमें ऋजुता यह अपेक्षा करती है कि जिस पक्षकार का मामला निर्दिष्ट किया जाना है उसे बताया जाना चाहिए और उसे अपनी टिप्पणी करने का अवसर दिया जाना चाहिए । यह पहले से कहना पर्याप्त नहीं है, जैसा कि अपीलार्थी वास्तव में करते हैं, कि यह स्वीकार्य है कि नैसर्गिक न्याय के नियम प्रक्रिया को समग्र रूप से लागू होते हैं किन्तु उनका अनुसरण किसी विशिष्ट प्रक्रम पर नहीं किया जाना होता है । प्रश्न यह रह जाता है कि क्या ऋजुता की अपेक्षा यह है कि दूसरे पक्ष को भी सुनो नियम आयोग के प्रक्रम पर लागू किया जाए ।"

प्रिवी कौंसिल ने इस बात पर जोर दिया कि यदि किसी न्यायाधीश का मामला - अन्वेषण के प्रक्रम पर अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का अवसर दिए बिना - सीधे जांच के लिए जाता है तो इससे पर्याप्त प्रचार होगा और न्यायाधीश की प्रतिष्ठा पर सन्देह और हानि को अवश्य रोका जाना चाहिए ।

प्रिवी कौंसिल ने यह भी इंगित किया कि न्यायाधीश या प्रभावित पक्षकार को कनाडियन जुडिशियल कौंसिल के समक्ष (देखिए 1982 खंड 28, मैकगिल एल. जे. 380) तथा यू. एस. सीनेट जुडिशियरी कमेटी के समक्ष (1984) और विस्कोनसिन जुडिशियल कमीशन के समक्ष (देखिए 1976 विस्कोनसिन लॉ रिपोर्ट्स 563, 579) अन्वेषण के प्रक्रम पर अपनी अभ्यावेदन प्रस्तुत करने के लिए अनुज्ञात करने का उपबंध है ।

हमने विस्कोनसिन जुडिशियल कमीशन, इडाहू जुडिशियल कौंसिल, कनेक्टीकट जुडिशियल रिव्यू कौंसिल और टैक्साज़ ट्रिब्युनल ऑफ़ सेवन जजेज़ के नियम उपवर्णित किए हैं, जहां नियमों में अभिव्यक्त रूप से, न्यायाधीश को अन्वेषण के प्रक्रम पर अभ्यावेदन करने या अवसर प्रदान करने का अधिकार अनुध्यात है ।

जैसा कि इसमें इसके पूर्व इंगित किया गया है, 2005 के विधेयक की धारा 7(2) न्यायाधीश को अपनी 'टिप्पणियां' प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान नहीं करती किन्तु वह परिषद् को टिप्पणियां मांगने का विवेकाधिकार देती है 'यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझे' । हमारा यह मत है कि जैसा कि यूनाइटेड स्टेट्स के राज्यों में है, यह बाध्यकारी होना चाहिए ।

विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि धारा 7(2) में 'सकेगी 'शब्द के स्थान पर 'करेगी' शब्द रखा जाए और 'यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझे' शब्दों का लोप किया जाना चाहिए ।

(XVII) क्या धारा 21 के वे उपबंध जिनमें किसी शिकायत या निर्देश में प्रस्ताव या अन्वेषण के लंबित रहते हुए न्यायाधीश को न्यायिक कार्य सौंपने से रोकने के लिए अनुज्ञात किया गया है, सांविधानिक रूप से विधिमान्य हैं ? संविधान के अनुच्छेद 225 के साथ पठित अनुच्छेद 124(5) का उचित निर्वचन क्या है ?

2005 के विधेयक की धारा 21 में 'कतिपय दशाओं में न्यायिक कार्य सौंपने से रोकने' का उल्लेख है । वह निम्नलिखित रूप में है:

> धारा 21 परिषद्, अन्वेषण या महाभियोग के लंबित रहने के दौरान संबद्ध न्यायाधीश को न्यायिक कार्य सौंपने से रोकने की सिफारिश कर सकेगी यदि परिषद् को यह प्रतीत होता है कि ऋजु और निष्पक्ष अन्वेषण के हित में यह आवश्यक है ।"

न्यायमूर्ति वी. रामास्वामी के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा नियुक्त बी. सी. रे समिति ने, जैसा कि अध्याय 6 में उल्लेख है, यह अभिनिर्धारित किया कि अन्वेषण के दौरान किसी न्यायाधीश को कार्य आबंटित करने से रोकना तब तक अनुज्ञेय नहीं था जब तक कि समुचित प्राधिकारी द्वारा आरोप प्रथमदृष्टया साबित नहीं कर दिए जाते ।

इसके बाद, जहां तक किसी न्यायाधीश के 'निलंबन' का संबंध है, न्यायिक जवाबदेही पर

उपसमिति बनाम भारत संघ (1991) 4 एस. सी. सी. 699, वाले मामले में संविधान न्यायपीठ की ओर से निर्णय सुनाते हुए न्यायमूर्ति बी. सी. रे ने यह मत व्यक्त किया:-

"संविधान में, जबकि इसी स्थिति में अनुच्छेद 317(2) में लोक सेवा आयोग के सदस्य को निलंबित करने के लिए उपबंध किया गया है किन्तु महाभियोग का सामना कर रहे उच्चतर सांविधानिक कृत्यकारियों, अर्थात्, वरिष्ठ न्यायाधीशों और भारत के राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति की दशा में ऐसा उपबंध जानबूझकर नहीं किया गया । यह धारणा करना युक्तियुक्त है कि संविधान के रचयिताओं ने यह उपधारित किया था कि किसी न्यायाधीश द्वारा उस स्थिति में, जिसमें निलंबन की शक्ति का प्रयोग करने की अपेक्षा नहीं होगी, वांछनीय प्रथा का अनुपालन किया जाएगा ।"

इससे पूर्व, विद्वान् न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया:-

"..... जब तक अनुच्छेद 124(4) के अधीन हटाने की प्रक्रिया पूरी नहीं हो जाती..... न्यायाधीश पर रोक लगाने के लिए.... अनुच्छेद 317(2) जैसे विधिक उपबंध के अभाव से आवश्यक रूप से यह उपदर्शित नहीं होता कि न्यायाधीश उस अवधि के दौरान कार्य करता रहे। यह क्षेत्र स्वयं विद्वान् न्यायाधीश की औचित्य का भावना और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के विचारों द्वारा प्रकट न्यायिक परम्परा के अंतर्गत आएगा । यह प्रत्याशा की जानी चाहिए कि विद्वान् न्यायाधीश जब तक स्वयं औचित्य के रूप में व्यवस्था-क्रमभंग के दौरान न्यायिक कृत्यों का निर्वहन करने से विरत नहीं रहता तब तक परिपाटी के रूप में उसे ऐसी स्थिति में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सलाह से मार्गदर्शन प्राप्त करना होगा ।"

इसके अतिरिक्त, जैसा कि प्रोफेसर साइमन शेट्रीट ने कथन किया है(उपर्युक्त अध्याय 7 देखिए) कामन लॉ के अधीन ऐक्ट ऑफ सेटलमेंट 1700 से पूर्व क्राउन, न्यायाधीशों को निलंबित कर सकता था भले ही वे सदाचार के दौरान पद धारण किए हुए हों । ऐसे निलंबन के दो मामले हुए, जिनमें से एक न्यायाधीश जॉन वाल्टर का मामला था और दूसरा न्यायाधीश जॉन आर्चर का मामला था । तथापि प्रोफेसर शेट्रीट ने यह कहा कि न्यायाधीश को कदाचार के लिए, जिसमें नैतिक दोषारोपण अंतर्वलित हो, संसद् के समक्ष लंबित दांडिक विचारण या कार्यवाहियों के लंबित रहते हुए

व्यवहार के रूप में छुट्टी ले लेनी चाहिए । अन्यथा, "उसके ऊपर गंभीर आरोप होते हुए उसे सामान्य रूप से देश के न्यायाधीश के रूप में न्याय करते रहने की अनुज्ञा देने से संभवतः विशेष रूप से उसके समक्ष न्यायिक कार्यवाहियों और साधारणतया न्यायिक प्रक्रिया की निष्पक्षता के बारे में लोगों का विश्वास समाप्त हो जाएगा ।" उसने यह भी कथन किया कि ऐसी स्थितियों में ऐसे प्रशासनिक इंतजाम किए जा सकते हैं जिससे कि न्यायाधीश की सूची में कोई मामले समनुदेशित न किए जाएं । उसने वर्ष 1950 में इंग्लैंड में एक मामले के प्रति निर्देश किया जब एक न्यायाधीश पर डाले गए दबाव से वह प्रभावित नहीं हुआ तो उसे कोई कार्य नहीं सौंपा गया और अंततः सेवानिवृत्त कर दिया गया । उसने यूनाइटेड स्टेट्स के जस्टिस चेंडलर (1970) 398 यू. स. 74 के मामले के प्रति भी निर्देश किया जिसमें फेडरल न्यायाधीश ने न्यायिक परिषद् के उस आदेश को असफलतापूर्वक चुनौती दी जिसमें उससे लंबित और भावी मामले वापस लेने का निदेश दिया गया था । प्रोफेसर शेट्रीट ने यह भी इंगित किया कि न्यायाधीश मामले सौंपे जाने का दावा करने का हकदार नहीं है और यह कि जब उसके साथ अन्याय नहीं हुआ है तो वह न्यायिक उपचार का भी हकदार नहीं है । यह मामला ब्राइटन परिषद् के एक सदस्य के मामले के सादृश्य है जिसका नाम सभी समितियों से हटा दिया गया था(मैंटन बनाम ब्राइटन 1951 (2) क्यू. बी. 393) ।

अब प्रश्न यह है कि 2005 के प्रस्तावित विधेयक की धारा 21 में 'निलंबन' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है किन्तु कतिपय परिस्थितियों में, अर्थात् अन्वेषण या महाभियोग के लंबित रहने के दौरान 'न्यायिक कार्य समनुदिष्ट करने से रोक' शब्दों का प्रयोग किया गया है । उस धारा में यह कहा गया है कि यदि परिषद् को यह प्रतीत होता है कि ऋजु और निष्पक्ष अन्वेषण के हितों में ऐसा करना आवश्यक है तो वह ऐसी रोकने की सिफारिश कर सकेगी ।

दूसरे शब्दों में, धारा 21 में ऐसे प्रत्येक मामले में जिसमें कोई शिकायत या निर्देश किया जाता है, न्यायिक कार्य समनुदिष्ट करने से रोकने का उल्लेख नहीं है । ऋजु और निष्पक्ष अन्वेषण के हितों में ऐसा आवश्यक समझा जाना चाहिए ।

प्रश्न अब भी यह है कि क्या किसी न्यायाधीश को न्यायिक कार्य करने से रोकने की शक्ति, जो कि मुख्य न्यायमूर्ति की है, न्यायिक परिषद् को भी दी जा सकती है । इसके आगे यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या अन्वेषण या समावेदन द्वारा हटाने की कार्यवाही के लंबित रहते हुए

'निलंबन' उच्चतम न्यायालय के अनुसार अनुज्ञेय नहीं है, न्यायिक कार्य सौंपने से रोकना भी उसी कोटि में आता है ? एक और प्रश्न भी उद्भूत होता है कि क्या संविधान के अनुच्छेद 225 के अधीन किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की "उस न्यायालय और उसके सदस्यों की बैठकों का चाहे वे अकेले बैठे या खंड न्यायालयों में बैठे, विनियमन" करने की शक्तियां (जो कि निस्संदेह, संविधान के उपबंधों और किसी विधि के उपबंधों के अध्यधीन है) कतिपय स्थितियों में किसी न्यायाधीश को 'न्यायिक कार्य सौंपने से रोकने' के लिए उपबंध करने वाली अनुच्छेद 124(5) के अधीन बनाई गई किसी विधि के अध्यधीन लाई जा सकती हैं ?

निस्संदेह, जैसा के प्रिवी कौंसिल ने रीस बनाम क्रेन (1994) 1 आल इंग्लैंड रिपोर्ट्स 833 वाले मामले में इंगित किया गया है अन्वेषण या महाभियोग के लंबित रहते हुए न्यायिक कार्य को सौंपने से रोकना न्यायाधीश के तात्पर्यित 'निलंबन' की कोटि में आता है । निस्संदेह, 'निलंबन' ऐसे पदधारी के विरुद्ध, जो अपने पद के कृत्यों या शक्तियों का प्रयोग कर रहा है, एक प्रतिषेध है । लार्ड स्लाइन ने यह प्रश्न उठाया:

> "प्रस्तुत मामले में प्रश्न यह है कि मुख्य न्यायमूर्ति ने जो कुछ किया क्या वह मात्र प्रशासनिक व्यवस्था के रूप में उसकी सक्षमता के भीतर था या क्या यह तात्पर्यित निलंबन का कोटि में आता था ।"

इस प्रश्न का उत्तर यह कथन करते हुए दिया गया कि तथ्यों के आधार पर वह एक अनिश्चित निलंबन था और मुख्य न्यायमूर्ति ने अधिकारिता के बिना कार्य किया क्योंकि उस औपनिवेशिक देश में की विधि के अनुसार यह अपेक्षित था कि केवल राष्ट्रपति विहित प्रक्रिया के पालन करने के पश्चात् निलंबन का आदेश पारित कर सकता है । लार्ड स्लाइन ने यह अभिनिर्धारित किया कि मुख्य न्यायमूर्ति ने जो कुछ किया वह उन्होंने उस प्रशासनिक व्यवस्था से बाहर किया जो कि मुख्य न्यायमूर्ति अन्यथा करने का हकदार था । उसने यह मत व्यक्त किया:

> "प्रत्यर्थी को वास्तव में न्यायालय में आसीन न्यायाधीश के रूप में इन कृत्यों का प्रयोग करने से वर्जित किया गया था.... यह वास्तव में एक अनिश्चित निलंबन था ।"

(अ) हम अनुच्छेद 225 के प्रतिनिर्देश करके, जिसके अधीन मुख्य न्यायमूर्ति को कार्य समनुदेशित करने की शक्तियां प्राप्त हैं, स्थिति की परीक्षा करेंगे ।

प्रथमत:, अनुच्छेद 225 केवल उच्च न्यायालयों के संबंध में है न कि उच्चतम न्यायालय के संबंध में । द्वितीयत:, न्यायिक परिषद् का एक पृथक् अस्तित्व है और वह भारत के मुख्य न्यायमूर्ति अथवा किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकती । तृतीयत:, अनुच्छेद 225 में 'इस संविधान के और समुचित विधानमंडल की किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए' शब्दों का प्रयोग किया गया है । इसमें 'उस न्यायालय में न्याय प्रशासन के संबंध में उसके न्यायाधीशों की अपनी-अपनी शक्तियों के, जिनके अंतर्गत न्यायालय के नियम बनाने की शक्ति तथा उस न्यायालय और उसके सदस्यों की बैठकों का चाहे वे अकेले बैठें या खंड न्यायालयों में बैठें, विनियमन करने की शक्ति है' के प्रति भी निर्देश किया जा सकता है । इसमें सिविल तथा दंड प्रक्रिया संहिताओं के या लेटर्स पेटेंट के या किसी ऐसी विशेष विधि के, जिसमें न्यायाधीशों द्वारा, चाहे अकेले या खंड न्यायपीठों के रूप में, मामलों की सुनवाई करने की पद्धति विहित हो, प्रति निर्देश हो सकता है । वस्तुत:, दिल्ली उच्च न्यायालय अधिनियम, केरल उच्च न्यायालय अधिनियम और कर्नाटक उच्च न्यायालय अधिनियम ऐसी विधियों के उदाहरण हैं ।

यह कहा जा सकता है कि न्यायिक कार्य का प्रत्याहरण (वापस लिया जाना) 'न्याय प्रशासन' का भागरूप है अथवा यह न्यायालय की बैठकों को विनियमित करने से संबंधित है । तथापि, अनुच्छेद 225 का परिशीलन करने के बजाय, हमारा यह विचार है कि हमें इसका उत्तर अनुच्छेद 124(5) से ही मिल जाता है । अब हम अनुच्छेद 124(5) के प्रति निर्देश करेंगे ।

(आ) क्या अनुच्छेद 124(5) में ऐसी कोई विधि बनाना अनुज्ञात है जिसमें किसी न्यायाधीश से किसी शिकायत पर प्रारंभिक अन्वेषण और जांच के लंबित रहते या किसी निर्देश के अनुसरण में जांच के लंबित रहते न्यायिक कार्य वापस लेने का उपबंध हो ?

यदि हम अनुच्छेद 217 के साथ पठित अनुच्छेद 124(5) पर विचार करें, तो यह स्पष्ट है कि संसद् ऐसी कोई विधि बना सकती है, जो उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय दोनों को लागू होती हो । इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 124(5) इस प्रकार है :-

"अनुच्छेद 124 (5) : संसद् खंड (4) के अधीन किसी समावेदन के रखे जाने की तथा

न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता के अन्वेषण और साबित करने की प्रक्रिया का विधि द्वारा विनियमन कर सकेगी ।"

जैसाकि हमने पहले बताया है, 'और' शब्द का अर्थान्वयन पृथक् रूप में किया जा सकता है । अतः, संसद् कदाचार या असमर्थता के 'अन्वेषण और साबित करने' के प्रयोजन के लिए विधि बना सकती है और शक्ति के भागरूप जांच की समाप्ति पर न केवल गौण उपायों के लिए बल्कि 'अंतरिम उपायों', जैसे कि अन्वेषण और जांच के परिणाम के लम्बित रहते न्यायिक कार्य को वापस लेना, के लिए भी उपबंध कर सकती है ।

अब यह सुस्थापित है कि यदि संविधान के अधीन संसद् में ऐसी कोई विधि बनाने की शक्ति निहित की गई है तो ऐसी विधि में ऐसी प्रक्रिया विहित की जा सकती है जो अन्वेषण और साबित करने संबंधी एक प्रभावी प्रक्रिया के उद्देश्य को पूरा करना सुकर बनाती हो । यह सुविदित है कि यदि कोई व्यक्ति अन्वेषण या अनुशासनिक जांच के अधीन है तो उसके निलम्बन या उससे कार्य वापस लिए जाने से वृहत् उपाय के रूप में अधिक प्रभावी और शीघ्र अन्वेषण या जांच को सुकर बनाया जा सकेगा । वे व्यक्ति, जो अन्वेषण के प्रक्रम पर सूचना दे सकते हैं या जांच में साक्ष्य दे सकते हैं, न्यायालय में मामलों का विनिश्चय करने के लिए आसीन न्यायाधीश की उपस्थिति से व्यथित महसूस नहीं करें । ऐसी स्थिति की भी संभावना रहती है जहां उस अधिवक्ता के मामले, जिसने न्यायाधीश के विरुद्ध शिकायत की है, उसी न्यायाधीश के समक्ष सूचीबद्ध हो सकते हैं ।

इस प्रकार, संसद्, जो किसी विशिष्ट प्रयोजन के लिए उदाहरणार्थ न्यायिक परिषद् को न्यायाधीशों के कदाचार के सबूत के लिए अन्वेषण और जांच का संचालन करने की बाबत न्यायिक परिषद् को समर्थ बनाने के लिए कोई विधि बना सकती है, उसी विधि में न्यायिक परिषद् को ऐसे न्यायाधीश से एक अस्थायी अवधि के लिए उदाहरणार्थ न्यायिक परिषद् द्वारा किए जाने वाले अन्वेषण या जांच के लम्बित रहने के दौरान या समावेदन द्वारा हटाए जाने संबंधी कार्यवाहियों के लम्बित रहने के दौरान या दांडिक कार्यवाहियों के लम्बित रहने के दौरान न्यायिक कार्य वापस लेने के लिए मुख्य न्यायमूर्ति को सिफारिश करने की आनुषंगिक शक्ति भी प्रदत्त कर सकती है ।

इस पहलू पर न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी वाले मामले में सब-कमेटी आन जुडिशियल अकाउन्टिबीलिटी बनाम भारत संघ [1991 (4) एस. सी. सी. 699] विचार नहीं किया गया था

क्योंकि 1968 के अधिनियम या 1969 के नियम में 2005 के विधेयक की धारा 21 के समान उपबंध नहीं था । उस मामले में उच्चतम न्यायालय में की इन मताभिव्यक्तियों का कि संविधान में लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य को जांच के लम्बित रहते अनुच्छेद 317(2) के अधीन निलम्बित किए जाने को अनुज्ञात किया गया है जबकि संविधान में किसी न्यायाधीश की बाबत ऐसा कोई उपबंध नहीं किया गया है, अर्थ इस प्रसंग में लगाया जाना चाहिए कि 1968 के अधिनियम में, जो कि अनुच्छेद 124(5) के अधीन बनाया गया था, 2005 के विधेयक में अंतर्विष्ट धारा 21 के समान कोई उपबंध नहीं था । इसी कारण उच्चतम न्यायालय ने इस बात पर विचार नहीं किया कि अनुच्छेद 124(5) ही ऐसा उपबंध है जिसके अधीन किसी न्यायाधीश के विरुद्ध कदाचार के आरोपों के अन्वेषण और साबित करने की बाबत ऐसे किसी न्यायाधीश के निलम्बन के संबंध में आनुषंगिक रूप से उपबंध करते हुए कोई विधि बनाई जा सकती है अथवा नहीं । हमारा यह मत है कि उच्चतम न्यायालय की मताभिव्यक्तियां ऐसे किसी विनिश्चय की कोटि में नहीं आतीं कि अनुच्छेद 124(5) के अधीन बनाई गई किसी विधि में अन्वेषण या जांच के लम्बित रहते निलम्बन के लिए उपबंध नहीं किया जा सकता ।

उपर्युक्त सिद्धांतों को देखते हुए, **विधि आयोग की यह राय है कि संसद् के लिए इस बात का उपबंध करने की बाबत ऐसी कोई विधि बनाना अनुज्ञेय है कि न्यायिक परिषद् प्रभावी अन्वेषण और जांच के प्रयोजनार्थ अंतरिम उपाय के रूप में उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश से न्यायिक कार्य वापस लेने की सिफारिश कर सकती है । अतः विधि आयोग की यह राय है कि धारा 21 सांविधानिक रूप से विधिमान्य है ।**

(XVIII)(अ) <u>क्या तुच्छ और तंग करने वाली 'शिकायतों' को फाइल किए जाने से रोकने के लिए कुछ उपबंध होना चाहिए और कुछ अनुशास्तियों, जैसी कि विभिन्न लोकपाल विधेयकों में या लोक आयुक्तों संबंधी राज्य विधियों में हैं, का उपबंध किया जाना चाहिए ।</u>

<u>(आ) क्या शिकायत ऐसी याचिका के रूप में, जिसके साथ सूचना का स्रोत देने संबंधी अंतर्वस्तुओं का सत्यापन हो, होनी चाहिए और यह शपथ-पत्र द्वारा समर्थित होनी चाहिए अथवा नहीं होनी चाहिए ?</u>

(अ) हमारे विचार में, 2005 के विधेयक में कुछ उपबंध अवश्य होना चाहिए जिसका आशय प्रस्तावित धारा 7(1)(क) के अधीन आने वाले तुच्छ या तंग करने वाली शिकायतों को या उन

शिकायतों को, जो सद्भावपूर्वक न की गई हों, रोकने का हो । ऐसी शिकायतों के मामले में, मात्र उन्हें 'खारिज' करना पर्याप्त नहीं होगा । न्यायाधीश का पद और उसके कृत्य समाज के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं और न्यायाधीशों की ख्याति को तथा न्यायपालिका को सहजता से कलुषित करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती ।

यह सामान्य सी बात है कि जब कभी न्यायिक परिषद् जैसे किसी निकाय की स्थापना की जाएगी, तो ऐसे भी बहुत से लोग होंगे जो उस प्रणाली पर अंगुलि उठाने से नहीं चूकेंगे । इसके अतिरिक्त, न्यायिक परिषद् का समय बहुत ही मूल्यवान होता है । न्यायिक परिषद् भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, उच्चतम न्यायालय के दो ज्येष्ठतम न्यायाधीशों और उच्च न्यायालयों के दो ज्येष्ठतम मुख्य न्यायमूर्तियों से मिलकर बनती है । उनके पास न्यायाधीशों के रूप में करने के लिए अन्य नियमित कर्तव्य भी होते हैं । अतः, एक पृथक् धारा के रूप में 'निवारक' उपायों का उपबंध करने की आवश्यकता है । हमारा यह मत है कि ऐसी किसी शिकायत को, जो तुच्छ या तंग करने वाला या सद्भावपूर्वक न किया गया पाया जाता है, फाइल किए जाने को अपराध बनाया (घोषित किया) जाना चाहिए और उसे संक्षिप्त रूप में एक वर्ष से अनधिक अवधि के कारावास से दंडित किया जाना चाहिए ।

ऐसे उपबंध लोक पाल विधेयकों के विभिन्न प्रारूपों में हैं और अनेक राज्यों में 'लोक आयुक्तों' को गठित करने वाले कानूनों में भी अंतर्विष्ट हैं । उदाहरणार्थ लोक पाल विधेयक, 2001 की धारा 12(2) में प्ररूप विहित करने के अतिरिक्त यह कथन है कि शिकायत के साथ ऐसी फीस, जो विहित की जाए और धारा 12 की उपधारा (3) के अधीन जमा किए जाने का प्रमाणपत्र होगा । धारा 12(3) में यह कथन है कि शिकायतकर्ता ऐसी धनराशि ऐसी रीति में और ऐसे प्राधिकारी या अभिकरण के पास जो विहित किया जाए जमा करेगा और यह कि ऐसे जमा किए जाने का प्रमाणपत्र विहित प्ररूप में दिया जाएगा । धारा 12(2) में यह कथन है कि यदि शिकायतकर्ता (धनराशि) जमा कराने में असमर्थ है तो उसे छूट के लिए आवेदन करना चाहिए । धारा 21, धारा 12 के अधीन जमा राशि के व्ययन के तथा असद्भावपूर्वक की गई शिकायत के लिए शास्ति के बारे में है । तथापि हम शिकायत के साथ धनराशि जमा करने की वैसी प्रक्रिया की सिफारिश नहीं करते हैं क्योंकि यह प्रक्रिया जटिल प्रतीत होती है और यह कि ऐसी शिकायतों को अपराध बनाया जाना

स्वयं में ही पर्याप्त भय उत्पन्न करने वाला होगा ।

अतः, विधि आयोग ऐसी शिकायतों के विरुद्ध समुचित अनुशास्तियों की सिफारिश करता है । विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि 2005 के विधेयक में एक पृथक् धारा के रूप में निम्नलिखित उपबंध अंतःस्थापित किए जाएं :

" (1) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी न्यायाधीश के विरुद्ध उस न्यायाधीश को, जिसके विरुद्ध शिकायत फाइल की जाती है, तंग करने के आशय से ऐसी शिकायत करता है जो या तो तुच्छ है या तंग करने वाली है अथवा सद्भावपूर्वक नहीं है, दंडनीय होगा ।

(2) जब उपधारा (1) के अधीन कोई अपराध किया जाता है, तो न्यायिक परिषद् उस अपराध का संज्ञान कर सकेगी और अपराधी को इस बात का कारण बताने का कि उसे उस अपराध के लिए दंडित क्यों न किया जाए, युक्तियुक्त अवसर प्रदान करने के पश्चात् ऐसे अपराधी का संक्षिप्त रूप में, जहां तक हो सके दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन संक्षिप्त विचारण के लिए विनिर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुसार, विचारण कर सकेगी तथा यदि ऐसे अपराधी को ऐसा अपराध कारित करने का दोषी पाया जाता है तो उसे उस अवधि के कारावास से, जो एक वर्ष तक का हो सकेगा और जुर्माने से भी, जो पच्चीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडादिष्ट कर सकेगी ।"

विधि आयोग उपर्युक्त रूप में अपराध का उपबंध करने के लिए 2005 के विधेयक में संशोधन करने की सिफारिश करता है ।

(आ) प्रश्न यह है कि क्या शिकायत याचिका के रूप में, जिसके साथ सूचना का स्रोत देने संबंधी अंतर्वस्तुओं का सत्यापन हो, होनी चाहिए और क्या उसके समर्थन में कोई शपथ-पत्र होनी चाहिए अथवा नहीं होनी चाहिए ?

2005 के विधेयक की धारा 5(2) में, निस्संदेह, इस निमित्त उपबंध किया गया है किन्तु धारा 5(2) में यह और उपबंध करना आवश्यक है कि उसके साथ नीचे यथाकथित सत्यापन होना चाहिए ।

विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि 2005 के विधेयक की धारा 5(2) का यह उपबंध करने के लिए संशोधन किया जाए कि शिकायत नियमों में विहित प्ररूप में होनी चाहिए, उसमें

'कदाचार या असमर्थता' के, जो अभिकथन की विषयवस्तु है, पूरे ब्यौरे दिए गए होने चाहिएं और उसमें इस बात का सत्थापन अवश्य अंतर्विष्ट होना चाहिए कि कौन से अभिकथन शिकायतकर्ता की निजी जानकारी में हैं और कौन से अभिकथन प्राप्त और किससे प्राप्त जानकारी पर आधारित हैं । इसमें इस बात का कथन भी अंतर्विष्ट होना चाहिए कि शिकायतकर्ता इस बात से अवगत है कि यदि शिकायत में के अभिकथन तुच्छ या तंग करने वाले या सद्भावपूर्वक न किए गए पाए जाते हैं तो शिकायतकर्ता अधिनियम के अधीन अपराध के लिए संक्षिप्त रूप से दंडित किए जाने का दायी होगा ।

विधि आयोग का यह भी मत है कि शिकायत के साथ किसी शपथ-पत्र को संलग्न किए जाने की अपेक्षा करना आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रत्येक शपथ-पत्र में अधिवक्ता या नोटरी या अन्य प्राधिकृत व्यक्ति के समक्ष शपथ ली जाती है और यदि ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण किया जाएगा तो अभिकथनों की गोपनीयता पूर्णतया सुनिश्चित नहीं हो सकती । (इसमें इसके आगे हम यह उपबंध कर रहे हैं कि शिकायतकर्ता को शिकायत के फाइल किए जाने से पूर्व तथा अन्वेषण या जांच के दौरान, उस शिकायत का, न्यायिक परिषद् को लिखित रूप में अभिव्यक्त अनुज्ञा के सिवाय, प्रचार करने से प्रतिषिद्ध किया जाना चाहिए ।

(XIX) क्या 'कदाचार' या 'असमर्थता' शब्दों को अधिनियम में परिभाषित किया जाना चाहिए ? यदि हां, तो किस रीति में ?

(क) विधिवेताओं और न्यायाधीशों द्वारा कतिपय मत व्यक्त किए गए हैं कि 'कदाचार' या 'असमर्थता' शब्द के अर्थ को परिभाषित करना आवश्यक नहीं है और यह कि और इस बात का विनिश्चय न्यायिक परिषद् पर छोड़ देना चाहिए कि उस विशिष्ट कार्य या लोप से 'कदाचार' गठित होता है अथवा नहीं या न्यायाधीश के स्वास्थ्य की विशिष्ट दशा से 'असमर्थता' प्रकट होती है अथवा नहीं । वस्तुतः सी. के. रविचन्द्रन अय्यर बनाम न्यायमूर्ति ए. एम. भट्टाचार्जी [1995 (5) एस. सी.457] वाले मामले में ऐसा ही मत व्यक्त किया गया है ।

किन्तु ऐसा होने पर भी विषयों को स्पष्ट करने तथा उन्हें अस्पष्ट न रखने और शिकायतकर्ताओं, संसद् सदस्यों तथा न्यायाधीशों को 'कदाचार' या 'असमर्थता' शब्दों के अर्थ से अवगत कराने की भी दृष्टि से हमारा यह मत है कि इन शब्दों को 'समावेशी परिभाषा' के रूप में परिभाषित किया जाना चाहिए ।

कदाचार अथवा विसामान्य व्यवहार के विभिन्न प्रकार हैं । इन्हें कुछ भाष्यकारों (टीकाकारों), जैसे कि डेविड ई. डांडा, ने इस प्रकार प्रवर्गीकृत किया है :-

(i) न्यायालय कक्ष में अनुचित व्यवहार ;

(ii) अनुचित या अवैध प्रभाव ;

(iii) भंग का अनौचित्य ;

(iv) अन्य अनुचित क्रियाकलाप ।

इन मदों में से प्रत्येक के अधीन, अतिक्रमी कदाचार की एक लंबी सूची दी गई है (देखिए http://library.findlaw.com/2001/Jan/1/129422.html)। हम पहले केलिफार्निया में के राज्य न्यायालयों की वार्षिक रिपोर्टों के प्रति निर्देश कर चुके हैं, जिनमें कि कदाचार या विसामान्य व्यवहार की एक लम्बी सूची दी गई है ।

संविधान के कार्यकरण के पुनर्विलोकन से संबंधित राष्ट्रीय आयोग (2001) ने अपने परामर्श पत्र (जिल्द 2, पुस्तक 1)(पैरा 14.4, 14.5) में 'विसामान्य व्यवहार' के प्रति निर्देश किया गया है जिसमें 'हटाया जाना' आवश्यक नहीं है । 'विसामान्य व्यवहार' के प्रकार, जिन्हें निर्दिष्ट किया गया है, इस प्रकार हैं : न्यायालय के कार्य-घंटों का पालन न करना और अपने प्रसादपर्यंत (इच्छानुसार) समय का पालन करना, समय पर निर्णय न देना और कुछ मामलों में उन्हें वर्षों तक मुल्तवी करना और सेवानिवृत्ति/स्थानांतरण के कारण निर्णय दिए बिना न्यायालय छोड़ कर चले जाना । कई बार मामलों की सूचियों में इस अभिप्राय से छलसाधन (जोड़-तोड़) किया जाता है कि बड़े मामले सूची के आखिर में डाल दिए जाते हैं । कुछ न्यायाधीश मुख्य न्यायमूर्ति को निर्देश किए बिना मामलों को सूचीबद्ध करने का निदेश दे देते हैं । कुछ लोकप्रिय होने की दृष्टि से बहुत ही उदार होते हैं कि वे सभी मामलों को ग्रहण कर लेते हैं और उदारतापूर्वक अंतरिम अनुतोष प्रदान करते हैं । कुछ न्यायाधीश राजनीतिक शक्ति के केन्द्रों से दूरी भी नहीं बनाए रखते ।

(ख) कदाचार या असमर्थता की विभिन्न परिभाषाएं (इस प्रकार हैं) :-

(i) न्यायमूर्ति सावंत समिति ने, जिसने न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी के मामले की जांच की थी, यह कथन किया कि संविधान के अनुच्छेद 124(4) और 124(5) तथा अन्य उपबंधों के अनुसार 'कदाचार' से अभिप्रेत हैं :

(क) ऐसा आचरण या आचरण का अनुक्रम जिससे न्यायपालिका का अनादर या बदनामी होती हो जिससे कि लोगों की न्यायपालिक में जो निष्ठा और विश्वास है वह डगमगा जाए । यह आपराधिक कार्यों या विधि द्वारा प्रतिषिद्ध कार्यों तक ही सीमित नहीं है । यह विधि के प्रतिकूल कार्यों तक सीमित नहीं है । यह न्यायिक पद से संबंधित कार्यों तक सीमीत नहीं है । इसका विस्तार किसी न्यायाधीश, के सार्वजनिक या प्राइवेट क्रियाकलापों पर भी है ।

(ख) कार्य या लोप जानबूझकर किया गया होना चाहिए । जानबूझकर किए जाने का तत्व नियमों या स्थापित आचरण संहिता के प्रति सदोष लापरवाही, उपेक्षा या अवहेलना से पता चलता है । यद्यपि एकल कार्य जानबूझकर किया गया नहीं हो सकता, अपितु इसके लिए कार्यों की ऐसी श्रृंखला होनी चाहिए जिससे जानबूझकर किए जाने का अनुमान लगाया जा सके ।

(ग) यदि व्यक्ति स्पष्ट रूप से अपूरणीय प्रकृति के गंभीर और घोर गलत कार्य साशय करता है और पता चलने पर प्रतिफल की प्रस्थापना करता है तो ऐसा धनीय प्रतिफल (प्रतिपूर्ति) किसी कदाचार या लोप को 'कदाचार' से कुछ कम नहीं बनाएगा ।

(घ) 'कदाचार' न्यायाधीश द्वारा वर्तमान न्यायिक पदभार ग्रहण किए जाने के दौरान किए गए आचरण तक ही सीमित नहीं है । इसका विस्तार पूर्ववर्ती न्यायिक पद धारण करने के दौरान किए गए कार्यों या लोपों पर भी है, यदि ऐसे कार्य या लोप उसे वर्तमान न्यायिक पद धारण करने के अयोग्य बनाते हैं ।

(ii) यूनाइटेड किंग्डम (यू. के.) में, अपील न्यायालयों ने न्यायाधीशों की अनुचित व्यवहार के लिए जैसे कि सो जाना, अनुचित भाव-भंगिमाएं प्रकट करना और अत्यधिक हस्तक्षेप करने के लिए अथवा अक्षमता के लिए या उस मामले के बारे में, जिसका वह न्यायाधीश विचारण कर रहा है, प्रेस में टीका-टिप्पणी करने के लिए अनेक बार आलोचना की है (रोडने ब्रेजियर, कान्स्टीट्यूशनल प्रेक्टिस : दि फाउन्डेशन्स आफ ब्रिटिश गवर्नमेंट, 1999, पृष्ठ 289) ।

(iii) जूडिशियल कोरसपोंडेंस यूनिट, 1998 में लार्ड चांसलर विभाग (लार्ड चांसलर्स डिपार्टमेंट) में

के प्रोटोकोल के अनुसार (देखिए अध्याय 7), 'वैयक्तिक आचरण' पद से न्यायाधीश का न्यायालय में कक्षीकारों (मुवक्किलों), प्रतिवादियों या अन्य व्यक्तियों के प्रति व्यवहार तथा मामले के संबंध में न्यायाधीश का व्यवहार या कार्रवाई करने की रीति अभिप्रेत है । 'वैयक्तिक आचरण' के अंतर्गत ऐसे मामले भी हो सकते हैं जैसे कि न्यायाधीश द्वारा विचारण के दौरान अनुचित वैयक्तिक या आक्रामक टिप्पणियां करना (जो मामले उसके विनिश्चय के भाग रूप नहीं है) और न्यायाधीश द्वारा न्यायालय के बाहर ऐसा व्यवहार करना, जो अनुचित है और जिससे न्यायपालिका की ख्याति को ठेस पहुंचती है । किसी मामले में विचार करने के दौरान अशिष्टता, विभेद या पक्षपात के बारे में की गई शिकायतों के विरुद्ध न्यायिक अपील की जा सकती है, किन्तु उन्हें न्यायिक आचरण के बारे में, विशेषकर जहां कि अभिकथन जातीय या लैंगिक आधार पर विभेद का हो, जिससे कि शिकायतकर्ता के प्रति अपराध कारित होता है, शिकायत मानी जा सकेगी ।

(iv) मलेशिया के संविधान के अनुच्छेद 125 में यह कथन है कि न्यायाधीशों की 'कदाचार' के आधार पर या यदि वे शरीर या मस्तिष्क के अंग शैथिल्य के कारण या किसी अन्य कारण से अपनी असमर्थता के कारण अपने पद के कर्तव्यों का उचित तौर से निर्वहन नहीं कर सकते तो उस आधार पर हटाया जा सकता है । किन्तु इन शब्दों का निर्वचन अनेक रूपों में किया गया है । 'कदाचार' का अर्थान्वयन न्यायालय के बाहर के आचरण के प्रति भी किया गया है । 'किसी अन्य कारण' से न्यायिक रूप से कार्य करने में असमर्थता का उदार अर्थान्वयन किया गया है । न्यायपालिका द्वारा हाल ही में न्यायाधीशों के लिए आचार संहिता बनाई गई है ।

(v) यूनाइटेड स्टेट्स (यू. एस.) के राज्य न्यायालयों में, ऐसे विस्तृत उपबंध हैं जिनमें कदाचार के विभिन्न प्रकारों के प्रति निर्देश किया गया है । कैलिफोर्निया कान्स्टीट्यूशन (संविधान) के अनुच्छेद 6, धारा 18(घ) में 'असमर्थता' को 'ऐसी नि:शक्तता (असमर्थता) के रूप में जो न्यायाधीश के कार्यपालन में गंभीर रूप से बाधा डालती है' निर्दिष्ट किया गया है । जहां तक 'कदाचार' का संबंध है इसमें कार्यालय में जानबूझकर अवचार, न्यायाधीश के कर्तव्यों का पालन करने में निरंतर असफलता या असमर्थता, मादक पदार्थों या ओषधियों के प्रयोग में आभ्यासिक व्यसन या ऐसा आचरण, जो न्याय प्रशासन पर प्रभाव डालने वाला प्रतिकूल हो, जिससे कि न्यायिक पद की बदनामी होती हो या अनुचित कार्रवाई या कर्तव्य की अवहेलना शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

(vi) इदाहो में, सामान्य प्रक्रिया नियम के नियम 28 में, कार्यालय में अवचार, न्यायाधीश के कर्तव्यों का पालन करने में जानबूझकर या निरंतर असफलता, आभ्यासिक व्यसन (मद्यपान) या न्याय प्रशासन के प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला आचरण जिससे कि न्यायिक पद की बदनामी होती हो, या न्यायिक आचार संहिता के अतिक्रमण के प्रति निर्देश किया गया है ।

(vii) दि कनेक्टीकट ला, अध्याय 872(ए) धारा 51-51(एच)(1) में न्यायिक आचार संहिता के सिद्धांतों का जानबूझकर अतिक्रमण, न्यायाधीश के कर्तव्यों का पालन करने में जानबूझकर और निरंतर असफलता, न्यायाधीश के कर्तव्यों का उपेक्षापूर्ण या अक्षम पालन, किसी घोर अपराध या नैतिक अधमता वाले उपापराध की अंतिम दोषसिद्धि, न्यायवादी (अटर्नी-एट ला) के रूप में विधि च्युति या निलंबन, वित्तीय विवरण फाइल करने में जानबूझकर असफलता कपटपूर्ण वित्तीय विवरण फाइल किया जाना, स्वभाव जो न्याय के व्यवस्थित निर्वहन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता हो ।

(viii) उपरवर्णित 'कदाचार' के प्रकारों के अतिरिक्त, यह कहना भी आवश्यक है कि किसी विशिष्ट जाति, वर्ग, समुदाय या धर्म के कक्षीकार (मुवक्किल) या वकील के लिए निरंतर 'पक्षपात' या उसके विरुद्ध निरंतर 'विभेद' का सबूत कदाचार की कोटि में आएगा ।

(ix) अध्याय 2 में, हमने यह उल्लेख किया है कि जियोकोमो ओबेर्टो, न्यायाधीश टुरिन, इटली और इंटरनेशनल एसोसिएशन आफ जजेज़ के उप-महासचिव का एक लेख है और उस लेख में कदाचार और विसामान्य व्यवहार की मदों की एक लम्बी सूची उद्धृत की गई है । (यह वेबसाइट पर भी उपलब्ध है) ।

(x) सी. के. रविचन्द्रन अय्यर बनाम न्यायमूर्ति ए. एम. भट्टाचार्जी वाले मामले के निर्णय में कृष्णस्वामी बनाम भारत संघ [1992 (4) एस. सी. सी. 605] वाले मामले में दिए गए 'कदाचार' के अर्थ के प्रति निर्देश किया गया है । उस मामले में, यह कथन किया गया है कि :-

> "उच्चतर न्यायपालिका द्वारा किया प्रत्येक कार्य या आचरण या निर्णय की गलती या उपेक्षापूर्ण कार्य भी स्वतः कदाचार की कोटि में नहीं आता । न्यायिक पद का जानबूझकर दुरुपयोग, कार्यालय में जानबूझकर अवचार, भ्रष्टाचार, निष्ठा की कमी अथवा नैतिक अधमता का कोई अन्य अपराध कदाचार होगा । अवचार से कर्ता द्वारा कुछ डिग्री तक आपराधिक मनःस्थिति की प्रेरणा विवक्षित होती है । घोर अपराध की दोषिता का न्यायिक

निष्कर्ष निकाला जाना ही अवचार होता है । न्यायाधीश का न्यायिक कर्तव्यों का पालन करने में निरंतर असफल रहना या पद का विद्वेषपूर्ण आशय से जानबूझकर दुरुपयोग करना कदाचार होगा । कदाचार के अंतर्गत न्यायाधीश के न्यायिक पद के निष्पादन में या उसके परे के अवचार भी आ जाएंगे ।"

(xi) यू. एस. में के राज्यों में, जहां 'कदाचार' को निर्दिष्ट किया गया है (देखिए उपर्युक्त अध्याय 17 वहां यह कथन किया गया है कि 'पदीय कर्तव्यों के पालन में असमर्थता' भी 'कदाचार' की कोटि में आता है । किन्तु, जैसे कि हम अगले शीर्ष के अधीन चर्चा करेंगे, कोई शिकायत किसी निर्णय के गुणागुण के आधार पर नहीं की जा सकती, किन्तु यह प्रश्न 'पदीय कर्तव्यों के पालन में असमर्थता' से भिन्न है ।

(xii) दातो परम कुमारस्वामी ने चेन्नई में नवम्बर, 2004 में दिए गए अपने भाषण में (जिसके प्रति अध्याय 3 में निर्देश किया गया है) रिश्वत, भ्रष्टाचार, गाली-गलौज की भाषा, अवमानना संबंधी शक्तियों के दुरुपयोग और घोर अपराधों में हल्के दंडादेश के प्रति निर्देश करने के पश्चात्, "नकदी, दान, सत्कार, जिसके अंतर्गत व्यभिचार करना, भोजन करना, मनोरंजन, विदेश अवकाश भी है", के प्रति भी निर्देश किया और यह कहा कि तेजी से विकास करने वाले देशों में गोल्फ कोर्स ऐसे स्थान हैं जहां न्यायाधीश के साथ लगाई गई शर्त को हार कर (रकमों का) संदाय किया जाता है । श्री कुमारस्वामी ने विशिष्ट ला-फर्मों, चयनित वकीलों के नातेदारों का पक्ष लेने के प्रति भी निर्देश किया है ।

विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि 'कदाचार' की, जैसा कि ऊपर कथन किया गया है, व्यापक परिभाषा दी जानी चाहिए । इसमें आचार संहिता के भंग को सम्मिलित किया जाना चाहिए । जहां तक 'असमर्थता' का संबंध है, यह ऐसी होनी चाहिए जो स्थायी प्रकृति की हो या जिसके स्थायी प्रकृति के होने की संभावना हो जो उसे (न्यायाधीश की) उसके न्यायिक कृत्यों का समुचित रूप से पालन करने में समर्थ न बनाती हो । विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि ऐसी परिभाषा 2005 के विधेयक की धारा 2 में पुरःस्थापित की जानी चाहिए ।

(XX) क्या ऐसी किसी शिकायत को, जो एकमात्र रूप से निर्णय या आदेश के गुणागुण से संबंधित हो, ग्रहण किया जाना चाहिए ?

अनेक देशों में यह उपबंध है कि मामले के गुणागुण से संबंधित शिकायत को प्रारम्भिक

अन्वेषण के प्रक्रम पर नामंजूर किया जाएगा । इसी कारणवश यू. एस. ए. में वर्ष 1805 में जस्टिस चेज़ के विरुद्ध महाभियोग का प्रस्ताव गिर गया था ।

1980 के यू. एस. ऐक्ट (अधिनियम) टाइटल 28 यू. एस. सी. की धारा 372 (सी)(3)(ए) में यह उपबंध है कि " यदि मुख्य न्यायमूर्ति (चीफ जस्टिस) का यह निष्कर्ष है कि शिकायत. ..... किसी विनिश्चय या प्रक्रियात्मक विनिर्णय के गुणगुण से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित है" तो वह उस शिकायत को खारिज कर सकता है ।

2002 के यू. एस. जुडिशियल इम्प्रूवमेंट्स ऐक्ट में, धारा 352(बी)(1)(ए)(ii) में यह कथन है कि मुख्य न्यायमूर्ति ऐसी किसी शिकायत को खारिज कर सकता है यदि वह शिकायत 'किसी विनिश्चय या प्रक्रियात्मक विनिर्णय के गुणागुण से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित है' यू. एस. के अधिकांश राज्यों में ऐसे ही उपबंध हैं ।

यह स्थिति यूनाइटेड किंगडम (देखिए अध्याय 7) और अनेक अन्य देशों में भी है ।

वर्ष 2001 के कैलेंडर वर्ष में, कैलिफोर्निया में 1610 न्यायाधीश थे और 781 अलग-अलग न्यायाधीशों के विरुद्ध 835 शिकायतें प्राप्त हुई थीं और इनमें से 807 को संक्षिप्त रूप से खारिज कर दिया गया था क्योंकि वे न्यायिक अवचार से संबंधित न होकर 'विधिक गलतियों' या 'गलत वैवेकिक आदेशों' से संबंधित थीं । पांच प्राइवेट भर्त्सना के मामले थे जिनमें नामों को गोपनीय रखा गया था; 19 मामलों में प्राइवेट सलाहकारी पत्र जारी किए गए थे और केवल तीन न्यायाधीशों को अनुशासनबद्ध किया गया था । वर्ष 2002 में 836 अलग-अलग न्यायाधीशों के विरुद्ध 918 शिकायतें की गई थीं और केवल चार मामलों में न्यायिक आयोग का यह निष्कर्ष था कि इसमें कार्यवाहियां आरम्भ करने संबंधी तथ्य सामग्री है ।

न्यूयार्क में, 3363 न्यायाधीश और न्यायमूर्ति थे और वर्ष 2000 में औसतन 1400 शिकायतें की गई थीं और 1000 को संक्षिप्त रूप से खारिज कर दिया गया था । वर्ष 2001 में, 1308 शिकायतें प्राप्त हुई थीं और 960 को संक्षिप्त रूप से खारिज कर दिया गया था । वर्ष 2001 में, 11 मामलों में परिनिंदा तथा 15 मामलों में भर्त्सना की गई थी ।

अन्य राज्यों में ऐसे ही आंकड़े हैं । परिसंघीय प्रणाली में भी, कांग्रेस द्वारा 1980 के ऐक्ट का पुनर्विलोकन करने के लिए नियुक्त किए गए नेशनल कमीशन आन जुडिशियल डिसिप्लीन एंड

रिमूवल ने अगस्त, 1993 की अपनी रिपोर्ट में यह कथन किया कि हाउस जुडिशियरी कमेटी का भी, जिसने कि शिकायतें प्राप्त की थीं, यह निष्कर्ष था कि 90 प्रतिशत मामले कतई विचार के भी योग्य नहीं हैं । जज (न्यायाधीश) हेरी टी. एडवर्ड्स, सर्किट जज (जिल्द 87 मिश. एल. आर. 765, पृष्ठ 790) ने यह कथन किया कि किसी सर्किट में प्राप्त कुल शिकायतों में से 88 प्रतिशत तक और कई बार तो 99.5 प्रतिशत शिकायतें तुच्छ शिकायतें होती हैं ।

इस बात का खण्डन नहीं किया जा सकता कि उन ऐसी शिकायतों को अलग करना, जो न्यायिक आदेश के गुणागुण से संबंधित हों, आवश्यक होता है क्योंकि प्रस्तावित न्यायिक परिषद् ज्येष्ठतम न्यायाधीशों से मिलकर बनती है, जिन पर अन्यथा भी अत्यधिक लंबित न्यायिक कार्य का भार होता है । तथापि, यह उपबंध किया जाना अपेक्षित है कि लम्बित या विनिश्चित मामले के संबंध में जहां कदाचार से संबंधित अन्य अभिकथन, जैसे कि रिश्वत आदि, किए गए हों वहां शिकायत ग्रहण की जानी चाहिए ।

विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि 2005 के विधेयक में उन परिवादों की, जो किसी लम्बित या विनिश्चित मामले के गुणागुण से संबंधित हों, छानबीन (स्क्रीनिंग) और छंटाई करने के लिए समर्थ बनाने संबंधी समुचित उपबंध किए जाने चाहिएं उनको छोड़कर, जहां कि शिकायत में, रिश्वत आदि जैसे कदाचार के अभिकथन अंतर्विष्ट हों, वहां ऐसी स्थिति में ऐसी शिकायत की परीक्षा की जानी होगी ।

(XXI) <u>क्या शिकायतकर्ता की पहचान की संरक्षा से जैसे कि विसलबलोयर्स लाज़ में है – संबंधित उपबंध आवश्यक हैं</u> ?

वे तथ्य , जिनके आधार पर उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के 'कदाचार' के अभिकथन सामान्यतया विधिज्ञ (bar) के व्यष्टिक सदस्यों की या व्यष्टिक कक्षीकारों (मुवक्किलों) की या कुछ मामलों में मीडिया के व्यक्तियों की जानकारी में किए जाते हैं । व्यष्टिक वकील विशिष्टतया खुले तौर पर 'शिकायत' करने से डरते हैं क्योंकि वे उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के आसीन न्यायाधीश के विरुद्ध अभिकथन करके अपने कैरियर (वृत्ति) की जोखिम में नहीं डालना चाहते हैं । उनके (वकीलों के) अन्य मामले भी उसी न्यायाधीश के समक्ष होते हैं और न्यायाधीश उन मामलों में, जिनमें कि शिकायतकर्ता-वकील हाजिर हो रहा हो (सुनवाई करने से)

स्वयं इनकार न करे ।

यदि हम न्यायाधीशों के विरुद्ध परिवादों के मामले में की वस्तुस्थिति को मानते हैं तो कुछ और विशेष उपबंध करना आवश्यक प्रतीत होता है । कतिपय परिस्थितियों में कक्षीकार या मीडिया का व्यक्ति या वकील को अवमान की कार्यवाहियों की भी आशंका रहती है । यदि अवमान की कार्यवाहियों में 'सत्यता' विधिमान्य प्रतिरक्षा हो, जैसा कि न्यायालय अवमान अधिनियम,, 1971 का संशोधन करने का विधेयक लम्बित है, तो भी अनेक वकील प्रतिशोध के डर से आसीन सदस्य के विरुद्ध शिकायत करने के प्रति अनिच्छुक होंगे ।

विधि आयोग की लोकहित में प्रकटन तथा इतिलाकर्ता संरक्षा पर 179वीं रिपोर्ट (2001) इस संदर्भ में सुसंगत है ।

अन्य देशों की विधियों में पूर्व निर्णय हैं । 1976 के विस्कोन्सिन ला की धारा 757.93(1)(बी), जिसके द्वारा न्यायिक आयोग का सृजन किया गया है, विस्कोन्सिन स्टेट्यूट्स का एक भाग है (देखिए उपर्युक्त अध्याय 17)। इसमें स्पष्ट रूप से यह कथन किया गया है कि 'ऐसा कोई व्यक्ति, जो संभाव्य कदाचार या स्थायी निःशक्तता के संबंध में आयोग को सूचना प्रदान करता है, यह अनुरोध कर सकता है है कि आयोग "न्यायाधीश या सर्किट को उसकी पहचान प्रकट न करे" और वह ऐसा अनुरोध आयोग के समक्ष याचिका या प्ररूपिक परिवाद फाइल करने से पूर्व कर सकता है ।

ऊपर वर्णित व्यवहार्य समस्याओं को देखते हुए, **विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि 2005 के विधेयक में 'विसलब्लोयर' उपबंध अवश्य ही उपबंधित किया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त, इस बात का भी उपबंध होना चाहिए कि यदि शिकायतकर्ता के विरुद्ध किसी 'प्रतिशोध' की बात न्यायिक परिषद् की जानकारी में लाया जाता है तो न्यायिक परिषद् ऐसी कार्रवाई कर सकती है जो वह लोक हित में करना उचित समझे ।**

(XXII) क्या शिकायतकर्ता की गोपनीयता को अन्वेषण और जांच की प्रक्रिया को परिरक्षित रखने की आवश्यकता है ? क्या 2005 के विधेयक में ऐसा उपबंध अंतर्विष्ट होना चाहिए कि ऐसी गोपनीयता को सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के उपबंधों के होते हुए भी बनाए रखा जाएगा ?

एक महत्वपूर्ण पहलू, जिस पर विचार किए जाने की अपेक्षा है, वह शिकायतकर्ता और अन्य

व्यक्तियों से, जिनके अंतर्गत अन्वेषण और जांच में भाग लेने वाले साक्षी भी हैं, शिकायत, अन्वेषण और पारिणामिक जांच, यदि कोई हो, से संबंधित दस्तावेजों और कार्यवाहियों की पूरी गोपनीयता बनाए रखने की अपेक्षा करने की आवश्यकता का है । ऐसा इस कारण कि ये मामले अतिसंवेदनशील प्रकृति के होते हैं, जिनमें उच्च सांविधानिक कृत्यकारी अंतर्वलित होता है और किसी भी प्रक्रम पर ऐसी सूचना के किसी प्रकटन से न केवल अन्वेषण और जांच का ऋजु संचालन खतरे में पड़ सकता है बल्कि कानूनी और सांविधानिक प्रक्रियाओं के पूरा होने से पूर्व ही ऐसे किसी न्यायाधीश की छवि इतनी खराब हो जाएगी जो कि पुनः ठीक नहीं हो सकती ।

शिकायतकर्ता और उस मामले में भाग लेने वाले अन्य व्यक्तियों के लिए गोपनीयता बनाए रखने की नितांत आवश्यकता है क्योंकि जैसा कि अन्य देशों में अनुभव किया गया है अधिकतर शिकायतें तुच्छ या तंग करने संबंधी शिकायत होने या सद्भावपूर्वक न की गई शिकायत होने या न्यायाधीश के समक्ष के किसी मामले के, जिसमें कि वह संभवतः असफल रहा हो, गुणागुण पर किसी कक्षीकार (मुवक्किल) या वकील की शिकायत होने के कारण न्यायिक परिषद् द्वारा नामंजूर कर दी जाती हैं ।

गोपनीयता के बारे में ऐसे उपबंध केनेडियन जज़ेज़ ऐक्ट, 1985 की धारा 63(5) में भी हैं और केनेडियन उपविधि की धारा 6(2), न्यूजीलैंड जुडिशियल कन्डक्ट कमिश्नर एंड जुडिशियल कन्डक्ट पेनल ऐक्ट, 2004 की धारा 30 और 35; कैलिफोर्निया कान्स्टीट्यूशन के अनुच्छेद 6 की धारा 18(j)(1); विन्सकोन्सिन स्टेट्यूट की धारा 757.93 भी इसी आशय की है ।

इस बात का कोई संदेह नहीं है कि 2005 के विधेयक की धारा 12(1) में न्यायिक परिषद् के समक्ष बंद कमरे में कार्यवाहियां करने संबंधी उपबंध है किन्तु हमारे मतानुसार उक्त उपबंध को उपरवर्णित विभिन्न पहलुओं को देखते हुए व्यापक बनाया जाना चाहिए ।

यह शिकायतकर्ताओं और मामले में अन्य भाग लेने वाले व्यक्तियों की, न्यायिक परिषद् में शिकायत फाइल करने से पूर्व ही या जब परिषद् आचरण के बारे में अन्वेषण या जांच कर रही हो उस समय, शिकायत या दस्तावेजों की अंतर्वस्तुओं का या कार्यवाहियों का मीडिया में या बार एसोसिएशनों में प्रचार करने की प्रवृत्ति को रोकने के लिए है । यदि न्यायिक परिषद् इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि अभिकथन सत्य हैं तो शिकायतकर्ता, प्रत्येक व्यक्ति को, जिसके अंतर्गत साक्षी और वकील भी है,

जो कि अन्वेषण और जांच में भाग लेता है, गोपनीयता बनाए रखनी चाहिए ।

यह उल्लेख करना अनावश्यक है कि यह गोपनीयता न्यायिक परिषद् के सदस्यों को भी बनाए रखनी चाहिए ।

विधि आयोग न्यायिक परिषद् के कार्यकरण में पारदर्शिता और जवाबदेही की आवश्यकता तथा हाल ही में अधिनियमित सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के प्रति संजग है । तथापि, न्यायिक परिषद् द्वारा पालन किए जाने वाले कृत्य की अतिसंवेदनशील प्रकृति को देखते हुए 2005 के विधेयक के निबंधनों के अनुसार राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् के कार्यकरण के संबंध में एक पृथक् सूचना प्रकटन तंत्र के लिए, जो कि सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के कार्यक्षेत्र में नहीं आता है, उपबंध करना महत्वपूर्ण है । यह अवश्य ही ध्यान में रखा जाए कि विधि आयोग यह सुझाव नहीं दे रहा है कि सामान्यतया न्यायिक परिषद् के कार्य से संबंधित या उसके समक्ष के व्यष्टिक मामलों के संबंध में कोई ऐसी सूचना का कोई प्रकटन नहीं होना चाहिए । जहां 'गौण उपाय' अधिरोपित किए जाते हैं, वहां ऐसे गौण उपायों का प्रकाशन किया जा सकता है किन्तु जहां प्राइवेट परिनिंदा या भर्त्सना का आदेश किया जाता है तो शिकायतकर्ता और न्यायाधीश का नाम प्रकट नहीं किया जाएगा । अध्यक्ष/सभापति को रिपोर्ट किए जाने के पश्चात् हटाए जाने की सिफारिश किए जाने की दशा में रिपोर्ट को प्रकाशित किए जाने का विनिश्चय अध्यक्ष/सभापति द्वारा किया जाएगा । वस्तुतः जो सुझाव दिया जा रहा है वह यह है कि इस बारे में विनिश्चय करना कि कितनी सूचना प्रकट की जानी चाहिए और किस प्रक्रम पर प्रकट की जानी चाहिए, न्यायिक परिषद् के विवेक पर ही छोड़ दिया जाना चाहिए ।

अतः विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि 2005 के विधेयक में यह उपबंध होना चाहिए कि प्रत्येक शिकायतकर्ता और प्रत्येक व्यक्ति को, जिसके अंतर्गत कोई साक्षी और वकील भी है, जो अन्वेषण और जांच में भाग लेता है, चाहे वह अपने नाम के बारे में गोपनीयता की ईप्सा करे अथवा नहीं, न्यायिक परिषद् में यह अवश्य ही वचनबंध करना चाहिए कि वह अपना स्वयं का नाम, उस न्यायाधीश का नाम, जिसके विरुद्ध शिकायत की गई है, शिकायत या किसी भी दस्तावेज या कार्यवाही की अंतर्वस्तुएं किसी को भी जिसके अंतर्गत मीडिया भी है, न्यायिक परिषद् के लिखित रूप में पूर्व अनुमोदन के बिना प्रकट नहीं करेगा और यह विनिश्चय करना न्यायिक

परिषद् का कार्य होगा कि शिकायत की अंतर्वस्तुओं को कब और किस सीमा तक जनसाधारण को प्रकट किया जाएगा । यह अवश्य ही स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि यह सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी है । एक बार न्यायिक परिषद् के समक्ष जांच पूरी हो जाने पर, यदि 'गौण उपायों' को शिकायत की प्रक्रिया पर अधिरोपित किया जाता है तो न्यायिक परिषद् द्वारा उन्हें इस शर्त के साथ प्रकाशित किया जा सकता है कि 'प्राइवेट परिनिंदा या भर्त्सना' की दशा में शिकायतकर्ता और संबंधित न्यायाधीश का नाम प्रकाशित नहीं किया जाएगा । हटाए जाने संबंधी सिफारिश की दशा में, चूंकि रिपोर्ट अध्यक्ष/सभापति को प्रस्तुत की जानी होती है, इसलिए यह विनिश्चय अध्यक्ष/सभापति द्वारा किया जाएगा कि ऐसी रिपोर्ट कब प्रकाशित की जा सकती है ।

चूंकि इन उपबंधों से न्यायपालिका की स्वतंत्रता प्रभावित होती है और न्यायिक परिषद् द्वारा, जो गौण उपाय अधिरोपित करती है या संसद् को हटाए जाने संबंधी सिफारिश करती है, कोई अंतिम विनिश्चय किए जाने से पूर्व किसी प्रकार का प्रचार करने से कार्यवाहियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और अन्वेषण तथा जांच का सामना कर रहे न्यायाधीश की छवि भी खराब होगी, इसलिए **विधि आयोग यह और सिफारिश करता है कि 2005 के विधेयक की धारा 19 का यह उपबंध करने के लिए संशोधन किया जाए कि ऊपरवर्णित गोपनीयता के उपबंधों का अतिक्रमण एक अपराध होगा और यह कि ऐसे अपराध के लिए दंडित करने की प्रक्रिया वह होगी जो 2005 के विधेयक की धारा 20 के अधीन विहित की जाए ।**

(XXIII) क्या गौण उपायों या हटाए जाने का अधिनिर्णय दिए जाने संबंधी आदेशों के विरुद्ध न्यायिक पुनर्विलोकन के लिए उच्चतम न्यायालय को अपील किए जाने का उपबंध किया जाना चाहिए ?

(1) 2005 का विधेयक (संसद् के) सदनों द्वारा 'हटाए जाने' का, जो किसी निर्देश या शिकायत के अनुसरण में की गई जांच के परिणामस्वरूप हो, राष्ट्रपति के समक्ष समावेदन रखे जाने के बारे में है ।

उच्चतम न्यायालय ने **श्रीमती सरोजिनी रामस्वामी** बनाम **भारत संघ** [1992(4) एस. सी. सी. 506] वाले मामले में यह अधिकथित किया है कि न्यायाधीशों की समिति द्वारा 'दोषिता' का निष्कर्ष

निकाले जाने के पश्चात् भी वह निष्कर्ष संसद् के सदनों द्वारा रिपोर्ट पर विचार किए जाने तथा सदनों द्वारा निष्कर्षों को स्वीकार किए जाने तक 'अपूर्ण' रहता है । संसद् रिपोर्ट को स्वीकार भी कर सकती है या स्वीकार नहीं भी कर सकती है । उसे न्यायाधीश को व्यक्तिगत रूप से या काउंसेल के माध्यम् से सुनवाई का अवसर भी प्रदान करना चाहिए । निस्संदेह संसद् के लिए कारण बताना आवश्यक नहीं है । उच्चतम न्यायालय के अनुसार, रिपोर्ट को तब तक न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती जब तक कि हटाए जाने संबंधी अंतिम आदेश पारित न कर दिया जाए । वस्तुतः, न्यायाधीश रिपोर्ट की प्रति पाने का हकदार नहीं होता जब तक कि न्यायाधीशों की समिति द्वारा वह रिपोर्ट अध्यक्ष या सभापति को प्रस्तुत न कर दी जाए । उच्चतम न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि जांच समिति को अनुच्छेद 136 के प्रयोजनार्थ 'अधिकरण' नहीं माना जा सकता ।

उच्चतम न्यायालय ने 'राजनैतिक प्रश्न' के सिद्धांत को नामंजूर कर दिया क्योंकि यू. एस. में महाभियोग के, जो कि पूर्णतया एक 'राजनैतिक प्रश्न' है, मामले के विपरीत भारत में स्थिति भिन्न है – क्योंकि प्रक्रिया 'समिति' के समक्ष भागतः 'न्यायिक' होती है और तत्पश्चात् संसद् के समक्ष 'राजनैतिक' हो जाती है । अतः, यू. एस. की सुप्रीम कोर्ट द्वारा पावेल [(1969)395 यू. एस. 486] के मामले में अधिकथित सिद्धांत यहां पर लागू नहीं होते ।

यू. एस. सुप्रीम कोर्ट द्वारा निक्सन बनाम यू. एस. [(1993) 506 यू. एस. 224] वाले मामले में दिए गए निर्णय में यह कथन है कि यू. एस. में महाभियोग की कार्यवाही पूर्णतया राजनैतिक कार्यवाही है और उसे यू. एस. की सुप्रीम कोर्ट में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता ।

तथापि, यू. एस. में जुडिशियल कौंसिलों (न्यायिक परिषदों) द्वारा पारित अंतिम आदेशों के मामले में प्रश्न यह उठता है कि क्या वह आदेश 'न्यायिक आदेश' है और क्या उसे न्यायालयों में प्रश्नगत किया जा सकता है । ऐसा पहला मामला शेंडलर बनाम जुडिशियल कौंसिल [(1970) 398 यू. एस. 74] का था । उस मामले में जुडिशियल कौंसिल ने नए मामलों को सूचीबद्ध न करने और उन मामलों को, जो उसकी सूची में थे, हटाने का दंडादेश अधिरोपित किया था । जब उस आदेश को न्यायालयों में चुनौती दी गई और यह वह मामला अंततः यू. एस. की सुप्रीम कोर्ट के समक्ष आया तो बहुमत द्वारा यह विनिश्चय नहीं किया गया था कि क्या कौंसिल का आदेश 'न्यायिक' था अथवा नहीं । तथापि न्यायाधीश हरलेन ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह एक न्यायिक आदेश था ।

न्यायाधीश डगलस और न्यायाधीश ब्लैक ने दूसरे प्रश्न पर विसम्मति प्रकट की अर्थात् गौण उपाय अधिरोपित करने संबंधी कोई विधि नहीं बनाई जा सकती ।

अनुमानतः, न्यायाधीश हरलेन की राय के आधार पर पश्चात्वर्ती प्रत्येक मामले में, जहां कि जुडिशियल कौंसिल द्वारा गौण दंड अधिनिर्णीत किए गए थे, न्यायाधीश ने उसे डिस्ट्रिक्ट कोर्ट में चुनौती दी और अपीलें सर्किट अपील न्यायालयों तक की गईं । शेंडलर वाले मामले से भिन्न कोई भी मामला इस विनिश्चय के लिए यू. एस. सुप्रीम कोर्ट के समक्ष प्रस्तुत किया गया प्रतीत नहीं होता कि कौंसिल का आदेश न्यायिक है अथवा नहीं । मैकब्राइड वाले मामले में, कोर्ट आफ अपील के विनिश्चय की सुप्रीम कोर्ट द्वारा सरशियोरेरी (उत्प्रेषण) प्रदान किए जाने से इनकार करके पुष्टि की गई थी ।

किन्तु, जहां तक हमारे देश में की विधि का संबंध है, इस बात का कोई संदेह नहीं है क्योंकि न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि राष्ट्रपति द्वारा हटाए जाने संबंधी पारित आदेश को भी उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है ।
सुतराम, यदि गौण उपायों का न्यायिक परिषद् द्वारा आदेश किया जाता है तो उन्हें न्यायिक पुनर्विलोकन की कार्यवाहियों में स्पष्ट रूप से चुनौती दी जा सकती है क्योंकि हटाए जाने के मामले के, जिसमें कि न्यायिक परिषद् का आदेश केवल संसद् को सिफारिश किए जाने की प्रकृति का होता है, विपरीत वह आदेश अंतिम होता है ।

ऐसे किसी उपचार का, जिसका कि न्यायाधीश द्वारा अवलम्ब लिया जाता है, न्यायनिर्णयन करने के लिए समुचित न्यायालय स्पष्ट रूप से उच्चतम न्यायालय होता है ।

निस्संदेह, एल. चन्द्रकुमार बनाम भारत संघ [1997(3) एस. सी. सी. 261] वाले मामले के पश्चात् राष्ट्रपति के 'हटाए जाने' संबंधी आदेश का अथवा न्यायिक परिषद् के गौण उपाय अधिरोपित करने संबंधी आदेश का संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष न्यायिक पुनर्विलोकन किया जा सकता है, जब तक कि उच्चतम न्यायालय के समक्ष कोई अन्य प्रभावी आनुकल्पिक उपचार का उपबंध न किया जाए, जिससे कि उच्च न्यायालय अपने विवेकानुसार हस्तक्षेप करने से इनकार कर सकता है और पक्षकारों को उच्चतम न्यायालय के समक्ष आनुकल्पिक उपचार प्राप्त करने का निदेश दे सकता है ।

अतः, हमारे मतानुसार, यह आवश्यक है कि 2005 के विधेयक में उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील करने संबंधी एक विनिर्दिष्ट उपबंध अंतर्विष्ट होना चाहिए ।

(2)(i) ऐसा भी मत है कि सभी न्यायिक उपचारों को वर्जित कर दिया जाना चाहिए जिससे कि वह मामला (हटाए जाने के मामले में) राष्ट्रपति द्वारा अथवा (गौण उपायों के मामले में) न्यायिक परिषद् द्वारा आदेश पारित कर दिए जाने के पश्चात् समाप्त हो जाए ।

किन्तु, हमारा यह दृढ़ मत है कि न्यायिक पुनर्विलोकन का उपचार समाप्त नहीं किया जा सकता और वस्तुतः, संविधान के अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 227 के अधीन 'न्यायिक पुनर्विलोकन', एल. चन्द्र कुमार वाले मामले के अनुसार, संविधान के मूलभूत ढांचे का भाग है और उसे किसी सांविधानिक संशोधन द्वारा भी अलग नहीं किया जा सकता है ।

(ii) उसके अतिरिक्त, अंतरराष्ट्रीय परंपराओं और कन्वेन्शनों में न्यायालय में अपील करना अनुध्यात है ।

यू. एन. बेसिक प्रिंसिपल्स आफ जुडिशियल इंडिपेंडेंस, 1995 के अनुच्छेद 20 में यह कथन है कि न्यायाधीशों की अनुशासनिक कार्यवाहियों का, उनके निलंबन और पद से हटाए जाने का स्वतंत्र पुनर्विलोकन किया जाना चाहिए; साइराकुसा प्रिंसिपल ऑफ इंटरनेशनल कमीशन ऑफ जुरिस्ट्स, 1981 के अनुच्छेद 15, मोन्ट्रियल रेजोल्यूशन ऑन दि वर्ल्ड कांफ्रेंस ऑन इंडिपेंडेंस ऑफ जज़ेज़, 1983 के पैरा 2.37, डा. एल. एम. सिंघवी की फाइनल रिपोर्ट टु यू. एन. (1985) के अनुच्छेद 20, लुसाका सेमिनार, 1986 के अनुच्छेद 45 में स्वतंत्र न्यायिक पुनर्विलोकन का उपबंध करने की आवश्यकता को रेखांकित किया है ।

(iii) यू. एस. के अनेक राज्यों में, राज्य न्यायालयों के न्यायाधीशों के विरुद्ध कार्रवाई के बारे में न्यायिक उपचार का उपबंध है । उदाहरणार्थ, कैलिफोर्निया में, संविधान में अनुच्छेद 6 धारा 18 के खंड (एफ) में यह उपबंधित है कि जुडिशियल परफोर्मेंस कमीशन का किसी न्यायाधीश की भर्त्सना या परिनिंदा करने या सुप्रीम कोर्ट के किसी न्यायाधीश को पद से हटाए जाने या सेवानिवृत्त करने के विनिश्चय का 7 कोर्ट ऑफ अपील जज़ेज़ (अपील न्यायालय के 7 न्यायाधीशों) के अधिकरण द्वारा पुनर्विलोकन किया जाएगा । खंड (जी) में यह उपबंधित है कि कोई भी न्यायालय, उच्चतम न्यायालय के सिवाय, किसी कार्रवाई को ग्रहण नहीं करेगा ।

इदाहो में, जुडिशियल कौंसिल की पद से हटाए जाने, अनुशासन या सेवानिवृत्ति संबंधी सिफारिशों को सुप्रीम कोर्ट के समक्ष रखा जाना होता है । इडाहो जुडिशियल कौंसिल रूल्स के नियम 44 में पुनर्विलोकन का उपबंध किया गया है ।

कनेक्टिकट में, स्टेट्यूट्स के अध्याय 872(ए) की धारा 51 के उपखंड 51(आर) के अधीन न्यायाधीश जुडिशियल कौंसिल के विनिश्चय के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट में अपील कर सकता है ।

टेक्सास में, रूल्स के नियम 10 के अधीन, सात न्यायाधीशों से मिलकर बनने वाला एक पुनर्विलोकन अधिकरण होता है जिनमें से छह न्यायाधीशों की हटाए जाने के बारे में सहमति अवश्य होनी चाहिए और नियम 13 के अधीन हटाए जाने के विरुद्ध अपील सुप्रीम कोर्ट में होती है ।

जर्मनी में, हटाए जाने का विनिश्चय फेडरल कान्स्टीट्यूशन कोर्ट के दो-तिहाई सदस्यों (न्यायाधीशों) द्वारा लिया जाना होता है और ऐसी कोई समस्या नहीं है । स्वीडन में, हटाए जाने संबंधी आदेश अंततः स्टेट सुप्रीम कोर्ट द्वारा ही पारित किया जाता है । ऐसी ही स्थिति यू. एस. के कुछ राज्यों में भी है । यहां पर भी और अपील करने की आवश्यकता नहीं होती है । औपनिवेशिक देशों में हटाए जाने संबंधी आदेश राज्य प्रमुख (हैड ऑफ स्टेट) द्वारा प्रिवी कौंसिल से परामर्श करने के पश्चात् पारित किया जाता है ।

इस सांविधानिक स्थिति को अनुच्छेद 226, 227 के अधीन न्यायिक पुनर्विलोकन, एल. चन्द्र कुमार वाले मामले के अनुसार, संविधान के मूलभूत ढांचे का भाग है और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अनेक देशों में अपील को अनुज्ञात किया गया है और अंतरराष्ट्रीय परंपराओं में अपील की अपेक्षा की गई है, हमारा यह मत है कि हटाए जाने के आदेश या न्यायिक परिषद् के अंतिम आदेश के विरुद्ध अपील करने का उपबंध न करना असांविधानिक होगा । यहां तक कि साधारण लोक सेवक को भी हटाए जाने के आदेश के विरुद्ध न्यायालय की शरण में जाने (अपील करने) का अधिकार प्राप्त है । अतः, उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के मामले में, चाहे वह आदेश राष्ट्रपति द्वारा पारित हटाए जाने संबंधी आदेश हो या वह लघु दंडादेश अधिरोपित करने संबंधी आदेश हो आगे न्यायिक अपील करने से अपवर्जित किया जाना अनुज्ञेय नहीं है ।

भारत के उच्चतम न्यायालय ने न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी वाले मामले में (देखिए अध्याय 6) यह मत व्यक्त किया था कि जांच समिति अनुच्छेद 136 के प्रयोजनार्थ कोई अधिकरण नहीं होता ।

प्रभावित न्यायाधीश अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष या अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय के समक्ष याचिका कर सकता है । किन्तु न्यायिक परिषद् की संरचना को जिसमें कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, उच्चतम न्यायालय के दो ज्येष्ठ न्यायाधीश और उच्च न्यायालयों के दो ज्येष्ठ मुख्य न्यायमूर्ति होते हैं तथा रिट अधिकारिता के अंतर्गत न्यायिक पुनर्विलोकन की वर्तमान सीमित परिधि को देखते हुए रिट संबंधी उपचार अत्यधिक उपयुक्त नहीं हो सकता । इसके अतिरिक्त, उस संभावित विलम्ब को, जो कि आरम्भतः उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल किए जाने से उस मामले में हो सकता है, हिसाब में लिया जाना आवश्यक है ।

उपर्युक्त सभी कारकों को देखते हुए, **विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि किसी न्यायाधीश को :**

(1) **राष्ट्रपति द्वारा पारित हटाए जाने संबंधी आदेश के विरुद्ध, चाहे कार्यवाहियां किसी शिकायत पर आरम्भ की गई हों या निर्देश पर;**

(2) **परिषद् द्वारा किसी शिकायत के आधार पर 'गौण उपायों' के बारे में पारित अन्य अंतिम आदेशों के विरुद्ध**

उच्चतम न्यायालय में अपील करने का उपबंध करने के लिए 2005 के विधेयक का संशोधन किया जाए ।

विधि आयोग यह और सुझाव देता है कि ऐसी अपील की सुनवाई अधिमानतः उच्चतम न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की, जो कि (उन न्यायाधीशों के) न्यायिक परिषद् के सदस्य हों ठीक बाद ज्येष्ठतम हो, न्यायपीठ द्वारा की जाने चाहिए, तथापि यह ऐसा मामला है जिसका कि 2005 के विधेयक में उपबंध किया जाना आवश्यक नहीं है ।

तथापि, यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि उच्चतम न्यायालय में अपील करने के अधिकार संबंधी उपबंध केवल उस न्यायाधीश के लिए हो जो उसके विरुद्ध हटाए जाने संबंधी पारित आदेश से व्यथित हो या जहां वह न्यायिक परिषद् का 'गौण उपाय' अधिरोपित करने संबंधी अंतिम आदेश हो । जहां तक शिकायतकर्ता का संबंध है अपील के किसी अधिकार का उपबंध करना आवश्यक नहीं है और यदि वह मामले को आगे ले जाना चाहता है तो वह संविधान के अनुच्छेद 32 या अनुच्छेद 226 के अधीन के उपचार का आश्रय ले सकता है ।

(XXIV) न्यायिक परिषद् और संसद् के सदनों के समक्ष 'सबूत का स्तर' क्या होता है ? क्या इसमें

'अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता' है अथवा यह 'युक्तियुक्त संदेह से परे सबूत' है ?

'आपराधिककल्प' जांच में स्तर क्या हैं ?

न्यायमूर्ति सावंत समिति ने अनुच्छेद 124(4) [सहपठित न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968] के अधीन किसी जांच में 'सबूत के स्तर' के प्रश्न पर विचार करते हुए अध्यक्ष/सभापति द्वारा समिति को किए गए निर्देश से संबंधित मामलों में इस प्रश्न के बारे में बहुत ही गहराई से अध्ययन किया । समिति द्वारा यह मत व्यक्त किया गया कि अध्यक्ष/सभापति द्वारा नियुक्त तीन-सदस्यीय समिति के समक्ष की जांच 'आपराधिककल्प' प्रकृति की है और यह कि सबूत अवश्य ही 'युक्तियुक्त संदेह से परे' होना चाहिए । समिति ने प्रिवी कौंसिल द्वारा जारी किए गए ज्ञापन के प्रति भी निर्देश किया जिसमें कि सबूत के ऐसे ही स्तर का उपबंध किया गया था । यू. एस. में, 'स्पष्ट, समाधानप्रद और विश्वसनीय साक्ष्य' का उच्चतर स्तर होना आवश्यक होता है, जिस पर न्यायमूर्ति सावंत ने टिप्पणी की कि इसका अनेक रूपों में अर्थ लगाया जा सकता है । न्यायमूर्ति सावंत समिति ने शिकागो-केन्ट ला रिव्यू में फ्लोरिडा के सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस (मुख्य न्यायमूर्ति) बेन एफ. ओवर्टन द्वारा लिखित इस आशय के लेख के प्रति भी निर्देश किया । (इस पहलू पर अध्याय 6 में चर्चा की गई है)।

जहां तक 'महाभियोग' की कार्यवाहियों का संबंध है, प्रो. शिमोन शेट्रीट ने बर्जर, 'इम्पीचमेंट फार हाई क्राइम्स एंड मिसडेमीनर्स [(1971) 44 एस. केलिफ. एल रिव्यू 395, पृष्ठ 400-415)] तथा बर्जर आन इम्पीचमेंट एंड गुड बिहेवियर [(1970) 79 लार्ड्स ला जर्नल 1475 (1518,1519)] को उद्धृत करते हुए यह कथन किया कि 'महाभियोग' की कार्यवाहियां 'दांडिक' प्रकृति की होती हैं ।

आस्ट्रेलिया में, जस्टिस मर्फी के मामले में, सेकेंड सेनेट कमेटी को दो भिन्न-भिन्न स्तरों – (i) अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता, (ii) युक्तियुक्त संदेह से परे सबूत के आधार पर निष्कर्ष देने का निदेश दिया गया था । न्यायमूर्ति मर्फी को दांडिक विचारण में एक अभियुक्त के अधिकार दिए गए थे, सिवाय इसके कि उन्हें साक्ष्य देने के लिए बुलाया नहीं जाना था बल्कि 'आमंत्रित' किया जाना था । सभी साक्ष्य उनकी उपस्थिति में या उनके काउंसेल की उपस्थिति में अभिलिखित किया जाना था । यदि जस्टिस मर्फी साक्ष्य देने का विकल्प अपनाते हैं तो उनकी प्रतिपरीक्षा की जा सकती है ।

इस संदर्भ में सभी प्रकार की आपराधिककल्प कार्यवाहियों को लागू होने वाले सबूत के सामान्य स्तर के प्रति निर्देश करना आवश्यक है क्योंकि न्यायिक परिषद् के समक्ष हटाए जाने का

समावेदन करने संबंधी कार्यवाहियां और अन्य कार्यवाहियां आपराधिककल्प प्रक्रिया की प्रकृति की कार्यवाहियां होती हैं ।

जहां तक 'आपराधिककल्प' कार्यवाहियों का संबंध है, उच्चतम न्यायालय ने अवमान संबंधी मामलों पर विचार करते हुए विजय कुमार महंती बनाम जदु : 2003 (1) एस. सी. सी. 614 वाले मामले में मृत्युंजय दास बनाम सैयद हसीबुर रहमान : 2001(3) एस. सी. सी. 739 वाले मामले का अवलम्ब लेते हुए यह मत व्यक्त किया कि –

> "हमें इस दलील को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है कि अपीलार्थी के विरुद्ध किए गए पक्षकथन को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित किया जाना अपेक्षित होता है । अधिनियम के अधीन अवमान संबंधी कार्यवाहियां आपराधिककल्प कार्यवाहियां होती हैं । सबूत का स्तर वह अपेक्षित होता है जो कि दांडिक कार्यवाहियों में का होता है । अतः आरोप को युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध किया जाना चाहिए । "

अरुंधति राय वाले मामले में : ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 1375, उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि आपराधिककल्प कार्यवाहियों में निर्दोषिता की उपधारणा प्रवर्तित होती है ।

निर्वाचन अर्जियों के मामले में, जिनमें कि भ्रष्ट आचरण अपनाए जाने के अभिकथन किए जाते हैं, उच्चतम न्यायालय ने बोरगराम देऊरी बनाम प्रेमाधार बोरा : 2004 (2) एस. सी. सी. 227 वाले मामले में यह कथन किया कि –

> "भ्रष्ट आचरण के अभिकथनों को गंभीरता से लिया जाता है । उन्हें आपराधिककल्प प्रकृति का माना जाता है । भ्रष्ट आचरण को साबित करने के लिए अपेक्षित सबूत का स्तर हर प्रकार से दांडिक विचारण में प्रत्याशित (अपेक्षित) स्तर के समीकृत होता है । तथापि, निर्वाचन अर्जी और दांडिक विचारण में अंतर यह है कि अभियुक्त को मौन रहने की स्वतंत्रता होती है जबकि निर्वाचन अर्जी के विचारण के दौरान निर्वाचित अभ्यर्थी को न्यायालय के समक्ष अपना पक्षकथन रखना होता है और न्यायालय का यह समाधान करना होता है कि उसने अर्जी में यथा अभिकथित भ्रष्ट आचरण नहीं किया था । यद्यपि भार निर्वाचन अर्जीदार पर होता है, तथापि उसका उन्मोचन उसी दशा में हो सकता है जब वह निर्वाचित अभ्यर्थी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को साबित करने के लिए तर्कपूर्ण और

विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत करता है । उक्त प्रयोजनार्थ, आरोप युक्तियुक्त संदेह से परे साबित किए जाने चाहिए न कि केवल अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता द्वारा, जैसा कि सिविल कार्रवाई में होता है । (गजानन कृष्णजी बापत बनाम दत्ताजी राघोबाजी मेघे : 1995 (5) एस. सी. सी. 347; सुरिन्द्र सिंह बनाम हरदीलाल सिंह : 1985(1) एस. सी. सी. 91; आर. पी. मोइदुत्ति बनाम पी.टी. कुंजु मोहम्मद : 2001 (1) एस. सी. सी. 481 और मर्सिकुट्टी अम्मा बनाम कदावूर शिवदासन : 2004 (2) एस. सी. सी. 217 वाले मामले देखिए)"

(अधोरेखांकित पर बल दिया गया)

उपर्युक्त निर्णयों से यह स्पष्ट होता है कि आपराधिककल्प कार्यवाही में, जिसमें कि सदनों द्वारा राष्ट्रपति के समक्ष समावेदन करना पड़ता है, सबूत 'युक्तियुक्त संदेह से परे' सबूत होना चाहिए और उस सबूत में 'अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता' नहीं होनी चाहिए । किन्तु , न्यायाधीश को मौन रहने का अधिकार प्राप्त नहीं है, अतः विधि और नियमों में यह विधिसम्मत रूप से अपेक्षित हो कि न्यायाधीश अपनी प्रतिरक्षा फाइल करे । ऐसी विधि से संविधान के अनुच्छेद 20 के खंड (3) का उल्लंघन नहीं होगा । यदि वह मौन रहने या एकपक्षीय रहने का विकल्प अपनाता है तो वह ऐसा अपने स्वयं के जोखिम पर करेगा । ऐसा न्यायिक परिषद् के समक्ष की शिकायत/निर्देश की कार्यवाहियों के संबंध में है, जहां हटाए जाने की सिफारिश की जाती है ।

अगला प्रश्न, जहां तक गौण उपायों का संबंध है, यह है कि क्या कदाचार, जिसमें 'हटाया जाना' आवश्यक नहीं होता है, का सबूत अधिसंभाव्यताओं की प्रबलता होने पर दिया जा सकता है ?

जहां गंभीर अभिकथन हों, जिनमें कि हटाए जाने की सिफारिश किए जाने की संभावना हो, वहां इस बात की कोई कठिनाई नहीं होती है कि सबूत का स्तर 'युक्तियुक्त संदेह से परे सबूत' होना चाहिए । किन्तु ऐसा भी कोई मामला हो सकता है जहां कि अनेक अभिकथन हों, उनमें से कुछ गंभीर हों और कुछ उतने गंभीर न हों और उस दशा में प्रतिरक्षा काउंसेल यह जानना चाहेगा कि सबूत का स्तर 'युक्तियुक्त संदेह से परे सबूत' है अथवा नहीं । यदि यह सबूत युक्तियुक्त संदेह से परे है, तो उसका प्रयास युक्तियुक्त संदेह पैदा करने का होगा और उसी आधार पर वह प्रतिपरीक्षा करेगा । निस्संदेह, आपराधिककल्प मामले में, अभियुक्त न्यायाधीश को मौन रहने का कोई अधिकार नहीं है अपितु उससे तथ्यों के प्रति अपना दृष्टिकोण रखने की अपेक्षा की जा सकती

है । फिर भी प्रतिरक्षा काउंसेल, प्रतिपरीक्षा में, युक्तियुक्त संदेह पैदा करने पर ही ध्यान केन्द्रित करता है । अतः, विधि को, इस बारे में कि सबूत का स्तर क्या होना चाहिए, अस्पष्ट नहीं छोड़ा जा सकता ।

पुनः, ऐसे अनेक अभिकथन हो सकते हैं, जिनमें से कुछ गंभीर होते हैं और कुछ गंभीर नहीं होते हैं । यदि भिन्न-भिन्न आरोपों के लिए भिन्न-भिन्न स्तर अपनाए जाते हैं तो प्रतिपरीक्षा करने वाले काउंसेल के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने में व्यवहार्य कठिनाइयां आ सकती हैं । यहां तक कि मुख्य परीक्षा के लिए भी समस्याएं हो सकती हैं ।

यहां तक कि नियमित दांडिक कार्यवाहियों में भी गंभीर अपराध भी होते हैं और छोटे अपराध भी होते हैं । किन्तु, सबूत का स्तर अर्थात् 'युक्तियुक्त संदेह से परे सबूत' उन सभी के लिए समान होता है ।

इसके अतिरिक्त, संविधान में 'कदाचार' शब्द का प्रयोग किया गया है । हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि विभिन्न प्रकार के कदाचार हो सकते हैं, कुछ गंभीर और कुछ उतने गंभीर नहीं । यह दलील दी जा सकती है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के कदाचार के लिए भिन्न-भिन्न स्तर नियत करना अनुज्ञेय नहीं है । फिर भी, ऐसी भी अस्पष्ट स्थिति आ सकती है जहां कि इस बात का विनिश्चय करना संभव न हो पाए कि शिकायत में किए गए अभिकथन गंभीर हैं अथवा उतने गंभीर नहीं हैं । **विधि आयोग का यह मत है कि उन सभी प्रकार के आरोपों के बारे में, जो न्यायिक परिषद् के समक्ष आएं, 'सबूत' सभी मामलों में 'युक्तियुक्त संदेह से परे सबूत' होना चाहिए ।**

अतः, **विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि धारा 16(1)(क) और (ख) में 'या तो पूर्णतः या भागतः सिद्ध' शब्दों के स्थान पर 'पूर्णतः या भागतः साबित' शब्द रखे जाएं और साथ ही यह स्पष्टीकरण हो कि 'साबित' से 'युक्तियुक्त संदेह से परे साबित' अभिप्रेत है ।**

(धारा 16 में किए जाने वाले और संशोधनों पर चर्चा इसमें इसके नीचे पृथक् रूप से की गई है)

(XXV) यदि न्यायिक परिषद् के सदस्यों में से एक सदस्य की भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में पदोन्नति हो जाती है या उसकी उच्चतम न्यायालय में पदोन्नति कर दी जाती है, या जहां कोई रिक्ति प्राकृतिक कारणों से हो जाती है या न्यायाधीश की सेवाएं किसी अन्य कारणवश उपलब्ध नहीं होती हैं, तो उस दशा में प्रक्रिया क्या होनी चाहिए, जिससे कि यह स्पष्ट किया जा सके कि नए सिरे से कार्यवाहियां अनुध्यात नहीं की गई हैं ?

यू. एस. परिसंघीय प्रणाली में, जुडिशियल इम्प्रूवमेंट ऐक्ट, 2002 में धारा 353 (बी) में, जहां तक अन्वेषण समिति (Investigation Committee) का संबंध है, ऐसी अत्यावश्कताओं को सम्मिलित करने के लिए विनिर्दिष्ट उपबंध है । यह धारा इस प्रकार है :-

> "धारा 353 (बी) : न्यायाधीश की प्रास्थिति में परिवर्तन या उसकी मृत्यु : उपधारा (ए) के अधीन किसी विशेष समिति में नियुक्त किया गया कोई न्यायाधीश ज्येष्ठ न्यायाधीश बनने के पश्चात् और सर्किट के न्यायाधीश की दशा में, धारा 45 की उपधारा (ए)(3) या उपधारा (सी) के अधीन मुख्य न्यायाधीश के रूप में उसकी पदावधि समाप्त होने के पश्चात् वह उस समिति में कार्य करना जारी रख सकेगा । यदि उपधारा (ए) के अधीन किसी समिति में नियुक्त न्यायाधीश की मृत्यु हो जाती है या वह धारा 371(ए) के अधीन उस पद से सेवानिवृत्त हो जाता है, तो सर्किट का मुख्य न्यायाधीश, यथास्थिति, अन्य सर्किट या जिला न्यायाधीश को उस समिति में नियुक्त कर सकेगा ।"

विधि आयोग का यह मत है कि यद्यपि न्यायिक परिषद् के समक्ष की कार्यवाहियां आपराधिककल्प होती हैं, तथापि जहां न्यायिक परिषद् के सदस्यों में से किसी एक की, जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश है, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में पदोन्नति हो जाती है या जहां उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की, जो (न्यायिक परिषद् का) एक सदस्य है, भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में पदोन्नति हो जाती है या प्राकृतिक कारणों से अथवा सेवानिवृत्ति या इनकार किए जाने के कारण से कोई रिक्ति हो जाती है या जहां कोई सदस्य रुग्णता के कारण या अन्य कारणों से उपलब्ध नहीं होता है और वह रिक्ति अन्यथा भर दी जाती हो, वहां उन्हें (कार्यवाहियों को) नए सिरे से आरंभ करना आवश्यक नहीं होता है । भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को उस रिक्ति को भरकर समुचित व्यवस्था करने का हकदार बनाया जाना चाहिए और कार्यवाहियों को नए सिरे से आरंभ किए जाने की आवश्यकता के बिना उसी प्रक्रम से जारी रखा जाना चाहिए जिस प्रक्रम पर वे बंद हो गई थीं ।

तदनुसार, विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि उपर्युक्त रूप में तथा इस और स्पष्टीकरण के साथ कि ऊपरवर्णित अत्यावश्यकताओं की दशा में कार्यवाहियों को नए सिरे से आरंभ करना आवश्यक नहीं है, एक उपबंध 2005 के विधेयक में सम्मिलित किया जाना चाहिए ।

(XXVI) यदि वह न्यायाधीश, जिसके विरुद्ध अन्वेषण या जांच प्रारंभ की जाती है, न्यायिक परिषद् के समक्ष कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर लेता है तो उस दशा में क्या होगा ?

कुछ मामलों में ऐसी भी स्थिति उद्भूत हो सकती है जहां कोई न्यायाधीश, जिसके विरुद्ध अन्वेषण या जांच चल रही हो, अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर ले और यह दावा करे कि कार्यवाहियों को अब आगे जारी नहीं रखा जा सकता ।

लोक सेवकों की दशा में, निस्संदेह विधि यह है कि यदि लोक सेवक कार्यवाहियों के समाप्त होने से पूर्व ही सेवानिवृत्त हो जाता है तो अनुशासनिक जांच का उपशमन हो जाता है अथवा उसका परित्याग कर दिया जाना होता है । यहां सिद्धांत यह है कि जब एक बार स्वामी और सेवक का संबंध खत्म हो जाता है तो उसके पश्चात् दंड अधिरोपित करने की कोई गुंजाइश नहीं रहती । इस समस्या से पार पाने के लिए अनेक सेवा नियमों में यह उपबंध किया गया है कि कर्मचारी की सेवा अनुशासनिक कार्यवाहियों के पूरा होने तक बनाए रखी जा सकती है जिससे कि (उस पर) दंड अधिनिर्णीत किया जा सके । कुछ अन्य मामलों में, जहां किसी लोक सेवक को सेवानिवृत्त होने की अनुज्ञा प्रदान की जाती है, वहां नियमों में यह उपबंधित है कि पहले से आरंभ की गई अनुशासनिक कार्यवाहियां पेंशन में युक्तियुक्त सीमा तक कटौती अधिरोपित करने के प्रयोजनार्थ जारी रखी जाएंगी ।

जहां तक उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों का संबंध है, वे सांविधानिक पद धारण किए हुए होते हैं और ऐसा मत है कि साधारण लोक सेवकों को लागू होने वाले कठोर सिद्धांत सामान्यतया लागू नहीं होते । (हम ऐसा इस कारण कह रहे हैं क्योंकि न्यायमूर्ति वीरस्वामी के मामले में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 लागू किया गया है) । तकनीकियों की बात छोड़ भी दें, तो भी प्रश्न यह उठता है कि यदि 'कदाचार' सेवानिवृत्ति के बहुत ही समीप की तारीख को किया गया है और कार्यवाहियों के अधिवर्षिता की तारीख के पूर्व पूरा होने की संभावना नहीं है तो कानून में यह अवश्य ही उपबंध किया जाना चाहिए कि कार्यवाहियां उस कारण से व्यपगत नहीं होगी बल्कि वे कतिपय गौण उपायों को अधिरोपित करने के प्रयोजनार्थ जारी रखी जा सकेंगी ।

निस्संदेह, ऐसी स्थितियों में, यद्यपि 'हटाए जाने' या सेवानिवृत्ति का अनुरोध किए जाने या

न्यायिक कार्य से संबंधित मामलों को सूचीबद्ध न किए जाने का कोई प्रश्न नहीं होता, तथापि न्यायिक परिषद् के लिए परिनिंदा/भर्त्सना (सार्वजनिक या प्राइवेट) करना फिर भी अवश्य ही अनुज्ञेय होना चाहिए ।

विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि 2005 के विधेयक में यह स्पष्ट करने के लिए ऐसा उपबंध सम्मिलित किया जाना चाहिए कि जहां उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश, जिसका न्यायिक परिषद् के समक्ष अन्वेषण या जांच चल रही है, उक्त कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर लेता है वहां गौण उपाय, जैसे कि परिनिंदा या भर्त्सना, सार्वजनिक या प्राइवेट, अधिरोपित करने के प्रयोजनार्थ कार्यवाहियों को जारी रखा जा सकता है ।

(XXVII) जहां न्यायिक परिषद् द्वारा हटाए जाने की सिफारिश की जाती है, वहां उसे क्या यह भी सिफारिश करनी चाहिए कि यदि सदनों द्वारा सिफारिश स्वीकार कर ली जाती है और राष्ट्रपति द्वारा हटाए जाने संबंधी आदेश पारित किया जाता है तो उस न्यायाधीश को कोई लोक या न्यायिक, न्यायिककल्प पद धारण करने से वर्जित कर दिया जाना चाहिए और यह कि क्या उसे चेम्बर (विधि) - व्यवसाय करने अथवा माध्यस्थम् की कार्यवाहियों में मध्यस्थ बनने से वर्जित कर दिया जाना चाहिए ?

हमने यह देखा है कि यू. एस. के राज्यों में (देखिए उपुर्यक्त अध्याय 17), सुसंगत कानूनों में यह विनिर्दिष्ट रूप से उपबंध किया गया है कि जहां न्यायिक परिषद् हटाए जाने का आदेश कर रही हो या हटाए जाने की सिफारिश कर रही हो वहां न्यायाधीश को कोई लोक या न्यायिक, न्यायिककल्प पद धारण करने से वर्जित करने के लिए या यह आदेश करने के लिए कि वह चेम्बर व्यवसाय नहीं कर सकता अथवा माध्यस्थम् की कार्यवाहियों में मध्यस्थ नहीं हो सकता, परिषद् को और प्राधिकृत किया जाए ।

विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि 2005 के विधेयक में ऐसा उपबंध अंतर्विष्ट होना चाहिए कि जहां न्यायिक परिषद् की हटाए जाने संबंधी सिफारिश को सदनों द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है और राष्ट्रपति द्वारा हटाए जाने संबंधी आदेश पारित कर दिया जाता है, वहां न्यायाधीश को कोई भी लोक अथवा न्यायिक, न्यायिककल्प पद धारण करने से वर्जित कर दिया जाना चाहिए

और यह कि न ही वह चेम्बर व्यवसाय कर सकेगा अथवा माध्यस्थम् की कार्यवाहियों में मध्यस्थ बन सकेगा ।

(XXVIII) क्या न्यायिक परिषद् को कानूनी आचार संहिता (परिषद् द्वारा अधिसूचना द्वारा किए गए उपांतरण के अधीन रहते हुए) विरचित करनी चाहिए ? क्या ऐसी संहिता के भंग को कदाचार माना जाना चाहिए ? क्या उच्चतम न्यायालय द्वारा वर्ष 1997 में अनुमोदित की गई वर्तमान आचार संहिता को उस समय तक, जब तक कि न्यायिक परिषद् आचार संहिता विरचित करे, कानूनी संहिता के रूप में अंगीकार कर लिया जाना चाहिए ?

2005 के प्रारूप विधेयक की धारा 28(1) में यह उपबंध है कि न्यायिक परिषद् न्याय प्रशासन के हित में, समय-समय पर ऐसी आचार संहिता जारी करेगी जिसमें न्यायाधीशों के आचरण और आचार (व्यवहार) से संबंधित मार्गदर्शक सिद्धांत अंतर्विष्ट हों । उसकी [धारा 28 की] उपधारा (2) में यह उपबंध है कि ऐसी आचार संहिता में यह उपबंध किया जा सकेगा कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश नियुक्ति के समय और तत्पश्चात् प्रतिवर्ष अपनी आस्तियों और दायित्वों के बारे में सूचना, यथास्थिति, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को देगा ।

विधि आयोग का यह मत है कि ऐसी आचार संहिता को भारत के राजपत्र में प्रकाशित किया जाना चाहिए जिससे कि प्रत्येक न्यायाधीश ऐसी आचार संहिता की विद्यमानता से अवगत हो सके ।

अनेक देशों में अधिकांश न्यायपालिकाओं ने आचार संहिताएं विहित की हुई हैं । अध्याय 4 में निर्दिष्ट अंतरराष्ट्रीय परंपराओं और कन्वेंशनों में, आचार संहिता के प्रकाशित किए जाने की आवश्यकता का उल्लेख किया गया है । न्यायिक आयोग द्वारा की जाने वाली कार्रवाई से संबंधित विभिन्न कानूनों और नियमों में, जिनके प्रति हमारे द्वारा निर्देश किया गया है, यह कथन है कि ऐसी आचार संहिता प्रकाशित की जाएगी । आचार संहिता का भंग एक ऐसा मामला है जिसे कि 'कदाचार' माना जा सकता है ।

इस बात का कोई संविवाद नहीं हो सकता कि उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए एक आचार संहिता होनी चाहिए और यह कि उसका भंग किए जाने को 'कदाचार' माना जा सकता है ।

इस बात को महसूस करते हुए उच्चतम न्यायालय के पूर्ण न्यायालय (न्यायपीठ) ने एक संहिता बनाते हुए तारीख 7 मई, 1997 को एक संकल्प पारित किया और उसका शीर्षक 'रिस्टेटमेंट आफ वैल्यूज़ आफ जुडिशियल लाइफ' रखा गया है ।

विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि परिषद् द्वारा धारा 28(1) के अधीन जारी की गई आचार संहिता भारत के राजपत्र में प्रकाशित की जानी चाहिए । आयोग यह और सिफारिश करता है कि जब तक 2005 के प्रस्तावित विधेयक के अधीन न्यायिक परिषद् का गठन नहीं कर दिया जाता और ऐसी न्यायिक परिषद् द्वारा आचार संहिता का प्रकाशन नहीं कर दिया जाता तब तक विधेयक में यह अवश्य उपबंध होना चाहिए कि उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 7 मई, 1997 के अपने संकल्प में अंगीकार 'रिस्टेटमेंट आफ वैल्यूज़ आफ जुडिशियल लाइफ' को प्रस्तावित विधि के प्रयोजनार्थ आचार संहिता माना जाए । इसमें यह उपबंध भी अंतर्विष्ट होना चाहिए कि न्यायिक परिषद् द्वारा समय-समय पर आचार संहिता का, उसमें संशोधन करके, जिन्हें कि राजपत्र में अधिसूचित किया जा सकता है, उपांतरण किया जा सकता है ।

(XXIX) क्या प्रस्तावित विधेयक उस कदाचार से, जो प्रस्तावित अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व हुआ हो अथवा कुछ मामलों में उस आचरण से, जो उस समय हुआ था जब वह, व्यक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में पदोन्नत किए जाने से पूर्व, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य कर रहा था, संबंधित शिकायतों के प्रति लागू होना चाहिए ?

प्रश्न यह उद्भूत होता है कि अभियोगों के आपराधिककल्प प्रकृति के होने की दशा में भी क्या न्यायाधीश को ऐसे पूर्ववर्ती कदाचार के लिए प्रस्तावित अधिनियम के अधीन अन्वेषण और जांच के अध्यधीन लाया जा सकता है और क्या उससे संविधान के अनुच्छेद 20 के खंड (1) का उल्लंघन होता है ।

हमारे मतानुसार, संविधान के अनुच्छेद 20 के खंड (1) के उपबंध लागू नहीं होते हैं क्योंकि 'कदाचार' को दंड विधि के अधीन 'अपराध' नहीं माना जाता है । भले ही अन्वेषण या जांच के लिए लागू होने वाली प्रक्रिया वही है जैसी आपराधिक मामलों में की जाती है, तो भी अधिनियम कोई नया अपराध सृजित नहीं करता है ।

विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि 2005 के विधेयक को उस 'कदाचार' से, जो प्रस्तावित अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व किया गया हो, संबंधित शिकायतों के प्रति लागू किया जाना चाहिए किन्तु इसे बहुत पहले की शिकायतों के प्रति लागू नहीं किया जाना चाहिए जिनके ब्यौरे ही न्यायाधीश को याद न हों । इसे अधिनियम के प्रारंभ होने के दो वर्ष पूर्व की अवधि तक निर्बंधित किया जा सकता है परन्तु यह तब जबकि न्यायाधीश न्यायिक परिषद् के समक्ष शिकायत फाइल किए जाने की तारीख तक सेवानिवृत्त न हुआ हो ।

(XXX) 2005 के विधेयक में अन्य और कौन से संशोधन किए जाने अपेक्षित हैं ?

विधि आयोग ने 2005 के विधेयक की बहुत ही ध्यानपूर्वक परीक्षा की है और अपनी व्यापक रूपरेखा पर बड़े पैमाने पर, इसमें इसके पूर्व यथावर्णित, सिफारिशें की हैं । ऐसे कतिपय अन्य परिवर्तन भी हैं जो कि इसकी दृष्टि में 2005 के विधेयक में किए जाने अपेक्षित हैं । इनका वर्णन निम्नलिखित रूप में किया जा रहा है :

(1) विधेयक की धारा 2(ख) में आचार संहिता को इस रूप में परिभाषित किया गया है कि इससे धारा 32 की उपधारा (1) के अधीन परिषद् द्वारा जारी किए गए मार्गदर्शक सिद्धांत अभिप्रेत हैं । धारा 2(ख) में उद्धरण चिह्न (inverted commas) समुचित रूप से मुद्रित नहीं हैं । विधि आयोग यह **सिफारिश करता है** इन्हें "आचार संहिता" के रूप में पढ़ा जाना चाहिए ।

दूसरे, प्रस्तावित विधेयक में धारा 32 है ही नहीं । विधि आयोग यह **सिफारिश करता है** कि "धारा 32" के स्थान पर "धारा 28" रखा जाना चाहिए ।

(2) विधि आयोग यह **सिफारिश करता है** कि अध्याय 2 के शीर्षक 'अन्वेषण के लिए तंत्र' के स्थान पर 'प्रारंभिक अन्वेषण और जांच के लिए तंत्र' शीर्षक रखा जाना चाहिए ।

(3) धारा 10 को दो उप भागों में बांटा जाए और प्रारूप विधेयक में यथा प्रस्तावित धारा 10 के स्थान पर निम्नलिखित धारा रखी जानी चाहिए :-

"(1) परिषद्, धारा 9 की उपधारा (2) के अधीन अध्यक्ष या सभापति से निर्देश प्राप्त होने पर, धारा 7 में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, न्यायाधीश के विरुद्ध निश्चित आरोप

विरचित करेगी, जिनके आधार पर जांच प्रस्तावित है ।

(2) उपधारा (1) के अधीन विरचित आरोप और साथ ही उन आधारों के, जिन पर प्रत्येक आरोप आधारित हो, कथन न्यायाधीश को संसूचित किए जाएंगे और उसे उस समय के भीतर, जो परिषद् द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, लिखित कथन प्रस्तुत करने का युक्तियुक्त अवसर प्रदान किया जाएगा ।"

(4) धारा 11 की उपधारा (3) उस प्रक्रिया के बारे में है जहां कि न्यायाधीश चिकित्सा परीक्षा कराने से इनकार कर देता है । किन्तु धारा 11 में उस प्रक्रिया के बारे में उपबंध नहीं है जहां कि न्यायाधीश चिकित्सा परीक्षा कराने को सहमत हो जाता है । विधि आयोग यह **सिफारिश करता है** कि उपधारा (3) के पश्चात् निम्नलिखित आशय की एक पृथक् उपधारा अवश्य होनी चाहिए :-

"(4) यदि न्यायाधीश चिकित्सा बोर्ड द्वारा आवश्यक समझी गई चिकित्सा परीक्षा कराने को सहमत हो जाता है, तो उक्त बोर्ड न्यायाधीश को विशेषज्ञों की ऐसी अन्य चिकित्सा रिपोर्ट अथवा राय प्रस्तुत करने की अनुज्ञा दे सकता है जो वह (न्यायाधीश) यह साबित करने के लिए आवश्यक समझता है कि वह किसी शारीरिक या मानसिक असमर्थता से ग्रस्त नहीं है और तत्पश्चात् चिकित्सा बोर्ड के कहने पर की गई चिकित्सा परीक्षा पर तथा न्यायाधीश द्वारा प्रस्तुत यथा पूर्वोक्त सामग्री पर आधारित एक रिपोर्ट बोर्ड अपने निष्कर्षों सहित परिषद् को प्रस्तुत करेगा ।"

विधि आयोग यह और **सिफारिश करता है** कि धारा 11 की उपधारा (4) को उपधारा (5) के रूप में पुनर्संख्यांकित किया जाना चाहिए और उसमें परिषद् से यह अपेक्षा करने संबंधी उपबंध अंतर्विष्ट होना चाहिए कि वह न्यायाधीश द्वारा चिकित्सा बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री पर भी विचार करे । विधि आयोग यह **सिफारिश करता है** कि उपधारा (5) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा रखी जानी चाहिए :

"(5) परिषद्, न्यायाधीश के लिखित कथन, चिकित्सा बोर्ड द्वारा प्रस्तुत की गई चिकित्सा रिपोर्ट और न्यायाधीश द्वारा चिकित्सा बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री, यदि कोई हो, पर विचार करने के पश्चात् यथास्थिति, धारा 8 की उपधारा (1) या धारा 10 के अधीन

विरचित आरोपों में संशोधन कर सकेगी और ऐसे किसी मामले में न्यायाधीश को नए सिरे से लिखित प्रतिरक्षा कथन प्रस्तुत करने का युक्तियुक्त अवसर प्रदान किया जाएगा ।"

(5) अध्याय 5 का शीर्षक है **'अन्वेषण के लिए प्रक्रिया'**। विधि आयोग यह **सिफारिश करता है** कि उस शीर्षक के स्थान पर **"जांच के लिए प्रक्रिया"** शीर्षक रखा जाना चाहिए ।

(6) धारा 12(2) के परन्तुक में (अंग्रेजी पाठ में), "may" शब्द दो बार प्रयोग किया गया है । विधि आयोग यह **सिफारिश करता है** कि "writing" शब्द के पश्चात् प्रयुक्त "may" शब्द का लोप किया जाए ।

(7) अध्याय 6 का शीर्षक है **"अन्वेषण की समाप्ति के पश्चात् प्रक्रिया"**। विधि आयोग यह **सिफारिश करता है कि** उपर्युक्त शब्दों के स्थान पर **"जांच की समाप्ति के पश्चात् प्रक्रिया"** शब्द रखे जाने चाहिए ।

(8) धारा 16(1)(ख) में यह उपबंधित है कि किसी शिकायत की दशा में परिषद् की रिपोर्ट, जो लिखित रूप में हो, निष्कर्षों और सिफारिशों सहित (i) शिकायतकर्ता ; और (ii) संबंधित न्यायाधीश ; (iii) राष्ट्रपति को, संसूचित की जाएगी । न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी के मामले में, उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के अनुसार, जिन्हें कि इस रिपोर्ट में विस्तृत रूप से निर्दिष्ट किया गया है, जब तक परिषद् द्वारा अध्यक्ष/सभापति को मूल रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं कर दी जाती तब तक न्यायाधीश रिपोर्ट की प्रति का हकदार नहीं होता है । (निस्संदेह, यह प्रश्न केवल उस दशा में उद्भूत होगा जब हटाए जाने की आवश्यकता हो) ।

अतः, विधि आयोग यह **सिफारिश करता है** कि धारा 16(1)(ख) के दो खंडों का अर्थात् "(i) शिकायतकर्ता, और" "(ii) संबंधित न्यायाधीश" का लोप किया जाए और खंड (iii) को खंड (i) के रूप में अभिहित किया जाए ।

(9) धारा 16(2) में, जो शिकायत की प्रक्रिया का ही भाग है, यह कथन है कि राष्ट्रपति का उपधारा (2) के अधीन सिफारिश प्राप्त होने पर यह समाधान हो जाता है कि (क) शिकायत में संबंधित न्यायाधीश के विरुद्ध किया गया कोई एक अभिकथन या एक से अधिक अभिकथन पूर्णतः या भागतः सिद्ध नहीं हुआ या हुए हैं, तो वह उस मामले को बंद कर देगा और न्यायाधीश के विरुद्ध आगे कोई और कार्रवाई नहीं की जाएगी ।

हमारे मतानुसार, यद्यपि यह सही है कि शिकायत की प्रक्रिया में परिषद् को अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत करनी चाहिए क्योंकि यह अध्यक्ष या सभापति द्वारा किए गए किसी निर्देश के अनुसरण में तैयार की गई रिपोर्ट नहीं होती है, तथापि राष्ट्रपति, अर्थात् कार्यपालिका में, धारा 16 की उपधारा (2) में यथाउल्लिखित "समाधान" किए जाने की अतिरिक्त शक्ति निहित नहीं की जानी चाहिए । हमारे मतानुसार उस प्रक्रिया को, जिसमें यह परिकल्पित है कि राष्ट्रपति का यह 'समाधान' होना चाहिए, उपांतरित किया जाना अपेक्षित है ।

यह सर्वत्र रूप से स्वीकृत है कि कार्यपालिका का किसी न्यायाधीश के विरुद्ध की गई अनुशासनिक कार्रवाई के मामले में कुछ कहने का अधिकार नहीं होना चाहिए । यह बात संसद् की संयुक्त समिति की रिपोर्ट में, जो 1968 के अधिनियम के पूर्व की है, की गई विवेचना से, जिसके प्रति हमने विस्तृत रूप से निर्देश किया है, भी स्पष्ट हो जाती है, जिसमें संयुक्त समिति के सभी सम्माननीय सदस्यों द्वारा और उन व्यक्तियों द्वारा, जिन्होंने साक्ष्य दिया था, सर्वसम्मत रूप से यह स्वीकार किया गया था कि न्यायपालिका को न्यायाधीशों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई से संबंधित प्रक्रिया से अलग रखा जाना चाहिए । वस्तुतः, निर्देश संबंधी प्रक्रिया में भी, यदि न्यायिक परिषद् इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि अभिकथन साबित नहीं होते हैं, तो मामला वहीं समाप्त हो जाता है और संसदीय प्रक्रिया आरम्भ नहीं होती तथा अध्यक्ष अथवा सभापति, ऐसे किसी मामले में, साधारणतया उस प्रस्ताव को समाप्त कर सकते हैं । उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायमूर्ति वी. रामस्वामी वाले मामले में यही विनिश्चय किया गया था ।

अतः, विधि आयोग यह **सिफारिश करता है** कि धारा 16(2)(क) के स्थान पर निम्नलिखित उपबंध रखा जाए :

> "यदि परिषद्, अपनी रिपोर्ट में, इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि संबंधित न्यायाधीश के विरुद्ध कोई भी आरोप पूर्णतः या भागतः साबित नहीं हुआ है, तो राष्ट्रपति मामले को बंद कर देगा और न्यायाधीश के विरुद्ध आगे कोई और कार्रवाई नहीं की जाएगी और न्यायाधीश तथा शिकायतकर्ता को तदनुसार सूचित किया जाएगा ।"

(10) धारा 16(2)(ख) में "परिषद् द्वारा न्यायाधीश के विरुद्ध प्रथमदृष्ट्या मामला बनाया गया है तो वह (राष्ट्रपति) परिषद् के निष्कर्षों को, संलग्न सामग्री सहित, संसद् के सदनों के समक्ष रखवाएगा"

शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

अन्वेषण और जांच की सामान्य स्कीम के अनुसार, स्थिति यह है कि परिषद् का प्रारंभिक अन्वेषण करने के पश्चात् यह निष्कर्ष है कि प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है तो वह आरोप विरचित करेगी और तत्पश्चात् जांच कराएगी । जांच में, परिषद् यह निश्चित और स्पष्ट निष्कर्ष देती है कि आरोप नहीं बनते हैं या यह कि आरोप बनते हैं । अतः, शिकायत संबंधी प्रक्रिया में भी "प्रथमदृष्ट्या मामला बनाया गया है " का ऐसा कोई प्रश्न नहीं उठता है ।

अतः, विधि आयोग यह सिफारिश करता हैं कि धारा 16(2) के उपखंड (ख) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा (उपखंड) प्रतिस्थापित किया जाए :

> " यदि परिषद्, अपनी रिपोर्ट में, इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि आरोप साबित होते हैं और यह सिफारिश करती है कि आरोपों के आधार पर हटाया जाना आवश्यक है, तो राष्ट्रपति परिषद् की रिपोर्ट तथा सिफारिश को, संलग्न सामग्री सहित, संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखवाएगा ।"

धारा 16 की उपधारा (3) में यह अनुध्यात है कि धारा 16 की उपधारा (2) के अधीन रिपोर्ट की दशा में, सरकार किसी भी सदन में एक प्रस्ताव लाएगी । यद्यपि निर्देश संबंधी प्रक्रिया के मामले में, प्रस्ताव सदनों के सदस्यों द्वारा लाया जाता है, तथापि प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या शिकायत संबंधी प्रक्रिया में, जहां कि परिषद् ने यह सिफारिश की है कि आरोप साबित होते हैं और आरोपों के आधार पर हटाया जाना आवश्यक है, सरकार को संसद् में प्रस्ताव लाने के लिए सशक्त बनाया जा सकता है ।

हमने इस बाबत पर्याप्त साहित्य (विषय विशेष की पुस्तकों) के प्रति निर्देश किया है यह कि कार्यपालिका को सदन में प्रस्ताव लाने के लिए सशक्त नहीं बनाया जाना चाहिए और यह कि ऐसा परमाधिकार विधानमंडल में ही निहित होना चाहिए । तथापि, ऐसी स्थिति में, जहां कि न्यायिक परिषद् की, जो न्यायाधीशों से मिलकर बनी है, यह रिपोर्ट पहले ही विद्यमान है जिसमें यह निष्कर्ष है कि आरोप साबित होते हैं और उनके आधार पर हटाया जाना आवश्यक है, तो वहां हमारा यह मत है कि सरकार, जो धारा 16(3) के अधीन संसद् के प्रत्येक सदन में प्रस्ताव लाती है, न्यायपालिका की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं करेगी ।

अतः, विधि आयोग धारा 16(1)(ख) में, जैसाकि पहले कथन किया गया है, परिवर्तन किए जाने तथा धारा 16(2)(क) और धारा 16(2)(ख) के स्थान पर, यथा ऊपर कथित उपबंध प्रतिस्थापित किए जाने **की सिफारिश करता है** ।

(11) धारा 17 अध्यक्ष या सभापति के निर्देश पर प्रस्ताव का निपटारा किए जाने के संबंध में है । धारा 17(1) में परिषद् से अपने निष्कर्ष अध्यक्ष या सभापति को अग्रेषित करने की अपेक्षा की गई है । इस उपधारा में परिषद् की सिफारिश अध्यक्ष/सभापति को प्रस्तुत किए जाने के प्रति निर्देश नहीं किया गया है ।

विधि आयोग यह **सिफारिश करता है** कि धारा 17(1) का यह कथन करने के लिए समुचित रूप से संशोधन किया जाए कि न्यायिक परिषद् हटाए जाने संबंधी अपने निष्कर्ष और सिफारिशें, यदि कोई हों, अध्यक्ष या सभापति को अग्रेषित करेगी ।

(निस्संदेह, हम यह पहले ही कथन कर चुके हैं कि निर्देश संबंधी प्रक्रिया के मामले में, परिषद् यह सिफारिश नहीं कर सकती कि उन आरोपों के आधार पर, जो साबित हो चुके हैं, गौण उपाय किए जाने आवश्यक हैं । ऐसा कोई प्रश्न केवल शिकायत संबंधी प्रक्रिया में उद्भूत हो सकता है, इसमें और अंतर यह है कि जहां गौण उपायों का प्रस्ताव किया जाता है, वहां परिषद् अंतिम प्राधिकारी होगा और सिफारिश अध्यक्ष या सभापति को प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं होगा)।

निर्देश संबंधी प्रक्रिया में, सिफारिश का प्रश्न केवल उस दशा में उद्भूत होता है यदि आरोप साबित हों और उनके आधार पर हटाया जाना आवश्यक हो । हम यह पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि दोनों में से कोई भी सदन गौण उपाय अधिरोपित करने के लिए स्वतंत्र नहीं है । वे केवल यह कह सकते हैं कि वे परिषद् की हटाए जाने संबंधी सिफारिश को स्वीकार कर रहे हैं अथवा नहीं । संसद् के लिए कोई कारण बताना आवश्यक नहीं है भले ही वह परिषद् की रिपोर्ट स्वीकार न करे और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि हटाए जाने संबंधी कोई आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं है ।

तथापि, विधि आयोग यह **सिफारिश करता है** कि धारा 17(1) का यह उपबंध करने के लिए अवश्य ही संशोधन किया जाना चाहिए कि न्यायिक परिषद् किसी न्यायाधीश को हटाए जाने संबंधी अपने निष्कर्ष और अपनी सिफारिशें, यदि कोई हों, अध्यक्ष या सभापति को अग्रेषित करेगी ।

(12) धारा 19 के पार्श्व टिप्पण में "महाभियोग" शब्द का प्रयोग किया गया है । हमने अपनी रिपोर्ट

में यह उल्लेख किया है कि महाभियोग और सदनों द्वारा राज्य प्रमुख (राष्ट्रपति) के समक्ष समावेदन रख कर हटाए जाने में अंतर है । इसके अतिरिक्त, हमने यह उल्लेख किया है कि संविधान में "महाभियोग" शब्द केवल भारत के राष्ट्रपति के मामले में प्रयोग किया गया है और जहां तक उपराष्ट्रपति, राज्य सभा के उप सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष का संबंध है, इसमें "ऐसे संकल्प द्वारा" शब्दों का प्रयोग किया गया है । जहां तक उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का संबंध है, संविधान में "हटाए जाने के लिए सदनों के समावेदन" शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

अतः, विधि आयोग यह **सिफारिश करता है** कि धारा 18 के पार्श्व टिप्पण में प्रयुक्त "महाभियोग" शब्द के स्थान पर "सदनों द्वारा समावेदन" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएं ।

अध्याय 21

न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 2005 के प्रारूप पर विधि आयोग की सिफारिशें और प्रकट किए गए विचारों का संक्षिप्त सार

1. न्यायिक स्वतंत्रता पूर्ण नहीं होती है । न्यायिक स्वतंत्रता और जवाबदेही एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । 2005 के विधेयक में के वर्तमान प्रस्तावों के साथ न्यायिक परिषद् को गौण उपाय, जिनके अंतर्गत न्यायिक कार्य समनुदेशित करने पर रोक भी है, अधिरोपित करने के लिए समर्थ बनाने के संबंध में हमारी सिफारिशें सांविधानिक हैं । उन्हें न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर कार्यपालिका द्वारा या विधानमंडल द्वारा अधिक्रमण के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए । (पृष्ठ 341)

2. 2005 के विधेयक की धारा 3(1), जिसमें राष्ट्रीय न्यायिक परिषद्, जो कि केवल न्यायाधीशों से मिलकर बनेगी, की स्थापना के लिए उपबंध है, सांविधानिक रूप से विधिमान्य है और न्यायपालिका की स्वतंत्रता, न्यायिक जवाबदेही की संकल्पना तथा शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत से संगत है । (पृष्ठ 363)

3. विधि आयोग की यह राय है कि विधेयक में यह सही आधार अपनाया गया है अर्थात् उपबंध किया गया है कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को, बेहतर कारणों से, शिकायत संबंधी प्रक्रिया के अध्यधीन नहीं लाया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त इस निमित्त किया गया उपबंध न तो विभेदकारी है और न ही मनमाना है क्योंकि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का प्रशासनिक प्रमुख होने के कारण विशेष महत्व होता है और वह उच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों अथवा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्तियों के समान नहीं होता है । (पृष्ठ 365-366)

4. धारा 2(घ) के स्थान पर निम्नलिखित परिभाषा (खंड) रखा जाए :

"(घ) 'न्यायाधीश' से उच्चतम न्यायालय का या किसी उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश, अभिप्रेत है, इसके अंतर्गत निर्देश संबंधी प्रक्रिया के प्रयोजनार्थ उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति और भारत का मुख्य न्यायमूर्ति भी आता है किन्तु शिकायत संबंधी प्रक्रिया के प्रयोजनार्थ भारत का मुख्य न्यायमूर्ति नहीं आता है ;

हम यह और सिफारिश करते हैं कि 'शिकायत संबंधी प्रक्रिया' और 'निर्देश संबंधी प्रक्रिया' शब्दों की पृथक् रूप से परिभाषा निम्नानुसार दी जानी चाहिए :

'शिकायत संबंधी प्रक्रिया' से ऐसी प्रक्रिया अभिप्रेत है, जो धारा 5 के अधीन परिषद् को शिकायत के रूप में आरम्भ की जाती है ;

'निर्देश संबंधी प्रक्रिया' से ऐसी प्रक्रिया अभिप्रेत है, जो हटाए जाने संबंधी प्रस्ताव के रूप में, जो कि अध्यक्ष या सभापति द्वारा परिषद् को निर्दिष्ट किया जाता है, आरंभ की जाती है । (पृष्ठ 366-367)

5.(क) धारा 3(2) में निम्नलिखित आशय का एक द्वितीय परन्तुक अंतःस्थापित किया जाना चाहिए :

"परन्तु यह और कि जहां उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश के विरुद्ध, उसकी भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में पदोन्नति किए जाने से पूर्व, किसी व्यक्ति द्वारा कोई शिकायत की जाती है या अध्यक्ष या सभापति द्वारा कोई निर्देश किया जाता है, वहां वह परिषद् का सदस्य नहीं होगा और राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय के अगले ज्येष्ठतम न्यायाधीश को परिषद् के अध्यक्ष के रूप में और उच्चतम न्यायालय के एक अन्य न्यायाधीश को भी, जो उसके बाद ज्येष्ठता में हो, सदस्य के रूप में नामनिर्दिष्ट किया जाएगा ।" (पृष्ठ 368)

(ख) 2005 के विधेयक का यह उपबंध करने के लिए संशोधन किया जाना चाहिए कि यदि कोई शिकायत उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के विरुद्ध फाइल की गई है, तो वह उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के रूप में पदोन्नति किए जाने के पश्चात् भी जारी रखी जा सकेगी । इस आशय का स्पष्टीकरण 2005 के विधेयक की धारा 5 की उपधारा (1) के नीचे जोड़ा जाना चाहिए । ऐसा ही स्पष्टीकरण धारा 5 की उपधारा (1) में यह उपबंध करने के लिए जोड़ा जाना चाहिए कि किसी न्यायाधीश या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के विरुद्ध, जब उसकी उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पदोन्नति हो गई हो, उस अवधि के दौरान, जब वह उच्च न्यायालय का न्यायाधीश था, किए गए कदाचार के कार्यों की बाबत जांच को जारी रखा जाएगा या आरंभ किया जाएगा । (पृष्ठ 368-369)

6. 2005 के विधेयक में एक विशेष उपबंध न्यायिक परिषद् को शिकायत संबंधी प्रक्रिया में 'गौण उपाय' अधिरोपित करने की बाबत समर्थ बनाने के लिए अंतःस्थापित किया जाना चाहिए । 2005 के विधेयक में शिकायत संबंधी प्रक्रिया की दशा में इस निमित्त लोप को राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् द्वारा निम्नलिखित गौण उपायों को अधिरोपित किए जाने का उपबंध करके परिशोधित करने की आवश्यकता है, उदाहरणार्थ,

(1) सलाह देना;

(2) चेतावनी जारी करना;

(3) सीमित समय के लिए लम्बित तथा भावी न्यायिक कार्य को वापस लेना;

(4) इस बात का अनुरोध करना कि न्यायाधीश स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ले;

(5) परिनिंदा या भर्त्सना, सार्वजनिक या प्राइवेट । (पृष्ठ 379-380)

7. 2005 के विधेयक का, जैसा कि ऊपर सिफारिश सं.6 में कथन किया गया है, स्वयं न्यायिक परिषद् द्वारा अधिरोपित किए जाने वाले 'गौण उपायों' का उपबंध करने के लिए, समुचित रूप से अवश्य ही उपांतरण किया जाना चाहिए । ऐसी कोई विधि अनुच्छेद 124(5) के पश्चात्वर्ती भाग के अधीन और किसी भी दशा में भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 11क, जिसमें कि 'न्याय प्रशासन' के विषय के प्रति निर्देश है, के साथ पठित अनुच्छेद 246 के अधीन बनाई जा सकती है । न्यायिक परिषद् द्वारा 'गौण उपायों' को अधिरोपित किए जाने को अनुज्ञात करने संबंधी उपबंध पुरःस्थापित करना विधिमान्य होगा और वह असांविधानिक नहीं होगा । (पृष्ठ 400-401)

8. न्यायिक परिषद् के लिए सदन के दोनों सदनों में से किसी भी सदन को अध्यक्ष/सभापति द्वारा निर्देश किए जाने पर गौण उपाय अधिरोपित किए जाने की सिफारिश करना अनुज्ञेय नहीं है । तथापि, यदि उसके साथ-साथ न्यायिक परिषद् के समक्ष उन्हीं तथ्यों पर, निर्देश के अतिरिक्त, कोई शिकायत भी है, तो न्यायिक परिषद् शिकायत का निपटारा करते समय स्वयं ऐसे 'गौण उपाय' अधिरोपित कर सकती है । तथापि, सदन को निर्देश लौटाते समय वह सदन द्वारा पारित किए जाने के लिए किसी गौण उपाय की सिफारिश नहीं कर सकती । (पृष्ठ 403)

9. यदि संसद् द्वारा न्यायिक परिषद् को इन-हाउस तंत्र के भागरूप 'गौण उपाय' अधिरोपित करने के लिए समर्थ बनाने संबंधी कोई विधि बनाई जाती है तो संविधान में कोई संशोधन करने की आवश्यकता नहीं है । (पृष्ठ 405)

10. न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 में तथा 2005 के प्रस्तावित विधेयक में, निर्देश संबंधी प्रक्रिया के अतिरिक्त, शिकायत संबंधी प्रक्रिया के रूप में न्यायिक परिषद् द्वारा अन्वेषण/जांच किए जाने के लिए समर्थ बनाने संबंधी प्रक्रिया से अनुच्छेद 124(4) में अंतर्विष्ट सांविधानिक प्रक्रिया का अतिलंघन नहीं होता है और वह अननुज्ञेय प्रत्यायोजन की कोटि में नहीं आता तथा विधिमान्य है । (पृष्ठ 407)

11. जब न्यायिक परिषद् उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश के विरुद्ध (शिकायत या निर्देश संबंधी प्रक्रियाओं में) या भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के विरुद्ध (निर्देश के अधीन) किए गए अभिकथनों का अन्वेषण करती है, तब उसमें उच्च न्यायालयों के दो ज्येष्ठतम मुख्य न्यायमूर्ति नहीं होने चाहिए । ऐसी स्थिति में, न्यायिक परिषद् में उच्चतम न्यायालय के भारत के मुख्य न्यायमूर्ति तथा चार ज्येष्ठतम न्यायाधीश सम्मिलित होने चाहिएं । 2005 के विधेयक के उपबंधों का इस अत्यावश्यकता का उपबंध करने के लिए समुचित रूप से संशोधन किया जाना चाहिए । (पृष्ठ 408-409)

12. चूंकि पांच न्यायाधीशों की न्यायिक परिषद् को अवश्य ही सामूहिक रूप से विनिश्चय करने चाहिए, इसलिए जहां उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश या किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति स्वयं उसमें रहने से इनकार कर देता है वहां प्रक्रिया यह है कि उस रिक्त स्थान को ज्येष्ठता क्रम में अगले व्यक्ति द्वारा भरा जाना चाहिए । 2005 के विधेयक में ही समुचित संशोधन करके इस निमित्त उपबंध किया जाना आवश्यक है । ऐसी किसी 'इनकारी' के उपबंध को नियमों में उपबंधित किए जाने के लिए छोड़ देना वांछनीय नहीं है । (पृष्ठ 409-410)

13. 2005 के विधेयक में निम्नलिखित और संशोधन किए जाने अपेक्षित हैं : (पृष्ठ 413-417)

(i) धारा 2 में, 'अन्वेषण' और 'जांच' की निम्नलिखित परिभाषाएं अंतःस्थापित की जाएं :

'अन्वेषण' से 'प्रारंभिक अन्वेषण' अभिप्रेत है ;

'जांच' से 'सबूत के लिए जांच' अभिप्रेत है ।

(ii) धारा 3(1) में 'अन्वेषण करने' शब्दों के स्थान पर 'अन्वेषण और जांच करने' शब्द रखे जाएं; धारा 3(2) में 'अन्वेषण करने' शब्दों के स्थान पर 'अन्वेषण और जांच करने' शब्द रखे जाएंगे; धारा 3(3) में 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'अन्वेषण और जांच' शब्द रखे जाएंगे ।

(iii) धारा 6 में 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'अन्वेषण और जांच' शब्द धारा 6 के मुख्य भाग में तथा पार्श्व शीर्ष में रखे जाएं ।

(iv) धारा 7 में, पार्श्व शीर्ष को 'शिकायतों का सत्यापन और प्रारंभिक अन्वेषण' के रूप में पढ़ा जाना चाहिए; धारा 7(1) के मुख्य भाग में 'सत्यापन करने' शब्दों के स्थान पर 'सत्यापन करने या जहां आवश्यक हो वहां ऐसे प्रारंभिक अन्वेषण करने' शब्द रखे जाएं ; धारा 7(1)(ख) के मुख्य भाग में 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'जांच' शब्द रखा जाए; धारा 7(2) के मुख्य भाग में 'सत्यापन संबंधी' शब्दों के स्थान पर 'सत्यापन संबंधी या जहां आवश्यक हो वहां प्रारंभिक अन्वेषण संबंधी, जो

वह समुचित समझे,' शब्द रखे जाएं ।

(v) धारा 8 का पार्श्व शीर्ष, जिसमें कि 'जाचों' का उल्लेख किया गया है, सही है । किन्तु धारा 8(1) को निम्नानुसार विरचित किया जाना होगा :

"8.(1) यदि परिषद्, किसी शिकायत की बाबत धारा 7 के अधीन सत्यापन और प्रारंभिक अन्वेषण किए जाने के पश्चात्, कोई जांच् कराने का प्रस्ताव करती है तो वह न्यायाधीश के विरुद्ध निश्चित आरोप विरचित करेगी, जिनके आधार पर जांच कराई जानी प्रस्तावित है ।"

(vi) धारा 10 में 'धारा 6' के स्थान पर 'धारा 7' (शब्द और अंक) रखा जाए तथा 'अन्वेषण' के स्थान पर 'जांच' शब्द रखा जाए ।

(vii) जहां तक अध्याय 5 का संबंध है, उसका शीर्षक 'जांच के लिए प्रक्रिया' होना चाहिए ।

(viii) धारा 12(1), 12(2) और 12(2) के परन्तुक में, धारा 13 में, 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'जांच' शब्द रखा जाए ।

(ix) धारा 15(1) और 15(2) में 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'प्रारंभिक अन्वेषण या जांच' शब्द रखे जाएं ।

(x) अध्याय 6 का शीर्षक 'जांच की समाप्ति के पश्चात् प्रक्रिया' होना चाहिए ।

(xi) धारा 16(1), धारा 17(1) में, 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'जांच' शब्द रखा जाए । (धारा 16 के बारे में कुछ और संशोधन हैं जिन पर चर्चा इसमें इसके नीचे पैरा 27 के अधीन की जाएगी) ।

(xii) धारा 19(1) में, 'या अन्वेषण किए जाने' शब्दों के स्थान पर 'या कोई प्रारंभिक अन्वेषण या जांच किए जाने' शब्द रखे जाएं ।

(xiii) धारा 21 में, 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'प्रारंभिक अन्वेषण या जांच' शब्द रखे जाएं ।

(xiv) संपूर्ण धारा 22 को, जिसमें उपधारा (1) से (3) समाविष्ट हैं, धारा 7 की उपधारा (3) से (5) के रूप में स्थानांतरित किया जाना चाहिए तथा धारा 7 की उपधारा (3) के (अब यथा प्रस्तावित) मुख्य भाग में 'एक अन्वेषण समिति का गठन करेगा' शब्दों को बनाए रखा जा सकता है किन्तु 'जो मामले में अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए' शब्दों को 'जो प्रारंभिक अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए और यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि निश्चित आरोप मामले में जांच करने के लिए विरचित किए जाने अपेक्षित हैं अथवा नहीं' के रूप में उपांतरित किया जाना चाहिए । धारा 7(4) अंतःस्थापित करने के लिए, जैसा कि ऊपर कथन किया गया है, वर्तमान प्रस्ताव में 'अन्वेषण' शब्द

के स्थान पर 'प्रारंभिक अन्वेषण' शब्द रखे जाएं । [जहां तक धारा 7 के पार्श्व शीर्ष का संबंध है, हम पहले ही ऊपर पैरा (iv) में परिवर्तन किए जाने का सुझाव दे चुके हैं] ।

(xv) धारा 23 में, 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'प्रारंभिक अन्वेषण और जांच' शब्द रखे जाएं ।

(xvi) धारा 24 में, पार्श्व शीर्ष में 'परिषद् द्वारा अन्वेषण' शब्दों के स्थान पर 'परिषद् द्वारा अन्वेषण और जांच' शब्द रखे जाएं । धारा 24 के मुख्य भाग में 'किसी अन्वेषण' शब्दों के स्थान पर 'किसी प्रारंभिक अन्वेषण या जांच' शब्द रखे जाएं ।

(xvii) धारा 25 में, धारा के पार्श्व शीर्ष में तथा मुख्य भाग में 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'शिकायत, प्रारंभिक अन्वेषण और जांच' शब्द रखे जाएं ।

(xviii) धारा 26 में, 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'प्रारंभिक अन्वेषण या जांच' शब्द रखे जाएं ।

(xix) धारा 27 में, धारा के पार्श्व शीर्ष में तथा मुख्य भाग में 'अन्वेषण' शब्द के स्थान पर 'प्रारंभिक अन्वेषण और जांच' शब्द रखे जाएं ।

14. 2005 के विधेयक की धारा 22, जिसमें कि न्यायिक परिषद् को स्वयं जांच कराने अथवा अन्वेषण कराने के लिए उसके सदस्यों से मिलकर बनने वाली एक समिति नियुक्त करने को अनुज्ञात किया गया है, सांविधानिक रूप से विधिमान्य है । (पृष्ठ 418)

15. धारा 22 के निम्नलिखित शब्द, "तो वह अपने एक या अधिक सदस्यों को नामनिर्दिष्ट कर सकेगी जो मामले में अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए एक अन्वेषण समिति का गठन करेंगे" शब्दों के स्थान पर "तो वह मामले में अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए एक अन्वेषण समिति, जिसमें उसके एक या अधिक सदस्य समाविष्ट होंगे, का गठन कर सकेगी" शब्द रखे जाएंगे । (पृष्ठ 418)

16. 2005 के विधेयक की धारा 7(2) में, न्यायाधीश को अपनी 'टिप्पणियां' प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करने का उपबंध किया गया है, किन्तु इसमें परिषद् को 'यदि वह ... आवश्यक समझे' टिप्पणियां मंगाने का विवेकाधिकार दिया गया है । इसे बाध्यकारी बनाया जाना चाहिए । धारा 7(2) में प्रयुक्त 'कर सकेगी' शब्द के स्थान पर 'करेगी' शब्द रखा जाना चाहिए और 'यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझे' शब्दों का लोप किया जाना चाहिए । (पृष्ठ 421-422)

17. संसद् के लिए यह उपबंध करने के लिए विधि बनाना अनुज्ञेय है कि न्यायिक परिषद्, प्रभावी अन्वेषण और जांच के प्रयोजन के लिए, अंतरिम उपाय के रूप में, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश से न्यायिक कार्य वापस लिए जाने की सिफारिश कर सकती है ।

आयोग की यह राय है कि धारा 21 सांविधानिक रूप से विधिमान्य है । (पृष्ठ 430)

18. तुच्छ और तंग करने वाली शिकायतों के विरुद्ध समुचित अनुशास्तियों का उपबंध किया जाना चाहिए । 2005 के विधेयक में पृथक् धारा के रूप में निम्नलिखित उपबंध अंतःस्थापित किए जाएं :

"(1) ऐसा कोई व्यक्ति, जो किसी न्यायाधीश के विरुद्ध उस न्यायाधीश को, जिसके विरुद्ध शिकायत फाइल की जाती है, तंग करने के आशय से ऐसी शिकायत करता है जो या तो तुच्छ है या तंग करने वाला है अथवा सद्भावपूर्वक नहीं है, दंडनीय होगा ।

(2) जब उपधारा (1) के अधीन कोई अपराध किया जाता है, तो न्यायिक परिषद् उस अपराध का संज्ञान कर सकेगी और अपराधी को इस बात का कारण बताने का कि उसे उस अपराध के लिए दंडित क्यों न किया जाए, युक्तियुक्त अवसर प्रदान करने के पश्चात् ऐसे अपराधी का संक्षिप्त रूप में, जहां तक हो सके दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन संक्षिप्त विचारण के लिए विनिर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुसार, विचारण कर सकेगी तथा यदि ऐसे अपराधी को ऐसा अपराध कारित करने का दोषी पाया जाता है तो उसे उस अवधि के कारावास से, जो एक वर्ष तक का हो सकेगा और जुर्माने से भी, जो पच्चीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडादिष्ट कर सकेगी ।" (पृष्ठ 432-433)

19. 2005 के विधेयक की धारा 5(2) का यह उपबंध करने के लिए संशोधन किया जाए कि शिकायत नियमों में विहित प्ररूप में होनी चाहिए, उसमें 'कदाचार या असमर्थता' के, जो अभिकथन की विषयवस्तु है, पूरे ब्यौरे दिए गए होने चाहिए और उसमें इस बात का सत्यापन अवश्य अंतर्विष्ट होना चाहिए कि कौन से अभिकथन शिकायतकर्ता की निजी जानकारी में हैं और कौन से अभिकथन प्राप्त और किससे प्राप्त जानकारी पर आधारित हैं । इसमें इस बात का कथन भी अंतर्विष्ट होना चाहिए कि शिकायतकर्ता इस बात से अवगत है कि यदि शिकायत में के अभिकथन तुच्छ या तंग करने वाले या सद्भावपूर्वक न किए गए पाए जाते हैं तो शिकायतकर्ता अधिनियम के अधीन अपराध के लिए संक्षिप्त रूप से दंडित किए जाने का दायी होगा । (पृष्ठ 433-434)

शिकायत के साथ किसी शपथपत्र को संलग्न किए जाने की अपेक्षा करना आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रत्येक शपथपत्र में अधिवक्ता या नोटरी या अन्य प्राधिकृत व्यक्ति के समक्ष शपथ ली जाती है और यदि ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण किया जाएगा तो अभिकथनों की गोपनीयता पूर्णतया सुनिश्चित नहीं हो सकती । (पृष्ठ 434)

20. 2005 के विधेयक में 'कदाचार' की, जैसाकि अध्याय 20 (मद XIX) में कथन किया गया है, एक व्यापक परिभाषा दी जानी चाहिए । इसमें आचार संहिता के भंग को सम्मिलित किया जाना चाहिए । जहां तक 'असमर्थता' का संबंध है, यह ऐसी होनी चाहिए जो स्थायी प्रकृति की हो या जिसके स्थायी प्रकृति के होने की संभावना हो जो उसे (न्यायाधीश की) उसके न्यायिक कृत्यों का समुचित रूप से पालन करने में समर्थ न बनाती हो । ऐसी परिभाषा 2005 के विधेयक की धारा 2 में पुरःस्थापित की जानी चाहिए । (पृष्ठ 441)

21. 2005 के विधेयक में उन शिकायतों की, जो किसी लम्बित या विनिश्चित मामले के गुणागुण से संबंधित हों, छानबीन (स्क्रीनिंग) और छंटाई करने के लिए समर्थ बनाने संबंधी समुचित उपबंध किए जाने चाहिएं उनको छोड़कर, जहां कि शिकायत में रिश्वत आदि जैसे कदाचार के अभिकथन अंतर्विष्ट हों, वहां ऐसी स्थिति में ऐसी शिकायत की परीक्षा की जानी होगी ।(पृष्ठ 443)

22. 2005 के विधेयक में 'विसलब्लोयर' उपबंध अवश्य ही उपबंधित किया जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त, इस बात का भी उपबंध होना चाहिए कि यदि शिकायतकर्ता के विरुद्ध किसी 'प्रतिशोध' की बात न्यायिक परिषद् की जानकारी में लाई जाती है तो न्यायिक परिषद् ऐसी कार्रवाई कर सकती है जो वह लोक हित में करना उचित समझे । (पृष्ठ 445)

23. 2005 के विधेयक में यह उपबंध होना चाहिए कि प्रत्येक शिकायतकर्ता और प्रत्येक व्यक्ति को, जिसके अंतर्गत कोई साक्षी और वकील भी है, जो अन्वेषण और जांच में भाग लेता है, चाहे वह अपने नाम के बारे में गोपनीयता की ईप्सा करे अथवा नहीं, न्यायिक परिषद् में यह अवश्य ही वचनबंध करना चाहिए कि वह अपना स्वयं का नाम, उस न्यायाधीश का नाम, जिसके विरुद्ध शिकायत की गई है, शिकायत या किसी भी दस्तावेज या कार्यवाही की अंतर्वस्तुएं किसी को भी, जिसके अंतर्गत मीडिया भी है, न्यायिक परिषद् के लिखित रूप में पूर्व अनुमोदन के बिना प्रकट नहीं करेगा और यह विनिश्चय करना न्यायिक परिषद् का कार्य होगा कि शिकायत की अंतर्वस्तुओं को कब और किस सीमा तक जनसाधारण को प्रकट किया जाएगा । यह अवश्य ही स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि यह सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी है । एक बार न्यायिक परिषद् के समक्ष जांच पूरी हो जाने पर, यदि 'गौण उपायों' को शिकायत की प्रक्रिया पर अधिरोपित किया जाता है तो न्यायिक परिषद् द्वारा उन्हें इस शर्त के साथ प्रकाशित किया जा सकता है कि 'प्राइवेट परिनिंदा या भर्त्सना' की दशा में शिकायतकर्ता और संबंधित

न्यायाधीश का नाम प्रकाशित नहीं किया जाएगा । हटाए जाने संबंधी सिफारिश की दशा में, चूंकि रिपोर्ट अध्यक्ष/सभापति को प्रस्तुत की जानी होती है, इसलिए यह विनिश्चय अध्यक्ष/सभापति द्वारा किया जाएगा कि ऐसी रिपोर्ट कब प्रकाशित की जा सकती है । (पृष्ठ 448-449)

24. 2005 के विधेयक की धारा 19 का यह उपबंध करने के लिए संशोधन किया जाना चाहिए कि ऊपर वर्णित गोपनीयता के उपबंधों का अतिक्रमण एक अपराध होगा और यह कि ऐसे अपराध के लिए दंडित करने की प्रक्रिया वह होगी जो 2005 के विधेयक की धारा 20 के अधीन विहित की जाए । (पृष्ठ 449)

25. किसी न्यायाधीश को :

(1) राष्ट्रपति द्वारा हटाए जाने संबंधी पारित आदेश के विरुद्ध, चाहे कार्यवाहियां किसी शिकायत पर आरम्भ की गई हों या निर्देश पर;

(2) परिषद् द्वारा किसी शिकायत के आधार पर 'गौण उपायों' के बारे में पारित अन्य अंतिम आदेशों के विरुद्ध,

उच्चतम न्यायालय में अपील करने का उपबंध करने के लिए 2005 के विधेयक का संशोधन किया जाए । (पृष्ठ 455)

26. तथापि, यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि उच्चतम न्यायालय में अपील करने के अधिकार संबंधी उपबंध केवल उस न्यायाधीश के लिए हो जो उसके विरुद्ध हटाए जाने संबंधी पारित आदेश से व्यथित हो या जहां वह न्यायिक परिषद् का 'गौण उपाय' अधिरोपित करने संबंधी अंतिम आदेश हो । जहां तक शिकायतकर्ता का संबंध है अपील के किसी अधिकार का उपबंध करना आवश्यक नहीं है और यदि वह मामले को आगे ले जाना चाहता है तो वह संविधान के अनुच्छेद 32 या अनुच्छेद 226 के अधीन के उपचार का आश्रय ले सकता है । (पृष्ठ 456)

27. धारा 16(1)(क) और (ख) में 'या तो पूर्णतः या भागतः सिद्ध' शब्दों के स्थान पर 'पूर्णतः या भागतः साबित' शब्द रखे जाएं और साथ ही यह स्पष्टीकरण हो कि 'साबित' से 'युक्तियुक्त संदेह से परे साबित' अभिप्रेत है । (पृष्ठ 461)

28. यद्यपि न्यायिक परिषद् के समक्ष की कार्यवाहियां आपराधिककल्प होती हैं, तथापि जहां न्यायिक परिषद् के सदस्यों में से किसी एक की, जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश है, भारत के मुख्य

न्यायमूर्ति के रूप में पदोन्नति हो जाती है या जहां उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की, जो (न्यायिक परिषद् का) एक सदस्य है, भारत के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में पदोन्नति हो जाती है या प्राकृतिक कारणों से अथवा सेवानिवृत्ति या इनकार किए जाने के कारण से कोई रिक्ति हो जाती है या जहां कोई सदस्य रुग्णता के कारण या अन्य कारणों से उपलब्ध नहीं होता है और वह रिक्ति अन्यथा भर दी गई हो, वहां उन्हें (कार्यवाहियों को) नए सिरे से आरंभ करना आवश्यक नहीं होता है । भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को उस रिक्ति को भरकर समुचित व्यवस्था करने का हकदार बनाया जाना चाहिए और कार्यवाहियों को नए सिरे से आरंभ किए जाने की आवश्यकता के बिना उसी प्रक्रम से जारी रखा जाना चाहिए जिस प्रक्रम पर वे बंद हो गई थीं । उपुर्यक्त रूप में तथा इस और स्पष्टीकरण के साथ कि ऊपरवर्णित अत्यावश्यकताओं की दशा में कार्यवाहियों को नए सिरे से आरंभ करना आवश्यक नहीं है, एक उपबंध 2005 के विधेयक में सम्मिलित किया जाना चाहिए । (पृष्ठ 462-463)

29. 2005 के विधेयक में यह स्पष्ट करने के लिए ऐसा उपबंध सम्मिलित किया जाना चाहिए कि जहां उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश, जिसका न्यायिक परिषद् के समक्ष अन्वेषण या जांच चल रही है, उक्त कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर लेता है वहां गौण उपाय, जैसे कि परिनिंदा या भर्त्सना, सार्वजनिक या प्राइवेट, अधिरोपित करने के प्रयोजनार्थ कार्यवाहियों को जारी रखा जा सकता है । (पृष्ठ 464-465)

30. 2005 के विधेयक में ऐसा उपबंध अंतर्विष्ट होना चाहिए कि जहां न्यायिक परिषद् की हटाए जाने संबंधी सिफारिश को सदनों द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है और राष्ट्रपति द्वारा हटाए जाने संबंधी आदेश पारित कर दिया जाता है, वहां न्यायाधीश को कोई भी लोक अथवा न्यायिक, न्यायिककल्प पद धारण करने से वर्जित कर दिया जाना चाहिए और यह कि न ही वह चेम्बर व्यवसाय कर सकेगा अथवा माध्यस्थम् की कार्यवाहियों में मध्यस्थ बन सकेगा । (पृष्ठ 465)

31. धारा 28(1) में आचार संहिता के प्रति निर्देश किया गया है । इस उपबंध में यह अवश्य विहित होना चाहिए कि इसे भारत के राजपत्र में प्रकाशित किया जाना चाहिए । जब तक 2005 के प्रस्तावित विधेयक के अधीन न्यायिक परिषद् का गठन नहीं कर दिया जाता और ऐसी न्यायिक परिषद् द्वारा आचार संहिता का प्रकाशन नहीं कर दिया जाता तब तक विधेयक में यह अवश्य उपबंध होना चाहिए कि उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 7 मई, 1997 के अपने संकल्प में अंगीकार

'रिस्टेटमेंट आफ वैल्यूज आफ जुडिशियल लाइफ' को प्रस्तावित विधि के प्रयोजनार्थ आचार संहिता माना जाए । इसमें यह उपबंध भी अंतर्विष्ट होना चाहिए कि न्यायिक परिषद् द्वारा समय-समय पर आचार संहिता का, उसमें संशोधन करके, जिन्हें कि राजपत्र में अधिसूचित किया जा सकता है, उपांतरण किया जा सकता है । (पृष्ठ 467)

32. 2005 के विधेयक को, उस कदाचार से, जो प्रस्तावित अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व किया गया हो, संबंधित शिकायतों के प्रति लागू किया जाना चाहिए किन्तु इसे अधिनियम के प्रारंभ होने के दो वर्ष पूर्व की अवधि तक निर्बंधित किया जा सकता है परन्तु यह तब जबकि न्यायाधीश न्यायिक परिषद् के समक्ष शिकायत फाइल किए जाने की तारीख तक सेवानिवृत्त न हुआ हो । (पृष्ठ 468)

33. 2005 के विधेयक निम्नलिखित और संशोधन किए जाएं (पृष्ठ 468-477)

(1) धारा 2(ख) में शब्दों में उद्धरण चिह्न (inverted commas) स्पष्ट रूप से उपदर्शित किए जाने चाहिएं, इन्हें "आचार संहिता" के रूप में पढ़ा जाना चाहिए । इसी उपधारा में "धारा 32" के स्थान पर "धारा 28" रखा जाना चाहिए ।

(2) अध्याय 2 के शीर्षक 'अन्वेषण के लिए तंत्र' के स्थान पर 'प्रारंभिक अन्वेषण और जांच के लिए तंत्र' शीर्षक रखा जाना चाहिए ।

(3) धारा 10 को दो उप भागों में बांटा जाए और प्रारूप विधेयक में यथा प्रस्तावित धारा 10 के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाना चाहिए :

> "(1) परिषद्, धारा 9 की उपधारा (2) के अधीन अध्यक्ष या सभापति से निर्देश प्राप्त होने पर, धारा 7 में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, न्यायाधीश के विरुद्ध निश्चित आरोप विरचित करेगी, जिनके आधार पर जांच प्रस्तावित है ।
>
> (2) उपधारा (1) के अधीन विरचित आरोप और साथ ही उन आधारों के, जिन पर प्रत्येक आरोप आधारित हो, कथन न्यायाधीश को संसूचित किए जाएंगे और उसे उस समय के भीतर, जो परिषद् द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, लिखित कथन प्रस्तुत करने का युक्तियुक्त अवसर प्रदान किया जाएगा ।"

(4) धारा 11 में, उपधारा (3) के पश्चात् निम्नलिखित आशय की एक पृथक् उपधारा अवश्य होनी चाहिए :

"(4) यदि न्यायाधीश चिकित्सा बोर्ड द्वारा आवश्यक समझी गई चिकित्सा परीक्षा कराने को सहमत हो जाता है, तो उक्त बोर्ड न्यायाधीश को विशेषज्ञों की ऐसी अन्य चिकित्सा रिपोर्टें अथवा राय प्रस्तुत करने की अनुज्ञा दे सकता है जो वह (न्यायाधीश) यह साबित करने के लिए आवश्यक समझता है कि वह किसी शारीरिक या मानसिक असमर्थता से ग्रस्त नहीं है और तत्पश्चात् चिकित्सा बोर्ड के कहने पर की गई चिकित्सा परीक्षा पर तथा न्यायाधीश द्वारा प्रस्तुत यथा पूर्वोक्त सामग्री पर आधारित एक रिपोर्ट बोर्ड अपने निष्कर्षों सहित परिषद् को प्रस्तुत करेगा ।"

इसके अतिरिक्त धारा 11 की उपधारा (4) को उपधारा (5) के रूप में पुनर्संख्यांकित किया जाना चाहिए और उसके स्थान पर निम्नलिखित उपधारा रखी जानी चाहिए :

"(5) परिषद्, न्यायाधीश के लिखित कथन, चिकित्सा बोर्ड द्वारा प्रस्तुत की गई चिकित्सा रिपोर्ट और न्यायाधीश द्वारा चिकित्सा बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री, यदि कोई हो, पर विचार करने के पश्चात् यथास्थिति, धारा 8 की उपधारा (1) या धारा 10 के अधीन विरचित आरोपों में संशोधन कर सकेगी और ऐसे किसी मामले में न्यायाधीश को नए सिरे से लिखित प्रतिरक्षा कथन प्रस्तुत करने का युक्तियुक्त अवसर प्रदान किया जाएगा ।"

(5) अध्याय 5 के शीर्षक **"अन्वेषण के लिए प्रक्रिया"** के स्थान पर **"जांच के लिए प्रक्रिया"** शीर्षक रखा जाना चाहिए ।

(6) धारा 12(2) के परन्तुक में (अंग्रेजी पाठ में), "may" शब्द दो बार प्रयोग किया गया है, "writing" शब्द के पश्चात् प्रयुक्त "may" शब्द का लोप किया जाए ।

(7) अध्याय 6 के शीर्षक **"अन्वेषण की समाप्ति के पश्चात् प्रक्रिया"** के स्थान पर **"जांच की समाप्ति के पश्चात् प्रक्रिया"** शीर्षक रखा जाए ।

(8) धारा 16(1)(ख) के दो खंडों का अर्थात् "(i) शिकायतकर्ता ; और" तथा "(ii) संबंधित न्यायाधीश" का लोप किया जाए तथा 'खंड (iii)' को ' खंड (i)' के रूप में अभिहित किया जाए ।

(9) धारा 16(2)(क) के स्थान पर निम्नलिखित उपबंध रखा जाए :

"यदि परिषद्, अपनी रिपोर्ट में, इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि संबंधित न्यायाधीश के विरुद्ध कोई भी आरोप पूर्णतः या भागतः साबित नहीं हुआ है, तो राष्ट्रपति मामले को बंद कर देगा और न्यायाधीश के विरुद्ध आगे कोई और कार्रवाई नहीं की जाएगी और न्यायाधीश तथा

शिकायतकर्ता को तदनुसार सूचित किया जाएगा ।"

(10) धारा 16(2)(ख) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा (उपबंध) रखी जाए :-

"यदि परिषद्, अपनी रिपोर्ट में, इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि आरोप साबित होते हैं और यह सिफारिश करती है कि आरोपों के आधार पर हटाया जाना आवश्यक है, तो राष्ट्रपति परिषद् की रिपोर्ट तथा सिफारिश को, संलग्न सामग्री सहित, संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखवाएगा ।"

(11) धारा 17(1) का यह कथन करने के लिए समुचित रूप से संशोधन किया जाए कि न्यायिक परिषद् हटाए जाने संबंधी अपने निष्कर्ष और सिफारिशें, यदि कोई हों, अध्यक्ष या सभापति को अग्रेषित करेगी । धारा 17(1) का यह उपबंध करने के लिए अवश्य ही संशोधन किया जाना चाहिए कि न्यायिक परिषद् किसी न्यायाधीश को हटाए जाने संबंधी अपने निष्कर्ष और अपनी सिफारिशें, यदि कोई हों, अध्यक्ष या सभापति को अग्रेषित करेगी ।

(12) धारा 18 के पार्श्व टिप्पण में प्रयुक्त शब्द "महाभियोग" के स्थान पर "सदनों द्वारा समावेदन" शब्द रखे जाएं ।

हम अंशकालिक सदस्य डा. एस. मुरलीधर द्वारा इस रिपोर्ट और विशेषकर अध्याय 2, 20 और 21 को तैयार करने के संबंध में किए गए गहन शोध और प्रदान की गई सहायता के लिए उनका आभार प्रकट करना चाहते हैं ।

हम, तदनुसार, सिफारिश करते हैं ।

ह./-

(न्यायमूर्ति एम. जगन्नाथ राव)
अध्यक्ष

ह./-

(डा. के. एन. चतुर्वेदी)
सदस्य-सचिव

तारीख 31 जनवरी, 2006

न्यायाधीश (जांच) विधेयक, 2005

उच्चतम न्यायालय के या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता के अन्वेषण और सबूत की और संसद् द्वारा राष्ट्रपति के समक्ष समावेदन रखे जाने की प्रक्रिया का विनियमन करने के लिए तथा उनसे संबद्ध विषयों के लिए

विधेयक

भारत गणराज्य के छप्पनवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो : –

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. **संक्षिप्त नाम और प्रारंभ** – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 2005 है ।

2. यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "सभापति" से राज्यसभा का सभापति अभिप्रेत है;

(ख) "आचार संहिता" से परिषद् द्वारा धारा 32 की उपधारा (1) के अधीन जारी किए गए मार्गदर्शक सिद्धांत अभिप्रेत हैं;

(ग) "परिषद्" से धारा 3 के अधीन स्थापित राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् अभिप्रेत है;

(घ) "न्यायाधीश" से उच्चतम न्यायालय का या किसी उच्च न्यायालय का

न्यायाधीश अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति भी है;

(ङ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है;

(च) "अध्यक्ष" से लोकसभा का अध्यक्ष अभिप्रेत है ।

अध्याय 2

अन्वेषण के लिए तंत्र

3. **राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् की स्थापना** – (1) इस अधिनियम के प्रारंभ से, यथास्थिति, उच्चतम न्यायालय के किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के विरुद्ध शिकायत में किए गए कदाचार या असमर्थता के किसी अभिकथन में अंतर्वलित या उससे उद्भूत या संसक्त किसी विषय का अन्वेषण करने के लिए राष्ट्रीय न्यायिक परिषद् नामक एक परिषद् की स्थापना की जाएगी जो निम्नलिखित से मिलकर बनेगी : –

(क) भारत का मुख्य न्यायमूर्ति – अध्यक्ष

(ख) उच्चतम न्यायालय के दो ज्येष्ठतम न्यायाधीश, जिन्हें भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाएगा – सदस्य

(ग) उच्च न्यायालयों के दो ज्येष्ठतम मुख्य न्यायमूर्ति, जिन्हें भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाएगा – सदस्य ।

(2) जहां शिकायत ऐसे किसी न्यायाधीश के विरुद्ध है जो परिषद् का सदस्य है, वहां उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, भारत का मुख्य न्यायमूर्ति, यथास्थिति, उच्चतम न्यायालय के अगले ज्येष्ठतम न्यायाधीश को या उच्च न्यायालय के अगले ज्येष्ठतम मुख्य न्यायमूर्ति को, उक्त न्यायाधीश के विरुद्ध शिकायत का अन्वेषण करने के प्रयोजनों के लिए सदस्य के रूप में नामनिर्दिष्ट करेगा :

परन्तु यह कि जहां निर्देश अध्यक्ष या सभापति से प्राप्त होता है और शिकायत भारत के

मुख्य न्यायमूर्ति के विरुद्ध है तो वहां भारत का मुख्य न्यायमूर्ति परिषद् की कार्यवाहियों में भाग नहीं लेगा तथा राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के अगले ज्येष्ठतम न्यायाधीश को परिषद् के अध्यक्ष के रूप में और उच्चतम न्यायालय के ज्येष्ठता में अगले एक अन्य न्यायाधीश को सदस्य के रूप में नामनिर्दिष्ट करेगा ।

(3) उपधारा (2) के अधीन इस प्रकार नियुक्त किया गया परिषद् का वह सदस्य उस उपधारा में निर्दिष्ट अन्वेषण की समाप्ति पर उसका सदस्य नहीं रहेगा ।

4. परिषद् के कर्मचारिवृंद – (1) परिषद्, इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों के (जिनके अंतर्गत शिकायतों की बाबत सत्यापन और जांच भी है) निर्वहन में अपनी सहायता के प्रयोजन के लिए एक सचिव और ऐसे अन्य अधिकारियों तथा कर्मचारियों को नियुक्त करेगी, जो राष्ट्रपति, परिषद् के परामर्श से, समय-समय पर, अवधारित करे ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, परिषद् किसी शिकायत या शिकायतों के किन्हीं वर्गों के संबंध में कार्यवाही करने के प्रयोजन के लिए –

(क) केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार के किसी अधिकारी या कर्मचारी की अथवा अन्वेषण अभिकरण की सेवाएं उस सरकार की सहमति से; या

(ख) किसी अन्य व्यक्ति या अभिकरण की सेवाएं,

प्राप्त कर सकेगी ।

(3) उपधारा (1) में निर्दिष्ट अधिकारियों और कर्मचारियों की तथा उपधारा (2) निर्दिष्ट में अधिकारियों, कर्मचारियों, अभिकरणों और व्यक्तियों की सेवा के निबंधन और शर्तें (जिनके अंतर्गत ऐसी विशेष शर्तें भी हैं जो उन्हें उनके कृत्यों के निर्वहन में बिना भय के कार्य करने के लिए समर्थ बनाने के लिए आवश्यक समझी जाए) वे होंगी जो राष्ट्रपति, परिषद् के परामर्श से, समय-समय पर अवधारित करे ।

(4) इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों के निर्वहन में, उपधारा (1) में निर्दिष्ट अधिकारी और कर्मचारी तथा उपधारा (2) में निर्दिष्ट अधिकारी, कर्मचारी, अभिकरण और व्यक्ति अनन्य रूप से परिषद् के प्रशासनिक नियंत्रण और निदेश के अधीन होंगे ।

5. **शिकायतें** – (1) कोई भी व्यक्ति ऐसी कोई शिकायत लिखित रूप में परिषद् को कर सकेगा, जिसमें किसी न्यायाधीश की बाबत कदाचार या असमर्थता के अभिकथन को अंतर्वलित हों ।

(2) उपधारा (1) के अधीन शिकायत विहित प्ररूप में होगी और उसमें उस कदाचार या असमर्थता की, जो अभिकथन की विषयवस्तु है, विशिष्टियां दी जाएंगी और उसके साथ ऐसी विशिष्टियों के समर्थन में एक शपथपत्र भी होगा ।

(3) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, परिषद् किसी अन्य स्रोत से कोई शिकायत ग्रहण कर सकेगी ।

6. **किसी अन्य व्यक्ति की शिकायत में कतिपय मामलों में परिषद् की अन्वेषण करने की शक्ति** – परिषद् संबंधित न्यायाधीश से भिन्न किसी व्यक्ति के किसी कार्य या आचरण का उस सीमा तक, अन्वेषण भी कर सकेगी, जहां तक वह ऐसी किसी शिकायत में अपने अन्वेषण के प्रयोजन के लिए ऐसा करना आवश्यक समझे :

परंतु यह कि परिषद् ऐसे व्यक्ति को सुनवाई का और अपनी प्रतिरक्षा में साक्ष्य प्रस्तुत करने का युक्तियुक्त अवसर प्रदान करेगी ।

7. **परिषद् द्वारा शिकायतों की प्रारंभिक छानबीन** – (1) यदि परिषद् का शिकायत पर विचार करने के पश्चात् तथा ऐसा सत्यापन करने के पश्चात् जो वह समुचित समझे, यह समाधान हो जाता है कि –

(क) शिकायत तुच्छ या तंग करने वाली है या सद्भावपूर्वक नहीं की गई है; या

(ख) शिकायत का अन्वेषण करने के पर्याप्त आधार नहीं हैं,

तो वह शिकायत को खारिज करने के अपने कारणों को लेखबद्ध करने के पश्चात् उसे खारिज कर देगी और उसकी संसूचना शिकायतकर्ता को देगी ।

(2) उपधारा (1) के अधीन की गई शिकायत की बाबत सत्यापन की प्रक्रिया वह होगी जो परिषद् मामले की परिस्थितियों में समुचित समझे और विशिष्ट रूप से परिषद्, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझे, संबंधित न्यायाधीश की टिप्पणियों की मांग कर सकेगी ।

8. **जांच की बाबत प्रक्रिया** – (1) यदि परिषद्, किसी शिकायत की बाबत धारा 6 के अधीन विचार और सत्यापन किए जाने के पश्चात्, कोई अन्वेषण करने का प्रस्ताव करती है, तो वह न्यायाधीश के विरुद्ध ऐसे निश्चित आरोप विरचित करेगी जिनके आधार पर अन्वेषण किए जाने का प्रस्ताव किया गया है ।

(2) उपधारा (1) के अधीन विरचित आरोपों की, उन आधारों के कथन सहित जिन पर ऐसा प्रत्येक आरोप आधारित है, संसूचना न्यायाधीश को दी जाएगी और उसे प्रतिरक्षा का लिखित कथन ऐसे समय के भीतर, जो परिषद् द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, प्रस्तुत करने का युक्तियुक्त अवसर प्रदान किया जाएगा ।

अध्याय 3

अध्यक्ष या सभापति से हटाए जाने संबंधी प्रस्ताव प्राप्त होने पर प्रक्रिया

9. **किसी न्यायाधीश को हटाए जाने के लिए राष्ट्रपति के समक्ष समावेदन रखे जाने के लिए प्रस्ताव-सूचना** – (1) यदि राष्ट्रपति के समक्ष ऐसा समावेदन, जिसमें किसी न्यायाधीश को हटाए जाने की प्रार्थना की गई हो, रखे जाने संबंधी प्रस्ताव की ऐसी सूचना दी जाती है, जो –

(क) लोकसभा में दी गई सूचना की दशा में, उस सदन के कम से कम एक सौ सदस्यों द्वारा;

(ख) राज्यसभा में दी गई सूचना की दशा में, उस सदन के कम से कम पचास सदस्यों द्वारा,

हस्ताक्षरित हों, तो, यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति ऐसे व्यक्तियों से परामर्श करने के पश्चात्, जिन्हें वह ठीक समझे, और ऐसी सामग्री पर, यदि कोई हो, विचार करने के पश्चात्, जो उसके पास उपलब्ध हो, या तो प्रस्ताव को ग्रहण कर सकेगा या उसे ग्रहण करने से इनकार कर सकेगा ।

(2) यदि उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रस्ताव ग्रहण कर लिया जाता है, तो, यथास्थिति,

अध्यक्ष या सभापति प्रस्ताव को लंबित रखेगा और उन अभिकथनों को, जिनके आधार पर प्रस्ताव आधारित है, परिषद् को निर्दिष्ट करेगा :

परंतु यह कि जहां उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रस्ताव-सूचनाएं संसद् के दोनों सदनों को एक ही दिन दी जाती हैं, वहां कोई निर्देश तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि वह प्रस्ताव दोनों सदनों द्वारा ग्रहण न कर लिया जाए और जहां ऐसा प्रस्ताव दोनों सदनों द्वारा ग्रहण कर लिया गया है वहां निर्देश अध्यक्ष और सभापति द्वारा संयुक्त रूप से किया जाएगा :

परंतु यह और कि जहां यथापूर्वोक्त प्रस्ताव-सूचनाएं संसद् के सदनों को भिन्न-भिन्न तारीखों को दी जाती हैं, वहां वह सूचना, जो बाद में दी गई है, नामंजूर हो जाएगी।

10. **परिषद् द्वारा न्यायाधीश के विरुद्ध आरोप विरचित किया जाना** – धारा 9 की उपधारा (2) के अधीन अध्यक्ष या सभापति से किसी निर्देश के प्राप्त होने पर, परिषद्, धारा 6 में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, न्यायाधीश के विरुद्ध वे निश्चित आरोप विरचित करेगी, जिनके आधार पर अन्वेषण प्रस्तावित है और उस पर तदनुसार कार्यवाही करेगी ।

अध्याय 4

किसी न्यायाधीश की शारीरिक या मानसिक असमर्थता की दशा में प्रक्रिया

11. **न्यायाधीश की चिकित्सीय परीक्षा** – (1) जहां यह अभिकथन किया जाता है कि न्यायाधीश किसी शारीरिक या मानसिक असमर्थता के कारण अपने पद के कर्तव्यों का दक्षतापूर्वक निर्वहन करने में असमर्थ है और उस अभिकथन का प्रत्याख्यान किया जाता है, तो परिषद् उस न्यायाधीश की ऐसे चिकित्सा बोर्ड से, जो उस प्रयोजन के लिए नियुक्त किया जाए, चिकित्सीय परीक्षा की व्यवस्था कर सकेगी तथा न्यायाधीश इस निमित्त विनिर्दिष्ट समय के भीतर ऐसी चिकित्सीय परीक्षा के लिए अपने को समर्पित करेगा ।

(2) चिकित्सा बोर्ड न्यायाधीश की ऐसी चिकित्सीय परीक्षा करेगा जो वह आवश्यक समझे और परिषद् को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा जिसमें यह कथन होगा कि क्या असमर्थता उतनी है जो न्यायाधीश को पद पर बने रहने के लिए अयोग्य बना दे ।

(3) यदि न्यायाधीश चिकित्सा बोर्ड द्वारा आवश्यक समझी गई चिकित्सीय परीक्षा कराने से इंनकार कर देता है तो वह परिषद् को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा, जिसमें उस परीक्षा का कथन होगा जिसको कराने से न्यायाधीश ने इनकार कर दिया है और परिषद्, ऐसी रिपोर्ट के प्राप्त होने पर, यह उपधारणा कर सकेगी कि न्यायाधीश ऐसी शारीरिक या मानसिक असमर्थता से ग्रस्त है जिसका कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रस्ताव में अभिकथन किया गया है।

(4) परिषद्, न्यायाधीश के लिखित कथन पर अथवा चिकित्सा रिपोर्ट, यदि कोई हो, पर विचार करने के पश्चात् धारा 8 की उपधारा (1) और धारा 10 के अधीन विरचित आरोपों में संशोधन कर सकेगी और ऐसे किसी मामले में, न्यायाधीश को नए सिरे प्रतिरक्षा का लिखित कथन प्रस्तुत करने का युक्तियुक्त अवसर प्रदान किया जाएगा ।

अध्याय 5

अन्वेषण के लिए प्रक्रिया

12. **अन्वेषण का बंद कमरे में किया जाना** – (1) प्रत्येक ऐसा अन्वेषण अध्यक्ष और सदस्यों द्वारा संयुक्त रूप से आसीन होकर बंद कमरे में किया जाएगा ।

(2) परिषद् प्रत्येक ऐसा अन्वेषण यथासंभव शीघ्रता से करेगी और किसी भी दशा में ऐसा अन्वेषण शिकायत प्राप्त होने की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर पूरा करेगी :

परंतु यह कि परिषद्, ऐसे कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएंगे, अन्वेषण छह मास की अतिरिक्त अवधि के भीतर पूरी कर सकेगी ।

13. **परिषद् की अपनी स्वयं की प्रक्रिया विनियमित करने की शक्ति** – परिषद् को, जैसा ऊपर कहा गया है उसके सिवाय, अन्वेषण करने में अपनी स्वयं की प्रक्रिया विनियमित करने की शक्ति होगी और वह न्यायाधीश को साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने, साक्ष्य प्रस्तुत करने तथा अपनी प्रतिरक्षा में सुने जाने का युक्तियुक्त अवसर प्रदान करेगी ।

14. **केन्द्रीय सरकार द्वारा न्यायाधीश के विरुद्ध मामलों का संचालन करने के लिए अधिवक्ता नियुक्त किया जाना** – केन्द्रीय सरकार, यदि परिषद् द्वारा अनुरोध किया जाए, न्यायाधीश के विरुद्ध मामले का संचालन करने के लिए एक अधिवक्ता नियुक्त कर सकेगी ।

15. **तलाशी और अभिग्रहण** – (1) यदि परिषद् के पास यह विश्वास करने का कारण है कि किसी ऐसे दस्तावेज को, जो उसकी राय में इस अधिनियम के अधीन किसी अन्वेषण के लिए उपयोगी या उससे सुसंगत होगा, किसी स्थान में छिपाया गया है, तो वह अपने अधीनस्थ किसी अधिकारी या धारा 4 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी अन्वेषण अभिकरण के किसी अधिकारी को ऐसें दस्तावेजों की तलाश करने और उनका अभिग्रहण करने के लिए प्राधिकृत कर सकेगी ।

(2) यदि परिषद् का यह समाधान हो जाता है कि उपधारा (1) के अधीन अभिगृहीत कोई दस्तावेज इस अधिनियम के अधीन किसी अन्वेषण के प्रयोजन के लिए साक्ष्य होगा और उस दस्तावेज को अपनी अभिरक्षा में रखे रखना आवश्यक है तो वह उक्त दस्तावेज को ऐसा अन्वेषण पूरा होने तक अपने पास रख सकेगी ।

(3) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के, तलाशियों से संबंधित, उपबंध, जहां तक हो सके, इस धारा के अधीन तलाशियों को, इस उपांतरण के अधीन रहते हुए लागू होंगे कि उक्त संहिता की धारा 165 की उपधारा (5) इस प्रकार प्रभावी होगी मानो "मजिस्ट्रेट" शब्द के स्थान पर जहां-जहां वह आता है, "परिषद् या उसके द्वारा प्राधिकृत कोई अधिकारी" शब्द रखे गए हों ।

अध्याय 6

अन्वेषण की समाप्ति के पश्चात् प्रक्रिया

16. **शिकायत का निपटारा और अनुवर्ती कार्रवाई** – (1) यदि, किसी शिकायत की बाबत अन्वेषण के पश्चात, परिषद् का यह समाधान हो जाता है कि –

(क) शिकायत में किया गया कोई भी अभिकथन या तो पूर्णत: या भागत: सिद्ध नहीं हुआ या हुए हैं, तो वह लिखित रूप में रिपोर्ट द्वारा अपने निष्कर्ष और सिफारिशें तदनुसार राष्ट्रपति को संसूचित करेगी;

(ख) शिकायत में किए गए सभी या कोई अभिकथन या तो पूर्णत: या भागत: सिद्ध

किए गए हैं या सिद्ध किया गया है, तो वह लिखित रूप में रिपोर्ट द्वारा अपने निष्कर्ष और सिफारिशें –

(i) शिकायतकर्ता; और

(ii) संबंधित न्यायाधीश;

(iii) राष्ट्रपति;

को संसूचित करेगी ।

(2) यदि राष्ट्रपति का उपधारा (2) के अधीन सिफारिश प्राप्त होने पर यह समाधान हो जाता है कि –

(क) संबंधित न्यायाधीश के विरुद्ध कोई भी अभिकथन या तो पूर्णत: या भागत: सिद्ध नहीं होता है या होते हैं, तो वह उस मामले को बंद कर देगा और न्यायाधीश के विरुद्ध और आगे कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी; या

(ख) परिषद् द्वारा न्यायाधीश के विरुद्ध पृथमदृष्ट्या मामला बनाया गया है तो वह परिषद् के निष्कर्षों को, संलग्न सामग्री सहित, संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखवाएगा।

(3) उपधारा (2) के अधीन परिषद् की सलाह, संलग्न सामग्री सहित, रखे जाने पर, सरकार संसद् के किसी भी सदन में राष्ट्रपति के समक्ष अभ्यावेदन रखे जाने के लिए, जिसमें न्यायाधीश को हटाए जाने की प्रार्थना की गई हो, एक प्रस्ताव लाएगी ।

17. **अध्यक्ष या सभापति से निर्देश पर प्रस्ताव का निपटारा** – (1) धारा 16 की उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां अन्वेषण, यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति से निर्देश पर धारा 8 के अधीन आरंभ किया गया था वहां परिषद् अपने निष्कर्ष अध्यक्ष या सभापति को अग्रेषित करेगी ।

(2) यदि परिषद् की रिपोर्ट में यह निष्कर्ष अंतर्विष्ट है कि न्यायाधीश किसी कदाचार का दोषी नहीं है और किसी असमर्थता से ग्रस्त नहीं है, तो उस रिपोर्ट के संबंध में संसद् के किसी भी सदन में आगे कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी और संसद् के सदन या सदनों में लंबित प्रस्ताव पर कार्यवाही नहीं की जाएगी ।

(3) यदि परिषद् की रिपोर्ट में यह निष्कर्ष अंतर्विष्ट है कि न्यायाधीश किसी कदाचार का दोषी है या वह किसी असमर्थता से ग्रस्त है तो धारा 8 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रस्ताव, परिषद् की रिपोर्ट के साथ, संसद् के सदन या सदनों द्वारा, जिसमें या जिनमें वह लंबित पड़ा है, विचारार्थ ग्रहण किया जाएगा ।

18. **महाभियोग** – यदि धारा 16 की उपधारा (3) या धारा 17 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट प्रस्ताव, यथास्थिति, संविधान के अनुच्छेद 124 के खंड (5) के उपबंधों के अनुसार या संविधान के अनुच्छेद 218 के साथ पठित उस खंड के उपबंधों के अनुसार संसद् के प्रत्येक सदन द्वारा अंगीकृत कर लिया जाता है, तो यह समझा जाएगा कि न्यायाधीश का कदाचार या असमर्थता साबित हो गई है और न्यायाधीश को हटाए जाने की प्रार्थना करने संबंधी अभिव्यक्त समावेदन संसद् के प्रत्येक सदन द्वारा उसी सत्र में, जिसमें कि प्रस्ताव अंगीकार किया गया है, राष्ट्रपति के समक्ष विहित रीति में रखा जाएगा ।

अध्याय 7

अपराध और शास्तियां

19. **परिषद् का साशय अपमान करना या उसके कार्य में विघ्न डालना** – (1) जो कोई, परिषद् या इसके सदस्यों में से किसी सदस्य द्वारा इस अधिनियम के अधीन कोई सत्यापन या अन्वेषण किए जाने के समय, परिषद् का साशय अपमान करेगा या उसके कार्य में विघ्न डालेगा वह सादा कारावास से, जिसकी अवधि छह मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडनीय होगा ।

(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 199 की उपधारा (2) के उपबंध, उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी अपराध के संबंध में वैसे ही लागू होंगे जैसे वे उक्त धारा की उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी अपराध के संबंध में लागू होते हैं किन्तु वे इस उपांतरण के अधीन होंगे कि ऐसे अपराध के संबंध में लोक अभियोजक द्वारा की गई कोई शिकायत परिषद् की पूर्व मंजूरी से ही किया जाएगा, अन्यथा नहीं ।

20. **कतिपय अपराधों का विचारण करने की परिषद् की शक्ति** – (1) जब कोई ऐसा

अपराध जो धारा 19 की उपधारा (1) में वर्णित है, परिषद् की दृष्टिगोचरता या उपस्थिति में किया जाता है तो परिषद् उस अपराधी को अभिरक्षा में निरुद्ध करा सकेगी और उसी दिन किसी भी समय उस अपराध का संज्ञान कर सकेगी तथा अपराधी को यह हेतुक दर्शित करने का उचित अवसर देने के पश्चात् कि उसको इस धारा के अधीन दंडित क्यों नहीं किया जाए, ऐसे अपराधी का जहां तक हो सके, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अधीन संक्षिप्त विचारणों के लिए विहित प्रक्रिया के अनुसार संक्षिप्त रूप में विचारण कर सकेगी और उसे सादा कारावास से, जिसकी अवधि एक मास तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो पांच सौ रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से दंडित कर सकेगी ।

(2) परिषद्, इस धारा के अधीन विचारण किए गए प्रत्येक मामले में, अपराध गठित करने वाले तथ्य और अपराधी द्वारा किया गया कथन, यदि कोई हो, और साथ ही निष्कर्ष और दंडादेश अभिलिखित करेगी ।

(3) इस धारा के अधीन किए गए विचारण पर सिद्धदोष ठहराया गया कोई व्यक्ति उच्चतम न्यायालय को अपील कर सकेगा ।

(4) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, इस धारा के उपबंध प्रभावी होंगे ।

21. **कतिपय मामलों में न्यायिक कार्य समनुदेशित करने पर रोक** – अन्वेषण या महाभियोग के लंबित रहने के दौरान, परिषद् को यह प्रतीत होता है कि ऋजु और निष्पक्ष अन्वेषण के हित में यह आवश्यक है कि संबंधित न्यायाधीश को न्यायिक कार्य समनुदेशित करने पर रोक लगा दी जाए, तो वह ऐसी सिफारिश कर सकेगी ।

अध्याय 8

प्रकीर्ण

22. **परिषद् की समितियां गठित करने की शक्ति** – (1) यदि परिषद् ऐसा करना समीचीन समझती है तो वह अपने एक या अधिक सदस्यों को नामनिर्दिष्ट कर सकेगी जो मामले का अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए एक अन्वेषण समिति का गठन करेंगे ।

(2) समिति को अन्वेषण करते समय परिषद् की सभी शक्तियां प्राप्त होंगी ।

(3) समिति अपनी रिपोर्ट परिषद् को उस पर विचार करने के लिए और समिति द्वारा निकाले गए निष्कर्षों पर अंतिम मत अपनाने के लिए प्रस्तुत करेगी ।

23. **कतिपय मामलों में अवमान के लिए कोई कार्रवाई न किया जाना** – इस अधिनियम के अधीन अन्वेषण प्रारंभ होने के पश्चात्, किसी न्यायालय में न्यायालय अवमान के लिए कोई कार्रवाई नहीं होगी अथवा उन अभिकथनों की बाबत, जो अन्वेषण की विषयवस्तु हैं, कोई कार्यवाही नहीं चलाई जाएगी ।

24. **परिषद् द्वारा किए गए अन्वेषण से आपराधिक दायित्व पर प्रभाव न पड़ना** – परिषद् के समक्ष लंबित किसी अन्वेषण से अन्वेषणाधीन अभिकथनों की बाबत आपराधिक दायित्व पर प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

25. **अन्वेषण से संबंधित सभी अभिलेखों, दस्तावेजों आदि का गोपनीय होना** – किसी अन्वेषण से संबंधित कार्यवाहियों के सभी कागजपत्र, दस्तावेज और अभिलेख गोपनीय होंगे और उन्हें किसी भी व्यक्ति द्वारा, परिषद् द्वारा यथा निदेशित के सिवाय, किसी कार्यवाही में प्रकट नहीं किया जाएगा ।

26. **सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण** – ऐसी किसी बात की बाबत, जो सद्भावपूर्वक की गई है या की जानी आशयित है, कोई वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही परिषद् के विरुद्ध या किसी पदाधिकारी अथवा कर्मचारी, अभिकरण या परिषद् द्वारा अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए नियोजित व्यक्ति के विरुद्ध नहीं होगी ।

27. **भारतीय दंड संहिता की धारा 193 के प्रयोजनों के लिए अन्वेषण का न्यायिक कार्यवाहियां होना** – परिषद् या उसकी समितियों के समक्ष के अन्वेषण को भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 193 के अर्थांतर्गत न्यायिक कार्यवाही समझा जाएगा ।

28. **न्यायाधीशों के लिए आचार संहिता** – (1) परिषद् न्याय-प्रशासन के हित में समय-समय पर आचार संहिता जारी करेगी जिसमें न्यायाधीशों के आचरण और व्यवहार से संबंधित मार्गदर्शक सिद्धांत होंगे ।

(2) उपधारा (1) के अधीन जारी की गई आचार संहिता में अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध हो सकेगा कि प्रत्येक न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय के या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किए जाने के समय और तत्पश्चात् प्रतिवर्ष अपनी आस्तियों तथा दायित्वों की, यथास्थिति, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को संसूचना देगा ।

29. **नियम बनाने के लिए दोनों सदनों की संयुक्त समितियों का गठन** – (1) इस अधिनियम के प्रयोजनों को क्रियान्वित करने के लिए नियम बनाने के प्रयोजनार्थ, संसद् के दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति का इसमें इसके पश्चात् अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार गठन किया जाएगा ।

(2) संयुक्त समिति पन्द्रह सदस्यों से मिलकर बनेगी, जिनमें से दस सदस्य अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे और पांच सदस्य सभापति द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे ।

(3) संयुक्त समिति अपना स्वयं का अध्यक्ष निर्वाचित करेगी और उसे अपनी स्वयं की प्रक्रिया विनियमित करने की शक्ति होगी ।

(4) उपधारा (1) के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, संयुक्त समिति अन्य विषयों से निम्नलिखित के लिए उपबंध करने के लिए नियम बना सकेगी, अर्थात् : –

(क) संसद् के एक सदन द्वारा अंगीकृत प्रस्ताव को दूसरे सदन में पारेषित करने की रीति;

(ख) किसी न्यायाधीश को हटाए जाने के लिए राष्ट्रपति के समक्ष समावेदन रखे जाने की रीति;

(ग) सुविधाएं, जो न्यायाधीश को अपनी प्रतिरक्षा करने के लिए प्रदत्त की जा सकेंगी;

(घ) कोई अन्य विषय, जिसके लिए नियमों द्वारा उपबंध किया जाना होगा या किया जाए अथवा जिसके संबंध में संयुक्त समिति की राय में उपबंध करना आवश्यक है।

(5) इस धारा के अधीन बनाए गए कोई नियम तब तक प्रभावी नहीं होंगे जब तक कि वे अध्यक्ष और सभापति, दोनों द्वारा अनुमोदित नहीं कर दिए जाते और उनकी पुष्टि न कर दी जाती तथा वे राजपत्र में प्रकाशित नहीं कर दिए जाते और नियमों का ऐसा प्रकाशन इस बात का निश्चायक सबूत होगा कि वे सम्यक् रूप से बनाए गए हैं ।

30. **निरसन और व्यावृत्ति** – (1) न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 इसके द्वारा निरसित किया जाता है ।

(2) न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 (1968 का 51) के निरसन के होते हुए भी, उक्त अधिनियम की धारा 7 के अधीन संयुक्त समिति द्वारा बनाए गए नियम तब तक प्रवृत्त बने रहेंगे जब तक कि समिति द्वारा इस अधिनियम के अधीन नए नियम नहीं बना दिए जाते ।

न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968

(1968 का अधिनियम सं. 51)

[5 दिसंबर, 1968]

उच्चतम न्यायालय के या किसी उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता के अन्वेषण और साबूत की और संसद् द्वारा राष्ट्रपति को समावेदन उपस्थापित किए जाने की प्रक्रिया का विनियमन करने के लिए तथा उनसे संबद्ध विषयों के लिए

अधिनियम

भारत गणराज्य के उन्नीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

1. **संक्षिप्त नाम और प्रारंभ** – (1) यह अधिनियम न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 कहा जा सकेगा ।

(2) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जिसे केंद्रीय सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "सभापति" से राज्य सभा का सभापति अभिप्रेत है ;

(ख) "समिति" से धारा 3 के अधीन गठित समिति अभिप्रेत है ;

(ग) "न्यायाधीश" से उच्चतम न्यायालय का या किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत भारत का मुख्य न्यायाधिपति और किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति भी है ;

(घ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ङ) "अध्यक्ष" से लोक सभा का अध्यक्ष अभिप्रेत है ।

3. **न्यायाधीश के कदाचार या असमर्थता का समिति द्वारा अन्वेषण** -- (1) यदि राष्ट्रपति को ऐसा समावेदन, जिसमें किसी न्यायाधीश के हटाए जाने की प्रार्थना हो, उपस्थापित करने के प्रभाव की ऐसी सूचना दी जाए जो, --

(क) लोक सभा में दी गई सूचना की दशा में, उस सदन के सौ से अन्यून सदस्यों द्वारा ;

(ख) राज्य सभा में दी गई सूचना की दशा में, उस सभा के पचास से अन्यून सदस्यों द्वारा ;

हस्ताक्षरित हो तो, यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति ऐसे व्यक्तियों से, यदि कोई हों, परामर्श करने के पश्चात् जिन्हें वह ठीक समझे और ऐसी सामग्री पर, यदि कोई हो, विचार करने के पश्चात् जो उसे उपलभ्य हो या तो प्रस्ताव को ग्रहण कर लेगा या उसे ग्रहण करने से इंकार कर देगा ।

(2) यदि उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रस्ताव ग्रहण कर लिया जाता है तो, यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति प्रस्ताव को लंबित रखेगा और उन आधारों का अन्वेषण करने के लिए जिन पर न्यायाधीश के हटाए जाने की प्रार्थना की गई है, यथाशक्यशीघ्र, एक समिति गठित करेगा जो तीन सदस्यों से मिलकर बनेगी जिनमें से --

(क) एक सदस्य उच्चतम न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिपति और अन्य न्यायाधीशों में से चुना जाएगा ;

(ख) एक सदस्य उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिपतियों में से चुना जाएगा ; और

(ग) एक सदस्य ऐसा व्यक्ति होगा जो, यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति की राय में, विशिष्ट विधिवेत्ता है :

परंतु जहां उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रस्ताव की सूचनाएं संसद् के दोनों सदनों में एक ही दिन दी जाएं वहां कोई समिति तब तक गठित नहीं की जाएगी जब तक कि प्रस्ताव दोनों सदनों में ग्रहण न कर लिया जाए और जहां ऐसा प्रस्ताव दोनों सदनों में ग्रहण कर लिया गया है वहां समिति अध्यक्ष और सभापति द्वारा मिलकर गठित की जाएगी :

परंतु यह और कि जहां यथापूर्वोक्त प्रस्ताव की सूचनाएं संसद् के सदनों में विभिन्न तारीखों पर दी जाएं वहां वह सूचना जो बाद में दी गई है नामंजूर हो जाएगी ।

(3) समिति न्यायाधीश के विरुद्ध उन निश्चित आरोपों की विरचना करेगी जिनके आधार पर अन्वेषण का किया जाना प्रस्थापित है ।

(4) ऐसे आरोप, उन आधारों के कथन सहित जिन पर हर एक ऐसा आरोप आधारित है, न्यायाधीश को संसूचित किए जाएंगे और उसे, उतने समय के भीतर जो कि समिति इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे, प्रतिवाद का लिखित कथन उपस्थापित करने का युक्तियुक्त अवसर दिया जाएगा ।

(5) जहां यह अभिकथित किया जाए कि किसी शारीरिक या मानसिक असमर्थता के कारण न्यायाधीश अपने पद के कर्तव्यों का दक्षतापूर्वक पालन नहीं कर सकता और उस अभिकथन से इंकार किया जाए, वहां समिति, न्यायाधीश की, ऐसे चिकित्सीय बोर्ड द्वारा जो इस प्रयोजन के लिए, यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति द्वारा, या जहां कि समिति अध्यक्ष और सभापति द्वारा मिलकर गठित की जाती है वहां इस प्रयोजन से उन दोनों के द्वारा, नियुक्त किया जाए, स्वास्थ्य परीक्षा की व्यवस्था कर सकेगी और न्यायाधीश उतने समय के भीतर जो समिति द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट किया जाए ऐसी स्वास्थ्य परीक्षा के लिए अपने को समर्पित करेगा ।

(6) चिकित्सीय बोर्ड न्यायाधीश की ऐसी स्वास्थ्य परीक्षा करेगा जो आवश्यक समझी जाए और समिति को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा जिसमें यह कथित होगा कि क्या असमर्थता ऐसी है जिसने न्यायाधीश को पद पर बने रहने के लिए अनुपयुक्त बना दिया है ।

(7) यदि न्यायाधीश, चिकित्सीय बोर्ड द्वारा आवश्यक समझी गई स्वास्थ्य परीक्षा कराने से इंकार कर देता है तो, बोर्ड समिति को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा जिसमें उस परीक्षा का कथन होगा जिसको कराने से न्यायाधीश ने इंकार कर दिया है और समिति, ऐसी रिपोर्ट की प्राप्ति पर, उपधारणा कर सकेगी कि न्यायाधीश में ऐसी शारीरिक या मानसिक असमर्थता है जो उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रस्ताव में अभिकथित की गई है ।

(8) समिति, न्यायाधीश के लिखित कथन और स्वास्थ्य-रिपोर्ट पर, यदि कोई हो, विचार करने के पश्चात् उपधारा (3) के अधीन विरचित आरोपों को संशोधित कर सकेगी और ऐसी दशा में न्यायाधीश को प्रतिवाद का नया लिखित कथन उपस्थापित करने के लिए युक्तियुक्त अवसर दिया जाएगा ।

(9) यदि केंद्रीय सरकार से, यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति या दोनों यह अपेक्षा करे तो, वह न्यायाधीश के विरुद्ध मामला संचालित करने के लिए एक अधिवक्ता नियुक्त कर सकेगी ।

4. **समिति की रिपोर्ट** – (1) ऐसे किन्हीं नियमों के अध्यधीन रहते हुए जो इस निमित्त बनाए जाएं, समिति को अन्वेषण करने के लिए अपनी प्रक्रिया स्वयं विनियमित करने की शक्ति होगी और वह, न्यायाधीश को साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने, साक्ष्य देने और अपने प्रतिवाद में सुनवाई के लिए युक्तियुक्त अवसर देगी ।

(2) अन्वेषण की समाप्ति पर, समिति अपनी रिपोर्ट, यथास्थिति, अध्यक्ष या सभापति को या जहां कि समिति अध्यक्ष और सभापति द्वारा मिलकर गठित की गई है, वहां उन दोनों को देगी जिसमें पूरे मामले पर ऐसे विचार व्यक्त करते हुए जिन्हें वह ठीक समझता है हर एक आरोप पर अलग-अलग उसके निष्कर्ष कथित होंगे ।

(3) अध्यक्ष या सभापति, या जहां कि समिति अध्यक्ष और सभापति द्वारा मिलकर गठित की गई है वहां वह दोनों, उपधारा (2) के अधीन प्रस्तुत की गई रिपोर्ट को, यथाशक्यशीघ्र, क्रमशः लोक सभा और राज्य सभा के समक्ष रखवाएंगे ।

5. **समिति की शक्तियां** – इस अधिनियम के अधीन कोई अन्वेषण करने के प्रयोजन के लिए समिति को निम्नलिखित विषयों के बारे में, अर्थात् :–

(क) किसी व्यक्ति को समन करने और उसको हाजिर कराने तथा उसे शपथ पर परीक्षित करने के बारे में ;

(ख) दस्तावेजों के प्रकटीकरण और पेश किए जाने की अपेक्षा करने के बारे में ;

(ग) शपथ पर साक्ष्य प्राप्त करने के बारे में ;

(घ) साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालने के बारे में ;

(ङ) अन्य ऐसे विषयों के बारे में जो विहित किए जाएं,

वे समस्त शक्तियां होंगी जो किसी सिविल न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन वाद का विचारण करते समय होती हैं ।

6. **रिपोर्ट पर विचार किया जाना और न्यायधीश के हटाए जाने के लिए समावेदन उपस्थापित करने की प्रक्रिया** – (1) यदि समिति की रिपोर्ट में यह निष्कर्ष हो कि न्यायाधीश किसी कदाचार का दोषी नहीं है या उसमें कोई असमर्थता नहीं है तब, उस रिपोर्ट के संबंध में संसद् के किसी भी सदन में कोई आगे कार्रवाई नहीं की जाएगी और संसद् के सदन या सदनों में लंबित प्रस्ताव पर कोई भी कार्यवाही नहीं की जाएगी ।

(2) यदि समिति की रिपोर्ट में यह निष्कर्ष हो कि न्यायाधीश किसी कदाचार का दोषी है या उसमें कोई असमर्थता है तो समिति की रिपोर्ट सहित धारा 3 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रस्ताव पर, संसद् के सदन या सदनों द्वारा, जिसमें या जिनमें वह लंबित है, विचार किया जाएगा ।

(3) यदि प्रस्ताव, यथास्थिति, संविधान के अनुच्छेद 124 के खंड (4) के उपबंधों के अनुसार या अनुच्छेद 218 के साथ पठित उस खंड के अनुसार, संसद् के हर एक सदन द्वारा अंगीकृत कर लिया जाता है जब यह समझा जाएगा कि न्यायाधीश का कदाचार या उसकी असमर्थता साबित हो गई है और न्यायाधीश के हटाए जाने की प्रार्थना करने वाला समावेदन उसी सत्र में जिसमें कि प्रस्ताव अंगीकृत किया गया है संसद् के हर एक सदन द्वारा, राष्ट्रपति को विहित रीति से उपस्थापित किया जाएगा ।

7. **नियम बनाने की शक्ति** – (1) इस अधिनियम के प्रयोजनों को क्रियान्वित करने के लिए नियम बनाने के प्रयोजन से, संसद् के दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति, इसमें इसके पश्चात् अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार, गठित की जाएगी ।

(2) संयुक्त समिति पन्द्रह सदस्यों से गठित होगी जिसमें से दस सदस्य अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे और पांच सदस्य सभापति द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे ।

(3) संयुक्त समिति अपना अध्यक्ष स्वयं निर्वाचित करेगी और उसे अपनी प्रक्रिया स्वयं विनियमित करने की शक्ति होगी ।

(4) उपधारा (1) के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, संयुक्त समिति अन्य विषयों के साथ-साथ निम्नलिखित का उपबंध करने के लिए नियम बना सकेगी, अर्थात् :–

(क) संसद् के एक सदन में अंगीकृत किए गए प्रस्ताव को दूसरे सदन में पारेषित करने की रीति ;

(ख) किसी न्यायाधीश के हटाए जाने के लिए राष्ट्रपति को समावेदन उपस्थापित करने की रीति ;

(ग) समिति के सदस्यों को और उन साक्षियों को, जिनसे ऐसी समिति में हाजिर होने की अपेक्षा की जाए, संदेय यात्रा और अन्य भत्ते ;

(घ) वे सुविधाएं जो न्यायाधीश को अपना प्रतिवाद करने के लिए दी जा सकेंगी ;

(ङ) कोई अन्य विषय जिसके लिए उपबंध, नियमों द्वारा किया जाना है या किया जाए या जिसकी बाबत संयुक्त समिति की राय में उपबंध आवश्यक है ।

(5) इस धारा के अधीन बनाए गए कोई भी नियम तब तक प्रभावी न होंगे जब तक कि वे अध्यक्ष और सभापति, दोनों ही द्वारा अनुमोदित और पुष्ट नहीं किए जाते और शासकीय राजपत्र में प्रकाशित नहीं किए जाते और नियमों का ऐसा प्रकाशन इस बात का निश्चायक सबूत होगा कि वे सम्यक् रूप से बनाए गए हैं ।